चिनार

अस्फ़द मुख़्तार

चिनार

अस्क़द मुख़्तार

प्रगति प्रकाशन, ताश्क़न्द – १६८०

अनुवादक – राय गणेश चन्द्र
डिज़ाइन - तैमूर सादुल्लायेफ़

АСКАД МУХТАР
ЧИНАРА
роман
на языке хинди

प्रगति प्रकाशन, ताश्क़न्द – १९८०

$M\frac{70303-601}{014(01)-80}$ 620 — 80 4702570200

वे पहाड़ों पर छायी घनघोर घटाएँ नहीं, चिनार हैं। चिनार, जी हाँ, पहाड़, गाँव, सब इसी नाम से जाने जाते हैं। हमारे आचिल बाबा भी तो यहीं पैदा हुए हैं। मैं इन्हीं से अपनी बात शुरू करना चाहता था लेकिन, क्या करूँ, चिनार के बिना कुछ संभव जो नहीं। गाँव के केन्द्र में लोगों से ठसाठस भरे चायख़ाने में सुनिये : "गपशप करने चिनार गये थे," "चलो, चिनार चलकर पुलाव बनायें।" पूरा गाँव इसी चिनार के साये में बसा है।

आज आचिल बाबा चिनार से विदा ले रहे हैं—हमेशा के लिए नहीं, बस थोड़े दिनों के लिए। जब कभी आचिल बाबा जाते हैं, चिनार से ज़रूर विदा लेते हैं—देर तक उसे निहारते हैं, बुदबुदाकर इस तरह बातें करते हैं मानो वह कोई आदमी हो।

भोर का समय है। भोर की किरणें चिड़ियों को जगाती हैं और उनकी आवाज़ों के पहले रजत छल्ले आसमान की ओर उड़ चलते हैं। हवा में हरे बादलों की उर्मियाँ उठती हैं और महाकाय चिनार के सीने से धीर-गंभीर सरसराहट निकलकर वातावरण में भर जाती है। यह आवाज़ कान लगाकर सुननेवालों को ही सुनाई देती है। जहाँ तक आचिल बाबा का सवाल है, यही सरसराहट तो भोर का दूसरा नाम है। गाँव के केन्द्र में सफ़ेद पत्थर का एक चबूतरा है। इस पहाड़ी गाँव में ऐसे पत्थरों की कोई कमी नहीं। पगडंडियों पर वे सीढ़ियों का, नालियों में पुल का, चश्मों पर पैर रखने और चायख़ानों में चबूतरों का काम देते हैं। चिनार भी

ऐसे ही पत्थरों से उगा है लेकिन कहते हैं, इसकी जड़ें पत्थर का सीना फाड़कर, चिनार पर्वत की जड़ों से जा मिली हैं।

अभी भोर का समय है। सफ़ेद भोर। गुज़र * व गाँव की सड़कों पर कहीं कोई भी नहीं। केवल आचिल बाबा और चिनार आमने-सामने खड़े हैं।

आचिल बाबा को यह चिनार हमेशा सजीव और प्रिय साथी लगता है। बुद्धिमान साथी। उम्र एक हज़ार से ऊपर। एक हज़ार वर्ष! वह बिरवा कब था और तब कैसा था! कौन जाने! तब साल तीन अंकों के थे। हज़ार वर्ष। हरेक वसन्त में नया परिधान, नया जीवन। ऊबड़-खाबड़वाला उन्नीस क़ुलाच ** का उसका तना जीवन की नित्यता का प्रमाण देता प्रतीत होता है। ऐसा आभास होता है, उसके अनगिनत पत्तों रूपी पंजे प्रकाश से प्लावित हवा से जीविकोपार्जन करते ऊपर ही ऊपर बढ़ते जा रहे हैं। आचिल बाबा को यह हमेशा जवान ही दिखाई देता है। इस समय, चाँदी घुली सुबह में भी वह सदा की तरह हृष्ट-पुष्ट, अपने पूरे जिस्म से मनोहरी तारुण्य बिखेरता खड़ा है। चारों ओर फैली, चिकनी, हरी-भरी शाखाओं के ऊपर जैसे-जैसे आप नज़र दौड़ायेंगे, ऊपर की ओर यह दूध की तरह सफ़ेद होता गया है। गाँव के केन्द्र में ऊपर झूलती इसकी सातवीं शाखा अभी नयी है–कोई पाँच-छह सौ साल की। उसका धड़ लड़कियों की देह की तरह सफ़ेद और चिकना है। जब आचिल बाबा जवान थे, तब भी वह ऐसा ही था। उस समय भी आचिल बाबा के मन में यही विचार आते थे।

जी हाँ, चिनार पर नज़र डालकर ही आचिल बाबा अपनी सारी ज़िन्दगी की याद करते हैं। इस पर नज़र डालते ही उनकी आँखों के सामने असीम, हरा-भरा सागर उपस्थित हो जाता है। उन्हें अपनी ज़िन्दगी भी असीम प्रतीत होने लगती है मानो वे हज़ारों-हज़ार साल से ज़िन्दा हैं और ज़िन्दा रहेंगे। फिर वे चहुँओर, समस्त प्रकृति पर किसी मालिक की तरह नज़र डालते पहाड़ों पर छाये काले बादलों, दूर-दूर झिलमिलाती बिजली से स्नेहपूर्वक 'तू' कहकर बातें करने लगते हैं:

"अब छोड़ भी, प्रभात को कष्ट न पहुँचा, सवेरा आने दे!"

---

* गुज़र – चौक।

** क़ुलाच – फैले हाथों के बराबर माप।

बाबा देर तक चिनार को निहारते रहते हैं। देर तक बातें करते हैं। इस के बाद ही उससे विदा लेते हैं। सीने तक फैली उनकी दाढ़ी काँप उठती है और वह निःशब्द, एक बून्द आँसू बहाये बिना रो पड़ते हैं। नहीं, उन्हें कोई बड़ा दुख हो, ऐसी बात नहीं। कौन जाने, रोनेवाला भी कोई और हो।

रवायत*

कहते हैं, आचिल बाबा के किसी दूर के पूर्वज ने इस चिनार को उस साल लगाया था जब ताऊन का प्रकोप फैल गया था। तभी से यहाँ कोई महामारी, कोई आफ़त नहीं आयी। इसीलिए हर साल आस-पास के इलाक़ों के बहुत से लोग चिनार की ज़ियारत पर आते हैं। फिर भी उसकी खुरदरी तने पर चाकू का घाव तो दूर, नाख़ून की कोई खरोंच तक नहीं। क्योंकि लोगों का कहना है, यदि चिनार को कोई धार लगी तो घाव से ख़ून का फ़ौवारा फूट पड़ेगा।

एक साल जब आचिल बाबा की उम्र सत्तर की हो चुकी थी, गाँव के वृद्धों ने चिनार की उम्र का हिसाब भी लगाकर बताया था कि चिनार कब अपने हज़ार साल पूरे करेगा। आम धारणा के अनुसार, चिनार जिस दिन हज़ार साल पूरे करेगा, ख़ुद-ब-ख़ुद दहककर जल उठेगा।

इसके बाद चिनार गाँव व उसके आस-पास के इलाक़ों में हफ़्तों तक ख़ौफ़ छा गया। गाँव के केन्द्र व गाँव सुनसान हो गये। लोग पहाड़ों पर, खेतों में जाकर रहने लगे। उनकी आँखें पहाड़ की ढलान पर छाये हरे बादल पर टिकी रहतीं। बूढ़े लोग दुआ-इबादत करते। डरके वशीभूत हो सब के सब आश्चर्यजनक अग्निकाण्ड की प्रतीक्षा कर रहे थे।

इस भयानक प्रतीक्षा से थक-हारकर लोगों ने बुज़ुर्गों से ठीक तारीख़ बताने की माँग की। वृद्धों ने काफ़ी देर तक विचार-विमर्श करने के बाद चिनार के प्रज्वलित हो उठने का ठीक समय बता दिया।

---

* रवायत – दन्तकथा।

यह घटना सफ़र माह * के दूसरे शुक्रवार को आधी रात के समय होनेवाली थी।

सिर्फ़ आचिल बाबा को इस भविष्यवाणी पर कोई यक़ीन नहीं था। उन्हें अभी भी बचपन में अपने दादा से सुनी कहानियाँ याद थीं। चिंगीज़ ख़ाँ के ज़माने में जब सब कहीं धुआँ ही धुआँ उठ रहा था, खेत और बाग़ जल रहे थे, उस समय भी इस चिनार की महाकाय हरी-भरी चोटियाँ सरसरा कर कहती रही थीं: "जीवन शाश्वत है, अनन्त है।"

नहीं, आचिल बाबा को चिनार के जल उठने का कोई विश्वास नहीं। अविश्वासवश या अज़ीज़ के साथ ही जल मरने के इरादे से वह उस रात अकेले ही चिनार के पास जा पहुँचते हैं।

गाँव के निवासी रोते-धोते, अभिशाप, दुआ, लानत-मलामत, प्यार-दुलार, हैरतउमंग के साथ उन्हें विदा देने निकल आते हैं। चिनार को जाती पगडंडी पर धीरे-धीरे चलते हुए आचिल बाबा रात के अंधेरे में घुलकर आँखों से ओझल हो गये।

सफ़र माह के दूसरे शुक्रवार की रात इस इलाक़े के बूढ़ों-बच्चों ने आँखों में जागते ही काट दी। वे रात भर पहाड़ की ढलान पर शान से खड़े चिनार को ताकते रहे।

चिनार जलता नहीं।

आचिल बाबा ने कभी किसी को इस घटना के बारे में विस्तार से बताया हो, यह किसी को नहीं मालूम। लेकिन इस सिलसिले में अगले ही दिन अफ़वाहों का ताँता लग गया। कहते हैं, गाँव के केन्द्र में उसी पत्थर के चबूतरे पर खड़े हो वह रात भर चिनार को निहारते रहे – एक-दो नहीं, दस घण्टों तक – मानो उन्हें स्वयं अपनी नियति की प्रतीक्षा हो। ताकते-ताकते आँखों से आँसू बह निकले।

चिनार जला नहीं।

चिनार जला तो नहीं लेकिन क्षण भर को बोल ज़रूर उठा – किसी आदमी की तरह: "जिस दिन मैं जलूँगा, ज़माना आख़िर हो जायेगा, क़यामत आ जायेगी।"

---

* सफ़र माह – मुस्लिमों के कैलेण्डर में दूसरा माह।

तभी से लोग उसे निहारते रहते हैं। लेकिन चिनार लोगों को प्रलय की नहीं, जीवन की नित्यता की याद दिलाता है।

सौ साल के वृद्ध जब ज़ियारत पर आते हैं, कहते हैं: "जब मैं जवान था, इसे बूढ़ा कहता था। अब मैं तो बूढ़ा हो चुका हूँ लेकिन यह जैसा का तैसा ही है।" अब किसी को उस की उम्र नहीं मालूम। फिर उसकी उम्र का हिसाब लगाना गुनाह भी तो माना जाता है।

इस घटना के सिलसिले में जो बात कही-सुनी जाती हैं, उनमें एक यह है कि जिसे चिनार का बोलना सुनाई देता है, वह अमर होता है।

इस बात में कितनी कपोल-कल्पना और कितनी सचाई है—मुझे नहीं मालूम।

लेकिन आचिल बाबा आज भी ज़िन्दा हैं और इस साल जब ख़रबूज़े पकेंगे, वे चौरानवे साल में पदार्पण करेंगे। वे आज भी चिनार की तरह ही शक्तिशाली हैं।

उन्हें देखकर जी चिनार के बोलने में विश्वास कर लेना चाहता है। यदि आप अकेले चिनार के आमने-सामने खड़े हो जायें, यदि सच्चे दिल से कान लगाकर सुनें तो आपको मालूम होगा, चिनार आपको युगों पुराने ख़्याल सुना रहा है। वह बीते युगों के बारे में, जीवन की शक्तिमत्ता और अमरता के बारे में बताता है। यदि आप ध्यानावस्थित हों तो उसकी धीमी सरसराहट में आपको आदमी की आवाज़ सुनाई देती मालूम होगी। आप अपने आप से बड़बड़ा उठेंगे: "काश! काश मेरी उम्र भी..." फिर अपनी ही आवाज़ से चौंककर आप होश में आ जायेंगे और मुस्करा उठेंगे।

चिनार अभी तक सरसरा रहा है।

नहीं, चिनार के बोलने के एकमात्र गवाह आचिल बाबा ही हैं। यह रवायत है, सभी जानते हैं लेकिन इसकी सच्चाई में भी कोई सन्देह नहीं कर सकता। जैसा कि मैं शुरू में ही कह चुका हूँ, चिनार के बारे में कुछ कहे बिना आचिल बाबा के सिलसिले में कुछ कहना असम्भव है। कोई ऐसा आदमी जिसे यह बात नहीं मालूम हो, वह भी अगर आचिल बाबा को देखेगा तो उसे किसी महान शक्ति की याद हो आयेगी। वह हैरान होकर बोल उठेगा, "चिनार जैसे आदमी हैं," और दाँतों तले अँगुली दबा लेगा। इसकी पूरी सम्भावना है।

आचिल बाबा अपने मँझले बेटे, टोली-नायक तालिबजान के साथ आँगन के उस छोर पर अलहदा घर में रहते थे। लाठी खट्-खट् करते जब वह गाँव के केन्द्र से लौटे, सामूहिक फ़ार्म की "गाज़-६९" कार आँगन में तैयार खड़ी थी। पत्नी व बाल बच्चों सहित तालिबजान भी बाबा को विदा देने बाहर निकल आया था।

कार चलानेवाले लड़के के सलाम का जवाब देते-देते बाबा ने बड़ी चतुराई से बरामदे में चढ़कर अपना सफ़र का चकमान * हाथ में ले लिया फिर बारी-बारी से बहू, पोते-पोतियों के ललाट चूमे।

"अज़ीमजान, दिन चढ़ने से पहले हम रवाना हो जायें," आचिल बाबा कार की ओर बढ़ते हुए बोले।

बेक़सम ** का एकदम चकाचक नया चोग़ा पहने, ख़ुर्जी उठाये एक नौजवान घर से बाहर निकल आया। क़द से नाटा, रंग से पीला। मुल्ला-बच्चा यानी मदरसे का छात्र लग रहा था। यही अज़ीमजान था। आचिल बाबा की तुलना में वह दूसरी दुनिया का आदमी दिखाई दे रहा था: चरमराते चमकीले बूट, ऊनी कपड़े कनी पतलून, रेशमी क़मीज़... एक भी सिलवट नहीं, सब कुछ नया और एकदम मुलायम। बेक़सम के चोग़े व चुस्त * की टोपी को तो जैसे पहली बार ही पहना गया था। वह उन्हें किसी धरोहर की तरह सँजो कर रखता था। आचिल बाबा उसके सामने किसी पहाड़-से हैं। उसके धूलसोख़ भूरे रंग के बूट के कैन्वसवाले ऊपरी भाग में नरम चुन्नट हैं। लम्बे सफ़ेद यकतक**** के ऊपर से कुछ ढीला बँध क़मरबन्द ऐसे लग रहे थे मानो कमर के यौवन, इसकी मज़बूती की हिफ़ाज़त कर रहे हों। बर्फ़-सी सफ़ेद दाढ़ी से ही केवल बाबा के बुढ़ापे का पता चलता है। आचिल बाबा सक्ष्मदर्शी काली-काली आँखों व घनी भौंहों-

---

* चकमान – तेज़ धूप या बरसात से बचने के लिए पहना जानेवाला मोटा चोग़ा।

** बेक़सम – उज़बेकों का मनपसन्द रेशमी कपड़ा जिससे मर्दों के चोग़े आदि बनाये जाते हैं। – प्र०

*** चुस्त – फ़रग़ाना वादी का एक शहर, जो अपनी बढ़िया टोपियों के लिए मशहूर है।

**** यकतक – हल्का चोग़ा।

वाले ख़ूबसूरत नौजवान रहे हैं। उनका तारुण्य, आज भी न जाने कहीं सुरक्षित है—शायद मूँछों की एक नोक भर से मुस्कराने में, कुछ धँसी हुई-सी आँखों के चमकने में या किर्गिज़ टोपी को कुछ तिरछे पहनने की आदत में।

ख़ुर्जी रखकर वे खुली कार की दोनों तरफ़ की कुर्सियों पर बैठ गये।

"भाई साहिब को हमारी ओर से सलाम कहियेगा, बाबा," शोर मचाते बच्चों को बाँहों में लेकर तालिबजान ने ज़ोरों से कहा।

और दोस्तो, हम कहाँ बैठेंगे? हमें भी तो साथ ही जाना है। आचिल बाबा की बात शुरू कर दी है तो उन्हीं के साथ रास्ता तय करना भी ज़रूरी है। इसे हम उनके जीवन का रास्ता कहें तो अत्युक्ति होगी। यह तो मामूली-सा सफ़र है—साल में एक बार। इसके दौरान वह मातृ-भूमि में अज़ीम चिनार की तरह ही जड़ फैलाये अपने महान खानदान के एक हिस्से का दौरा करके, रिश्तेदारों के हाल-समाचार लेकर, पिता के कर्त्तव्य निभाकर लौट आयेंगे। कौन-से लोग, कैसी घटनाएँ, उनकी नियति... है न रोचक? जिनके लिए रोचक है, हमारे साथ चलिये।

तो हम चलते हैं।

हमारे और आपके लिए कार में जगह की कोई ज़रूरत नहीं। हम बाहर से ही देखते, समझते चलेंगे।

गाँव की गलियों से होकर कार जल्दी ही पक्की सड़क पर जा पहुँचती है। सूर्य अभी क्षितिज पर ही है। ओस के कारण सड़कें काली लगती हैं। तीर की तरह पहाड़ों, दर्रों को पार करके कार आगे बढ़ती जा रही है और आचिल बाबा की नज़रें काले धब्बे से दिखाई देते पहाड़ की ढलान पर खड़े चिनार की ओर ही टिकी हैं। अज़ीमजान सूर्योदय देखने में लीन है। क्षितिज पर लाली बिखेरते इस फूल को अज़ीमजान रात की नीन्द से जागने के बाद पहली बार देख रहा है। जब उस असीम दहकते क़ालीन को देखते-देखते आँखें थक जातीं, वह बाबा से पूछ लेता: किस रास्ते पर चलेंगे, बाबा?

दूर-दूर तक गेहूँ के सुनहरे व कपास के सुविस्तृत खेतों को काटती क्षितिज की ओर जाती सड़कें चमक रही थीं। चरागाहों में पगडंडियाँ बलखाते साँप के निशानों से लग रही थीं।

"इनमें से चाहे किसी भी रास्ते क्यों न चलो, हम किसी न किसी रिश्तेदार के यहाँ ज़रूर जा पहुँचेंगे, बेटे," असीम विस्तृति पर दृष्टि डालते हुए आचिल बाबा ने इस तरह कहा मानो यह सारी दूरी वे एक साथ अपनी आँखों से देख लेना चाहते हैं। उन्होंने आह भरी या गहरी साँस ली, दाढ़ी से आच्छादित उनका सीना काँप उठा। आचिल बाबा अपने बच्चों व पोतों में से एक सौ सैंतीस को तो जानते हैं। उनका ख़ानदान इस सारे प्रान्त में फैला है। प्यारी मातृभूमि के चप्पे-चप्पे पर इस ख़ानदान की जड़ें जमी हैं। यदि कहीं कोई भाला फेंका जाये, इन्हीं की जड़ों से जा लगेगा। यूँ तो यह एक बड़ी-सी क़ौम है लेकिन बाबा के लिए अपना सामान्य परिवार। वे सबको "हमारे बच्चो" ही कहते हैं। हालाँकि अज़ीमजान की उम्र चालीस है फिर भी उसे आचिल बाबा का "बेटा" कहना अच्छा लगता है।

"अब क्या, आरिफ़ मामा के यहाँ जायेंगे?"

"हाँ, बेटे, आरिफ़ मामा के यहाँ ही चलेंगे।"

"आरिफ़ मामा बड़े हैं कि मेरी माँ?"

"तेरी माँ, बेटे।"

हफ़्ते भर से सवालों की बौछार लगाये रहनेवाले अज़ीमजान को उन्होंने बहुत से रिश्तेदारों के बारे में बताया था। उसे आरिफ़जान मामा के बारे में भी बताया। लेकिन वह भला सब कुछ बतायें तो कैसे? किसके-किसके बारे में बतायें? बताने से अच्छा होगा, बारी-बारी से सब के यहाँ जाकर ख़ुद देखना और मिलना।

और फिर, शायद अज़ीमजान अपने बाबा की कहानियों को ठीक से समझ भी नहीं पा रहा है। ज़माने की हवा बेचारे को यहाँ से दूर ले गयी, उसका जन्म विजातीय भूमि पर हुआ। बाबा की सागर की लहरों-सी शक्तिशाली व सुन्दर कहानियों को वह ख़ुद में समा नहीं पाता। अन्त में पता चला कि उसे इन कहानियों का विश्वास ही नहीं। तभी तो आचिल बाबा ने सफ़र में उसे भी साथ ले जाने का फ़ैसला किया था।

अज़ीमजान विदेश में जन्मा और बड़ा हुआ। उसके ख़्याल से पुश्तैनी ज़मीन के सभी रिश्तेदार मर-खप चुके थे। वह अपने मन में यह बात बैठा ही नहीं पा रहा था कि यह सारी आबादी, सैंकड़ों रिश्तेदार, ज़मीन, प्रकृति, इतिहास, अफ़साने, घटनाएँ—सब उसी की हैं, अपनी हैं।

अज़ीमजान एक अमीर व्यवसायी है। अपनी जवानी के दिनों से ही वह क़राकुली खालों का अद्भुत विशेषज्ञ माना जाता है। जन्म स्थान में स्थित क़राकुली खालों की बड़ी कम्पनी में बाप से विरासत में उसे एक काफ़ी बड़ा हिस्सा हासिल हुआ था। होश सम्भालने के बाद से ही उसे अपने बाप-दादे की भूमि की ज़ियारत करने की इच्छा हो रही थी। तभी लेनिनग्राद का मेला एक अच्छे अवसर के रूप में उसके हाथ आया। जब अन्तर्राष्ट्रीय मेले में भाग ले रही एक प्रख्यात कम्पनी का विशेषज्ञ अचानक लापता हो गया तो पहले काफ़ी शोर मचा। फिर अज़ीमजान ने जब अपने दादा को ढूंढ़ निकाला, उसने अपने ठौर-ठिकाने की ख़बर उन्हें दी। उसने यह भी सूचना भेज दी कि कुछ समय तक यहीं रुकने का उसका इरादा है। अब पिछले एक हफ़्ते से वह अपने नाना के साथ था। अपने बाप-दादों का रिवाज उसे मन भा गया और उसने चरमराता बूट, रेशमी कमरबन्द, बेक़सम चोग़ा और चुस्त की टोपी ख़रीदकर धारण कर ली। इन्हें वह अपने साथ ही ले जानेवाला था। वहाँ यूरोपीय ढंग के कपड़े पहननेवाले दोस्त उसे देखेंगे तो हैरान ही रह जायेंगे।

अज़ीमजान मन ही मन मुस्करा उठा।

अरे, हाँ, उन्हें हैरत में डालनेवाली बातें तो बहुत-सी हैं। जैसे, बा-बा या चिनार को ही लें...

"बाबा, क्या यह सच है कि आपने चिनार की बातें सुनी थीं?"

इस बीच वे क़ारा कर्ग़ा शृंणपथ पार करके असीम समतल चरागाह में पहुँच गये थे। चढ़ आये सूरज की किरणें मोटर के शीशे से टकराकर आँखों को चौंधिया रही थीं। सामने से गर्म हवा आ रही थी। यह एक विराट रेगिस्तान की अंचलभूमि है। क्षितिज का पीला रंग और यह लू उसी की पहचान हैं। चरागाह में असंख्य रेवड़ हैं। सड़क के किनारे इधर-उधर बहुत से संगमरमर के टुकड़े पड़े हैं। खान पास में ही है। शायद ट्रकों के ख़राब हो जाने के कारण उन्हें यहाँ छोड़ना पड़ा होगा।

न जाने क्यों, गर्मी या चारे की कमी के कारण रेवड़ सुस्त लग रहे थे। चारा खाने से कहीं ज्यादा भेड़ एक-दूसरे से लिपटने-टेकने में लगे थे। भौंहों पर बल देकर आचिल बाबा कुछ सोचते रहे फिर मोटर रुकवाकर चट्टानों के साये में एक-दूसरे से लिपटे खड़े दो भेड़ों के पास जा पहुँचे। छड़ी लेकर उन्होंने उनके रोवों को उलट-पलटकर देखा। फिर ज़ोरों से

गरेड़िये को आवाज़ दी। ख़ेमे के अन्दर से एक बच्चे को उठाये हड़बड़ाता गरेड़िया बाहर निकल आया। उसने इधर-उधर देखा। फिर मोटर पर नज़र पड़ी तो सड़क की ओर बढ़ आया। यह एक तगड़ा, हट्टा-कट्टा नौ-जवान था।

"बेटे, तुम क्या करते हो, भेड़ों को तो पदारथ रोग हो गया है," आचिल बाबा ने कहा।

गरेड़िया घबड़ाकर पीला पड़ गया। क्या कहे, यह न जानते हुए, उसने गोद के बच्चे को दिखाया।

"इसे छोड़कर कहीं नहीं जा सकता हूँ, बाबा। यह बीमार है।"

आचिल बाबा ने बच्चे की पलकें देखीं, मुँह खुलवा कर देखा:

"इसे बहू को दे दो। कबाब बनाकर उसका दो चम्मच रस पिला देगी। ख़ुद मोटर में बैठ जाओ।"

बच्चा पत्नी को सौंपकर गरेड़िया दौड़कर मोटर में आ बैठा।

रास्ते में आचिल बाबा ने उसे समझाया: जल्दी ही कारंटीन घोषित कर दो, रास्ते पर दवा मिश्रित चूरा रखवा दो, चौकियाँ क़ायम करा-ओ, ज्यादा से ज्यादा पशुचिकित्सकों को बुला लो जिससे कड़ाके की गर्मी पड़ने से पहले ही इस रोग को ख़त्म कर दिया जाये।

वह गठीला नौजवान अपनी आँखें फाड़-फाड़कर देखे जा रहा था। अब वह स्थिति की गम्भीरता शायद अच्छी तरह समझ गया था। सरकारी फ़ार्म के बाड़े के पास उतरते वक़्त वह बार-बार रटे जा रहा था: "सब कुछ करेंगे, आचिल बाबा, सब कुछ...।"

"क़िमिज़ * है तेरे पास?"

नौजवान दौड़ गया और बाड़े के पीछे खड़े एक ख़ेमे से क़िमिज़ का एक मशक ले आया। आचिल बाबा, अज़ीमजान और मोटर-चालक ने बारी-बारी से क़िमिज़ के दो-दो प्याले पी लिये।

बाबा आक़्क़ूराय ** का फूल तोड़, कनपटी पर टोपी के नीचे लगा, अपनी जगह आ बैठे।

"ऐ, लड़के, यह कौन-सा फ़ार्म है?" मोटर चल पड़ी थी तभी

---

* क़िमिज़—घोड़ी के दूध से बना एक पेय।

** आक़्क़ूराय—पहाड़ियों में उगनेवाली औषधीय झाड़ी।

उन्होंने पूछा। लेकिन जब तक वह जवाब देता, मोटर धूल के बादलों में खो चुकी थी।

वे दूर-दूर मृगमरीचिकासी दिखाई देनेवाले पठार की ओर चल दिये।

प्रकृति शान्त है। क्षितिज लहरा रहा है। भारद्वाज की अनवरत चह-चह धूप की उमस कुछ कम करती प्रतीत होती।

"क्या आप कभी गरेड़िया भी बने हैं, बाबा?" अज़ीमजान की पतली-सी आवाज़ दुबारा सुनाई दी।

"हाँ मवेशियों की भी देखभाल की, कपास की खेती भी और तल-वार से लड़ाई भी लड़ी, बेटे।"

"और आपने चिनार का बोलना भी सुना?"

"हाँ, यदि लोगों ने बताया तो सच ही होगा। अरे भाई, इस धरती की साँस लेने की आवाज़, उसके दिल की धड़कनें भी सुनी जा सक-ती हैं।"

"मुझे तो कुछ भी नहीं सुनाई दे रहा!"

"हम गोद के बच्चे हैं, गोद के! माँ की छाती से चिपटकर वह केवल दूध पीना ही जानता है। उसकी साँस, उसकी धड़कनों से उसका कोई मतलब नहीं होता।"

"बाबा, क्या आप भी गोद के बच्चे हैं?" हँसकर अज़ीमजान ने पूछा।

"हाँ, मैं भी बच्चा हूँ! इस चरागाह में नंगे पाँव, शबनम उड़ाते चलने की इच्छा होती है मुझे। मैं भी घास पर उछल-कूद मचाना चाहता हूँ। अगर मेरे वश में होता, मैं धरती के तमाम रास्ते पैदल चलकर तय करता। क्या तितली के पंख या किसी पत्ते को तुमने ध्यान से देखा है? गन्ध से फूल का नाम बता सकते हो? अंगूरों की सभी क़िस्में जानते हो? सब कुछ, एक-एक चीज़ को जी भर देखना चाहिए, हर चीज़ से विदा लेनी चाहिए।"

बाबा मौन हो गये। अज़ीमजान व चालक भी देर तक ख़ामोश रहे। तभी बाबा आगे बोल उठे: "अगर मैं लेखक होता तो एक ही पुस्तक लिखने में समस्त जीवन अर्पित कर देता।" (दोस्तो, इस बात का सरोकार मुझसे है! समस्त जीवन एक ही पुस्तक को लिखने में समर्पित करना? भला, वह कैसी पुस्तक हो सकती है?)

"वह कैसी पुस्तक होगी, बाबा?"

"विदाई की पुस्तक। प्रकृति से, उसकी सौन्दर्यशोभा से," फूलों, पत्तों, भारद्वाजों, चश्मों, सितारों—सभी ख़ूबसूरत चीज़ों से जी भर रो-रोकर विदा लेने की पुस्तक। ऐसी कोई पुस्तक नहीं, बेटे। जो ऐसी पुस्तक लिखेगा, उसका कोई भी अरमान बाक़ी नहीं रहेगा।"

दोस्तो, आचिल बाबा की इस बात का मुझपर भी गहरा असर पड़ा है लेकिन मैं पहले मिलन-मुलाक़ात की पुस्तक लिखता क्योंकि महान प्रकृति रूपी कलाकार के चमत्कारों का साक्षात्कार किये बिना, उन्हें देखे बिना चले जानेवाले लोगों की संख्या की भी कमी नहीं है।

अज़ीमजान इस गर्म स्तेपी को , आसमान की आँखें चौंधिया देनेवाले इस गुम्बद को जैसे पहली बार देख रहा था। वह पूर्णतया आस-पास के वातावरण में लीन है। उसका जी, स्तेपी के पौधों को छूने का करने लगता है।

इसी तरह वे तीन घण्टों तक चलते रहे। और जानते हैं, कैसी राह पर!

गरेड़ियों के परित्यक्त मकानों की दीवारों के अलावा यहाँ ज़िन्दगी का कोई चिह्न नहीं दिखाई देता है। तीन घण्टों से वे इस राह पर चल रहे हैं लेकिन कोई भी उन्हें नहीं मिला है।

शाम हो आयी है। चरागाह की यात्रा समाप्त कर वे रेगिस्तान के किनारे पहुँच गये हैं। पीली रेत के टीले और सुन्दर फूलोंवाले सकसाऊल के पेड़ दिखाई देने लगे हैं। अस्ताचलगामी रविरश्मियों में दूर कहीं कुछ तेज़ी से चमक उठता है। यह स्मारक है। काँसे की आवक्ष प्रतिमा। वह फूलों के छोटे से प्यारे बग़ीचे के भीतर एक तराशी चट्टान पर खड़ी है। पक्की सड़क यहाँ तक आती है और यहीं से रेगिस्तान व स्तेपियों की अनगिनत पगडण्डियाँ, काफ़िलों के बहुत से रास्ते चले गये हैं।

पत्थर का रूप धारण किये नुकीली सफ़ेद दाढ़ियोंवाला बूढ़ा आदमी। सान्ध्य सूरज से प्रकाशित उसके चेहरे की झुर्रियाँ इन रेगिस्तानों में अतीत के दुख, दुर्घटनाओं, कठिनाइयों से भरे जीवन और विचित्र विजयोल्लासपूर्ण नियति का प्रमाण देती हैं। इन रेगिस्तानों को वश में किये किसी सूरमा की तरह बूढ़ा गड़ेरिया आँखों पर बल देता क्षितिज की ओर ताकता रहता है।

अज़ीमजान ने स्मारक को चहुँ ओर से देखा और समाजवादी श्रमवीर के स्वर्ण तारे को हाथों से छूआ। स्मारक तक चली आती पक्की सड़क, निर्जन भूमि और समुद्र की तरह दूर-दूर चमकनेवाले क्षितिज को वह देर तक देखता रहा। फिर बूढ़े गड़ेरिये के चेहरे पर दुबारा नज़र डालते हुए उसने पूछा :

"जाबाय? बाबा, यह जाबाय है न?"

इस श्रमवीर की तस्वीर उसने लेनिनग्राद के मेले में देखी थी।

"हाँ, तेरे पिता की ग़लती सुधारनेवाला जाबाय यही है," एक पत्थर पर बैठते हुए आचिल बाबा ने जवाब दिया।

उन्होंने जाबाय पर जो नज़र डाली तो उनकी आँखों के सामने एक दूसरा ही चेहरा कौंध उठा, मुसीबत भरे ज़माने की यादें मँडराने लगीं।

उमस घट गयी थी। कुम्हलाते बग़ीचे में जान आ गयी। ऐसी शाम सोच-विचार की होती है।

हिकायत*

दोपहर हो चुका है। हवा के झोंकों से ओताव की लकड़ियों से बनी गोल दीवारें चरमरा रही हैं। चरागाह से सिर चकरा देनेवाली लू आ रही है। चारों ओर सन्नाटा है। धूप से भागकर चरवाहे झपकी लेने चले गये हैं। आम तौर से, ऐसे समय में बाज़ारक़ुल सिर नीचे किये, मौन बैठा रहता। लेकिन आज वह उल्लसित है। उसके दिल में उमंग भरा है। हवा के झोंकों के साथ सूखी घास की आती बू और स्तेपी के फूलों की गन्ध से वह मदहोश हुआ जा रहा है। आज आनाबीबी यहीं है।

वह रही, ओताव के साये में घरेलू काम-काज करते चलती फिरती। उसे कभी आनाबीबी के क़दमों की आहट, कभी मक्खन बिलोने की आवाज़ सुनाई दे जाती।

द्वार के क़रीब आड़ में खड़ा हो बाज़ारक़ुल उसकी आहट लेने लगा। आँखें बन्दकर उसने आनाबीबी की रूपसुधा का पान किया। अनार की

---

* हिकायत – किसी एक पात्र से सम्बन्धित लघु कथा।

तरह गदराई, भरी-पूरी, क़द से ऊँची। जब आनाबीबी अनजाने द्वार के पर्दों के पास पहुँची, बाज़ारक़ुल ने झपटकर मज़बूती से उसका हाथ पकड़कर अन्दर खींच लिया। लाल रंग के सूती कपड़े में आनाबीबी की छातियाँ लरज उठीं। उससे पनीर की बू आ रही थी।

"ओ, क्या कर रहे हैं? दिन दहाड़े," उसने बाज़ारक़ुल के बालों भरे सीने से अपना हाथ टिका दिया।

पर्दे को थोड़ा खिसकाकर बाज़ारक़ुल ने इधर-उधर देखा।

"चोरों से ताक-झाँक रहे हैं," आनाबीबी हँस पड़ी।

"आनाबीबी . . . "

"चरागाह में रहकर कहीं चोरी तो नहीं सीख ली," नाज़ से आनाबीबी बोली।

बाज़ारक़ुल ने उसे सीने से लगा लिया।

"नंगे पैर क्यों चलती हो?" उसने उसके कानों में बुदबुदाकर पूछा।

आनाबीबी चुप रही।

बाज़ारक़ुल से आनाबीबी ने प्रेम-विवाह किया था। पति अक्सर चिनार गाँव आता रहता था लेकिन आनाबीबी फिर भी चरागाह में दौड़ी चली आती। पल भर का वियोग भी उसे सह्यन था।

चरवाहों का खाना खाकर वह इतनी मोटी हो गयी थी कि गाल गेन्दों-से फूल गये थे। कमज़ोल * के ऊपर वह चाँदी का हार पहने रहती, हाथ पर तावीज़ बाँधती। बैठे-ठाले ओस्मा ** से भौहें रँगती, चेहरे पर फूल काढ़ती। यहाँ थोड़ी तकलीफ़ तो ज़रूर होती है। हमेशा नौजवानों की आँखों के सामने रहना पड़ता, एकाकी क्षण तो बहुत कम ही होते। फिर भी यही अच्छा था। आनाबीबी जानती थी, बाज़ारक़ुल को भी यही पसन्द था। जब वें एक-दूसरे को नहीं देखते, एकदम मुरझा जाते थे।

"बाज़ारक़ुल . . . आप बड़े बुरे नौजवान हैं," ओताव से बुदबुदाहट सुनाई देती है।

लेकिन बाज़ारक़ुल बुरा नहीं। चरागाह में पला चौड़े कन्धोंवाला,

---

* कमज़ोल – महिलाओं की एक पोशाक।

** ओस्मा – एक प्रकार का पौधा जिसके पत्तों के रस से उज़बेक स्त्रियाँ भौंहें रँगतीं।

जीवन का रसिया नौजवान है। क़ार्शी के बेक * के कुशल परिचालक स्वर्गीय ग्रामानक़ुल फ़रंग** का इकलौता बेटा था वह। ग्रामानक़ुल फ़रंग उसे कराकुली खालों का ग्रमीर व्यवसायी बनाना चाहता था लेकिन ग्रपनी मनोकामना पूरी किये बिना चल बसा। उसके बड़े-बड़े सपने थे। "बुख़ारा की कराकुली खालें फरंगिस्तान में नक़द सोना हैं," वह ग्रपने बेटे से कहा करता था। "किसी ग्रौर देश में ऐसी बात नहीं। दुनिया भर में कराकुली बाज़ार का केन्द्रस्थल ग्रपने ही यहाँ है। यह बात गाँठ बाँध लो। ग्रगर तुम कराकुली खालों के ग्रमीर व्यवसायी न बने तो मैं तुमसे ख़ुश नहीं हो पाऊँगा।" बेक का माल लेकर ग्रामानकुल फरंग यूरोप जाया करता था। एक बार ग्रमीर *** के क़ाफ़िले के साथ वह पेरिस की भी सैर कर ग्राया था।

बाज़ारक़ुल की माँ बड़ी ख़ूबसूरत ग्रौरत थी। शादीब्याह के मौक़ों पर ग्रौरतों की ग्रगुवा बनकर वह दौड़धूप किया करती थी। बेचारी ऐसे ही मर गयी। बाज़ारक़ुल बहुत रोया धोया नहीं, उसे ग्रपने बाप से ज़्यादा प्यार था। उसका पिता बड़ा परिश्रमी ग्रौर उत्साही ग्रादमी था। उसने उसका पालन भी ग्रपने ही ढंग से किया। माँ-बाप विहीन होने के बावजूद वह इसी उम्र में बेक के नौ रेवड़ों का प्रधान चरवाहा था। क़राकुली खालों के ग्रमीर व्यवसायी बनने के लिए इससे ग्रच्छी जगह ग्रौर कहाँ हो सकती थी।

"बस यह बीच की गड़बड़ी गुज़र जाये तो ग्रपनी मंज़िल पर मैं ज़रूर ही पहुँचकर रहूँगा," ग्रानाबीबी से वह कहा करता।

मगर पिछले तीन साल से यह गड़बड़ी ख़त्म ही नहीं होने को ग्रा रही। ज़माना बदल रहा था। बेक तो बेक, ख़बर थी, बुख़ारा का ग्रमीर भी भयभीत था। ऐसी ऐसी बातें हो रही थीं जिनके बारे में पहले किसी ने न तो सुना था, न जाना था। कभी-कभी बेक के चरागाहों से घोड़े दौड़ाते लाल सैनिक गुज़र जाते।

---

* बेक, बेग – क्रांति से पहले मध्य एशिया में एक सरकारी उपाधि।

** फ़रंग – सारे यूरोप को पहले फरंगिस्तान कहा जाता था। यहाँ ग्रामानक़ुल को इसी का कल्पित नाम दिया गया है।

*** ग्रमीर – बुख़ारा का ग्राख़िरी बादशाह ग्रमीर ग्रालिमख़ाँ।

"आप सही-सलामत रहिये, मुझे और कुछ नहीं चाहिए," उसके काँटों जैसी मूँछों से खेलते हुए आनाबीबी जवाब देती।

यूँ तो आनाबीबी चरागाह में बस एक दिन के लिए ही आती थी लेकिन शाम को जब बाज़ारक़ुल ओताव के अन्दर आता, वह उसके गले में बाँहें डालकर बोल उठती, "कल भी चिनार गाँव न जाऊँ, ठीक है?" जवाब में बाज़ारक़ुल कहता, "तू यहाँ चरागाह में बड़ी मज़ेदार लगती है।" और ठहाका लगाकर हँस पड़ता। इसी तरह आनाबीबी चरागाह में दो-चार दिन और ठहर जाती। लेकिन आज...

आज जब आनाबीबी नाज़ से न जाने को बोली तो बाज़ारक़ुल ने जवाब मज़ाक से नहीं दिया। उसने अजीब घबराये ढंग से उसे गले लगा लिया मानो उसे किसी तरह का भय हो। "आनाबी... तू कहीं न जाना, बिलकुल नहीं! समझ रही हो?" उसने कहा।

इसमें अनुराग कम, भय ज़्यादा था। आनाबीबी ने सोचा, देखो तो मरदुआ को, ऐसे भयभीत हैं जैसे अपने प्यार की दृढ़ता पर भरोसा ही न हो, जैसे कोई उनकी प्रेमिका को छीने लिये जा रहा हो। कई दिनों तक उसका यही हाल रहा। आनाबीबी प्यार से, नाज़-नख़रे से, मज़ाक से, हँसी ठट्ठे से उसका जी बहलाने की कोशिश में लगी रहती। लेकिन सब बेकार—बाज़ारक़ुल का हाल पहले जैसा ही था। ज़रूर ही कोई रहस्यमय परिवर्तन उसमें हुआ था। ठंडे पसीने से तर हुआ रात भर वह जागता रहता। बहुत कम ही बोलता, अक्सर चुप। आनाबीबी ने तो गाँव जाने की बात भी सोचनी छोड़ दी थी। लेकिन वह रात-दिन एक ही रट लगाये रहता: "तू न जाना, बिलकुल नहीं।" फिर न जाने क्यों, आँखें झुका लेता। प्रियतमा के चेहरे की ओर नज़र उठाकर भी नहीं देख पाता।

अन्तिम बार आनाबीबी को उसकी आवाज़ में बड़ी कँपकँपाहट महसूस हुई।

"बाज़ारक़ुल अका, क्या बात हो गयी है?" उसने उसकी आँखों में आँखें डालकर पूछा। अब तक वह लड़कियों-सी शोख़ और चुलबुली बनी रही थी लेकिन इस समय पहली बार उसके सामने गम्भीरता की मूर्त्ति बनी खड़ी थी। बाज़ारक़ुल का चेहरा यूँ पीला पड़ गया मानो किसी बुरे काम में रंगे हाथों पकड़ा गया हो।

"कोई भी बात नहीं... कुछ भी नहीं," वह हकला कर बोला। "हमारा बेक अपने रेवड़ कोहेकाफ़ के पार भेजनेवाला है।"

"अच्छा, तो फिर?"

"कुछ भी नहीं।"

वे देर तक ख़ामोश रहे। आनाबीबी मक्खन बिलोने लगी लेकिन मन नहीं माना।

"कोहेकाफ़ के पार क्या है?"

"वहाँ... वहाँ दूसरा मुल्क है।"

"अच्छा-अच्छा, तो इससे क्या हुआ?"

"कुछ नहीं।"

आनाबीबी को उसमें कोई भी भयानक बात नज़र नहीं आयी लेकिन किसी काम में उसका जी लग ही नहीं पाता। मन में घबराहट बनी रहती।

"आख़िर आप बात बताते क्यों नहीं?" धीरज जब जवाब दे गया, वह चिल्लाकर पूछ बैठी।

"क्या बताऊँ?"

"यही कि आप सोच क्या रहे हैं? अगर वह अपने रेवड़ भेज रहा है तो इससे आपको क्या? भेजने दीजिए। बेक है तो अपने लिए।

"चरवाहों, गड़ेरियों को चुन रहा है।"

"कौन?"

"बेक।"

"तो आपको क्या?"

"कुछ भी नहीं।"

अचानक आनाबीबी के दिमाग़ में कौंध गया, बार-बार "कुछ नहीं, कुछ नहीं," की रट क्यों लगायी जा रही है। अपने हाथों के गेन्द जैसे पनीर को चटाई पर लुढ़का कर वह पति के पास जा पहुँची।

"आप..."

"बेक ख़ुद चुन रहा है। उसे सत्तर आदमी चाहिए।"

"भेड़ों की कुल संख्या क्या होगी?"

"इस समय पचास रेवड़ हैं। मज़बूत, हट्टे-कट्टे लोगों को चुन रहा है—जिनके बाल-बच्चे नहीं।

"तो फिर?"

"कुछ भी नहीं।"

"छोड़िये भी। कब तक 'कुछ नहीं' की रट लगाते रहेंगे?" गुस्से से हाथ झटककर आनाबीबी ओताव के अन्दर चली गयी। पहली बार इतनी ढिठाई से वह पति से बोली थी। बाज़ारकुल ओताव की दीवार से टिककर बैठा लकीरें बनाता रहा। इन परेशानियों से थककर आनाबीबी जब गहरी नीन्द में सोयी थी, पास ही जागते, छटपटाते पति ने उसे तड़के ही तड़के उठा दिया:

"आनाबी... आनाबी... गड़ेरियों को सौ और लड़कों को ४० भेड़ देने का वायदा कर रहा है बेक।"

"आँ? किसको?"

"रेवड़ ले जानेवालों को।"

अब आनाबीबी अपने पति की चिन्ता का कारण समझ गयी थी। वह उठ कर बैठ गयी। ओताव के चंग़िराक़ * से थोड़ी-थोड़ी रोशनी आ रही थी। आनाबीबी ने सूती पोशाक पहन रखी है, कॉलर के बटन खुले हैं, बाल बिखरे, छातियाँ दूध-सी सफ़ेद। ओताव की दीवार से टिककर वह खड़ी हो गयी है। पति को ताकती रहती है लेकिन कुछ कहने को शब्द नहीं मिलते। पति के मन की बातें समझकर वह काँप उठी। "हर चर-वाहे.., हर लड़के..." कहकर पति मन ही मन में कुछ हिसाब लगाने में लगा था। आनाबीबी को कुछ भी सुनाई नहीं दिया। पति के शब्द उसके मन में लोहे के हथौड़े-से ठन-ठन बज रहे थे। "ख़ुद चुन रहा है... उन लोगों को जिनके बाल बच्चे नहीं... चरवाहे को सौ भेड़..."

ओताव में जीवन का रंग उड़ चुका था। जब आनाबीबी अकेली होती, ख़ुद को समझाती: "उसने यह तो नहीं कहा कि मुझे छोड़कर चला जायेगा... यह असुन्दर, बाल सुलभ विचार मेरे दिमाग़ में कहाँ से आ गये? औरत जाति होती ही ऐसी है, हमेशा यही करती है। छि, भला कोई आदमी धन-सम्पत्ति के लिए अपनी प्राणप्रिया पत्नी को भी

---

* चंग़िराक़—ओताव का पहियेनुमा ऊपरी हिस्सा जो धूआँ-निकासी और संवातक का काम करता है।

छोड़कर जा-सकता है?! कहीं उसे मेरे यह बुरे विचार मालूम हो जायें तो मेरे तो टुकड़े ही कर डालेगा।"

यूँ तो वह ख़ुद को इस तरह तसल्ली देती रहती लेकिन मन के किसी कोने से वास्तविकता का भय हमेशा झाँकता रहता। जब बाज़ारक़ुल आता, वह बड़ी हँसी-ख़ुशी से उसका स्वागत करती। बाज़ारक़ुल भी दौड़ता हुआ ओताव के अन्दर आता था, पत्नी को देखकर उसकी बेचैनी दूर हो जाती थी। पत्नी को यूँ आग़ोश में भर लेता जैसे उसे खोनेवाला हो।

"तुमने क्या सोचा, मैं तुम्हें छोड़कर चला जाऊँगा?"

"नहीं। ऐसा क्यों सोचूँगी? भला आप भी क्या बातें करते हैं?"

इस तरह दोनों एक-दूसरे को बहलाते, झूठ बोलते रहे। लेकिन आख़िर यह सब कब तक चलता। एक दिन जब वे एक-दूसरे को तसल्ली देते लेटे थे, अचानक बाज़ारक़ुल फूटकर रो पड़ा।

इस भोंड़े रुदन ने, मर्द के रुदन ने स्थिति एकदम साफ़ कर दी थी, जीवन और प्रेम को जलाकर खाक कर दिया था। जब सब कुछ बुझ गया, बाज़ारक़ुल अपने दिल के राज़ ख़ुद-ब-ख़ुद ज़ाहिर करने लगा। उसने आनाबीबी को बताया, बेक उसका विशेष ध्यान रखकर उसे एक सौ तीस भेड़ देगा।

"मैं ज़रूर लौट आऊँगा। सुना है, तीन महीने का रास्ता है। भेड़ों को वहाँ पहुँचाते ही वापस लौट आऊँगा। फिर बेक जैसा हमारे पास भी बाड़ा, भेड़ों के कई ढोर होंगे। पिता जी की तरह मैं भी क़राकुली खालें लेकर यूरोप जाया करूँगा लेकिन तब खाल बेक की नहीं, मेरी अपनी होंगी। क़राकुली खाल को नक़द सोना बनाकर लौटूँगा..."

आनाबीबी को यह बातें साँप के फुफकारने-सी लग रही थीं। एक दिन तो आपे से बाहर हो वह चिल्ला ही पड़ी :

"तो जल्दी जाओ न, फ़ौरन चले जाओ।" और फिर मुँह नीचे किये लेटकर रोने लगी। अब बाज़ारक़ुल उसके रोने-धोने का आदी हो गया था। वह अपने ही सपनों में मशग़ूल रहता।

"बस जल्दी ही रवाना हो जायेंगे। बेक को भी जल्दी है। वह क़ाराक़ुम का ईशान के आशीर्वाद की प्रतीक्षा कर रहा है," बाज़ारक़ुल बड़ी शान्ति से बोला। अब उसकी सारी घबराहट, सारी बेचैनी ख़त्म हो गयी थी।

...क़ाराक़ुम का ईशान बड़े धूम-धड़ाके से तीन फ़िटनों के साथ बेक के यहाँ ग्रा पहुँचा। मगर उसका ग्राशीर्वाद लम्बा ही खिंच गया। उसके ग्राने के बाद ही बेक की भी तबीयत ख़राब हो गयी थी ग्रौर उसका काम ग्रागे नहीं चल पा रहा था। तीन हफ्तों तक रेवड़ों को रवाना नहीं किया जा सका।

लेकिन ग्राख़िर में शायद सब कुछ ठीक-ठाक हो गया, दुग्रा-फ़ातिहा पढ़ी गयी। प्रधान चरवाहों को घोड़े दे दिये गये। फ़ैसले के मुताबिक़ बेक की भेड़ें हर रात सात-सात रेवड़ों में नौ रात तक रास्ते पर निकाली जानी थीं। बाज़ारक़ुल ग्रौर उसके साथ जानेवाले दूसरे लोग तीसरी रात को रवाना हुए। बाज़ारक़ुल के घोड़े का नाम "क़िर्गी" था। यह गहरे भूरे रंग का उतावला क़ुम्मैत था। गड़ेरियों को मदद देनेवाले लड़के चिल्लाकर "क़ुर-एय, क़ुर-एय" कहते हुए भेड़ों को हाँक ले चले। भेड़ियों को मार-नेवाले कुत्तों के भौंकने से ग्रासमान फट पड़ रहा था। इस शोरगुल में बाज़ारक़ुल को रात ग़ुज़र जाने का पता ही नहीं चला। भोर में देखा तो देखता ही रह गया: ऊपर धूल के बादल ग्रौर ज़मीन पर रेवड़ ही रेवड़ हैं... पीछे की ज़मीन सद्यः जुते खेत की तरह काली। ग्रगर रात भर ऐसे ही चलते रहे हैं तो पीछे की भेड़ें दम घुट कर कहीं मर तो नहीं गयीं? बाज़ारक़ुल घोड़ा दौड़ाते ग्रागे बढ़ ग्राया: कुएँ तक पहुँचने पर रेवड़ों को ग्रधिक चौड़ा करके दो-तीन रास्तों से हाँका जाये।

जब सूर्य चढ़ ग्राया, कुत्तों का भौंकना थम गया। ग्रक़लमन्द कुत्ते दौड़कर रेवड़ों के ग्रागे जा पहुँचते हैं ग्रौर सारी भेड़ों के ग़ुज़र जाने तक लेटकर ग्राराम कर लेते हैं।

पहले कुएँ के पास रेवड़ों को चौड़ाई में फैलाने के लिए काफ़ी तकलीफ़ उठानी पड़ी। शाम से कुछ पहले सूरज की लालिमा में ग्राज निकाले गये रेवड़ भी काले-काले धब्बों से दिखाई देने लगे थे। बाज़ारक़ुल समझ गया, पीछेवाले जल्दी में हैं। बाद में मालूम हुग्रा, ग्रागेवालों को भी तेज़ चलने का ग्रादेश मिला है। रेवड़ों को एक से दूसरे कुएँ तक ले चलने के लिए ग्रागे-ग्रागे ग्रनुभवी बुज़ुर्ग चल रहे थे। वे इन रेगिस्तानों के हरेक कुएँ, हरेक पगडण्डी, काफ़िलों के हरेक रास्ते की जानकारी रखते थे।

बाज़ारक़ुल की उनसे कोई जान-पहचान नहीं थी। इन हज़ारों भेड़ों, चरवाहों व उनकी मदद करनेवाले लड़कों की क़िस्मत उन्हीं के हाथों में

थी। बाज़ारक़ुल ने जब कुछ ध्यान से सोचा तो उसे पता चला कि इनमें उसकी जानपहचान के लोग इक्के-दुक्के ही हैं। क़रीब-क़रीब सब अपरिचित ही हैं। शायद सभी नौजवान बाज़ारक़ुल की तरह ही दौलत पाने की लालसा में निकले थे।

शाम को वे सब जगह-जगह पर इकट्ठा होकर चाय बनाने के लिये पानी उबालने में लग गये। पीछे के भी कुछ लोग आ पहुँचे। उनके बीच बाज़ारक़ुल को एक परिचित लड़का मिल गया। उसका नाम चारि दक्कि उर्फ़ चारी-क्लान्त था। दोनों आस-पास लेटकर एक-दूसरे को अपने-अपने मन की बातें, रास्ते की परेशानियाँ, आदि बताने लगे। चारि-क्लान्त बड़ा ही दुबला-पतला, नाटा, पिद्दी-सा लड़का था। उसके घुटनों व कोहनियों पर घट्टे पड़ गये थे। जैसे परस्पर बातचीत के लिए कोई भी बात न हो, वह अपने क़ाप्लान नाम के बारे में बताने लगा तो बस बताता ही चला गया। उसने कुत्ते का दुम और कान कैसे काट दिये, उसके कानों पर मिर्च डालकर कुत्ते को खिला देने के बावजूद वह कटखना नहीं बना फिर भी वह आदमी का वफ़ादार दोस्त ही बनता रहा—इन्हीं के बारे में बातें करता रहा।

इधर बाज़ारक़ुल को पहली रात में ही आनाबीबी की याद सताने लगी। अँगीठियों से आक्क़ूराय व पनीर की बू आती महसूस होती। आखि़रकार वह उठ खड़ा हुआ और उसने उस रास्ते पर नज़र डाली जिससे वह आया था। लेकिन आनाबीबी कहीं दिखाई नहीं दे रही थी। वह काली रात, असीम रेगिस्तान में विलीन हो चुकी थी।

रास्ता भी तो अभी असीम ही था। पहली रात ही तो ख़त्म होनेवाली थी। कष्ट व यातनाओं की रात... लेकिन कोई बात नहीं। शुरू में तो सब कुछ इसी तरह कठिन होता है, बाद में आदत पड़ जाती है।

पर दूसरी, तीसरी रात तो और भी ज्यादा कष्टमय रही।

एक चारि-क्लान्त था भी तो जीवन के बारे में बड़ी फूहड़ बातें करता था। बेक ने जिन लोगों को चुना है, वे बड़े नीच हैं, उनमें कोई एकता नहीं, किसी से दोस्ती की उम्मीद नहीं की जा सकती। यह सब एक-दूसरे की मदद करनेवाले, साथ देनेवाले नहीं। उनकी दुष्ट आदतों, बाज़ारू बातों से बाज़ारक़ुल का दिल भी ऊब गया था। अकेलापन उसे बड़ा खल रहा था।

बारहवें दिन पीछे के रेवड़ों से दो गड़ेरियों के मर जाने की ख़बर आयी। इस घटना से लोग दोस्ती व एकता की ओर प्रेरित हुए। रातों को बातचीत पहले से लम्बी होने लगी, लोगों के झुण्ड बड़े होने लगे। केवल बाज़ार उनमें शरीक नहीं हो पाता, उसे अपने दिल लायक़ कोई आदमी ही नहीं मिला था।

फिर भी वह हिम्मत नहीं हारा। दो व्यक्ति मर गये तो क्या? उनकी अपनी ही ग़लती रही होगी। अगर इतने कमज़ोर थे तो फिर इस कठिन सफ़र पर निकले ही क्यों?

इस दृष्टि से बाज़ार निश्चिन्त था। वह काफ़ी मज़बूत है – ऐसी-वैसी बात पर हिम्मत हारनेवाला नहीं। मगर... आधे माह के बाद स्थिति बिलकुल बदल गयी। अब उसका उतावला क़ुम्मैत भी आगे दौड़ बढ़ने को उत्सुक नहीं रह गया था, कुत्तों का भौंकना भी कभी-कभार ही सुनाई देता। दो रेवड़ों को रास्ते में ही छोड़ देना पड़ा: कुछ चरवाहे दिल-बहलाव में व्यस्त थे और उनकी मदद करनेवाले लड़कों को कोई अनुभव था नहीं, सो उन्होंने धुँधलके के वक़्त भेड़ों को पथरीले रास्ते पर चला दिया। भेड़ों के खुर गल कर गिर पड़े, पैर लहू रिसते गोश्त से हो गये। ग़ुस्से में आकर उसी दिन एक चरवाहे ने एक लड़के को बुरी तरह पीटकर अपाहिज कर दिया... न जाने अब वह किस हाल में होगा...

एक के बाद एक मुसीबतें मुँह बाये आने लगीं। जिस कुएँ को ध्यान में रखकर वे सब आगे बढ़ रहे थे, वह सूखा मिला। चुनाँचे, तीन दर्रों के पार पहुँचकर नये कुएँ की तलाश करनी पड़ी। प्यास और भूख के कारण जान साँसत में थी सो अलग। जिन भेड़ों को पदास्थ रोग हो गया था, उन्हें स्तेपी में हाँक दिया गया। इन भेड़ों की खाल उधड़कर गोश्त बाहर निकला आ रहा था। इन बीमार भेड़ों को कड़कती धूप में मौत की खोज में सुनसान स्तेपी जाते देख बाज़ारक़ुल के आँसू उमड़ आये। इन्हीं दिनों बहुत-से दूसरे लोग भी मौत की गोद में पहुँच गये। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे ज्यों-ज्यों भेड़ों की संख्या कम होती जा रही है त्यों-त्यों आदमियों की संख्या ज़्यादा हो रही थी और इसी कारण कोई उन्हें मौत के घाट उतार रहा था। दिमाग़ में तरह तरह के बुरे ख़्याल आते रहने के कारण ख़ुद बाज़ारक़ुल बहुत परेशान हो उठा था। "तोबा, अस्तग़फ़िरुल्ला! तोबा, अस्तग़फ़िरुल्ला!" कहकर वह इन ख़्यालों को झटक

देता। लेकिन अब उसे ख़ुद पर पहले जितना आत्मविश्वास नहीं रह गया था। अब सफ़र के दौरान वह अच्छी तरह समझ चुका था कि मौत के अनगिनत बहाने होते हैं, हर क़दम पर मौत इनसान को गटक लेना चाहती है। किसी को क़ाराक़ुर्त* ने डस लिया, किसी की मौत गोश्त की विषाक्तता से हो गयी, किसी को लू... बड़ी अजीब बात है: चरवाहे को भला लू कैसे लग सकती है?

कभी-कभी बाज़ारक़ुल चलाप** के बाद पेट के गड़-गड़ करने या हड्डियों में दर्द होने से बुरी तरह डर जाता। चालीस दिन चलते-चलते बीत गये थे। हर दिन वही धूप, वही अनन्त क्षितिज। ...लेकिन अब कुछ भी नहीं किया जा सकता... उस दुनिया से उसका सम्बन्ध टूट चुका था... पीछे जाने का कोई रास्ता नहीं।

एक दिन जब वे पहाड़ पर पहुँच गये, किसी गेन्द की तरह लुढ़कता चारि-क्लान्त आ पहुँचा। बड़ी घबराहट और जल्दबाज़ी से उसने इशारे से बाज़ारक़ुल को एक ओर बुलाया। उसकी आँखों से लग रहा था मानो अभी-अभी किसी पागल कुत्ते के काटने से बचकर आया हो। चेहरे पर ख़ून का निशान नहीं और पसीना लगातार बहे जा रहा है। बड़ी कठिनाई से बोलते हुए उसने कहा: "आज शोरबा नहीं खाना है। गड़ेरिये के सहायक एक लड़के ने बताया है।" फिर चारों तरफ़ नज़र दौड़ाते हुए वह फुसफुसाकर बोला, "उसने कहा है, बेक के जितने लोगों को जानते हो, सब को बता देना।"

बाज़ारक़ुल की समझ में कुछ भी नहीं आया।

"बेक के लोग?.."

"हाँ, हाँ। यहाँ क़ाराक़ुम ईशान के लोग भी तो हैं। पीछे से आ मिलनेवाले तीस रेवड़ उसी के तो हैं।"

"तो फिर हम शोरबा क्यों न खायें?"

चारि-क्लान्त ने भयभीत आँखों से चारों ओर देखा। "मैं कहाँ से जानूं?" और इतना कहकर वह एक से दूसरे पत्थर पर उछलता चलता बना।

---

* क़ाराक़ुर्त – एक ज़हरीली मकड़ी।
** चलाप – भेड़ या गाय के दूध से बनी एक क़िस्म की लस्सी।

दर्रे का सबसे कठिन स्थान आ गया था, पहाड़ों का चक्करदार रास्ता, बड़ा ख़तरनाक और तिस पर पत्थर। यहाँ यन्ताक़* तो नहीं लेकिन दूसरी सूखी घास पड़ी हैं इनके बारे में बूढ़े चरवाहों को भी कोई जानकारी न थी। कराकुली खालोंवाली भेड़ें तो बस भद्दी-मोटी, सीधी-सादी यन्ताक़ से ही ज़िन्दा रह सकती थीं। उनकी यही ख़ासियत यहाँ मुसीबत का कारण बन गयी थी। यन्ताक़ यहाँ मिले तो कहाँ से...

लेकिन बाज़ारक़ुल यह सोच क्या रहा है? चारि क्लान्त क्या कहकर गया और वह सोच क्या रहा है!

शोरबा? ईशान के लोग? गड़ेरिया के मददगार लड़के ने बताया? यह क्लान्त कहीं पागल तो नहीं हो गया? लेकिन उसकी आँखों में बड़ी घबराहट झाँक रही थी। बही अजीब बात है, कुछ बुदबुदाया और भाग गया...

लेकिन इस रास्ते पर कुछ भी अनहोनी नहीं, किसी भी बात पर विश्वास किया जा सकता है। पिछले कई हफ़्ते से बाज़ार को नीन्द नहीं आ पाती। काठी पर बड़ी कठिनाई से किसी तरह शाम तक बैठ पाता। "क़ुर-एय! क़ुर-एय!" वे कुत्तों के भौंकने की आवाज़ें अब उसे चिढ़ाने, खिजाने लगी थीं। कान में रूई ठूस लेने के बावजूद रात के सन्नाटे में भी यही आवाज़ें दिमाग़ में गूँजती रहतीं। पिछले कुछ दिनों से आदमियों का मरना कोई बड़ी बात नहीं रह गयी थी। दस-पन्द्रह कोस तक फैले इस दुर्गम मार्ग पर जो न हो, वह थोड़ा है! सुनने में आया कि कुछ मददगार लड़कों के पैरों में जूते काटने से घाव हो गये। जब घाव में ज़हर फैल गया, उन्हें उनके हाल पर रेगिस्तान में ही छोड़ दिया गया। बाज़ार व अन्य लोग रात में जब अलाव के इर्द-गिर्द बैठते, तरह-तरह की दूसरी बुरी ख़बरें भी सुनने को मिलतीं।

आज का पड़ाव ऐसी नम जगह पर लगाया गया था जहाँ भेड़िये अपने लिए माँद बनाते थे। कुत्ते रात भर चिल्लाते रहे। अँगीठी पर देगचा देखकर बाज़ारक़ुल का कलेजा मुँह को आ गया। "आज शोरबा न खाना!.." आख़िर बात क्या है? चारि कहाँ है? अलाव के इर्द-गिर्द बैठे लोगों के झुंड में घूम-फिरकर उसने चारि को ढूँढ़ निकाला। चारि को

* यन्ताक़—काँटेदार झाड़ी।

अपने पास पाकर उसका दिल थोड़ा शान्त हुआ। वह चैन से लेट गया। चारि ने शोरबे का प्याला ख़ुर्जी से बाहर निकाला तक नहीं। बस मशक से चलाप पीकर दोनों सोने को लेट गये।

"चारि, आख़िर बात क्या है?" थोड़ा शान्त होने के बाद बाज़ारक़ुल ने उससे पूछा।

"क्या आपने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि रास्ते में जो मर रहे हैं, वे बेक के लोग हैं?"

बाज़ार चारि की ओर ताकता उठ बैठा। नहीं, क्लान्त पागल नहीं मालूम होता। देर तक यूँ बैठे-बैठे उसका बदन अकड़ गया। मन में उठते किसी विचार को वह बलात् झटक देना चाहता था। "सब बेकार बात है। लेकिन अगर ईशान ने हत्यारों को हमें रास्ते में ही समाप्त कर देने का आदेश दे रखा हो तो?" यह बात बार-बार बाज़ार के दिमाग़ में आ रही थी। धन-दौलत का पिपासु बाज़ार शीघ्र ही यह बात समझ गया। हाँ, सीमा के पास अपने बीस रेवड़ों में किसी दूसरे के पचास रेवड़ शामिल करा दे, कराकुली खालोंवाली भेड़ों के सत्तर झुण्डों के साथ मुसलमानों के देश में आ बसने का विचार बुरा नहीं। लेकिन बाज़ारक़ुल को ईशान से ऐसी चालबाज़ी की कोई उम्मीद न थी। ईशान के इस इरादे के बारे में तो बेक के लोग सोच भी नहीं सकते थे।

बेक के लोग?.. बाज़ारक़ुल को अपना शरीर जमता-सा प्रतीत हुआ। कौन-कौन बेक के लोग हैं? बाज़ारक़ुल तो उन्हें पहचानता तक नहीं। रास्ते में सब मिलकर एक हो गये थे। हरेक आदमी सिर्फ़ ख़ुद को ही जानता था। खुले आम इस सम्बन्ध में बातचीत या पूछताछ करना, अपने इर्द-गिर्द लोगों को एकत्र करना ख़तरनाक था।

"एक-एक करके वे हम लोगों को मौत के घाट उतार देंगे," आधी रात में चारी-क्लान्त ने कहा। आख़िरी वसीयत बतानेवाले-सी उसकी आवाज़ थी।

"यह बात तुझे किस लड़के ने बतायी? वह कौन है?"

"मेरे ही जैसा एक लड़का है। दुबला-पतला, बड़ा साहसी और ख़ूबसूरत। उसने शोरबे में ज़हर मिलाते देख लिया था," यह कहकर चारि-क्लान्त मुँह नीचे झुकाकर रोने लगा।

"डरो मत, चारि!" बाज़ारक़ुल ने उससे कहा। न जाने क्यों, वह

अपनी जगह से उठ खड़ा हुआ। कमर कसकर बाँध ली। चारि भी उठ गया। चारों ओर नज़र दौड़ाते हुए. फूँक-फूँक कर क़दम रखते हुए उन्होंने सुबह का स्वागत किया। "डरो मत, चारि, डरो मत!" बीच-बीच में बाज़ारक़ुल बोलता जाता।

मगर इसके बाद पहले से भी अधिक विषम दिन शुरू हुए। उसी दिन सुबह में उन्होंने चरवाहों के चट्टान से कुचल जाने की ख़बर सुनी तो उनके पैर भी लड़खड़ा गये। पहाड़ी रास्तों पर अक्सर घोड़े से उतर कर, लगाम थामकर आगे बढ़ना पड़ता था। घोड़े पर चलने की आदत जिसे हो जाती है, ज़मीन पर उसे अपने पैर कमज़ोर मालूम पड़ते हैं, आगे की दूरी दिखाई नहीं देती। उन्हें ऐसा महसूस होता जैसे कोई अज्ञात ख़तरा उनकी बाट जोह रहा हो।

अब बाज़ारक़ुल चाहे घोड़े पर या पैदल चले, हर पल उसे मौत का ख़तरा सिर पर मँडराता महसूस होता। कौन दोस्त है, कौन दुश्मन, उसे इसकी कोई जानकारी न थी। न जाने चाकू से मारा जायेगा या चट्टान से कुचलकर या ज़हर से। पहाड़ी रास्ते, काली भयावह रातें, तनहाई और डरावने विचार–सब दुश्मन ही तो थे। बाज़ारक़ुल आदम-ख़ोरों के बीच रह गया था। हर क्षण ख़तरे में रहने, छाया से भी चौंक पड़ने, रात को नीन्द लेने की जगह ठंडे पसीने से भीग जाने और एक एक बून्द पानी में मौत की आशंका के कारण सूख कर काँटा हो गया। पत्थर पर कोई छिपकली भी उछलती तो उसके प्राण सूख जाते। चारि का भी कोई पता न था। कौन जाने ज़िन्दा भी है या नहीं? उससे शो-रबा न खाने की चेतावनी देनेवाले लड़के के बारे में पहले ही पूछ लेना चाहिए था। छोटा हो या कमज़ोर, कोई पास तो होता।

"ओह, आनाबीबी, आनाबीबी! तू ख़ुद तो अनमोल है ही, अब मालूम हुआ, तेरा एक-एक शब्द मन-मन भर सोने के बराबर है, प्या-री! अगर तेरे पास होता, तेरे पाँव चूम लेता... अब इतनी दूर आ गया हूँ कि पीछे लौटने का रास्ता ही नहीं।"

और आगे?

बाज़ारक़ुल ने पहाड़ों पर नज़र डाली। भेड़ों के झुण्डों के कारण पहाड़ बिलकुल काले लग रहे थे। बराबर आगे बढ़ते जा रहे रेवड़ों को देखकर उसे अब कोई ख़ुशी नहीं हुई थी। अब वे उसे भविष्य में हाथ

ग्रानेवाली दौलत नहीं बल्कि सिर पर टूट पड़नेवाली काली ग्राफ़त लगती थी। ग्रब हरदम एक निराकर दृश्य ही ग्राँखों के ग्रागे नाचता रहता।

दुनिया का कौन-सा कोना है जिसमें वह भटक रहा है? क्यों भटक रहा है? इन रास्तों, इस धूप का कोई ग्रन्त है या नहीं? ग्रादमी कहाँ हैं? इनसान की प्यारी सूरत, उसकी मृदु मुस्कान कहाँ ग़ायब हो गयी थी? इन्हीं विचारों में खोया बाज़ारक़ुल रात में जब लेटा, तीस क़दम की दूरी पर उसे कोई काली-सी चीज़ दिखाई दी। म्यान से चाकू निकालकर वह हिले-डुले बिना लेटा रहा। उसकी साँस तेज़ हो गयी, दिल बेतरह धड़कने लगा। छाया हिली। बाज़ार भी उस पर ग्राँखें टिकाये, शक्ति बटोर कर सतर्क हो गया। ग्राग सब कहीं बुझ चुकी थी। कहीं से कोई भोंड़ी ग्रावाज़ सुनाई दी। भेड़ों ने करवट बदली। रात खौफ़ से भरी थी। भय के मारे काँपते-काँपते थक कर न जाने कब उसकी ग्राँखें लग गयीं। जब जागा, सुबह हो चुकी थी। वह काली चीज़ ग्रभी भी खड़ी थी। यह ग्रौर कुछ नहीं, एक सीधा खड़ा पत्थर था। ऐसी हालत में ग्रादमी को हँसी ग्राती है लेकिन बाज़ारक़ुल ग़ुस्से के मारे ग्रपना सिर पत्थर पर दे मारना चाहता था। ग्रपनी ऐसी दयनीय स्थिति पर वह जल-भुन रहा था। उस दिन पहली बार वह पैरों पर खड़ा नहीं हो पाया। उसे स्तेपी काँपती-सी लगी। ग्रपने घोड़े की गर्दन पकड़े वह काफ़ी देर तक खड़ा रहा। उसके चारिक़* से या मशक से बड़ी बदबू ग्रा रही थी। ख़ुर्जी पर एक चलती-फिरती मोटी-सी जूँ नज़र ग्रायी। ग्राज दिन भर वह घोड़े को पकड़कर चलता रहा। रकाब के ग्रादी पैर खसोट गये। बड़ी कठिनाई से किसी तरह शाम तक चल पाया। उसका जी मिचला रहा था। वह ज़मीन पर गिर पड़ा ग्रौर तभी उसे याद ग्राया, दिन भर से कुछ खाया नहीं। ग्रलावों पर मवेशियों के सिर व पैरों से बनाये जा रहे शोरबे की बू से उसे मितली ग्रा गयी।

वह पीठ के बल लेटा हुग्रा था। जूँ के काटने से खुजली हो रही थी लेकिन उसमें बदन खुजलाने की ताक़त भी बाक़ी नहीं रह गयी थी। रात को किसी बूढ़े ग्रादमी ने उसके पैरों पर नमकीन पानी रख दिया। "एकदम गल चुका है," बाज़ारक़ुल सिर्फ़ इतना ही सुन पाया। वह बेहोश हो

---

* चारिक़—चमड़े का नरम बूट।

गया था। बाज़ार की आँखें अन्दर को धँस गयी थीं और हड्डियाँ उभर आयी थीं। हिलने-डलने की भी ताक़त नहीं थी, अन्दर कोई आग-सी जलती महसूस होती। धूप से गरम हो गये पानी को पीता और पसीने से भीग जाता। रात में जब कल दुबारा चलने की याद आती, वह मौत की दुआ करने लगता। अन्धेरे में कोई चाकू मार दे या ज़हर पिला दे लेकिन बेहोशी की हालत में उसे रेगिस्तान में अकेले न छोड़ा जाये। धूप में जलते, सड़ते पड़ा रहना, कई दिनों की भीषण यंत्रणाओं के बाद धीरे-धीरे प्राण गँवाकर भेड़ियों की ख़ुराक बन जाना... यही सारे विचार बाज़ारक़ुल की जान खाये जा रहे थे, घुन की तरह उसे समाप्त करते जा रहे थे।

किसी तरह एक दिन वह लोगों से अपनी हालत छुपाते, घोड़े के अयाल पर लटकते चलता रहा। अगले दिन जो ज़मीन पर गिरा सो उठ ही नहीं पाया। होश में आकर आँखें खोलीं तो घोड़ा नदारद।

"क़िर्ग़ी... क़िर्ग़ी!" सिर ऊपर उठाकर उसने आवाज़ लगायी। लेकिन वहाँ कोई होता तब न सुनता। उसका सिर एक ओर लटक गया। सूरज की किरणें ठीक आँखों में भाले-सी गड़तीं। उसने फिर पुकारा, "क़िर्ग़ी!" लेकिन आवाज़ मुँह से बाहर नहीं निकल पायी, क़िर्ग़ी के रूप में वह आख़िरी उम्मीद होंठों पर ही रह गयी। बाज़ारक़ुल ने ज़मीन पर कान लगाकर सुना—ख़ामोशी। हवा की आहट ली—सन्नाटा। चले गये! सब उसे छोड़कर चले गये। बदमाशो! जानवर कहीं के!

ग़ुस्से से उसे बल मिला। उसने ज़मीन पर ख़ुद को दे मारा। ढाल से नीचे लुढ़कते चला गया। चेहरा, हाथ खसोट गये। पत्थर तक पहुँचकर वह रुक गया। अन्दर शायद कुछ टूट-फूट गया था, ज़ोरदार दर्द के मारे घुटने बाँहों में लेकर सिमटे पड़ा रहा। उसका पानी का बर्तन धूप में पड़ा था। ख़ुर्जी ज़ीन पर ही रह गयी थी। तन खसोट गया था, ख़ून निकलता, गन्दा, बदबू भरा। वह एसे ही तार-तार हुए कपड़ों में पत्थर के साये में पड़ा रहा। दर्द कुछ कम होने पर जब आँखें खोलीं तो आसमान जल रहा था, मानो पूरा सूरज ही पिघल गया हो। शरीर पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। सिर उठाकर देख नहीं पाया। क्या है चारों तरफ़? इस यातना, अकेलापन और मौत के अलावा भी कुछ है क्या? वह वास्तव में सोचना चाहता है? सूरज तले सड़कर मरना या सीना

फाड़कर भेड़िये को ख़ून पीते देखना चाहता है... ऊ–हू–उँ... बाज़ार-क़ुल रो भी नहीं पा रहा था। न आँसू थे, न बल। मुँह से जानवरों-सी आवाज़ निकालता, घबराहट कम होती, फिर बेहोश हो जाता। यही क्रम चलता रहा। शाम तक जीभ इतनी सूज गयी कि मुँह में समा नहीं पा रही थी। कुछ दूरी पर मशक में पानी उबलता जा रहा था। वहाँ तक जाने की ताक़त नहीं। अब पत्थर का साया भी जाता रहा। सारी शक्ति बटोरकर बाज़ार ने पानी की ओर बढ़ने की कोशिश की तो हाथ में गर्म पत्थर पकड़े ही पकड़े भहराकर बेहोश हो गया...

किसी ने चेहरे पर ठंडा पानी छिड़ककर उसे होश में लाया। अन्धेरा छाया था। बाज़ार ने होंठों पर पड़ी बून्दें चाट लीं। कुछ देर बाद मुँह में भेड़ के दूध के स्वाद का अहसास हुआ। कोई आदमी गीले कपड़े से उसका चेहरा और सीना साफ़ कर रहा था। वह आदमी ख़ुद भी हाँफ रहा था। फिर उसी तरह हाँफते हुए उसने बाज़ार को उठाने की कोशिश की लेकिन असफल रहा। लाचारी से कुछ देर के लिए बैठ गया। उसने दुबारा कोशिश की और पीठ पर बाज़ार को उठा पहाड़ से नीचे चल दिया। बाज़ार को कानों में कोई शोर-सा सुनाई पड़ा। कैसा शोर है यह: पत्थर गिर रहे हैं, ढोल की आवाज़ है या कोई झरना तो नहीं?

बाद में बाज़ारक़ुल को महसूस हुआ, यह उस आदमी की साँस, उसके दिल की धड़कनों की आवाज़ थी। बाज़ार ने पूरी ताक़त से उसे पकड़ रखा था लेकिन उससे यह नहीं पूछा कि वह कौन है। क्या फ़र्क़ पड़ता है–आदमी तो है, भेड़िया नहीं। आदमी के साथ होने से बढ़कर कौन-सा सुख हो सकता है!

अब वह आदमी उसे कोहनियों से पकड़कर घसीट रहा था। मगर बाज़ार को यह नहीं मालूम हो पाया कि उसी दिन की बात है या किसी दूसरे दिन की। न जाने कब से वह उसे घसीटे ले जा रहा है। बाज़ार तो रह-रहकर बेहोश हो जाता लेकिन उसे हमेशा मुँह में भेड़ के दूध का स्वाद ज़रूर महसूस होता। जब होश में आता, वही शोर (जो वास्तव में उस आदमी के हाँफने की आवाज़ थी) उसे सुनाई देता। अब वह उस शोर को समझ चुका था। निस्सन्देह, उसका मुक्तिदाता काफ़ी कष्ट उठा रहा था। वह महसूस करता है, उस आदमी का शरीर पसीने से तर हो जाता है, वह अक्सर गिर पड़ता है और जब-जब गिरता है,

उसके घुटने छिल जाते हैं, वह कुछ कराहता है लेकिन फिर बाज़ार को घसीटता-घिसटता ले चलता है। बाज़ार अभी उसका मुँह देख नहीं पाया है, चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा था। क्या यह रात थी या बेहोशी?

इस प्रकार न जाने कब तक वह आदमी उसे बिना हिम्मत हारे ले जाता रहा। बाज़ार को इसके बारे में कुछ भी पता नहीं चल पाया लेकिन अचानक ही उसे अपने पूरे शरीर में सुहावनी ठंड का अनुभव हुआ। उसने ठंडी हवा अपने फेफड़ों में भर ली। आँखें खोलीं तो ख़ुद को एक सोते में पड़ा देखा। सुबह हो चुकी थी। पानी स्वच्छ था, आसमान साफ़। वह आदमी उसका सिर घुटनों पर रखे बैठा था।

"अब कैसी तबीयत है आपकी?"

बाज़ार को लगा, वह दुबारा बेहोश हो रहा है। इस आवाज़ ने सीधे उसके दिल पर चोट की थी। बड़ी अधीरता से मुड़ते हुए बुदबुदाकर बोला: "बीमार हूँ। विषम रोग की चपेट में आ गया हूँ।" फिर ख़ुद को हिलाते-हुलाते कमज़ोर आवाज़ में चिल्ला उठा: "आनाबी! तेरी आवाज़ कहाँ से मुझे सुनाई दे रही है!" फिर गहरी साँस लेकर अपने मुक्तिदाता से बोला: "मेरी पत्नी... मुझे अपनी पत्नी की आवाज़ सुनाई दी थी। आप कौन हैं? मुझे आपने क्यों बचाया? हम किस जगह पर हैं? मेरे कपड़े कहाँ गये?"

"एकदम फटचिट गये थे, सो मैंने जला दिये।"

फिर वही आवाज़। काँपते हुए बाज़ार ने सिर ऊपर उठाया।

"आप कैसे हैं, बाज़ारक़ुल अका*, यह मैं हूँ, मैं..." और उसने बाज़ारक़ुल को पानी से निकालकर बैठा दिया।

बाज़ारक़ुल बैठ तो गया था लेकिन उसकी आँखों के आगे पहले जैसा अन्धेरा छाया था।

"यह मैं हूँ, बाज़ारक़ुल अका, मैं—आनाबीबी।"

बाज़ारक़ुल की कमज़ोर आँखों को सचमुच आनाबीबी की शक्ल दिखाई दी। सूरत से वह आनाबीबी भी लग रही थी और कोई दूसरी भी। चरवाहों के मददगार लड़कों की तरह उसने चकमान पहन रखा था, कमर

---

* अका—बड़ा भाई। पति को सम्बोधित करते समय उज़बेक महिलाएँ उसके नाम के साथ यही शब्द मिलाती हैं।

में रस्सी बँधी थी, बाल कटे थे और सिर पर टोपी थी। अपने काँपते हाथ उस पर फिराता, बाज़ारक़ुल ने ध्यान से उसके चेहरे की ओर देखा। उसके होंठ इस तरह काँप उठे मानो वह भीतर से फफककर रो रहा हो। हठात् बड़ी भोंडी आवाज़ में वह फूटकर रो पड़ा। आनाबीबी के फटे जूतों को हाथ से पकड़कर उसने उसके पाँव खींचकर अपने सिर से लगा लिये।

आनाबीबी के भी आँसू फूट पड़े थे। अपने बेहोश सूखकर काँटा हुए पति के दाढ़ी से ढँके चेहरे पर हाथ फेरते वह कह रही थी:

"आपके जाने के पाँच दिन बाद मालूम हुआ कि क़ाराकुम-ईशान भी आदमियों का चुनाव कर रहा है। मैं भी बाल कटाकर, गड़ेरिये के सहायक लड़के का रूप धारण कर उसके पास जा पहुँची। 'तुम अभी बहुत छोटे हो, तुम यहाँ से जाओ,' उन्होंने मुझे देखकर कहा। लेकिन न जाने बाद में क्या हुआ, हमें दरवाज़े के पास से रेवड़ों की ओर ले जाया गया। हमें उसी दिन रवाना कर दिया गया। रास्ते में हम लोगों का नाम दर्ज किया गया।

"ईशान के कमीने लोगों की बदनियतों को मैं दूसरे ही दिन समझ गयी। क़सम खायी कि न डरूँगी, न थकूँगी। मैं जानती थी, मैं वहीं जा रही हूँ जहाँ आप। चारि नामक लड़के से ख़ूब अच्छी जान-पहचान हो गयी। उसे इन लोगों के इरादे के बारे में बताया। वह आपके पास तो जाता ही था, बेक के जिन लोगों को जानता था, उन्हें भी उसने आगाह कर दिया। फिर चारि से आपके बारे में जानकारी हासिल कर ली। वह बेचारा ख़ुद तो क़ाराक़ुर्त के डसने से मर गया लेकिन आपका पता बता गया। जब आप ज़ीन पर नहीं बैठ पाये थे, मैं पास में ही थी। मैं दूर से आप पर नज़र रखे रही। मुझे मालूम था, बेहोश होकर उठ नहीं पानेवाले लोगों को वे छोड़कर चले जाते हैं।

"जिस दिन आप गिरकर उठ नहीं पाये, रात में मैंने चट्टानों के पीछे छुपकर क़ाफ़िले को आगे बढ़ जाने दिया। बहुत दूर रहने के कारण, आपको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते शाम हो गयी।"

बाज़ार ने यह बात सुनी नहीं। वह यूँ ही सामने गया था। सिर्फ़ एक बात उसके दिमाग़ में नहीं बैठ पा रही थी: क्या सचमुच आनाबीबी उसके सामने बैठी है?

"आनाबीबी,.. आनाबीबी,.. " उसके चेहरे पर आँखें टिकाते हुए वह बोला, "तुमने बाल कटाये? मुझे यहाँ कौन लाया?"

उसकी बात सुनकर आनाबीबी को लगा, वह फिर शायद बेहोश होनेवाला है। लेकिन बाज़ारक़ुल ने अपनी बात जारी रखी:

"जब मैं दूल्हा बना था, तेरे पिता ने कहा था, 'धनदौलत का रोग इनसान को ख़त्म कर देता है और प्यार का रोग उसे नया बल देता है।' हाँ, मुझे यह बात एकदम याद है।"

"अब्बाजान हरदम हरेक को उसके योग्य बात बताते हैं।"

"आनाबीबी, अब मैं मरूँगा नहीं। मौत की सर्द शक्ल मेरे पास से गुज़र चुकी है। अब मैं तेरे लिए क्या करूँ? आँ? जब ठीक हो जाऊँगा, तभी बताओगी, है न?"

"नहीं, अभी ही बताती हूँ... मुझसे मुहब्बत कीजिए।"

बाज़ारक़ुल ने हड्डी मात्र रह गयी टाँगों पर नज़र डाली जिन पर गीली इश्तान* लिपटी थी। शरीर सूखकर ठठरी हो गया था। उसने दोनों हाथों से चेहरा ढँककर सिर नीचे झुका लिया।

"क्या अब भी नहीं समझूँगा मैं कितना नीच व मूर्ख हूँ?" उसने यह बात इस तरह कही मानों ज़मीन से बोल रहा हो।

आनाबीबी कुछ भी न बोली।

"हम कहाँ हैं? तुझे मालूम है?" कुछ देर बाद बाज़ार ने पूछा।

"अभी पता लगायेंगे ही!" यह कहकर आनाबीबी उठ खड़ी हुई।

एक पहाड़ी गाँव में तीन महीने तक जबर्दस्त सेवा-टहल करके उसने बाज़ारक़ुल को उसके पैरों पर खड़ा कर दिया। गाँव के लोगों की भाषा अनजानी थी और रीति-रिवाज भी। पर गाँववालों ने इशारों से बेगाने देश में दुख सहनेवाले इन लोगों के प्रति सहानुभूति दिखायी। उन्होंने सबसे पहले इन दोनों के रहने के लिए जगह ढूँढ़ निकाली, फिर आनाबीबी के लिए कपड़े धोने जैसे काम का इन्तज़ाम कर दिया। लेकिन कुछ हफ़्तों के बाद ही पहाड़ों पर सूखी टहनियाँ इकट्ठी करना या कपड़े धोना आनाबीबी के लिए कठिन हो गया। वह गर्भवती थी। अभी छह महीने बीते नहीं और चलना-फिरना उसे मुश्किल लगने लगा। पहाड़ों पर जाती तो

---

* इश्तान—कमर से नीचे का मर्दाना कपड़ा।

देर तक बैठी रहती, सारे बदन में दर्द होता रहता। आनाबीबी बहुत दिनों तक दर्द को टालती रही लेकिन आख़िर मजबूरन उसे बताना ही पड़ा। उसे लेटा दिया गया।

इसी दिन बाज़ार उठा, पत्नी बिस्तर पर पड़ गयी। तब तक इस बेगाने गाँव के वे लोग अपने बन चुके थे। तबीब को बुलाया गया। वह पक्षियों की चोंच जैसी नाकवाली एक वृद्धा थी। बड़ी बेरहम साबित हुई। बताया, हालत बहुत गंभीर है, जब दो महीने का पेट था, बहुत भारी बोझ उठाया है। सिर थामकर बाज़ारक़ुल तो ज़मीन पर ही बैठ गया। कहता तो क्या—"भारी बोझ" तो वह ख़ुद ही था। वैसे भी, इस दुनिया में अब वह अनावश्यक बोझ ही तो बना था...

सात महीने में ही आनाबीबी के बच्चा पैदा हो गया। प्रसव पीड़ा से ही वह परलोक सिधार गयी। अज़ीमजान बेगाने देश में ख़ून के आँसू बहाते पिता के हाथों में रह गया।

अज़ीमजान मूर्त्ति की छाया में बैठा था—कुछ उदास-सा। एक अर्सा पहले मर गये अपने पिता के बारे में "घोर ग़लती" की बात उसे अच्छी नहीं लगी थी। कुछ देर बाद वह बोला :

"पिता जी ने अपने तेलपक* में रखकर मुझे बड़ा किया।"

"और आनाबीबी को पालकर बड़ी करने के लिए मैंने अपनी ज़िन्दगी के बीस वर्ष बेक की दहलीज़ पर खटकर बिताये थे। मैं तेरे बाप को बुरा नहीं कहता। उस साल उज़्बेक क़राकुलीसाज़ी जो ख़त्म हुई तो उसे फिर से क़ायम करने के लिए पूरी एक पीढ़ी लग गयी।"

आचिल बाबा ने मूर्त्ति की खुरदरी नींव को हथेली से थपथपा दिया।

"यन्ताक़ से सोना पैदा करता है, जवान!" आचिल बाबा ने यह बात इस तरह कही मानो सोने से दमकते खड़े अपने दोस्त से विदा ले रहे हों।

अब वे चौराहे से मुड़कर दूर दिखाई देनेवाले हरे-भरे पहाड़ों की ओर चलने लगे थे।

पक्की सड़क ख़त्म होने के कारण मोटर के पीछे धूल का एक बादल-सा उड़ता चल रहा था। शाम का समय था। ठंडी हवा चलने लगी थी,

---

* तेलपक—कनटोप।

इधर-उधर खड़े पेड़-पौधों के साये लम्बे हो गये थे। क्षितिज पर सूरज का एक टुकड़ा भर बच रहा था, वह अंगारे की तरह दहक रहा था।

अज़ीमजान सिर झुकाये बैठा था।

"मेरे ख्याल से पिता जी का सबसे बड़ा गुनाह मुझे वतन से महरूम होकर भटकने को मजबूर करना था," गहरे सोच में डूबे हुए वह बोला।

आचिल बाबा ने उसकी ओर देखा लेकिन कुछ कहा नहीं। उन्हें पहली बार अपने इस नाती पर बेइन्तहा रहम हो आयी थी। कितना अनिश्चित भाग्य है इसका। उम्र चालीस होने को आयी लेकिन अभी तक शादी नहीं हो पायी है। दौलतमन्द है... पर इस दौलत का करेगा क्या? विदेशों की ख़ाक छाननेवाला। और ख़ुद कितना छोटा-सा, दुबला-पतला-सा है! गौरैया जैसा। यह अब इतना छोटा हो गया या पहले भी ऐसा ही था? आचिल बाबा ने उसके सिर पर हाथ फेरा। अज़ीमजान ने सिर ऊपर उठाकर बाबा की ओर देखा। उसकी आँखों की पुतलियाँ धुँधली-सी और नम थीं।

"आरिफ़ मामा के कितने बच्चे हैं?"

"आरिफ़ मामा के कोई सन्तान नहीं, बेटे।"

अन्धेरा घिर आया था। मोटर की बत्तियाँ रास्ते के साथ-साथ टीलों, गड्ढों को भी प्रकाशित कर रही थीं। इस प्रकाश में धूल के कण व छोटे बड़े मच्छड़ कुलबुला रहे थे। कोई ग्यारह बजे वे पहाड़ी ढलानवाली वादी में पहुँचे। एक-दूसरे से जुड़ी गाँवों की सड़कें, खेतों की पगडण्डियाँ शुरू हो गयीं। रास्ते के दोनों किनारों पर पोपलर के पेड़ खड़े थे। गाँव के चायख़ानों में अभी भी भीड़ जमा थी। पानी का छिड़काव किया गया था जिससे ज़मीन से धूल की सोंधी बू व गुलाबों और तुलसी की ख़ुशबू फैली हुई थी। कुत्ते भौंकते हुए मोटर के पीछे भाग रहे थे। सामने से झमाक करके निकली मोटरें जैसे आँखें मार रही थीं।

इलाक़ाई केन्द्र में प्रवेश करते ही फिर पक्की सड़क शुरू हो जाती थी। यहाँ अनगिनत बत्तियों व अभी तक नहीं थमे शोरगुल ने उनका स्वागत किया। यह न कोई शहर था, न कोई गाँव। एक ओर अभी ढोर से आयी गाय रंभाती है, पुल के सामने शाख़ें कटी गयीं शहतूत नज़र आता है तो दूसरी ओर खलियों की बू फैली है, बिजली के तारों पर रूई के रेशे उड़कर लटक रहे हैं और बिनौले के कारख़ाने को चलानेवाला बिज-

लीघर काम कर रहा है। आचिल बाबा अभी तक इस इलाक़े को नहीं देख पाये थे। आरिफ़जान हाल ही में यहाँ आया था। कहते हैं, यह एक बड़ा इलाक़ा है। इसमें पहाड़ी इलाक़े और नये सरकारी फ़ार्म भी शामिल हैं।

"ऐ, बेटे," आचिल बाबा ने बिजली की रोशनी में सूरजमुखी के बीज कुतर-कुतर खाते बालकों के एक गिरोह को आवाज़ दी, "आरिफ़ आचिलोव का मकान कौनसा है?"

"इलाक़ाई पार्टी समिति के सेक्रेटरी का?"

"हाँ, हाँ!"

"वह, वहाँ। सड़क के नुक्कड़ पर। गैरेजवाला दरवाज़ा।"

दरवाज़ा खुला था। पीछे आँगन और आगे दो कमरे व बरामदा।

एक कमरे में बत्ती जली हुई थी। पेड़ों भरे आँगन से ठंडी बयार आयी। बाबा अपने नाती के साथ आँगन में दाख़िल हुए। खुली खिड़की से तीन बच्चों के बीच बैठा मामा दिखाई दे रहा था। एक बच्चा अभी छोटा था। आरिफ़ की गोद में बैठे-बैठे वह दूसरे बच्चों को तंग कर रहा था। बाक़ी दो बच्चे पन्द्रह सोलह साल के एक लड़का, एक लड़की थे। दोनों कोई सवाल हल करने में लगे थे। आरिफ़ बारी-बारी से दोनों की कॉपियाँ देखकर कभी उन्हें समझाता, कभी बहस करता और कभी माथे पर बल देकर सोच में डूब जाता।

अपनी गठरियाँ हाथों में उठाये ही आचिल बाबा और अज़ीमजान जहाँ के तहाँ खड़े होकर कुछ देर तक दृश्य का निरीक्षण करते रहे। अज़ीमजान घबरा उठा था, उसने सवाली निगाहों से बाबा की ओर देखा। अपनी मूँछों के सिरे पर अँगुली रखकर मुस्कराते हुए आचिल बाबा ने इशारे से कहा, "चुप!"

तभी मेज़ के गिर्द झगड़ा शुरू हो गया। लड़की लड़के में किसी सवाल को लेकर बवेला मच गया था। आरिफ़ भी तेज़ आवाज़ में कुछ बता रहा था लेकिन वे एक-दूसरे की बातें नहीं सुन रहे थे। आरिफ़ मामा ने लड़की को एक तमाचा जड़ दिया, छोटा बच्चा रोने लगा। नौजवान रूमाल से उसकी नाक साफ़ करने लगा तो कॉपियाँ ज़मीन पर गिर पड़ीं...

इसी बीच जब ड्राइवर मोटर को गैरज में ले जाने लगा, आरिफ़जान उसकी आवाज़ सुनकर उठ खड़ा हुआ। सब चुप हो गये थे।

आचिल बाबा खाँसे। आरिफ़जान बाहर निकल आया, बच्चे खिड़की से कूद कर चले गये। गले से गले मिले बाप-बेटे काफ़ी देर तक बरामदे में खड़े रहे।

"आप कैसे हैं, अब्बा? स्वास्थ्य तो ठीक है? इतनी दूर आने की ज़रूरत क्या थी? मैं ख़ुद आ जाता। तालिबजान ठीक है?" आरिफ़ ने सफ़र से थके बूढ़े पिता की ओर बार-बार देखते हुए पूछा।

"सब सकुशल हैं। सब ने सलाम कहा है। मेरे पास काम बहुत हैं और मैं तो आजीवन छुट्टी पर ही हूँ," तख़्ते पर बैठकर दाढ़ी सहलाते हुए आचिल बाबा ने कहा। "यह तेरा भाँजा अज़ीमजान है। दुनिया के दूसरे कोने से आकर हमें ढूँढ़ लिया है।

"अज़ीमजान ?"

ख़ुर्जी रखकर अज़ीमजान ने कुछ संकोच के साथ अपने कपड़ों व बूटों की ओर देखा जिन पर धूल की तह जम गयी थी। फिर वह अपने मामा की ओर बढ़ गया।

"अरे! यही हमारा अपना अज़ीमजान है!" आरिफ़ के साँवले मोटे चेहरे पर प्यार की झलक उभर आयी। उसने अपनी लम्बी बाँहों में अज़ीम-जान को भर लिया।

"ओह्-हो, भाँजे! भाषा जानते हो?"

"जानता हूँ, आरिफ़ मामा!"

"आइये, अन्दर आ जाइये, अब्बा जान। बूट यहीं उतार दीजिए। आनाबी, तुम कहाँ हो। मेहमानों के बैठने के लिए तोशक बिछा दो!" आरिफ़ बड़ा मोटा-तगड़ा था लेकिन बड़ी चुस्ती से प्रसन्नतापूर्वक इधर-उधर दौड़-धूप कर रहा था। वह कभी-कभी कुछ पूछ लेता और साथ ही सवालों के जवाब भी देता जाता।

इस बीच आलमारी खोली जा चुकी थी। उससे मलाई व शहद की ख़ुशबू आयी। बाहर अँगीठी जला दी गयी।

"मैंने आनाबीबी को पहचाना नहीं।"

"हाँ, उससे बड़ी मदद मिलती है।"

"और वे लोग कहाँ गये?"

"वे पड़ोसी के बच्चे हैं। यारमत और नूरमत। शायद आचिल बाबा

के आने की ख़ुशख़बरी सुनाकर मिठाई पाने गये हैं," आरिफ़जान ने हँसते हुए कहा और हाथ में लगे राब को चाट लिया।

"अच्छा, तो वे मुझे जानते हैं... और तुम?" आचिल बाबा ने ध्यान से आनाबीबी की ओर देखा। "तुम मुझे पहचानती हो?"

"हाँ," आनाबीबी बड़े उत्साह से बोली, "जब आसमान का गुम्बद बन रहा था, आप ईंटें ला-लाकर देते थे। क्या यह सच है?"

आचिल बाबा ने बेटे पर नज़र डाली: "क्या तुमने ऐसा कहा?" और वे ठहाका लगाकर हँस पड़े।

जब तक मेहमान हाथ-मुँह धोते रहे, समोवर आ चुका था। लोहे की थाली में भक-भक अंगारे गिर रहे थे। आरिफ़ ने नानरोटी के टुकड़े करते हुए अज़ीमजान पर नज़र डाली। अब उसकी सबसे ज़्यादा दिलचस्पी अज़ीमजान में ही थी: कहाँ से आया, कैसे आया, कैसा आदमी है, मन में, दिल में क्या है? वह कैसे बड़ा हुआ? उसकी नियति क्या है?

इससे पहले कि आचिल बाबा अपनी कहानी शुरू करते, छोटी मेज़ पर रखे टेलीफ़ोन की घण्टी बज उठी। मेज़ के पासवाली कुर्सी पर बैठकर आरिफ़जान पहले चुपचाप सुनता रहा। लेकिन उसके चेहरे से साफ़ ज़ाहिर था, उसका क्रोध बढ़ता जा रहा था।

"अच्छा, मरिया वसील्येवना, पर मैं उसके विरुद्ध हूँ। मैं पहले भी कह चुका हूँ और अब भी कहता हूँ। हाँ, हाँ, तुम्हीं मुझे यहाँ लायी हो। मगर अब या तो तुम यहाँ काम करोगी या मैं। बस समझ लो, बात ऐसी ही है,... तुम ख़ुद चिल्ला रही हो! तुममें आत्मीयता नाम की चीज़, दिल नाम की चीज़ रह ही नहीं गयी है। क्या? फिर वही बात! अगर ऐसी बात है तो सेक्रेटरी के काम की मुझे कोई ज़रूरत नहीं। मैं पहला आदमी होऊँगा, हाँ!" आरिफ़ की आवाज़ ऊँची होती गयी। वह बड़े गुस्से में आ चुका था। "तुमसे ज़्यादा अच्छी तरह समझते हैं वे लोग! जो जी में आये, करती रहो, बस फ़ोन पर मत चिल्लाना!" और उसने रिसीवर भड़ाक से नीचे रख दिया।

दहलीज़ पर आनाबीबी दो प्यालों में शीरचाय* लिये खड़ी थी।

---

* शीरचाय – उबला हुआ दूध जिसमें चाय, नमक, मक्खन और काली मिर्च डाली गयी हो।

"क्या मरीया वसील्येवना वही मरियम है?" आचिल बाबा ने पूछा। उनकी भूख मर चुकी थी।

"हाँ, वही है। अगर कोई मर्द होता तो सात पुश्तों को गालियाँ सुनाकर मन शान्त कर लेता..."

"प्रान्तीय समिति के सेक्रेटरी से भी कोई इस तरह बातचीत करता है क्या? आख़िर तुम ख़ुद हो कौन?" आवाज़ ऊँची करके आचिल बाबा ने पूछा। उनकी भौंहों में बल पड़ गये थे।

आरिफ़जान सिर झुकाये बैठा रहा।

दोस्तो! हम अपनी यात्रा की पहली मंज़िल पर पहुँच गये हैं। जैसी स्थिति है, शायद हमें यहाँ रुक कर कोई क़िस्सा सुनना पड़ेगा। लेकिन उससे पहले हितोपदेश के रूप में रवायत सुनिये।

रवायत

सिर-दरिया के किनारे स्थित फ़ाराब गाँव का निवासी मुहम्मद दुनिया भर के वैज्ञानिकों में मशहूर था। भौतिकी में अरस्तू के बाद उन्हीं का नाम आता था और उन्हें अल-फ़ाराबी के नाम से विभूषित किया गया था। यूनान देश से लौटते समय अपने साथ वे एक चमत्कार लाये थे—नाय*। ऐसे वैज्ञानिक की वापसी पर तो शानदार त्योहार होना चाहिए था लेकिन ऐसा नहीं हो पाया। बात यह थी कि उनके जन्म स्थान के सभी लोगों को बन्दी बनाकर बेलूचिस्तान ले जाया गया था। अल-फ़ाराबी के एकमात्र रिश्तेदार, उनके बड़े भाई का भी यही हश्र हुआ था।

वैज्ञानिक को बड़ा दुख हुआ। नाय बजाकर वे अपने मन की भावनाएँ व्यक्त करने लगे। दुख में कई करुण धुनें उन्होंने डालीं। आख़िर जब उनका धैर्य समाप्त हो गया, अपने भाई को रिहा कराने की आस लेकर वे बेलूचिस्तान के शाह के दरबार की ओर रवाना हो गये।

यह देश क्या था, एक वास्तविक नरक था। चारों ओर से आह-कराह की आवाज़ें मुखरित हो रही थीं। जैसे क़यामत ही आ गयी हो।

---

* नाय—शहनाई जैसा एक बाजा।

वैज्ञानिक के भाई सहित बहुत से बन्दी धूप में पसीने से लथपथ मुसीबत भोग रहे थे। इस अन्याय व अत्याचार को देखकर, इनसान की यह उपेक्षा देखकर वैज्ञानिक अपने भाई को भूल गये। उन्हें यह भी याद नहीं रहा कि वह किस लिए यहाँ आये थे।

"आप लोग इतनी यंत्रणाएँ भोगकर इमारत का निर्माण किस लिए करने में लगे हैं?" वैज्ञानिक ने पूछा।

"हमारे शाह विश्व के आठवें चमत्कार का निर्माण करा रहे हैं," एक मुसाहब ने जवाब दिया। उसके कोड़े से ख़ून टपक रहा था। "तुम कोई दरवेश मालूम पड़ते हो। हमारे यशस्वी शाह के लिये दुआएँ करो।"

उससे मुँह फेर वैज्ञानिक दासों की क़तारों के पास जा पहुँचा। दुबले-पतले, निर्बल दास दूर-दूर से ढोकर पत्थर ला रहे थे, ज़मीन की खुदाई कर रहे थे, पत्थरों को लेकर उपर की ओर जा-आ रहे थे। फटे-पुराने कपड़े पहने, भूखे, बीमार दासों के शरीर ज़ख्मों से भरे थे। दिन भर वे सख्त मेहनत करते और रात को जब सोने जाते, सैकड़ों मच्छड़ उन पर टूट पड़ते। सब से बड़ी बात थी, उस समय उन बेवतन लोगों में कोई अज्ञात बीमारी फैली हुई थी। इस रोग के कारण और इलाज के बारे में किसी को कुछ भी मालूम नहीं था। दास इतनी बड़ी संख्या में मरते जा रहे थे कि शाह को भी चिन्ता हो आयी: अगर सारे दास इसी तरह मरकर ख़त्म हो गये तो आठवें चमत्कार का निर्माण कौन करेगा? शाह यश का भूखा था, वह दुनिया में नाम कमाना चाहता था।

इस लिए दासों के प्रति मानवीयता का प्रदर्शन करते हुए शाह ने उनके भोजन में बढ़ोतरी कर दी। उन्हें हफ़्ते में एक बार दूध और महीने में एक बार गोश्त मिलने लगा।

अधिकारियों में सोना बाँटा गया: किसी न किसी तरह दासों को जिन्दा रखना है। पर मुसीबत दूर नहीं हुई, दास मक्खियों की तरह मरते जा रहे थे।

वैज्ञानिक लम्बे अर्से तक इन बेचारों के साथ रहा, उनके सोया-जागा, उठा-बैठा और इस तरह उनका हमदर्द बन गया। एक दिन उसे देखकर मुसाहब ने पूछा:

"ऐ, आगन्तुक! तुम दरवेश नहीं मालूम पड़ते। कौन हो तुम? इस नरक को स्वेच्छा से क्यों स्वीकार किया है?"

"मैं अल-फ़ाराबी हूँ," वैज्ञानिक ने जवाब दिया।

मुसाहब बेहोश होते-होते बचे। उनकी आँखें खुली की खुली रह गयीं। वे दो क़दम पीछे हट गये और नौ-दो ग्यारह हो गये।

उसी दिन शाह के नौकर अल-फ़ाराबी को लेने आये। शाह ने उसे अपने यहाँ आमन्त्रित किया था। कोसों का रास्ता तय करके, वज़ीरों के आलीशान महलों से होकर वैज्ञानिक बेलूचिस्तान के यशस्वी शाह के यहाँ पहुँचा। शाह की दाढ़ी सुरमे-सी काली थी। उसने बनारसी चोग़ा और सोने का ताज पहन रखा था। वह यूसुफ़ जैसा एक सुन्दर आदमी था। तख़्त से नीचे उतरकर उसने अल-फ़ाराबी की आगवानी की।

"हम खुश हैं कि तुम हमारे मुल्क में आये। पर हमें सूचित क्यों नहीं किया?"

शाह के इशारे पर उसके पैरों के पास थाली भर सोना डाल दिया गया। वैज्ञानिक ने कोई प्रतिक्रिया नहीं ज़ाहिर की। इस तरह के शाही व्यवहार वह बहुत देख चुका था।

"आपने मुझे क्यों बुलाया था, शाह?" उसने सीधे-सादे ढंग से पूछा।

"शहंशाह" या "आलीजहान" सुनने का आदी हो चुका शाह इस बार उस्ताद के इस लहजे से नाराज़ न हुआ।

"हमारे निष्ठावान दासों में कोई महामारी फैली हुई है। तुम उसकी दवा ढूँढ़कर, मुसीबत दूर करो," बड़े से चमड़े के थैले का सोना उसके पैरों के पास फेंकते हुए शाह ने कहा।

"मैं यह काम नहीं कर पाऊँगा, शाह।"

"क्यों?" शाह गुस्से से बोला और जाकर तख़्त पर बैठ गया। "क्या वैज्ञानिकों की दुनिया में तुम्हारी प्रसिद्धि अरस्तू के बाद नहीं? क्या यह ग़लत है? यह आफ़त कहाँ से और क्यों आयी, क्या तुम्हें नहीं मालूम?"

"मालूम तो है लेकिन मैं इलाज नहीं कर सकता।"

"तो फिर कौन कर सकता है?"

"केवल आप ही कर सकते हैं।"

शाह उछल कर तख़्त से उठ खड़ा हुआ। दरबारियों को आदेश दिया: वैज्ञानिक दरबार में ही रहेगा, उसे कारचोबी चोग़ा पहनाया जाये!

"अच्छा, उस्ताद! यह कैसी आफ़त है और हम इसका इलाज कैसे कर सकते हैं?"

"यह विछोह का, जुदाई का रोग है, शाह... इसकी एक ही दवा है, उन्हें उनके देश वापस भेज दिया जाये। तभी वे ज़िन्दा रहेंगे, नहीं तो सब ख़त्म हो जायेंगे," अल-फ़ाराबी ने कहा।

"तुम बड़े वाक्-चतुर हो! हमारे ख़्याल से तुम मज़ाक कर रहे हो। समय आने पर हम तुम्हारी इस बात का भी सही-सही मूल्यांकन करेंगे। पर अब सच्ची बात..."

"सच्ची बात यही है।"

"क्या? तुम जानते हो, हम दासों को उनके वतन वापस नहीं भेजेंगे! हमारे लिए यही बेहतर है, वे मरते दम तक काम करते रहें।"

"यह भी मुझे मालूम है लेकिन बीमारी वही है जो मैंने बतायी। इसके अलावा उसकी कोई दवा नहीं।"

शाह के ग़ुस्से का कोई ठिकाना न रहा।

"हटाओ इसे मेरी आँखों के सामने से। बेड़ियाँ बाँध कर ग़ुलामों में शामिल कर दो उसे!" वह चिल्ला उठा।

...इस प्रकार विश्वविख्यात वैज्ञानिक शाह के दरबार से दास बनकर लौटा और बड़ी कठिनाई से बेड़ियाँ घसीटनेवाले हज़ारों ग़ुलामों में उसे शामिल कर दिया गया। धीरे-धीरे बहुत दिन, बहुत महीने बीत गये। वैज्ञानिक की भी वही नियति थी जो हज़ारों बेसहारे अन्य ग़ुलामों की थी। महामारी से मरने को कटिबद्ध दासों के लिए आशा की वह एकमात्र किरण था।

एक दिन शाम के समय वैज्ञानिक ने नाय निकालकर बजाना शुरू कर दिया। ज़ंग लगी बेड़ियों की खनखनाहट से दासों के कान के परदे फट गये थे। नाय की कोमल धुनें सुनकर वे काँप उठे। जो जहाँ जिस स्थिति में था, वहाँ उसी स्थिति में बिना हिले-डुले लेटा, बैठा या खड़ा रह गया। नाय की धुन कभी तो पत्तों से खेलनेवाली वसन्त की बयार-सी और कभी गर्जन की आवाज़ सी लगती थी। मधुर धुनों से हवा मुखरित हो

उठी थी। लगता था, कहीं दूर-दूर से ग्राकर नाय की धुनें हरेक के हृदय का स्पर्श कर जाती थीं, हरेक के मन की बातों, अनुभवों का इज़हार कर रही थीं जिनको वे शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकते थे।

तब से हर रोज़ शाम को दास नाय की धुनें सुनने के लिए एकत्र होने लगे। उदास धुनें दिल के टुकड़े कर देतीं पर उन्हें इनमें बड़ा ग्रानन्द मिलता था ग्रौर वे ग्रपनी दु:ख स्थिति को भुला देते थे। नाय सुनते हुए वे सुबह तक मौन बैठे रहते थे मानो कोई भी शब्द निकला ग्रौर बेगुनाह दिलों के ग्राईने को चूर कर जायेगा। पर एक दिन किसी के मुँह से ग्राह निकल ही गयी। इस ग्राह ने सन्नाटे को भंग कर दिया ग्रौर सब में जान ग्रा गयी।

"लहरें. . . " कोई धीमी ग्रावाज़ में बोला।

"चरागाह. . . " दूसरे ने बताया।

"नीले गुम्बद. . . " एक ग्रौर बोला।

यह सारी बातें सुनकर वैज्ञानिक को कोई प्रेरणा मिली ग्रौर उसने "पेशरवी दियारा" नामक ग्रपनी लम्बी व कारुणिक धुन बजानी शुरू कर दी।

"यह तो हमारा सिर-दरिया है. . . " धुन समाप्त होने पर एक दास बोल उठा।

"बजाग्रो, उस्ताद, बजाग्रो!"

"यह धुन हमारे फ़ाराब के बाग़ों की झलक देती है!"

"बजाइये, उस्ताद, बजाइये!"

यह ग्रावाज़ें पहले तो चीख़-सी लगीं। मगर बाद में दास फ़ाराबी से बार-बार यह धुन सुनाने का ग्रनुरोध करने लगे: "हमारे वतन के दर्शन कराइये, उस्ताद!"

नित्य शाम को नाय बजने लगा। लोगों की जान में जान ग्रा गयी, नसों में ख़ून दौड़ने लगा। वे उस वतन के दर्शन करके धीरे-धीरे स्वस्थ हो गये जिसके सौन्दर्य की झलक वैज्ञानिक की धुनों में थी। ग्रब वे रोने-हँसने, सोचने-विचारने लगे। मौत की छाया उनसे दूर हो गयी. . .

दुनिया के ग्राठवें चमत्कार का निर्माण हो पाया या नहीं, कथा सुनानेवालों को नहीं मालूम। लेकिन मनुष्य के हृदय में जो सौन्दर्य-भाव है, वह चमत्कारों का चमत्कार है ग्रौर इसके बिना कोई ग्रादमी ग्रादमी नहीं।

आदमी को सदा सौन्दर्य की ओर अग्रसर होना चाहिए।

—ओनोरे बालज़ाक

बीच मई का समय था लेकिन मौसम वसन्त के पहले के दिनों-सा नरम था। कभी-कभी गरज के साथ रिम-झिम वर्षा हो जाती और मिट्टी की सोंधी-सोंधी बू जी में हलचल मचा देती, मन में छिपी ख़ुशी को आँखों के आगे उजागर कर देती है। आरिफ़ अका के दिल में भी अपार ख़ुशी छुपी है। सब से ख़ुशी की बात तो यह है कि वह अचानक इस इलाक़े में चला आया था जो उसे बहुत ही प्यारा था...

सच बतायें तो शहरवाले यह जानते ही नहीं थे कि उसे कहाँ रखा जाये क्योंकि उसकी आदत मुँह पर ही सब कुछ कह देने की थी। अपनी इसी आदत के कारण वह उनकी आँखों का काँटा बन गया था। पिछले साल उसे चुपके-चुपके प्रान्तीय समिति के औद्योगिक विभाग में नियुक्त कर दिया गया था। और शहर के पूरे उद्योग में था ही क्या—कपास की सफ़ाई करने के दो कारख़ाने और मशीनों की मरम्मत के लिए एक वर्कशॉप। आरिफ़-अका भली-भाँति समझ गये, ऐसा उनसे बचने के लिए, उन्हें सक्रिय काम से दूर रखने के लिए किया गया था। इसलिए जब उनकी पुरानी मित्र मरीया वसील्येवना ने उसे इस प्रान्त के नये इलाक़े में काम करने के लिए आमन्त्रित किया तो उनकी ख़ुशी की सीमा न रही, वे यहाँ आने को सहर्ष तैयार हो गये। इसका एक नाज़ुक कारण भी था। सारागुल की स्मृति।

स्वर्गीय सारागुल कोयकि नामक पहाड़ी इलाक़े के शिविलग़ान गाँव की थी। अब कोयकि को इसी नये इलाक़े में शामिल कर लिया गया था।

शिविलग़ान... शिविलग़ान... आरिफ़-अका के जवानी के सबसे मधुर, सबसे सरस, सबसे रमणीय दृश्य इसी से सम्बद्ध हैं। उनका पूरा जीवन इसी की अविस्मरणीय यादों की गाथा था।

जब सारागुल यहाँ से चली गयी, इस इलाक़े में आने का साहस वे

नहीं जुड़ा पाये। लेकिन जागते हों या सोते, इसी स्थान के सुख-दुख की याद उनके मन में बनी रहती।

हाँ, अब जा सकता था। जाना भी चाहिए। जब से यहाँ आया, तभी से सोच रहा था। अब वह शिविलग़ान में ज़ियारत के लिए नहीं बल्कि काम से भी जा सकता था। आज जब मरीया वसील्येवना इलाक़ाई समिति के ब्यूरो के सदस्यों से उसका परिचय करा रही थी, तब भी उसके मन में यही बात थी। हालाँकि ब्यूरो के सदस्यों के साथ उसने बड़ी शिष्टता व आदर से हाथ मिलाये थे, उनमें से अधिकांश की शक्ल-सूरत वह भूल चुका था। "कल ही शिविलग़ान हो आऊँ!" "सबसे पहले शिविलग़ान की ही यात्रा की जाये," वह मन ही मन रटता रहा था।

अगले दिन फिर कहीं दूर धीमे-धीमे बिजली कड़की, थोड़ी वर्षा हुई और चारों ओर भीगी मिट्टी की सोंधी बू फैल गयी। जब इलाक़ाई समिति की मटही रंग की 'गाज़' कार उछलती हुई खेत के रास्ते में निकली, इलाक़ाई केन्द्र में अभी सूर्योदय भी नहीं हुआ था। कहीं-कहीं डींगमार मुर्ग़ों की बाँग सुनाई दे रही थी। किसी को क्या मालूम, आरिफ़-अका सुबह-सुबह सफ़र पर निकल पड़ेंगे। हाँ, शायद मरीया वसील्येवना समझ गयी थी।

कल की बैठक के बाद प्रान्त में वापस लौटने से पहले वह उनके घर आयी थी और उसने आनाबीबी के बालों में फीता लगा दिया था। फिर चाय पीकर चली गयी थी।

मरीया... मरियम... समय बीतता रहता है। उसकी भी उम्र पचास से ऊपर हो गयी होगी। जब आरिफ़ अभी सयाना भी नहीं हुआ था, वह काम में लग गयी थी। वह कभी नहीं थकती थी, वृद्धावस्था उसे छू भी नहीं गयी थी। पर अब लगता है, उसका स्वास्थ्य उतना अच्छा नहीं। उसकी मुस्कराहट में एक अजीब-सी मायूसी ने घर कर लिया था। पहले जब वह हँसती थी, गालों में बड़े भले-प्यारे-से गड्ढे पैदा हो जाते थे। अब उनकी जगह झुर्रियों ने ले ली थी।

इसके बावजूद काम में पहले जैसी लगन, कुछ निर्ममता भरी दृढ़ता, रुखाई से और बेलौस बोलने की आदत बरक़रार थी।

"याद रखो, आरिफ़, यह एक बड़ा इलाक़ा है। यहाँ काम करना

उतना सहल नहीं। ख़ास तौर से नये सरकारी फ़ॉर्मों को कभी नज़र-अन्दाज़ न करना।"

"तुमने शादी क्यों नहीं की, मरीया वर्सील्येवना?"

"देखो, नये सरकारी फ़ॉर्म हमेशा ध्यान में रखो।"

कल विदा लेते समय दोनों में बस इतनी-सी ही बात-चीत हुई थी। अब वह ज़रूर जागती पड़ी होगी। वह कल ही समझ गयी थी, सुबह-सुबह आरिफ़-अका शिविलग़ान की ओर रवाना हो जायेगा। समझ तो लिया था लेकिन इस सम्बन्ध में किसी ने कुछ बताया नहीं...

सूर्य उग आया था। वर्षा से धुली स्वच्छ हवा ने क्षितिज के पासवाले पर्वतों को नीले रंग में रंग दिया था। कुछ-कुछ नम हो गयी पगडण्डियाँ साँप के निशान से यहाँ से वहाँ तक जातीं लोगों को अपनी ओर बुला रही थीं। उन्हें देखकर ड्राइवर के मन में हलचल पैदा हो जाती।

आरिफ़-अका इन रास्तों से भली-भाँति परिचित हैं। उन्हें वह ज़माना अच्छी तरह याद है जब वे इन रास्तों पर पैदल चला करते थे। आज की यात्रा का मतलब उनके लिए पुन: जवानी में वापस लौट आना था। उनकी जवानी की वापसी कहा जाये तो ज़्यादा ठीक होगा। पिछले अनेकानेक वर्षों में वह जहाँ कहीं भी गये, इन स्थानों की याद उनके मन में हमेशा बनी रही। न केवल ऊँटो की कूब-सी अँगूर की लताओं के टेकन, बर्फ़ से शीतल जलवाले सोते बल्कि रास्ते के किनारे उगनेवाले चुक के पत्ते तक दिल के क़रीब, आँखों को प्यारे लग रहे थे। वे सब के सब वहुत-सी पुरानी स्मृतियाँ जगा देते थे।

आरिफ़-अका बहुत से स्थानों और अनेक देशों की सैर कर चुके थे पर न तो स्वदेश में न यूरोपीय राष्ट्रों में कहीं भी उन्हें शिविलग़ान जितना सुन्दर पहाड़ी गाँव मिला। भूतपूर्व कोयकि इलाक़े में (भूतपूर्व! न जाने क्यों उसे भूतपूर्व बना दिया गया!) हर छोटे से छोटे गाँव का अपना सौन्दर्य है, उसकी अपनी ख़ूबी है। शिविलग़ान पहाड़ों-चट्टानों के बीच स्थित अँगूर की हरी-भरी लताओं में डूबा एक गाँव है। सुप्रसिद्ध शिविलग़ानी अँगूर यहीं से आया है। आरिफ़-अका सारागुल के यहाँ शिविलग़ान के सौन्दर्य को देखने के बहाने ही जाया करता था।

सच में बहाना वाजिब भी था। गाँव की सबसे बड़ी सड़क [illegible] पहाड़ों से नीचे बहनेवाली शिविलग़ानसाय नदी की खनखनाहट, उसकी

बर्फ़-सी शीतल हवा के झोंके दूर से आकर दिल को छू जाते। गाँव में आनेवाला कोई भी आदमी, चाहे वह कहीं का भी रहनेवाला हो, यहाँ रुककर देर तक ऊपर से शोर मचाती बहती आती इस पहाड़ी नदी, उसमें उठते झाग और उसके झरनों को ठगासा देखता रह जाता था। नदी के दोनों किनारों की सफ़ेद पत्थर की प्राकृतिक सीढ़ियाँ मकानों के ऊपर से आनेवाली अंगूर की लताओं के साये में सदा नम रहती थीं। वहाँ लाल कपड़े पहने लड़कियाँ नंगे पाँव दौड़ती फिरतीं। उनकी वेणियों पर झरने की बून्दें सदा चमकती रहतीं। वे चाहे जितना भी चिल्लायें, शोर मचायें, उनकी आवाज़ कभी सुनाई नहीं देती। आरिफ़-अका की सारागुल से पहली मुलाक़ात भी इन्हीं सड़कों पर हुई थी...

तब और सारागुल से शादी होने के बाद जब कभी आरिफ़-अका शिविलग़ान आते थे, उन्हें सड़क के नीचे खड़ा होकर इन अनगिनत झरनों को देखना बड़ा रास आता था। हर बार वे आश्चर्य से भरकर कह उठते थे: "पेतेरगोफ़! पेतेरगोफ़! *"

सदा हिमावरण में रहने वाली सबसे ऊँची पहाड़ी चोटी सुबह के समय नीली लगती थी और दिन में इतनी चमकदार कि आँखें चौंधिया जायें। शाम को वह दूरवर्ती चोटी पेशानी पर सफ़ेद धब्बोंवाले बछड़े के सिर की तरह काली-भूरी लगती थी।

इस मुख्य सड़क की दोनों ओर जाती पगडण्डियाँ, पहाड़ों व चट्टानों के बीच बड़ी ऊबड़-खाबड़ थीं। पूरे-पूरे आँगन को ढँके अँगूर की लताओं के कारण नीचे गलियों में हमेशा गहरा अन्धेरा छाया रहता। पेड़ व झाड़ियों के बेहिसाब घनेपन को देखकर आरिफ़-अका बार-बार अचम्भे में पड़ जाते – डाकिये यहाँ कैसे आते होंगे और लोग रास्ता भूले बिना चलते-फिरते कैसे हैं। अत्यन्त निर्मल पहाड़ी हवा के कारण यहाँ सर्वत्र न केवल पके फलों की ख़ुशबू बल्कि छोटे-से-छोटे वन प्रसून, पहाड़ों पर सूखी किसी डाल की बू भी बड़ी तेज़ मालूम पड़ती।

नदी की अनवरत कलकल व झरनों के लगातार शोर से मन को शान्ति मिलती और उनकी प्यारी ठण्डी हवा सारे गाँव में फैलकर लोगों में स्फू-

---

* पेतेरगोफ़ – लेनिनग्राद के निकट एक शहर जो अपने हज़ारों फ़ौवारों के लिए मशहूर है।

र्ति पैदा करती। यहाँ के नौजवान व वृद्ध–सभी आजीवन एक पहाड़ से दूसरे पहाड़ पर फुदकते-से फिरते, उन्हें कभी थकान नहीं महसूस होती। यहाँ रहनेवाला हरेक आदमी बचपन से ही अंगूरों की देखभाल के सारे गुर सीख लेता। गाँव के ऊपर पहाड़ों पर उगनेवाले अखरोट व पिस्ता के जंगलों की हर पगडण्डी उसकी जानी-पहचानी होती। इन अन्धेरी पगडण्डियों पर आरिफ़-अका और सारागुल का जानबूझ कर भटकना, छत्ता बिखरने से भिड़ों से बचकर उनका भागना और भागते-भागते रास्ते में मिले बर्फ़ से ठण्डे पानीवाले सोतों में नहाने के मज़े लेना, नदी में फूलमाला फेंक भाग्य को परखना... यह सब कब हुआ था? यह सब वास्तव में हुआ था या बस सपना ही था?..

आरिफ़-अका ने 'गाज़' को ब्रेक लगाकर जेब से रूमाल निकाल, ललाट पर चुहचुहा आये पसीने को पोंछा। अब सूरज काफ़ी ऊपर चढ़ आया था। मोटर के पास ही कल-कल करता नल का पानी बह रहा था। ऊपर गोरैया कभी चहक उठता और कभी मौन हो जाता मानो पानी की कलकल ध्वनि सुन रहा हो।

यूँ ही ख़्यालों में डूबे आरिफ़-अका को अचानक याद आ गया, अब सारागुल यहाँ नहीं... वहाँ भी नहीं... कहीं भी नहीं... दुनिया में ही नहीं। उन्हें यहाँ अकेले नहीं, किसी के साथ आना चाहिए था। अकेलापन आदमी को बड़ा कष्ट पहुँचाता है। एकबारगी उनका दिल यहाँ से वापस लौट जाने को करने लगा।

मगर किसी तरह उन्होंने ख़ुद पर काबू किया। दो घण्टे बाद भूतपूर्व इलाक़ाई केन्द्र सुम्बुलतामची आता है। सिर्फ़ सुम्बुलतामची को देखने के लिए भी अगर इतना लम्बा सफ़र किया जाये तो बेकार नहीं होगा। यह स्थान गाँव के केन्द्र में है और इसका नामकरण एक प्राकृतिक चमत्कार पर किया गया है।

सुम्बुलतामची एक अद्भुत चमत्कार है। मेरे वर्णन से आप इसकी कल्पना में सफल होंगे, मुझे ऐसा विश्वास नहीं। इसकी कल्पना सिर्फ़ देखकर ही की जा सकती है–घण्टों तक।

सबसे पहले मैं पूछूँगा, क्या आपने कभी सुम्बुल देखा? मेरे सवाल से बुरा न मानिये। ग़ज़लों में इस हरे-भरे निराले पौधे की चर्चा में ज़मीन

आसमान एक कर देनेवाले कवियों में से ही बहुत ऐसे हैं जिन्होंने कभी इसे अपनी आँखों से नहीं देखा है।

वस्तुत:, यह बाल की तरह कोमल व काला होता है। इसके पत्ते छोटे-छोटे, गहरे हरे रंग के व चमकीले होते हैं। यह इतने कोमल, इतने ललित होते हैं मानो किसी अति निपुण सुनार ने उन्हें बड़ी बारीकी से गढ़ा हो। सुम्बुल सिर्फ़ वहीं उगेंगे जहाँ सोते का पानी होगा, पत्थर होंगे और एकान्त खाई होगी।

अब ज़रा दो मंज़िले मकान जितनी ऊँची-बड़ी चट्टान की कल्पना कीजिए। इस चट्टान के अन्दर एक बड़ी-सी गुफ़ा है। गुफ़े की पथरीली छत से चार-पाँच गज़ लम्बे करोड़ों सुम्बुल झूल रहे हैं। सुम्बुल के हरेक पत्ते से सोते का साफ़ पानी टपक रहा है। गुफ़े के मुँह के पास पहुँचने पर आप सबसे पहले सूरज की किरणों व सोते के पानी के छींटों से बना अजीबोग़रीब इन्द्रधनुष देखेंगे। बाद में जब आँखें कुछ सध जायेंगी तो अपने काले बालोंवाले पत्तों से आँसू की तरह करोड़ों-करोड़ बून्दें छिटकाते सुम्बुलों को देखेंगे। इन बून्दों को आप अपने पाँवों तले मोती की तरह स्वच्छ लड़ियों में टपकते देखेंगे, इन छींटों से चाँदी की घण्टियों के बजने-सी आवाज़ सुनेंगे, सुखद शीतलता आपके सीने में उतर जायेगी, आपको असीम शान्ति मिलेगी। यहाँ चिर शाश्वतता है—चाहे जाड़ा हो या गर्मी—हमेशा एक-सी स्थिति।

अन्य देशों में प्रकृति के ऐसे चमत्कार तीर्थ स्थान बनकर अनपढ़, अन्धविश्वासी लोगों के हाथों में आ जाते हैं। और सुम्बुलतामची की सरपरस्ती भी पहाड़ों पर पले सौ-सौ बरस की उम्र के वृद्ध कर रहे थे।

उनमें से बहुत से आरिफ़-अका के दोस्त थे। उनसे विदग्धतापूर्ण बातें करना उन्हें बहुत अच्छा लगता था। उन वृद्धों के बिछोह से उदास होकर वह कुछ रंज के साथ मुस्कराये।

सारागुल का बाबा हलीम भी उन्हीं वृद्धों में एक था। "आचिल को सुम्बुलतामची लाओ और हमसे उसका परिचय कराओ," यही कहते-कहते बेचारा इस दुनिया से उठ गया था।

इन पहाड़ी गाँवों में उस समय भी यानी सन् तीस में भी न जाने क्यों धार्मिक कुरीतियाँ कम ही थीं। यहाँ के आदमियों को भ्रष्टाचार की कोई जानकारी नहीं थी, लड़कियाँ आज़ाद थीं।

आरिफ़-अका को इन बातों ने या किसी दूसरी चीज़ ने आकृष्ट किया, मालूम नहीं लेकिन प्रान्तीय कोम्सोमोल समिति के प्रतिनिधि के रूप में यहीं आकर उन्हें अपना जीवनसाथी मिला। यहाँ की फुलझड़ियों-सी लड़कियाँ समूची वादी में मशहूर थीं।

सारागुल को ही लीजिए। वह बुर्क़ा नहीं डालती थी। उसका चेहरा सदा दहकता-सा रहता था... पहली शामों को जब वे अकेले रह गये थे, उस समय के दृश्य आरिफ़-अका को भुलाये नहीं भूलते, वे आज भी एकदम साफ़-साफ़ उनकी आँखों के आगे दिखाई देते रहते।

तब वे पहाड़ी क्षेत्र में अंगूर के किसी असीम बाग़ में थे। नीचे, ऊपर, पहाड़ों पर पत्थरों पर—सर्वत्र असंख्य तख़्त व अंगूर की लताओं को सम्भालनेवाले टेकन। यह अंगूर का एक बहुत बड़ा बाग़ था... अनन्त। बाग़ से बाहर निकलने के लिए पगडंडी न पाकर वे इधर भटक रहे थे मानो किसी ने जादू कर दिया हो। "हम तो गुमराह हो गये," वे कहते और खिलखिलाकर हँस पड़ते। शाम के झुटपुटे में चारों ओर के कुबड़े टेकन बड़े अजीब लग रहे थे, साये परीकथाओं-से रहस्यमय प्रतीत होते। सारे रास्ते जाने-पहचाने थे, फिर भी वे बाग़ से बाहर नहीं निकल पा रहे थे। शरदकालीन ठण्ड के कारण वे शरीर को कोहनियों में समेटने लगे थे। बाँहों में बाँहें डाले, एक-दूसरे को सम्भाले वे लगातार इधर से उधर फिर रहे थे। मन ही मन दोनों इस बात से डर भी रहे थे कि रास्ता मिल गया तो विदाई भी लेनी होगी। उन्हें महसूस हो रहा था, वे सदा से इसी तरह बाँहों में बाँहें डाले, एक-दूसरे के प्यार की गर्मी दिल से महसूस करते इस धरती पर आये हैं।

वे इन बाग़ों के हरेक सुनसान कोने, एक-एक पगडण्डी, एक-एक अंकुर से भली-भाँति परिचित थे लेकिन इसके बावजूद, न जाने क्यों, रास्ता तलाशकर यहाँ से बाहर निकलने में असमर्थ थे। जब सचमुच अन्धेरा घिर आया, सारागुल सिहर उठी।

"हम... हम भाई-बहन हैं न, आरिफ़-अका? मैं आपकी छोटी बहन हूँ, ठीक है न?" वह बोली। न जाने क्यों उसकी आवाज़ काँप रही थी। आरिफ़ का आलिंगन उसे गर्म और प्यारा तो लग रहा था लेकिन न जाने क्यों आज भय भी महसूस हो रहा था। आरिफ़ ख़ामोश

था। बड़े सीधे-सादे थे दोनों! एक दूसरे के प्रति आकर्षण को मात्र दोस्ती, भाईचारा साबित करने की कोशिश में लगे थे।

"देखो, कहीं ठण्ड न लग जाये..." और आरिफ़ ने उसे ज़्यादा क़रीब खींच लिया। अब चलना कुछ तकलीफ़देह हो गया था, वे धीरे-धीरे चलने लगे। वे एक जगह ख़ामोश रुक गये। सारागुल की देह दहक उठी। आलिंगन दोनों के शरीर में आग भर रहा था। दहकते मुँह, दहकते गाल एक-दूसरे को सहला रहे थे, वे ख़ुद भी नहीं जान सके, कब होंठों ने एक-दूसरे को ढूँढ़ लिया... आंखें बन्द, चारों ओर अन्धेरा, शरीर में जैसे कोई ताक़त ही नहीं... न जाने कब तक दोनों यह कष्टदायक आनन्द लेते रहे... दोनों के होंठ दहक रहे थे। भयभीत सारागुल ने काँपती देह परे खिसका ली। कुछ देर ज़मीन की ओर नज़रें झुकाये वे खड़े रहे। शरद की ठण्ड ने उनके उबलते ख़ून को थोड़ी शीतलता दी और तब कहीं आँखें उठाकर उन्होंने एक-दूसरे की ओर देखा। उनकी आँखों में एक-दूसरे के प्रति कृतज्ञता भी थी और उस आतशी आनन्द के भय की झलक भी।

"वह ठीक नहीं..." सारागुल ने कहा।

"क्यों? मैं तो तेरा... मुझे तुमसे प्यार है... हमें तो सर्दी लग रही थी... उस बार भी..."

"वह... वह वैसा नहीं था," सारागुल बोली मगर अन्धेरे में चमकती उसकी आँखों में पहली मुहब्बत के चुम्बन का मज़ा फिर से चखने की इच्छा झलक रही थी। अपना चोग़ा उसके कन्धों पर डालकर आरिफ़ ने फिर उसे अपने सीने में समेट लिया...

...कोई गड़गड़ाहट-सी आवाज़ सुनाई दी थी। 'गाज़' का पीछे का चक्का किसी गड्ढे में फँस गया था। मोटर ने एक ज़ोरदार टप्पा खाया, कैब में धूल भर गयी। आरिफ़-अका के मीठे सपने उड़ गये और उन्होंने चारों ओर इस तरह नज़रें दौड़ायीं मानो अभी-अभी नींद से जागे हों: कोन-सी जगह है यह? मोटर टप्पे खाती, गड़गड़ाती, झुककर पत्थरों से टकराती, धूल के बादल उड़ाती चल रही थी। अरे, यह तो सुम्बुलतामची की ओर जानेवाली पक्की सड़क है। लेकिन यह इतनी ऊबड़-खाबड़ कैसे हो गयी है, अस्फ़ाल्ट के टुकड़े ही बच रहे हैं। या नयी सड़क बनायी गयी है? ओफ़्फ़, पुल भी ख़राब है! सिर पर निकल

आये गुमटे को सहलाते हुए आरिफ़-अका ने चारों ओर। देखा। यदि पुल पर कोई हादसा हो जाये मदद के लिए भी यहाँ कोई नहीं मिलेगा। अपने ऊपर से धूल झाड़कर वह कमज़ोर पुल की ओर बढ़ गये। मोटर पुल तो किसी तरह पारकर गयी लेकिन पुल से निकलते ही छपाक से कीचड़ में धँस गयी। गुबरैले की तरह पाँच-दस बार भिनभिना कर मोटर उस कीचड़ से तो निकल गयी लेकिन कीचड़ से एकदम लथपथ। ऐसा प्रतीत होता था, लम्बे अर्से से इन मार्गों पर कोई मोटर नहीं चली। सुम्बुलतामची तक ऐसा ही रास्ता था... जहाँ तक सड़क का सम्बन्ध है, वह इसकी दुःस्थिति का कारण समझ गया था: अब यह भूतपूर्व इलाक़ाई केन्द्र जो हो गया था! पर कोई आदमी क्यों दिखाई देता? ज़र्द पड़ी पहाड़ी ढलान पर बकरे-बकरियाँ चरानेवाला बस एक बूढ़ा एक लड़के के साथ दिखाई दिया था। आरिफ़-अका कभी कुछ रुककर, कभी गहरी साँस भरकर, किसी तरह मोटर को घसीटते सोते तक पहुँच गये। केन्द्र तक जाने के लिए समय नहीं था। शाम तक शिविलग़ान से लौट जाना था।

जल्दी-जल्दी कैब से बाहर निकले तो ऊपर से सोते को देखकर डर गये। सोते के आस-पास दलदल थी, टापों के गहरे निशान थे, गोबर फैला था और उसपर असंख्य हरी-हरी मक्खियाँ खेल रही थीं। सुम्बुल की झाड़ू की तरह तोड़-मरोड़ दी गयी शाखाएँ कीचड़ में यूँ पड़ी थीं मानो दलदल में धँसी किसी लड़की के बिखरे बाल हों। गुफ़े के मुँह पर बदबूदार शैतानतराक़* ऊधम मचाते फूल रहे थे। चट्टान के ऊपर पीले रंग की मिट्टी का अपक्षरण हुआ है और हवा पानी में, घास पर, दलदल के ऊपर लगातार धूल छिड़क रही थी। यहाँ भी कोई नहीं मिला। थककर, उदास हो आरिफ़-अका कार में आ बैठे। उन्हें बड़ी कमज़ोरी महसूस हो रही थी मानो अचानक तेज़ बुख़ार चढ़ आया हो।

शिविलग़ान के रास्ते पर भी सूखे नागदौने व दूसरी घासों की ही भरमार थी। मोटर टप्पे खाते चल रही थी, स्टीयरिंग ह्वील भी क़ाबू में नहीं आ रहा था। उसकी चरमराहट परेशान कर रही थी।

बड़ी कठिनाई से दर्रे को पार करके आरिफ़-अका आध घण्टे तक धूल के बादल उड़ाते आगे बढ़ते रहे। जब आँखें दुखने लगीं, बाक़ी रास्ता

---

* शैतानतराक़—एक झाड़ी।

पैदल तय करने का फ़ैसला किया। शिविलग़ान दूर नहीं था, वहाँ से दिखाई देने लगा था।

यह रास्ते उनके परिचित थे, भली-भाँति।

रास्ते के किनारे का एक-एक जंगली गुलाब, एक-एक पत्थर मर्मस्थल को छू जाता था। आरिफ़-अका ने पतलून की धूल यूँ झाड़ डाली मानो किसी श्रद्धेय व्यक्ति के मकान में पाँव रखने जा रहे हों। दूर-दूर तक नज़रें दौड़ाकर किसी अज़ीज़, किसी परिचित निशान को ढूँढ़ते वह आगे बढ़े। शिविलग़ान की परिचित खनखनाहट सुनाई दी। पहाड़ों पर चढ़ते अंगूर के खेत काला होते दिखाई दिये। लेकिन सब कहीं ज़बर्दस्त सन्नाटा छाया था, कोई आदमी दिखाई नहीं दे रहा था। बड़ी धूप व उमस थी, सूरज शीर्षबिन्दु से नीचे की ओर चल चुका था। हाँ, इस समय गाँव की सड़कों पर आदमी कहाँ से दिखाई देंगे! तभी पत्थर की सीढ़ियों पर झरने के छींटों से शोर मचाती खेलती लड़कियों को देखने की इच्छा उन्हें हो आयी। पहले की तरह बड़ी बुलन्दी से छलाँग लगाकर आरिफ़ अका सड़क के पास पहुँच गये फिर अचानक ही रुक गये। पहली बार उन्होंने देखा, उन चट्टानी सीढ़ियों पर कोई भी बालिका नहीं थी। सड़क की दोनों ओर के अधिकतर मकान नष्ट हो चुके थे, उनके दरवाज़ों व खिड़कियों पर लकड़ियां ठोंक दी गयी थीं। चट्टानी सीढ़ियों पर गिरे मकानों की मिट्टी कीचड़ बनकर वहाँ पड़ी थी। झरने की हालत देखी तो सन्न से रह गये। उन्हें ऐसी विकलता महसूस हुई मानो कोई अपना प्रिय व्यक्ति खो गया हो। फिर धीरे-धीरे वह ऊपर की ओर जा पहुँचे। जब उन्होंने अपनी चिर-परिचित गली में क़दम रखा, फफूँदी की बू से उनका दम ही घुट गया: बिना देखरेख के अंगूर ख़राब हो रहा था।

अतीत की यादों, कटु विचारों में डूबे आरिफ़-अका इन सुनसान गलियों व अंगूर के पुराने खेतों में कुछ देर तक टहलते रहे। पैरों तले सूखे पत्थर सरसरा रहे थे। सड़ते अंगूर पर भिड़ों का झुण्ड नाच रहा था। इसी बीच डूबते सूरज ने इन सुनसान, सूखते बाग़ों को बिलकुल पीले रंग से रंग दिया। अचानक आरिफ़-अका को अपने दिल में बुढ़ापे का अहसास हो आया...

शाम के सन्नाटे में कहीं से खट-खट की आवाज़ सुनाई दी। बाग़ में बेहिसाब उग आये घास-पात व झाड़ियों के बीच बीमार अंगूर के पास से

धीरे-धीरे चलते हुए आरिफ़-अका आवाज़ की दिशा में बढ़ आये। उन्होंने देखा, कोई अपरिचित वृद्ध कुल्हाड़े से अंगूर की उन लताओं को काट रहा था जिनके टेकन गिर पड़े थे। आरिफ़-अका कुछ देर रुककर वृद्ध के हाँफ़ने और कुल्हाड़ी की आवाज़ सुनते रहे। वहीं पुरानी बेलें एक अजीब-सी आवाज़ के साथ ज़मीन पर गिर रही थीं जिन्होंने कभी आरिफ़-अका की पहली मुहब्बत के चुम्बन को बेगानी आँखों से छुपाया था?

आरिफ़-अका ने एक अधटूटी झोंपड़ी से टिककर माथे का पसीना पोंछा। वह काफ़ी देर तक इसी स्थिति में खड़े रहे। उन्हें समझ में नहीं आ रहा था, बूढ़े से कहें तो क्या! अगर शिविलग़ान का निवासी अंगूर पर कुल्हाड़ी चलाने को मजबूर हो गया तो ज़रूर ही कोई बहुत बड़ी घटना हुई होगी।

"आता..." *

पहले बूढ़े को उनकी आवाज़ सुनाई नहीं दी। कुछ देर बाद धुँधलेपन में किसी बेगाने आदमी को देखकर कुल्हाड़ी उसने कमर में खोस ली। उसकी पोशाक भी सफ़ेद थी और बाल भी सफ़ेद थे। क़द से नाटा, कमर से झुका होने के बावजूद बूढ़ा काफ़ी मज़बूत मालूम पड़ता था। सलाम-दुआ के बाद बैठकर बूढ़े ने नसवार मुँह में डाल लिया।

"गुनाह... बहुत बड़ा गुनाह हो रहा है," मेहमान के चेहरे पर सवाल व हमदर्दी के भाव देखकर बूढ़ा बोला। "अब यह वादी में बीमारी फैलानेवाला स्थान बन गया है। देखरेख करनेवाला कोई भी नहीं। सबसे अच्छी बात यह है कि..."

"क्या यहाँ के लोगों को स्तेपी में रहने के लिए भेज दिया गया है?"

"हाँ। स्तेपी के नये सरकारी फ़ॉर्मों में। पहाड़ी गाँव के सभी लोग वहीं चले गये हैं।"

"अपनी मर्ज़ी से गये?" उसके सामने बैठते हुए आरिफ़-अका ने टोपी ज़मीन पर रख दी।

"तुम कौन हो, बेटा? मैंने तुम्हें पहचाना नहीं," जवाब देने की जगह बूढ़े ने पूछा।

---

* आता – पिता – बुज़ुर्गों को इसी तरह सम्बोधित किया जाता है।

"मेरा नाम आरिफ़जान है। हलीम आता की पोती सारागुल से मेरा विवाह हुआ था। याद है?"

"आँ-हाँ। सुना तो था लेकिन तुम्हें पहले कभी देखा नहीं था। कैसे हो? स्वास्थ्य कैसा है? सारागुल तो डॉक्टर थी न? बेचारी वह भी दुनिया से चल बसी..." बूढ़ा नसवार थूककर आगे बोला, "अल्लाह बाक़ी लोगों को लम्बी उम्र दे। हाँ, भाई, सब अपनी ही मर्ज़ी से वहाँ गये हैं। पहले कुछ लोग नाराज़ हुए, प्रतिरोध भी किया लेकिन बाद में जब अख़बारों में छपा, ढोल-मजीरे के साथ रवाना हुए... अच्छा, तुम काम कहाँ करते हो, बेटा?"

"इसी इलाक़े के केन्द्र में..."

"हाँ, सरकार को तो मालूम ही है। कहते हैं, सरकारी फ़ॉर्म दौलत के भण्डार हैं। उनसे सरकार को बड़ा फ़ायदा होगा।"

"क्या अब गाँव में कोई भी नहीं?"

"है, क्यों नहीं। हम दस-पाँचे बूढ़े रह गये हैं। हमारे लिए सब कुछ यही है – दौलत भी, फ़ायदा भी। दादा-पड़दादाओं की भूमि है..."

"लेकिन वह भी तो बेगानी भूमि नहीं, आता," आरिफ़-अका ने कहा।

"ठीक कहते हो, वह भी बेगानी नहीं। लेकिन यह भूमि कब से बेगानी हो गयी? किस के लिए बेगानी है? स्तेपी से आनेवाले लोग बन्द दरवाज़ों, बन्द सोतों, अंगूर की बीमार बेलों को देखकर रोते-रोते लौटते हैं। हज़ारों ख़ज़ाने मिलें फिर भी इनसान भावुक, हमदर्द होता है, बेटा। सिर्फ़ ख़ज़ाना ही सम्पत्ति नहीं, प्यार भी बहुत बड़ी सम्पत्ति है। आदमी की आँखों में ख़ुशी की झलक भी बहुत बड़ी सम्पत्ति है।"

"रोते-रोते लौटते हैं तो फिर यहीं क्यों नहीं रह जाते?" आरिफ़-अका ने सवाल किया।

आँखें ऊपर उठाकर बूढ़े ने उनपर एक नज़र डाली।

"मुझे परखने की क्या ज़रूरत है, बेटा! तुम ख़ुद इलाक़ाई केन्द्र में काम करते हो...," इलाक़ाई केन्द्र शब्दों पर बूढ़े ने अब विशेष बल दिया था। उसने भयभीत दृष्टि से मेहमान की ओर देखा। "इलाक़ाई केन्द्र में सभी लोग हमें जानते हैं। हमें ख़ास तौर से यहाँ रहने की इजाज़त दी गयी है। लगता है, आप नये-नये आये हैं। अगर यक़ीन नहीं तो जाकर मुखिया से पूछ लीजिए।"

एकाएक इस बुरी तरह घबरा उठे बूढ़े पर आरिफ़-अका को बड़ी दया हो आयीं। उनके मुँह से कोई बात नहीं निकल सकी। बूढ़ा चुपचाप चला गया। अचानक बदल गया उसका चेहरा रास्ते भर आरिफ़-अका की आंखों के आगे नाचते रहा।

हालाँकि अभी अन्धेरा पूरी तरह नहीं उतरा था, आरिफ़-अका ने कार की बत्तियाँ जला दी थीं।

मोटर की रोशनी में रास्ते के गड्ढे काले व ख़ौफ़नाक लग रहे थे। मोटर के काँच से तितलियाँ व मच्छड़ टकरा रहे थे। भूतपूर्व इलाक़ाई केन्द्र का रास्ता तय करने तक आरिफ़-अका लगभग बेहोश से रहे। कोई डेढ़ घण्टे बाद, सीधी सड़क पर पहुँचकर ही उनके विचार तरतीब में आये। रात हो चुकी थी। अन्धेरे के साथ उमस थी। पहाड़ी गाँवों की सर्द हवा पीछे छूट चुकी थी। लेकिन निष्ठुर अनुभव ताज़े थे, हृदय को कष्ट दे रहे थे। यूँ तो भूतपूर्व इलाक़े की स्थिति, पहाड़ी गाँवों के निवासियों को स्तेपी के नये सरकारी फ़ॉर्मों में बसाये जाने और बूढ़े द्वारा बतायी बहुत-सी बातें आरिफ़-अका को पहले से भी मालूम थीं।

लेकिन इस समय वह बूढ़ा उनकी आँखों के सामने से नहीं हट रहा था। उसकी आवाज़ आरिफ़-अका के कानों में लगातार गूँज रही थी। "आदमी भावुक और हमदर्द होता है," "आदमी की आँखों में आनन्द की झलक भी बड़ी सम्पत्ति है।" आरिफ़-अका से वह भयभीत क्यों हो उठा था? आरिफ़-अका का भला क्या क़ुसूर है? दुआ-सलाम भी कहे बिना चला गया! क्या सारागुल को वह पहचानता था? शायद वह उसके युद्ध काल के जीवन के बारे में जानता होगा। उससे बातचीत करनी थी, अतीत की यादें ताज़ा करनी थीं। कुछ न हो पाया।

अब जल्दी से जल्दी घर पहुँचना था। आनाबीबी राह देख रही होगी। आनाबीबी है, यह बड़ी अच्छी बात है। अब आरिफ़-अका के उलझन भरे विचारों की एकमात्र उज्ज्वल बिन्दु वही तो थी।

ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे आरिफ़-अका कटु विचारों, अतीत से भागना चाहते हों। तभी तो आनाबीबी तक पहुँचने को इतने अधीर थे। मोटर की गति धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी।

आनाबीबी...

और आरिफ़-अका के दिमाग़ में एक जुमला कौंध उठा: "अच्छा,

तो इसे दूध पिलाओ। अगर इसका नाम आनाबीबी रख दूँ तो तुम्हें कोई एतराज़ तो नहीं?"

हाँ, यह पन्द्रह साल पहले की बात है।

आरिफ़-अका युद्ध-समाप्ति के बाद बेलोरूस के पुनर्निर्माण में हाथ बँटाने के बाद वापस लौटे थे। दहलीज़ पर क़दम रखते ही किसी शिशु के रोने की आवाज़ सुनाई दी। उसका तो दिल ही बैठ गया। बात क्या है? डॉक्टरों के मुताबिक़ तो सारागुल को बच्चा ही नहीं हो सकता था। या कुछ परिवर्तन हो गया? लेकिन फिर आरिफ़जान के गये भी तो बहुत महीने हो गये थे? या... क्षण भर में हज़ारों-हज़ार उल्टे-सीधे विचारों से परेशान होता आरिफ़-जान अन्दर आया तो देखा, सारागुल लोरी गाते गहवारे के पास बैठी थी।

"क़ुमरि की बच्ची है... कुमरि मर गयी," सारागुल पति के गले से लिपटते हुए बोली।

"आ?"

क़ुमरि सारागुल की घनिष्ठ सहेली थी, उसी के गाँव की एक अनाथ लड़की। पशुपालन फ़ार्म में काम करती थी। आरिफ़ उसे जानता था। उसे बहुत दुख हुआ। उसने प्यार से पत्नी के सिर पर हाथ फेरा।

"पिछले हफ़्ते प्रसव के बाद ही चल बसी। गाँव के अस्पताल में ही..." सारागुल सिसकते हुए बोली।

"पति कौन है?"

"पति था ही नहीं..."

"आख़िर इसका कोई बाप तो होगा?"

"आप भी अजीब आदमी हैं," भाव-भंगिमा से सारागुल ने इस तरह जताया मानो बाप के बिना कहीं बच्चा हो सकता है। पति के ज़ोर से बोलने के कारण उसे दुख हुआ था।

"कोई ख़बर नहीं ली।"

"शायद उसे मालूम ही नहीं होगा?"

"मालूम तो हो गया उसे लेकिन करें तो क्या, आदमी बुरा है। उसके ठौर-ठिकाने के बारे में भी हमें कुछ नहीं मालूम था। बाद में अफ़वाह फैली कि क़ैद हो गया।"

गहवारे के पास आकर आरिफ़ ने बच्ची की आंखें खोलकर देखीं।

पहले कुछ सोचकर मुस्कराया फिर गम्भीर हो गया। बोलने की कोई बात ही उसे नहीं सूझ रही थी।

"मैं इसके कागज़ात भी ले आयी हूँ," सारागुल ने कहा और फिर धीमी आवाज़ में बताया, "मैंने इसे दूध भी पिलाया।"

आरिफ़जान चुप था। बड़ी अप्रत्याशित बात थी। शाम तक पत्नी से इस सम्बन्ध में कोई भी बात नहीं की। सारागुल भी यात्रा से लौटे आरिफ़-जान के लिए खाना-पानी के प्रबन्ध में लगी रही। कभी वह गहवारे को, कभी पति को देखती। वे दोनों ही अकेले रहने के आदी हो चुके थे। निश्चिन्त। लेकिन आज घर में चिन्ता भी थी और एक हलचल-सी भी मची थी।

सान्ध्य भोजन के समय सारागुल प्यार से पति के पास बैठी ही थी कि बच्चा रो उठा। पति-पत्नी दोनों की नज़रें उसी ओर मुड़ गयीं।

"लो, पिलाओ इसे दूध," आरिफ़-जान बोला। उसका दिल थोड़ा नरम हो गया था।

बेगाने बच्चे को पत्नी की गोद में दूध पीते देखकर पहले तो उसे चिढ़ हुई, उसे यह बात अप्रिय लगी लेकिन फिर उसने ख़ुद पर क़ाबू पा लिया।

"इसका नाम आनाबीबी रख दें? तुम्हें कोई एतराज़ तो नहीं? यह मेरी बड़ी बहन का नाम है," उसने कहा।

शिशु को सीने से लगाकर सारागुल पति के आने के बाद से पहली बार सच्चे दिल से मुस्करायी थी।

...इस समय वही आनाबीबी आरिफ़-अका की प्रतीक्षा कर रही थी। आरिफ़-अका को मालूम है, वह बड़ी अधीरता से उनकी राह देख रही होगी। इन पन्द्रह वर्षों में वह उनकी अपनी बेटी बन गयी थी। वे एक-दूसरे से उसी तरह प्यार करते थे। आरिफ़-अका कई जगहों पर ख़ास-ख़ास पदों पर काम कर चुके थे। वह जहाँ भी जाते, उन्हें नया मकान दिया जाता और उस मकान में उनकी वही एकमात्र चिराग़ आनाबीबी रहा करती। जीवन के हरेक क्षण में, चाहे वह कठिन हो या सहल, यही चिराग़ उन्हें सहारा देता। लेकिन जब कभी उन्हें याद आता कि इससे कोई संगदिल आदमी का भी सम्बंद्ध है, आरिफ़-अका का दिल बहुत ख़फ़ा हो उठता। उनसे यह बात नहीं सही जाती कि वह भी दूसरे इनसानों की तरह इस धरती पर चलता है, साँस लेता है।

शायद वह आदमी अब इस धरती पर न हो? चाहे जो भी हो, आनाबीबी आरिफ़-अका की ही है। अब सारागुल की जगह वही तो रह गयी थी। भाग्य ने प्रियतमा सारागुल को उनसे छीन लिया था और दिलासा व सुख के रूप में आनाबीबी रह गयी थी।

दो साल तक गोद में पालकर हलवायतर व राब खिलाकर सारागुल ने बच्ची को बड़ा किया। आनाबीबी बड़ी प्यारी, थोड़ी मोटी-सी, घुँघराले बालोंवाली लड़की थी। जब वह हँसती, उसके गालों में बड़े लुभावने गड्ढे पड़ते। जब वह चलने लगी, सारागुल शिविलग़ान के अस्पताल में फिर काम करने लगी। उसी साल आरिफ़जान पार्टी-स्कूल में पढ़ने गया था।

युद्ध के बाद का बड़ा कठिन समय था। तीन-चार गाँवों के लिए एक ही अस्पताल था। न निपुण डॉक्टर थे, न परिवहन के साधन। रास्ते बहुत ख़राब थे। जाड़ा हो या गर्मी, सारागुल को हमेशा अकेले काम में जुटे रहना पड़ता। लेकिन वह कभी नहीं थकती बल्कि उसपर पहले से अधिक निखार आ गया था। वह हृष्ट-पुष्ट युवती आदरणीया "डॉक्टर आपा" बन गयी थी। आख़िर उसे कमी किस बात की थी—प्रिय पति, सुन्दर बेटी, अच्छा-सा काम और ख़ुद तन्दुरुस्त, जवान, चुस्त। दिन भर घर-घर जाकर रोगियों को देखती, स्कूली बच्चों को टीके लगाती। घोड़े पर सवार हो वह दूर-दूर के पहाड़ी गाँवों में जाकर मरीज़ों की सहायता करती। रात को बैठती तो पति को ख़त लिखती, आनाबीबी को प्यार-दुलार करते न अघाती।

लेकिन कौन जानता है, मुसीबत कब आ पड़ेगी। एक दिन छोटी आनाबीबी डिफ्थेरिया रोग की चपेट में आ गयी। साँस बड़ी मुश्किल से ले पा रही थी। सारागुल को ख़बर भेजकर काम से बुला लिया गया। आकर देखा तो देर हो चुकी थी। बच्ची की हालत बड़ी गम्भीर थी। टीके के लिए वैक्सिन की ज़रूरत थी। सारागुल छटपटा उठी: वैक्सिन कहीं भी उपलब्ध नहीं था, न दूकान में, न अस्पताल में। कोई दौड़कर पास के गाँव गया। उसने एक घुड़सवार इलाक़ाई केन्द्र भी भेजा। आनाबीबी का चेहरा एकदम पीला पड़ गया था, साँस बड़े कष्ट से ले पा रही थी। सच में वह मौत से जूझ रही थी। सारागुल से यह सब देखा नहीं गया और डॉक्टर होने के बावजूद सर्द दीवार से मुँह टिकाकर रोने लगी।

पड़ोसिनें व नर्स उसे तसल्ली देने की कोशिश कर रही थीं। पहाड़ जैसे छह दिनों की तरह छह घण्टे बाद इलाक़ाई केन्द्र से ख़बर आयी, यहाँ भी वैक्सिन नहीं, प्रान्तीय केन्द्र में फ़ोन किया गया है, अगर वहाँ मिला तो सुबह तक भेज दिया जायेगा।

"सुबह? सुबह तक?"

चलते-चलते अपना रूईदार वास्कट और रोयेंदार रूमाल लेकर सारा-गुल डॉक्टरख़ाने की ओर दौड़ पड़ी।

शाम हो चुकी थी। खेतों की ओर से तेज़ नम व ठण्डी हवा आ रही थी। पहाड़ी गाँव शीतोष्ण जलवायु के आदी थे। बर्फ़ की मोटी परत के बावजूद यहाँ ठण्ड ज़्यादा नहीं होती थी। मगर इस साल कड़ाके की ठण्ड पड़ी थी। बर्फ़ उतनी ज़्यादा नहीं थी।

कुछ देर बाद सारागुल डॉक्टरख़ाने से घोड़े पर सवार हो निकली। माथे पर सफ़ेद धब्बोंवाला यह वही कत्थई घोड़ा था जिसपर मरीज़ों को देखने वह गाँव गाँव जाया करती थी। नर्स और पड़ोसिन समझ गयी, वह प्रान्तीय केन्द्र जा रही है।

"डॉक्टर-आपा..." नर्स घबराकर बोली लेकिन रकाबों में पैर रखते हुए सारागुल ने उसकी बात काट दी, "मेरी प्यारी बहन, तुम यहीं आनाबीबी के पास रहो!"

"लेकिन रात हो चुकी है, बहनजी! अन्धेरा भी है। तेज़ हवा और बेहद ठण्ड है। कोई दूसरा..."

"इलाक़े की ऐसी स्थिति के लिए मैं ख़ुद क़सूरवार हूँ," सारागुल ने जवाब दिया, "और फिर आनाबीबी के लिए आवश्यक दवा को मुझसे जल्दी भला कौन ला सकेगा?"

और सारागुल के कोड़ा निकालते ही घोड़ा उड़ चला। थोड़ी ही देर में "डॉक्टर-आपा" एक बिन्दु-सी दिखाई देकर आंखों से ओझल हो गयी।

रात में बच्ची की हालत और भी नाज़ुक हो गयी। भोर होते-होते तो लगा, अब या तब दम टूटा।

लाचारी के मारे नर्स की इच्छा अपने बाल नोचने को हो आयी थी कि तभी घोड़े के टाप की आवाज़ सुनाई दी। सारागुल के हाथ-पैर सर्दी से अकड़ गये थे, वह सर्दी में जमकर गिरनेवाले पक्षी के बच्चे की तरह सिकुड़कर छोटी व गोल हो गयी थी। सुबह की रोशनी में उसका नीला

पड़ा चेहरा निर्जीव प्रतीत हो रहा था। होंठ आपस में मिल नहीं पा रहे थे, बस वे किसी तरह हिलकर रह गये। शायद उसने पूछा था, "ज़िन्दा है?"

सबने मिलकर सारागुल को घोड़े से उतारा। आनाबीबी शायद वैक्सिन की ही प्रतीक्षा कर रही थी—दो दिनों में ही बिलकुल ठीक हो गयी। फ़ुदकती चलने लगी। माँ के पास पहुँचकर "मम्मी, मम्मी" पुकारती। लेकिन सारागुल उसी रात तेज़ बुख़ार में बेसुध हो गयी। उसे जल्दी-जल्दी अस्पताल भेजकर आरिफ़जान को तार ख़बर दी गयी।

दो दिन बाद प्रान्तीय अस्पताल में लाचारी से हाथ मलते हुए बड़े डॉक्टर ने आरिफ़जान का स्वागत किया।

"बड़ी देर हो गयी, दोतरफ़ा निमोनिया..." और उसने आरिफ़जान को समझाना शुरू किया। लेकिन तब तक भयावह होनी की बात वह समझ चुका था। उसे जैसे काठ मार गया था, कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा था। डॉक्टर चुप हो गया।

"आप जानते हैं, आपकी पत्नी कैसी थी?" किसी तरह आख़िरकार डॉक्टर ने पूछा।

तब इस सवाल का जवाब आरिफ़-अका भला क्या दे पाते? मौत के साथ पैदा हुए इस सवाल ने उन्हें हक्का-बक्का कर दिया था। लेकिन क्या अब वे इस सवाल का जवाब दे सकते थे? आदमी बाद में ही जान पाता है, वह कैसे इनसान के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चला, कैसे इनसान के साथ रहा।

ज्यों-ज्यों आरिफ़-अका सोचते जाते हैं, गाँव की मामूली लड़की सारागुल की नयी-नयी ख़ूबियाँ उन्हें मालूम होती रहती हैं। आज भी आरिफ़-अका उसके सभी गुणों के बारे में नहीं जान पाये हैं। अब बाल सफ़ेद हो चले हैं लेकिन वे हमेशा सारागुल की बात ही सोचते रहते हैं। उनके दुख-दर्द, चिन्ता-परेशानियाँ, सुख आदि सभी इसी चिन्तन से जुड़े हैं। शायद कुछ हद तक आनाबीबी भी इसका एक कारण है। उन्हें लगता है, सारागुल उसे अपनी जगह छोड़ गयी है। बात तो अजीब है लेकिन उसकी चाल-ढाल, आदतें, आदि, सब सारागुल की ही याद दिलाती थीं। शायद इसने उसका दूध जो पीया था! अगर वह न होती तो आरिफ़-अका कब के दूसरा विवाह कर चुके होते। लेकिन उसी के कारण आरिफ़-

अका पल भर को भी सारागुल को नहीं भुला पाते। वही उनके जीवन की एकमात्र दिलासा बन गयी थी। अब उन्होंने अपनी इसी प्यारी बिटिया के साथ, अपने मीठे व दुख भरे संस्मरणों के साथ जीवन बिता देने का फ़ैसला कर लिया था...

सड़क ताकते आँखें थिरा गयी थीं, सो मोटर रोककर आरिफ़-अका नाले के पास उतर गये। रात अन्धेरी थी, काले आसमान में सितारे टिमटिमा रहे थे। टीले पर ट्रैक्टर या किसी कम्बाइन की हेडलाइट दिखाई दे रही थी।

कुछ सुस्ताकर और ताज़ा हवा खाकर उन्हें थोड़ी सुध आयी। अचानक उन्हें ख़्याल आया, बड़ी विचित्र बात है, जाते समय तो मीठी, आनन्ददायी घटनाएँ याद आ रही थीं लेकिन लौटते समय असुखद विचारों ने उसे घेर रखा था। ऐसा क्यों?

आरिफ़-अका को ख़ुद अपनी हालत समझ में नहीं आ रही थी। ऐसा तो कभी नहीं हुआ था। यह सुनसान रात, सर्द सितारे, यह तनहाई उसे एकाएक काटती-सी क्यों लगने लगी थी। अपने अन्दर दृढ़ता लाते हुए वह मोटर पर जा बैठे और तेज़ी से मील-दर-मील तय करने लगे।

बेचारी आनाबीबी ऊँघती बैठी होगी। उसे तो अब आदत सी पड़ गयी थी, पिता चाहे सुबह तक क्यों न लौटें, वह चिराग़ जलाये इन्तज़ार करती रहती। मोटर की आवाज़ सुनकर बाहर निकल आयी बिटिया का बर्फ़-सा ठण्डा ललाट चूमते ही वह ख़ुशी से ओत-प्रोत हो उठता। नहीं, मोटर की गति और तेज़ कर देनी चाहिए।

इलाक़ाई केन्द्र रात की नीन्द में सोया पड़ा है। सिर्फ़ तेल-कारख़ाने का बिजलीघर ही एक लय से खटखट कर रहा है। पार्क की रंग-बिरंगी बत्तियाँ भी बुझ चुकी थीं। बाग़ के कोनों में समय को भूले-बिसराये बैठे युवक-युवतियों के जोड़े आख़िरी कह-कहा लगाकर चारों ओर सन्नाटा बिखेरते जा चुके थे।

खिड़की पर बत्ती नहीं थी। आनाबीबी यहीं सो रही है, यह जानते हुए भी उन्हें बड़ा क्षोभ व अकेलापन महसूस हुआ। गैरेज का दरवाज़ा खोलकर मोटर उन्होंने अन्दर रख दी। फिर रेंगकर अन्धेरा आँगन पार करके बिना कपड़े उतारे, हाथ-मुँह धोये बिना, वैसे ही धूल भरे दस्ताने पहने वह चबूतरे पर बैठ गये। सन्नाटा और अन्धेरा—सब कहीं बस यही

था। उन्हें ऐसा लग रहा था जैसे सन्नाटे व अन्धेरे के इस घेरे के सिवा दुनिया में उनका कुछ भी नहीं। दस्ताने उतारकर उन्होंने हाथों में कनपटियाँ थाम लीं। दिन भर मोटर चलाते रहने के कारण तन मन शिथिल लग रहा था। अचानक ही उन्हें दिल डूबता सा महसूस हुआ, साथ ही भूख भी लग आयी। तभी न जाने क्यों हाथों ने जेबों में सिगरेट की तलाश शुरू कर दी। जब जेबों में सिगरेट नहीं मिली, मकान के अन्दर जाकर अपनी बरसाती की तलाशी ली। सिगरेट का नामोनिशान तक नहीं था। वह हाँफ़ते हुए कुर्सी से टकरा गये तो कोई चीज़ गिर पड़ी। रसोई में जाकर मेज़ पर हाथ टिकाकर बैठे तो कोई चीज़ छू गयी। देखा, 'बेलामोर' सिगरेट है। आरिफ़-अका उदासी से मुस्करा उठे। उन्हें ख़ुद पर ग़ुस्सा भी आया। लेकिन बात क्या है, दम क्यों घुट रहा है? कुछ देर बैठकर ख़ुद को सम्भालते रहे। रसोई में स्वादिष्ट भोजन की ख़ुशबू फैली थी। बरामदे की बत्ती जला दी। बर्त्तन खनक पड़ने से आनाबीबी शायद जाग गयी थी।

"अब्बा, अब ख़ुद ही शावला* गरम खाइये," वह नीन्द से बोझिल आवाज़ में बोली।

आरिफ़-अका ने सिगरेट फिर डिब्बे में वापस रख दी–पीने की इच्छा न हुई। एकाएक उन्हें याद आया, बूट साफ़ किये बिना रसोई में आ घुसे थे। सो, बाहर निकले। कपड़ों से धूल झाड़ी, हाथ-मुँह धोया।

कुछ देर तक सोयी आनाबीबी को देखते रहे। वेदना पर काबू पाने की कोशिश करते रसोई में आ गये। खाना प्याले में निकाला।

न जाने क्यों अचानक फिर भूख ग़ायब हो गयी। क्षोभ की भावना दुबारा घनीभूत होने लगी। नीन्द भी कोसों दूर थी। उन्हें मालूम था, अब बिस्तरे पर लेटने के बाद रात करवटें बदलते बीतेगी। एकाएक सौ ग्राम कुछ पीने की इच्छा हो आयी। लेकिन घर में शराब कहाँ से? यहाँ तो कभी अच्छी-ख़ासी पार्टी भी नहीं हुई। बस दिन भर बच्चे धमाचौकड़ी मचाते रहते हैं। लेकिन यह भी कोई ज़िन्दगी है...

इसी उधेड़बुन में आरिफ़-अका बाहर निकल आये। दूकान कुछ ही दूरी पर थी। उसकी सीढ़ियों पर ही चाय के डिब्बों का चबूतरा बनाकर

---

* शावला – लपसी।

लंगड़ा मुस्तफ़ा बैठा रहता था। रात में और कोई चाहे मिले या नहीं, मुस्तफ़ा ज़रूर वहीं मिलेगा। सर्दी हो या गर्मी – अपनी गोली रहित बन्दूक लिये वह वहीं ऊँघता बैठा रहता।

"अस्सलाम अलेकुम, बाबा!"

"अरे, वालेयकुम अस्सलाम, भई!"

"बोतल मिल सकती है?" आरिफ़-अका ने पूछा।

"हां?" रात को लंगड़े मुस्तफ़ा से बहुत लोगों को काम पड़ता था लेकिन इतना वरिष्ठ अधिकारी पहली बार अनुरोध कर रहा था। वह हक्का-बक्का रह गया था। "बड़े दिलचस्प आदमी हैं, हमारे नये सेक्रेटरी," वह मन ही मन में बोला। फिर लंगड़ाते हुए डिब्बों के बीच कुछ उलट-पलट करके कहा, "मिलेगी, भई, मिलेगी।"

लीटर की चौथाई उन्होंने साथ-साथ पी डाली। मुस्तफ़ा पूरी तरह ख़ुश था। आरिफ़-अका घर न जाकर जिधर पैर ले चले, चल पड़े।

क्षितिज पर लाली छाने लगी थी। सड़क पर इस समय कोई भी नहीं था और उन्हें ख़ुद नहीं मालूम था, वे कहाँ जा रहे हैं। थोड़ी पी तो ली थी लेकिन मुँह का स्वाद बेमज़ा हो गया था। मन को कोई ख़ुशी हासिल नहीं हुई थी। पहरेदार से माँगकर पी थी। यह ख़याल आने पर और भी चिड़चिड़ापन महसूस हो रहे थे।

यूँ तो वह अपनी हालत समझ रहे थे लेकिन इस चिड़चिड़ेपन को क्या नाम दें, वह नहीं जानते थे। दूसरे चाहे इसे जो भी कहें, उन्हें ख़ुद समझ में नहीं आ रहा था। लेकिन मन परेशान करनेवाले इस ख़्याल को दूर कर देना चाहिए।

सुबह हो चुकी थी। बड़ी प्यारी, ठण्डी-ठण्डी हवाओंवाली सुबह। अभी पार्क में सन्नाटा था। सिर्फ़ फ़ुटपाथों पर बाल्टी से पानी छिड़कने की आवाज़ आ रही थी।

लेकिन आरिफ़-अका का दिल यहाँ भी नहीं लग रहा था। पार्क में बस बबूल ही बबूल के पेड़ हैं – शिरा रोग के घर। इन सिंचाईवाले इलाक़ों में तो साल भर तक रहनेवाले सुन्दर-सुन्दर पेड़ भी लगाये जा सकते थे। आकर्षणरहित बबूल तो लाचारीवश निर्जल स्तेपियों में लगाये जाते हैं। फ़ुटपाथ की दोनों ओर सप्तवर्षीय योजनाओं के बारे में पिटे-पिटाये

चित्र आदि लगे हैं। इनके कारण गुलाब के पौधे छुप-से गये थे। भला यह भी कोई बात हुई!

आहिस्ता-आहिस्ता चलते आरिफ़-अका हौज़ के पास जा पहुँचे। हौज़ के आस-पास के पेड़ों पर नारे लिखे लाल कपड़े और इश्तहार टंगे थे। पेड़ के नीचे हरे रंग की बेंच पर बेल बूटेदार टोपी पहने एक चेचकरू आदमी बैठा था। वह इलाक़ाई समाचारपत्र का सम्पादक नज़ारोव था। आरिफ़-अका ने उसे दूर से ही पहचान लिया था।

"कहिये, क्या प्रेरणा मिली?" निकट पहुँचकर आरिफ़-अका ने कहा।

"ओह, सलाम!" सुर्ख़ पड़ते हुए नज़ारोव ने अपनी नोटबुक छुपाने की कोशिश की। "बड़ी जल्दी निकल पड़े? काम पर?"

"और आप?"

"सवेरे उठकर मुझे थोड़ा टहलने की आदत है।"

"दफ़्तर यहीं कहीं पास में है क्या?"

"जी हाँ, वह, वाटरवर्क्स के सामने। आइये; कुछ देर बैठिये ताज़ा हवा में।"

आरिफ़-अका बैठ गये। हौज़ के पानी में कोई पोस्टर तैर रहा था। शायद हवा के झोंकों से उखड़कर गिर पड़ा था। बाग़ के दूसरे कोने में चायख़ाना था। वहाँ से लकड़ी गिराने और गाड़ीवान व चायवाले की बातचीत की आवाज़ साफ़ सुनाई दे रही थी।

"क्या हमारे समाचारपत्र से परिचय प्राप्त कर रहे हैं, आरिफ़-अका?" नज़ारोव ने पूछा। "कैसा लगा?"

"हाँ, परिचय ही प्राप्त कर रहा हूँ। आप लोग अभियानों के आयोजन में बड़े माहिर हो गये हैं," आरिफ़-अका बोले। "स्तेपी आबाद करने का अभियान, स्वास्थ्य रक्षा अभियान, पेड़-पौधे लगाने का अभियान..."

"आरिफ़-अका, आपका क्या ख़याल है? यह अच्छा है या बुरा?"

"मैं आपके काम का मूल्यांकन नहीं करूँगा, भाई। लेकिन जीवन को ज़रूरत से ज़्यादा औपचारिक बना रहे हैं," और यह कहते-कहते आरिफ़-अका सोच में डूब गये। उन्होंने समझ लिया, वह एक ऐसी बहस में

फँस रहे थे, जिसके बारे में उन्हें भी स्पष्ट रूप से कुछ नहीं मालूम था। फिर भी अपनी बात जारी रखते हुए वह बोले, "लीजिए, यही सामने-वाला नारा पढ़िये – 'पूर्ण मशीनीकरण को व्यापक रूप से अमली जामा पहनायें!' अच्छा, 'व्यापक रूप से अमली जामा पहनायें,' इसका क्या मतलब हुआ?"

"समाचारपत्रों में ऐसा लिखा जाता है, यह स्वीकृत है..."

"यह तो मुझे भी मालूम है। पूर्ण मशीनीकरण भी बड़ी अच्छी चीज़ है। लेकिन यदि आप मुझसे कहें तो भला मैं कैसे 'अमली जामा' पहना सकता हूँ? हमें क्या करना चाहिए? ठोस रूप से?"

नज़ारोव ने कन्धे उचका दिये। आरिफ़-अका ने अपनी बात जारी रखी।

"फिर यहाँ, पार्क में जहाँ लोग आराम करने, घूमने-टहलने आते हैं, इस नारे पर कोई गम्भीरता से कैसे ध्यान दे पायेगा। मान लो, प्रियतमा के साथ घूमने आया आदमी अगर इसपर ध्यान दे तो जो कुछ वह अपनी प्रिया से कहना चाहता था, सब भूल जायेगा। ठीक है न। फिर तो इसका अर्थ यही निकला, गम्भीरता से ध्यान देने की कोई ज़रूरत नहीं। बस सजावट है..."

इस बात पर अपनी असहमति प्रकट करते हुए नज़ारोव यूँ मुस्कराया मानो कह रहा हो, ऐसे मज़ाक छोड़िये।

"लेकिन आख़िर नहीं क्यों, सजावट ही तो है। अब सब यही करने लगे हैं। आप भी अपने समाचारपत्र में लिखते हैं: 'इलाक़ाई क्लब का अग्रभाग पोस्टरों से सजाया गया था।' क्यों ठीक है न?"

"जी हाँ, रैली से पहले..."

"तो फिर सजावट ही है। इसी लिए नारे व अपीलें अपनी सार्थकता खो रही हैं। तभी तो हमने व्यापक रूप से 'अमली जामा पहनाने' की बात पर ध्यान देना छोड़ दिया है। यह सब ख़ुद हम ही लोगों के कारण हो रहा है। आपको याद है, लड़ाई के समय का पोस्टर 'बदला लो!' याद है?"

"हाँ, हाँ, याद है। उसपर माँ की तसवीर बनी थी..."

"हाँ, ठीक। माँ की तसवीर। वतन की ओर से वह आपकी आँखों

में झाँककर आपसे सम्बोधन करके, आपसे जवाब की प्रतीक्षा करती, आप पर गहरा असर डालती थी।"

"हाँ..."

"जिस जगह वह पोस्टर लगाया गया था, क्या आप कह सकते थे, वह जगह पोस्टरों से सज्जित की गयी थी?"

"नहीं, आरिफ़-अका।"

"शाबाश!"

वे चुप हो गये। नज़ारोव ने सामने लटकते दर्जनों पोस्टरों व विज्ञापन चित्रों पर बारी-बारी से नज़र डाली। वर्षों से गर्मियों में वह इस बाग़ में टहलता रहा था लेकिन कभी ध्यान से इन पोस्टरों को उसने नहीं पढ़ा था।

"देखिये, सामने एक और लाल पोस्टर है: 'सड़कों की सफ़ाई के लिए संघर्ष बढ़ा दे!' 'संघर्ष!' महान, पुनीत, वर्गीय, क्रान्तिकारी शब्द। हर क़दम पर 'संघर्ष', 'जय अभियान'... इन श्रद्धेय शब्दों का महत्व कम होता जा रहा है। उदाहरण के लिए, इसी बात को लीजिए। हम इस समय स्वच्छ हवा में बैठे हैं। आक्सीजन के बिना नहीं रहा जा सकता। पर हम हर पल 'आक्सीजन ज़िन्दाबाद!' कहकर तो नहीं चिल्लाते। बस हम स्वाभाविक रूप से साँस लेते रहते हैं।"

"आप ठीक कहते हैं। लेकिन आख़िर करना क्या चाहिए?"

"भाई, यह तो मुझे नहीं मालूम!" आरिफ़-अका दृढ़तापूर्वक बोले। लेकिन क्षण भर बाद ही अपनी बात आगे बढ़ा दी: "मुझे लगता है, सबसे पहले हमें ही सच्चा होना चाहिए। बिना किसी औपचारिकता के आपको सहज स्थिति में रहना चाहिए। दूसरी बात, समाचारपत्रों को सामान्य, स्वाभाविक मानवता के बारे में लिखना चाहिए। अभियानों, औपचारिकताओं तथा बिना किसी कपटाचरण के मानवता के बारे में..."

नज़ारोव बड़े ध्यान से उनके मुँह की ओर देखता सुन रहा था।

"और?"

"और? क्या आप सोचते हैं, मैं आपको निर्देश दूंगा?" सम्पादक पर नज़र डालकर आरिफ़-अका हंस पड़े। "आप याद रखिये, मैं आपको कभी निर्देश नहीं दूंगा। और? तो और मैं कुछ नहीं जानता। आप ख़ुद सोचिये। फिर मुझे भी अपने विचार बताइये जिस तरह मैंने आपको बताया..."

घड़ी की ओर देखते हुए आरिफ़-अका ने विदा लेने के लिए सम्पादक की ओर हाथ बढ़ा दिया। नज़ारोव मुस्करा रहा था।

"आप मुस्करा रहे हैं ?"

"आप भी अजीब सेक्रेटरी हैं, आरिफ़-अका..." नज़ारोव ने हँसते हुए कहा।

"सेक्रेटरी... सेक्रेटरी ने तो अभी तक काम ही नहीं शुरू किया है। कुछ समझ में नहीं आता, शुरू कहाँ से करूँ," आरिफ़-अका जाते-जाते बोले। अब उनके क़दमों में पहले से अधिक दृढ़ता आ गयी थी। मन का विक्षोभ और चिड़चिड़ापन स्पष्ट विचारों का रूप धारण कर रहा था।

लेकिन उस दिन और उसके बादवाले दिन भी वह अपने विचारों का सूत्र नहीं ढूँढ़ पाये। विचारों के घटाटोप में कोई भी रोशनी की किरण न पाकर वह परेशान होते रहे। पार्टी समिति में भी उनके दिन यूँ ही गुज़रे: कोई मौलिक या ठोस काम की तलाश में असफल रहकर वह बस आम झंझटों या औपचारिक परिचयों में ही व्यस्त रहे। विभागों के निदेशकों को एक-एक करके बुलाकर उनसे मुलाक़ात की। आगामी ब्यूरो में विचारार्थ मुद्दों की जानकारी हासिल करके सभी आर्थिक मामलों को इलाक़ाई कार्यकारिणी के अध्यक्षमण्डल को प्रेषित कर दिया। कृषि मामले से सम्बन्धित विभाग में गये तो वहाँ कोई छोटी बैठक चल रही थी। वह बैठक में आख़िर तक बैठे रहे लेकिन कुछ बोले नहीं। बहुत से सिंचाई जल-नियंत्रण अधिकारियों व सामूहिक फ़ार्म के अध्यक्षों से परिचय प्राप्त किया।

शाम को जब अपने दिन भर के काम पर विचार किया तो पाया, वास्तव में कोई भी व्यावहारिक कार्य नहीं हो पाया था। कोई बात उन्हें परेशान कर रही थी, काम में बाधा डाल रही थी। लोगों से बातचीत करते समय भी छोटी-छोटी बातों पर अड़ियलपन दिखाकर अपनी परेशानी और बढ़ा ली। रेलवे के स्टेशन मास्टर से माल की आवाजाही पर बात न करके किसी और ही बहस में फँस गये।

"आपने समस्त जनता के सामने बड़े-बड़े अक्षरों में स्टेशन पर लिखाकर टाँग दिया है: 'सोवियतों के सदस्यों का कक्ष' मुझे इसका कारण तो ज़रा समझाइये।"

स्टेशन मास्टर ने इस पर कभी कोई सोच-विचार किया ही नहीं था। वह बेचारा क्या समझाता?

"जनता का प्रतिनिधि, सोवियत का सदस्य अगर बाक़ी लोगों के साथ हॉल में बैठकर रेलगाड़ी की प्रतीक्षा करेगा तो क्या उसे नज़र लग जायेगी? या वह टिकट नहीं ले सकेगा? क्या जनता और सोवयत में जनता के प्रतिनिधि दो चीज़ें हैं? या उन्हें जनता से अलग-थलग रहना चाहिए? आख़िर उन्हें चुना किसने है?"

"सब जगह ऐसा ही होता है, कॉमरेड सचिव..."

"जगह-जगह के आदमी अलग-अलग होते हैं, भाई। यहाँ हमको और आपको सोचना है। जहाँ तक आप मेरे सवाल का जवाब नहीं दे पाये, मैं भी आपको नहीं दे सकूँगा। अच्छा तो अब जाइये और सोचिये। ख़ुदा हाफ़िज़!"

कोमल स्वभाववाला वह नौजवान जब चला गया, आरिफ़-अका फिर ख़ुद को भला-बुरा कहने लगे। कैसी वाहियात, बेकार बातें की उन्होंने! अगर ख़ुद जवाब नहीं दे सकते तो उससे पूछने की क्या ज़रूरत थी? और कहा क्या? "जाइये, सोचिये!" वह भी ऐसे आदमी से जिससे पहली बार मुलाक़ात हुई थी। वाह क्या आदमी हैं! क्या सोचने का तरीक़ा है! क्या स्वभाव है। कहीं मन की परेशानियों या मन के दर्द के कारण तो ऐसा नहीं? या स्वभाव ही बेढब है!..

हम सब ऐसे हैं। आदमी को आदमी नहीं, पहले उसे निर्वाहक मान लेते हैं। हो सकता है, उसके मन में आप से भी ज़्यादा विकट सवाल या आप से भी ज़्यादा सुन्दर विचार हों। लेकिन इस बारे में उससे कौन पूछेगा? वह ख़ुद? नहीं! वह तो इलाक़ाई पार्टी समिति के सचिव हैं! उन्हें तो सिर्फ़ इतना ही पूछना है, "हुक्म बजाया?" हाँ, तो ठीक है, नहीं तो "जाइये, सोचिये!"

लेकिन क्या यह ज़रूरी है, कोई उनके विचारों, बाल-बच्चों या मिज़ाज के बारे में पूछे ही? क्या वह ख़ुद आकर बेतकल्लुफ़ी से नहीं बता सकता? क्या? इलाक़ाई समिति में? हाँ, हाँ, क्यों नहीं! क्या लोगों के बीच, आम जनता और नेताओं के बीच, जनसाधारण और इलाक़ाई समिति व सरकारी संस्थाओं के बीच ऐसा वातावरण नहीं पैदा किया जा सकता? काश, ऐसा वातावरण पैदा हो पाता कि आदमी घर में जो कुछ सोचता है, जो विचार उसे परेशान कर रहे होते हैं, वह उन्हें बैठकों में या इलाक़ाई अथवा प्रान्तीय समितियों में भी बता दे...

प्रान्तीय समिति में ?

और आरिफ़-अका की आँखों के सामने मरीया आ गयी। उसे महसूस हुआ, तीन-चार दिनों से उसे जो कमी लग रही थी, शायद उसका पता चल गया था। मन थोड़ा प्रसन्न हो उठा। कल ही मरीया से मिलूँगा।

रात भर आरिफ़-अका यही सोचते रहे: "जाऊँगा, ज़रूर जाऊँगा। कहूँगा, काम की शुरुआत ही नहीं कर पा रहा हूँ। कोई अनजान-सी चीज़ बाधा डाल रही है!" वह चीज़ कौन-सी है, बताना मुश्किल है।

आरिफ़-अका को तैयार फ़ार्मूले पसन्द नहीं थे। बातचीत या बहस से सामने आयी सचाई ज़्यादा ठोस होती है। इसके लिए किसी से बातचीत ज़रूरी थी। मरीया ही ठीक रहेगी...

इसी बीच बरामदे में बैठे तैमूर व आनाबीबी की बहस ने उनका ध्यान आकृष्ट कर लिया। तैमूर के पास घुटने के बल बैठी आनाबीबी ने हथेली बढ़ाकर कहा: "वाह, वाह, छींटे पड़ गये – गरम-गरम। लाओ, अपनी हथेली लाओ!"

तैमूर बड़ा गम्भीर लड़का है, कम बोलता है। दसवीं कक्षा का छात्र है, पढ़ने में सबसे आगे। अपनी बहन की तरह हमेशा आनाबीबी का ख़्याल रखता। देखने में ख़ूबसूरत और दिमाग़ से तेज़। डील-डौल में भी किसी से कम नहीं। बाप तेल कारख़ाने का डाइरेक्टर है। थोड़ा दार्शनिक-सा है।

आरिफ़-अका गुपचुप अपनी बेटी से उसकी दोस्ती पर नज़र रखते हैं लेकिन उनकी नज़र प्यार भरी होती है।

रात के ग्यारह बज चुके हैं। गीली धूल और घास की भीनी-भीनी ख़ु... खुली खिड़कियों से आकर पूरे मकान को भर रही है। छत पर बैठे फ़ाख़्तों के जब-तब गूटरगूँ करने से उनकी बातचीत में बाधा पड़ जाती है। तैमूर की दृष्टि फुटपाथ के कंकड़-पत्थर पर टिकी है:

"देखती हो? कुछ पत्थर वर्षा की बूँदों से बचे हैं," वह बड़े प्रभावशाली ढंग से बोला। "क्या कोई कह सकता है, अगली बूँद किस पत्थर पर पड़ेगी? हो सकता है, कोई पत्थर अन्त तक यूँ ही सूखा रह जाये। लोग ऐसी बातों को चमत्कार कहते हैं लेकिन वास्तव में यह संयोगों से बना एक नियम है। लाखों संयोगों से नियम पैदा होते हैं। अच्छा, बताओ तो वर्षा क्या है?"

"छोड़ो भी, हमें अभी नहीं पढ़ाया गया है।"

"पगली! यह स्कूल में बतायी जानेवाली बात नहीं। स्कूल में तो अभी हमें भी नहीं बताया गया है।"

"हँह! संयोग! नियम! ज़रा बारिश की भीनी-भीनी ख़ुशबू लेकर तो देखो। लो, मेरी हथेली तो सूँघो!"

हालाँकि बच्चे आरिफ़-अका को कमरे से नहीं दिखाई दे रहे, वे जानते हैं, दोनों एक-दूसरे के क़रीब आहिस्ता-आहिस्ता पहुँच कर बैठ जाते हैं और फिर बातें शुरू कर देते हैं। उनकी अधूरी, असंगत बातें उन्हें सुनने में बड़ी अच्छी लगती थीं। उन्हें यहाँ बैठे-बैठे यह भी मालूम है कि आनाबीबी की हथेली से कच्चे अखरोट की कड़वी बू आ रही होगी। आनाबीबी बड़ी भावुक लड़की है। सौन्दर्य का आनन्द लेना वह जानती है। तैमूर थोथा विचारक है। अगर उसे कोई फूल मिल जाये तो वह उसे देखने या सूँघने की जगह सेण्टीमीटर से नापना शुरू कर देगा। शायद इसी कारण वे एक-दूसरे के लिए ज़रूरी व पूरक थे। तभी तो आरिफ़-अका मुस्कराकर बोल उठते हैं: "दो आधे—एक पूरा!"

यह मुस्कराहट उनके मन के बोझ, कष्टमय विचारों को दूर कर देती है। अब उन्हें तैमूर की विवेकपूर्ण बातें और आनाबीबी की हँसी दूर से सुनाई देती महसूस होती है। बारिश की आवाज़ व कबूतरों के गूटरगूँ को सुनते-सुनते वह सो जाते हैं...

यह मरीया वसील्येवना का कमरा है—कपास की विभिन्न क़िस्मों के गुच्छों, उनके पैदावार से सम्बन्धित रेखाचित्रों व आर्थिक तालिकाओं से सजा। जी हाँ, "सजा" हुआ! हम ऐसा कहने को बाध्य हैं क्योंकि ज़रा आप ही सोचिये, इन चीज़ों की यहाँ क्या ज़रूरत है? प्रान्तीय सेक्रेटरी से मिलने आनेवाले इन जटिल आँकड़ो का क़तई अध्ययन नहीं करते। आरिफ़-अका आये थे मन की सीधी-सादी, कुछ सहृदय बातें कहने-सुनने को लेकिन दीवार पर नज़र पड़ते ही सब कुछ भूल गये। ऐसी जगहों पर आदमी सहज रूप से संयमित हो जाता है, यहाँ तक कि उसकी आवाज़ में भी औपचारिकता आ जाती है।

मगर आरिफ़-अका के सामने बचपन से जानी-पहचानी, आकर्षक स्वरूपवाली महिला बैठी है जिसके चेहरे पर अभी भी शोख़ी की झलक खेलती रहती है। नये इलाक़ाई सेक्रेटरी के आगमन से प्रसन्न हो मरीया वसील्ये-

वना कुर्सी से उठ खड़ी हुइ। हालाँकि वह मँझोली क़द की थीं लेकिन अधेड़ उम्र वै मोटी होने के कारण नाटी लग रही थीं। आरिफ़-अका ने मर्दाने ढंग से बढ़ाये उसके हाथों को अपने हाथों में लेकर दबा दिया फिर वह मुलाक़ातियोंवाली कुर्सी पर बैठ गये। मरीया वसील्येवना एक साथ दो फ़ोनों पर बात कर रही थीं। मेज़वाले कैलेण्डर के पृष्ठ पर वह बार बार कुछ लिख व हटा रही थीं। फिर इस तरह ज़ोरदार आवाज़ के साथ टेलीफ़ोन का रिसीवर रख दिया मानो कहना चाहती हों, "देखते हो, सुबह से कितना काम रहता है!"

"हाँ तो कहिये, आपकी सेवा में उपस्थित हूँ। क्या काम है?"

"काम क्या, बस यूँ ही बातचीत करने चला आया।"

भौंहें चढ़ाकर अचम्भे व शोख़ से उनपर नज़र डालते हुए मरीया वसील्येवना बोल उठी:

"यूँ ही! बेकार, आँ?"

"हाँ," आरिफ़-अका सहज स्वर में बोले।

एकाएक मरीया वसील्येवना क़हक़हा लगाकर हँस पड़ी। देखने में वह ख़ूबसूरत न थी बल्कि ज्यादा सही कहा जाये तो उसके चेहरे पर हमेशा ग़ुस्से का भाव छाया रहता था लेकिन जब वह हँसती थीं, काफ़ी आकर्षक लगने लगती थी। आरिफ़-अका उसकी हँसी का कारण तो नहीं समझ पाये थे लेकिन देखा-देखी हँस पड़े।

"ख़ूब आरिफ़जान, ख़ूब! बातचीत करने चले आये! क्या चाहते हो? चायख़ाने की ओर जाते-जाते कहीं रास्ता भूलकर तो नहीं चले आये?" और मरीया वसील्येवना दुबारा ठहाका लगाकर हँस पड़ी। लेकिन आरिफ़-अका के तेवर बदलते देख, उसकी हँसी थम गयी।

"मरियम, तुम्हारी शोख़ हँसी बड़ी प्यारी लगती है लेकिन दिन भर," आरिफ़-अका ने दीवारों पर नज़र दौड़ायी, "ऐसे घर में बैठकर तो आदमी सूखकर काँटा ही बन जाये।"

मरीया वसील्येवना ने इसे अनुचित फटकार मान लिया? उसे कुछ बुरा भी लगा।

"अच्छा, छोड़ो इन बातों को। काम के बारे में बताओ।"

"काम शुरू नहीं कर पा रहा हूँ। कोई चीज़ बाधा डाल रही है।"

"क्या?"

"अगर जानता तो तुम्हारे पास क्यों आता?"

"अच्छा, यह बात है... तुम आये, बड़ी ख़ुशी की बात है। लेकिन सचिव महोदय, अपने विचारों की गुत्थियाँ सुलझाकर, सुझाव वग़ैरह तैयार करके क्यों नहीं आये?"

"मैं अपने विचार बताने नहीं, अपना हाल-चाल सुनाने आया हूँ। सोचा, थोड़ी बातें हो जायेंगी..."

"कोई छोटे-से बच्चे हो क्या? मालूम है न, यह प्रान्तीय समिति है!"

"आँ-हाँ... यही सही है..." मुस्कराकर आराम से कुर्सी पर बैठते हुए आरिफ़-अका बोले—"देखो न, थोड़ी-सी मुलाक़ात ने तो पक्का सुझाव भी उत्पन्न कर दिया: आदमी अपने मन की बातें बताने भी तो प्रान्तीय समिति में आ सकता है।"

मरीया वसील्येवना भी यह बात समझती है: बेकार आदमी नहीं है और उत्तरदायी आदमी के दुख-दर्द उसकी भावनाओं से जुड़े होते हैं। लेकिन शायद आरिफ़-अका की बातें उसे प्रान्तीय समिति की आलोचना या फटकार-सी लगीं। इसी कारण उसके चेहरे पर असन्तोष के भाव आ गये थे।

"हाँ-हाँ, बताओ, मैंने कोई आपत्ति थोड़े ही की है? बताओ, तुम्हारी क्या चिन्ताएँ हैं, क्या परेशानियाँ हैं? मैं क्या सेवा कर सकती हूँ?"

"अपनी 'सेवा' छोड़ो..." आरिफ़-अका ललाट पर हाथ फेरते बोले। वह समझ गये थे, मरीया खुलकर बात नहीं करना चाहती। इसलिए विषय बदलकर कहा: "शिविलगान गया था..."

"हमें मालूम है..."

"पहाड़ी इलाक़े को ख़त्म करके आपने ग़लत किया।"

"फिर वही फटकार," मरीया वसील्येवना ने मन में सोचा। लेकिन प्रत्यक्ष में बोली, "इस बारे में तुम तो पहले से ही जानते थे।"

"जानता तो था लेकिन किसी इलाक़े को भंग करने का कैसा दृश्य होता है, इससे परिचित न था।"

"कैसा होता है?"

"मैं प्रशासनिक दृष्टि से बात नहीं कर रहा हूँ। मुझे लगा, उसका नामोनिशान तक मिटा डालने का फ़ैसला कर लिया गया है।"

"ऐसी तो कोई बात नहीं। सिर्फ़ तुम्हीं को ऐसा लगा होगा और यह स्वाभाविक भी है..."

"बात मेरी नहीं। मैं कह रहा हूँ, चश्मों में पानी नहीं है, बाग़ सूख गये हैं। अंगूर के खेत रोग-ग्रस्त हो गये हैं। गाँव सुनसान, खिड़कियों पर लकड़ियाँ ठोंक दी गयी हैं, चमगादड़ों ने मकानों में बसेरा बना लिया है, आँगनों में गुलाब की जगह बदबूदार नागदौने उग रहे हैं। सच पूछो तो उसे क़ब्रिस्तान बना दिया गया है। मार्ग नहीं, पुल टूटे पड़े हैं... शिविलग़ान हमारे देश के सर्वाधिक रमणीय स्थानों में एक था। हज़ारों लोग वहाँ रहते थे... उनकी जन्मभूमि का अनादर किया गया। यह गुनाह है... लेकिन जिस किसी आदमी के यहाँ कुछ है, ऐसा नहीं करेगा!" आरिफ़-अका ने अपने सीने के थपथपाकर कहा।

"लेकिन तुम आरोप किस पर लगा रहे हो, आरिफ़? तुम्हारी निजी भावनाओं को मैं समझती हूँ लेकिन यह प्रान्तीय समिति है..."

"तो अब मैं तुम्हीं पर आरोप लगा रहा हूँ। यहाँ मेरी निजी भावनाओं का कोई सवाल नहीं। बात इनसानी जज़बात की, उसके सौन्दर्य-बोध की, जन्मभूमि के प्रति उसके प्रेम की चल रही है..."

"नहीं, आरिफ़, नहीं। यह तुम्हारी अपनी भावुकताएँ हैं। मैं समझती हूँ, अतीत की यादों ने तुम्हें बड़ा कष्ट पहुँचाया है। लेकिन प्रान्तीय समिति के काम से इसका कोई तालमेल नहीं..."

"ठीक है, मैं तुम्हारी ही बात मान लेता हूँ: यह मेरी निजी भावनाएँ ही हैं। लेकन मैं इन्हें कैसे गटक जाऊँ। इनके बिना मेरे अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। मैं अपनी भावनाएँ कहाँ और किसे बताऊँ..."

"ज़रा मेरी भी बात सुनो!" मरीया वसील्येवना ने क़लम से मेज़ यूँ खटखटायी मानो किसी सभा की कार्रवाई चला रही हो। "जिस इलाक़े के तुम इस समय सेक्रेटरी हो, पिछले सात साल से हमने वहाँ ख़ून-पसीना एक कर रखा है। उसके पूरे आर्थिक ढाँचे का नव-निर्माण किया है। बंजर ज़मीन को खेती योग्य बनाकर, वहाँ तक पानी पहुँचाया, नवजीवन दिया, वहाँ के लोगों का पुनर्वास कराया। वहाँ आज जो छह सरकारी फ़ार्म काम कर रहे हैं, उन्हें स्थापित करने में हमें छट्ठी का

दूध याद आ गया। इस साल हमने सरकारी फ़ार्मों के सामने ख़र्च लौटाने का लक्ष्य रखा है। शायद तुम्हें यह भी मालूम नहीं। फ़ार्मों की स्थिति अभी भी कठिन है। तुम वहाँ के नये इलाक़ाई सेक्रेटरी बने हो। स्तेपी के मेहनतकशों का जोशोख़रोश देखा तुमने? न तुम वहाँ गये, न कुछ देखा, सुना और चले आये प्रान्तीय समिति को दोषी ठहराने। पहली मुहब्बत के वीरान स्थानों की सैर करके आँसू बहाते भटक रहे हो। वाह, वाह! प्राकृतिक दृश्य!"

आरिफ़-अका सिर झुकाये, मौन बैठे रहे।

"अफ़सोस, मेरा यह काम भी ग़लत रहा," माथे का पसीना पोंछते हुए उन्होंने सोचा। "सच है, कुछ देखे-जाने बिना दावा करना... मैं तो कभी ऐसा नहीं था..."

आवेश के कारण मरीया वसील्येवना हाँफ़ने लगी थीं। मेज़ के इर्द-गिर्द वह चहलक़दमी करते-करते बोल उठी: "कम्युनिस्ट..."

धीमे स्वर में बोले इस शब्द ने आरिफ़-अका को सतर्क कर दिया। "अब मेरे कम्युनिस्ट होनेवाली बात को न उठाओ," वह चिल्लाकर कहना चाहते थे लेकिन बड़ी कठिनाई से ख़ुद को रोक लिया।

मरीया वसील्येवना ने पास आकर कोमलता से उनके कन्धे पर हाथ रख दिया फिर तसल्ली देनेवाले अन्दाज़ में उनकी ओर देखा मानो कह रही हो: "मैं तो समझती हूँ..."

"तुम ठीक कहती हो, मरीया वसील्येवना। अब मैं सरकारी फ़ॉर्म ही जा रहा हूँ।"

"अलविदा," और मरीया वसील्येवना ने अपना हाथ बढ़ा दिया।

गलियारे में लोग इस तरह इधर-उधर चल रहे थे मानो उनपर काम का बहुत बड़ा बोझ हो। आरिफ़-अका सिर झुकाये बड़ी तेज़ी से वहाँ से निकल आये। बबूल की छाया में खड़ी मोटर में बैठकर उन्होंने अपना माथा ठोंका। "पहली मुहब्बत", "आँसू", "वाह-वाह!" अगर कहीं उसे मालूम होता कि परेशानी में मैंने चौकीदार से वोद्का लेकर पी, इलाक़ाई समिति के लोगों को बेकार की बातचीत से नाराज़ किया तब न जाने क्या कहती! यदि स्तेपी के बारे में उसकी बातें सच हैं तो मेरी परेशानियाँ निस्सन्देह हास्यास्पद हैं...

सब से नज़दीकी सरकारी फ़ार्म एक सौ तीस कीलोमीटर की दूरी

पर था। फिर भी, बिना कुछ सोचे-विचारे, सिर्फ़ पेट्रोल की जाँचकर वह रवाना हो गये।

धूल से तरबतर जब वह फ़ार्म पर पहुँचे शाम ढल आयी थी। थकान के मारे न वह कुछ देखना चाहते थे, न किसी से मिलना। बस उन्हें अपने पेट में चूहे कूदते महसूस हो रहे थे। फ़ार्म में उनका स्वागत मज़दूर समिति के अध्यक्ष उज़ईरोव ने किया। अध्यक्ष गन्दी-सी छज्जेदार टोपी पहने एक बूढ़ा आदमी था। कमर झुकी। जब उसे मालूम हुआ कि आगन्तुक इलाक़ाई पार्टी समिति का सेक्रेटरी है, उसने योजना की पूर्ति के बारे में बताना शुरू कर दिया: इस साल इतने टन देंगे, अगले साल इतने मुनाफ़े का लक्ष्य है और समाचार पत्र में देश को इससे होनेवाले बड़े फ़ायदे...

"कॉमरेड उज़ईरोव, भोजनालय कहाँ है?"

"आइये, होटल में खाना तैयार है, कॉमरेड सेक्रेटरी!"

आरिफ़-अका की जान में जान आयी लेकिन मेज़बान की बातें उसे अभी भी सुनाई नहीं दे रही थीं।

उज़ईरोव काफ़ी चापलूस और ख़िदमत करनेवाला साबित हुआ। ख़ुद अपने हाथ में पानी का जग लेकर उनका हाथ-मुँह धुलाया, उनके बैठने से पहले कुर्सी को अपने रूमाल से साफ़ किया—हालाँकि वे साफ़ थीं। खाना से पहले सौ ग्राम का संकेत किया...

आरिफ़-अका को यह सारी बातें अच्छी नहीं लग रही थीं लेकिन भूख इतनी ज़ोरदार लगी थी कि बिना कुछ बोले खाना खा लिया। फिर थकावट से भी हालत पतली हो रही थी, सो जल्दी ही सो गये।

सुबह में फ़ार्म की पार्टी समिति का सेक्रेटरी आ पहुँचा। यह उभरे माथेवाला, साँवला, मितभाषी और आडम्बरहीन नौजवान था। उसका नाम तोलागान था। आरिफ़-अका ने उसे अपने साथ-साथ सरकारी फ़ार्म की बस्ती का दौरा करने को कहा। वे पैदल ही चल पड़े। धूल भरी हवा के कारण दूरी पर कुछ भी दिखाई नहीं देता था।

"हवा अभी तक थमी नहीं।"

"अभी तो शुरू हुई है।"

"अफ़ग़ानी इसी को कहते हैं क्या?"

"जी हाँ।"

"कितनी देर चलेगी?"

"कम से कम तीन दिन, तीन रात।"

इसके बाद वे ख़ामोशी से एक के बाद दूसरा वर्स्ट तय करने लगे। सरकारी फ़ार्म की मुख्य सड़क थी। आस-पास आँगन, बाग़-बग़ीचा कुछ भी नहीं था। सब मकान एक जैसे थे—दो मंज़िले, दो छोटे-छोटे बरामदोंवाले, दो-दो परिवारों के लिए। कोई तीन क़दम की दूरी पर सण्डास। एक मकान, एक सण्डास—इसके अलावा कुछ भी नहीं, पौधा क्या, खूँट तक नहीं। मकानों की यह क़तार दूर तक फैली है और इनके बीच "अफ़गानी" बावलों की तरह चक्कर लगा रहा है।

"लोग अपना मकान तो पहचान लेते होंगे?"

"नहीं कैसे पहचानेंगे..." तोलागान ने गोल-मतोल-सा जवाब दिया। डेढ़ किलोमीटर रास्ता तय करने के बाद तोलागान रुक गया:

"आगे भी सब कुछ ऐसा ही हैं। क्या आगे चलेंगे?"

लेकिन वे आगे नहीं गये, लौट पड़े। इस बार हवा पीछे से उन्हें धकिया रही थी। आरिफ़-अका ने आँख-कान पोंछे—रूमाल एकदम काला हो गया। उन्होंने रूमाल जेब में रख लिया। तोलागान इलाक़ाई समिति के सेक्रेटरी से कुछ सुनने की आशा करता था। आख़िर पुराने सेक्रेटरी की तरह ग़ुस्से से कुछ न कुछ तो बोलेगा ही, "यहाँ रहते कैसे हैं? सात साल में क्या पेड़-पौधे नहीं लगाये जा सकते थे? यह हवा और हज़ारों सण्डास तो आदमी को तपेदिक का रोगी ही बना देंगे!"

लेकिन नये सेक्रेटरी इस सम्बन्ध में चुप ही रहे। इसकी जगह तोलागान से उन्होंने घरेलू सवाल शुरू कर दिये।

"बाल-बच्चे तो हैं?"

"हाँ, एक बेटी है," तोलागान थोड़ा सकुचाता बोला।

"वाह! मेरी भी एक बेटी है। आनाबीबी।"

"मेरी बेटी का नाम फ़िरूज़ा है।"

सेक्रेटरी के चेहरे की कोमलता व पितृभाव उसे बहुत अच्छे लगे। फिर तो कुछ साहस के साथ वह अपने बारे में सब कुछ बता गया। पिछले साल तोलागान को पार्टी समिति का सेक्रेटरी चुना गया था। उसके अपने ख़्याल से, उसका काम ठीक-ठाक नहीं चल पा रहा था। फ़ार्म बहुत बड़ा है, समस्याएँ बड़ी उलझी हुई हैं। अधिकाँश हल नहीं हो पा-

यी हैं... इस समय तोलागान बहुत व्यस्त है। कृषि अर्थव्यवस्था संस्थान के स्नातकोत्तर पत्नव्यवहार पाठ्यक्रम का छात्र है। परिवार नया है, बेटी पिछले तीन माह से बीमार है। काम में जी-जान से न जुट पाने का यह भी एक कारण है। आरिफ़-अका चुप-चाप सुनते रहे, उन्होंने न तो तसल्ली दी, न नसीहत। हाँ, उनके चेहरे पर विचार की मुद्रा और गहरी हो उठी।

दोपहर के बाद पूरी शाम वह पार्टी समिति के इन्तज़ार में बैठे रहे। विभागाध्यक्षों व वयोवृद्ध कम्युनिस्टों को बातचीत के लिए आमन्त्रित किया। तोलागान उनके बहुत रास आ गया था। हालाँकि नेतृत्व का काम वह भलीभाँति नहीं कर पा रहा था, लोगों की पहचान उसमें थी। वह हरेक परिवार, घर, उनके विचार की जानकारी रखता था। निजी काम और सरकारी काम में भेद नहीं करता था। अगले दिन सुबह से शाम तक वे हिसाब-किताब विभाग में देखभाल में जुटे रहे।

यहाँ आरिफ़-अका को तोलागान से बड़ी मदद मिली। सरकारी फ़ार्म की आर्थिक सम्भावनाओं की जानकारी उसे प्रधान मुनीम और अर्थशास्त्री से भी अधिक थी। उसकी प्रतिभा प्रखर थी, विश्लेषण करने में वह बड़ा तेज़ था। पुरानी-नयी दस्तावेजें और आँकड़े उसे कंठस्थ थे। आरिफ़-अका ने भाँप लिया, मुनीम और अर्थशास्त्री उसे एक महज़ प्रतिभाशाली छात्र, एक अक़्लमन्द नौजवान भर मानते थे। उनके मुताबिक़, उसे अपनी थीसिस याद होनी ही चाहिए। जब तोलागान काम की ख़ामियों का विश्लेषण करने लगता, वे नाक-भौंह सिकोड़ लेते और उनके चेहरों पर अभिभावकों जैसी मुस्कान छा जाती मानो कहना चाहते हो, "अरे, छोड़ो भी, काम रुका पड़ा है।" लेकिन अपने अनुभव से आरिफ़-अका ने जान लिया था, पैदावार व आमदनी की कमी, मज़दूरों की कठिन स्थिति हिसाब-किताब से सम्बद्ध थी। इसी कारण छह साल से सरकारी फ़ार्म अपने ऊपर किये ख़र्च की पूर्त्ति नहीं कर पा रहा था। यह बात समझ लेने के बाद तो आरिफ़-अका ने तोलागान को अपने पास से जाने ही नहीं दिया। चौथे दिन लू ख़त्म हुई लेकिन अभी भी साँस लेना कठिन था। कमरों में उमस थी। ऐसा लग रहा था मानो सब कहीं धूल ही धूल भरी हो।

नाश्ते के बाद आरिफ़-अका तोलागान के साथ बाहर सड़क पर निकल

आये। तीसरे मकान के खुले बरामदे में चादर की ओट डालकर परिवार के लोग खाना खा रहे थे। बच्चों के घेरे में बैठा वृद्ध उन्हें बड़ा आकर्षक लगा।

"हो न हो, यह शिविलग़ान का ही है," आरिफ़-अका ने मन में सोचा। शिविलग़ान के लोगों को वह यूँ ही बस शक्ल-सूरत, मुस्कराहट और चेहरा देखकर पहचान ले सकते थे।

"वालेयकुम अस्सलाम, आइये, आइये, चाय पीजिए," कहकर बूढ़े ने उनका स्वागत किया। यूँ तो वह आदमी उम्र में आरिफ़-अका से ज्यादा बड़ा नहीं था लेकिन बड़ी-बड़ी दाढ़ियों और सिर पर रूमाल बाँधने के कारण वयोवृद्ध लग रहा था। बरामदा छोटा था, सो, सीढ़ियों पर बैठकर ही आरिफ़-अका ने अपनी ओर बढ़ायी चाय की प्याली थाम ली।

"बड़ी छोटी जगह पर बैठ गये हैं?"

"हाँ, क्या कहूँ, इस लानती लू के कारण बच्चे तीन दिनों से घर में बन्द थे", वृद्ध ने कहा, "अरे, नान भी तो लीजिए।"

"क्या पहाड़ी इलाक़े से यहाँ आये थे?"

"हाँ, आपका अनुमान सही है। हम शिविलग़ान में रहते थे," यह कहते हुए वृद्ध ने नान के टुकड़े करके सामने रख दिये। "आइये, तोलागान बाय, आप भी बैठिये।"

"मुझे एक बात अजीब लग रही है," चाय फूँककर पीते हुए आरिफ़-अका बोले, "सरकारी फ़ार्म के अधिकांश लोग भूतपूर्व कोयकि इलाक़े के निवासी हैं। स्वच्छ पहाड़ी हवा में मज़े से पले-बढ़े लोग, उम्र भर बाग़बानी करके मीठे-मीठे फल पैदा करने में माहिर। हरे-भरे आँगन, अंगूर के खेत व चश्मों को छोड़कर आनेवाले लोग यहाँ की परिस्थितियाँ कैसे सहन कर पाते होंगे?"

वृद्ध ने चुपके से तोलागान पर दृष्टि डाली।

"यह हमारी इलाक़ाई समिति के नये सेक्रेटरी हैं, मंसूर आता। मन में जो कुछ है, सब बताइये," आदतन तोलागान ने सीधे-सादे लहजे में कहा।

"मन में जो है, वह यूँ भी दिखाई दे रहा है। परिस्थितियाँ तो आसान नहीं हैं लेकिन सरकार भी तो सोच-समझकर ही काम करती है।

सो, हम लोग यहाँ आये और पाँच साल से रह रहे हैं। बस, इतनी ही बात है।"

"यह हम जानते हैं। इन फ़ार्मों से सरकार व जनता, दोनों को बड़ा फ़ायदा होगा लेकिन सरकार एक-एक आदमी के मन की भावना को तो ध्यान में रख नहीं सकती है। जैसे आप ही लोगों का उदाहरण लें। क्या शिविलग़ान से यहाँ आकर आपको बेचैनी नहीं महसूस हुई?"

"हुई तो ज़रूर। बच्चे आदी हो रहे हैं, पर हम वृद्ध लोग... हमें तो उन हरे-भरे गाँवों की याद ज़रूर समाती है। क्या बतायें, कुछ लोग तो यहाँ से भाग ही लिये!"

"भाग खड़ा होना तो कोई मर्दानगी नहीं लेकिन उनकी स्थिति भी मैं समझता हूँ। वह बेचैनी सह नहीं सके।"

"हम पर आरोप लगा रहे हैं क्या?"

"नहीं, नहीं। ऐसी कोई बात नहीं लेकिन मुझे हैरानी है कि आप सब तो किसान हैं और सात साल में बाग़ तो क्या चार पौधे लगाकर अपने बरामदे को लू से भी नहीं बचा सके।"

ख़ुद पर क़ाबू पाते हुए मंसूर आता काफ़ी देर तक मौन रहकर प्यालों को साफ़ करते रहे। दस्तरख़ान से नान के टुकड़े चुनती उनकी अँगुलियाँ कुछ काँप रही थीं।

"मेरी सात पीढ़ियाँ बाग़बानी ही करती रही थीं। बाप-दादे का काम छोड़कर मेरे लिए यहाँ आना आसान न था। यह तो नश्तर लगाने जैसी बात थी। आपने बाग़, पौधों की बात की तो मैं आपको बता दूँ, मैंने बाल्टी से पानी पटा-पटाकर खिड़की के नीचे आड़ू के दो पेड़ लगाने की कोशिश की थी लेकिन सबने मेरी हँसी उड़ायी। यह काम यहाँ बेकार माना जाता है। पर किसान होने के नाते मैं बिना कोई ध्यान दिये यह काम करता रहता। काश, कोई छोटा-सा खेत होता, चारों ओर अहाता होता, नाली से पानी पहुँचाने की व्यवस्था होती तो क्या हम इस लानती लू पर क़ाबू नहीं पा लेते? लेकिन, भय्या, पेड़ लगाने से यहाँ इनका पेट नहीं भरता," और मंसूर आता ने दस्तरख़ान के पास शोर मचाते बच्चों की ओर इशारा किया। "शिविलग़ान में इनका पेट भरता था, यहाँ नहीं। यहाँ हमें वेतन कपास से मिलता है। काम करना चाहिए।"

"और रहना? रहना भी तो चाहिए," आरिफ़-अका धीमी आवाज़ में

बोले और चाय व बातचीत के लिए धन्यवाद कहकर उठ खड़े हुए। वे एक-दूसरे को अच्छी तरह समझ रहे थे।

सरकारी फ़ार्म के दौरे में आरिफ़-अका यहाँ के दर्जनों क़िस्म के लोगों से मिले। तोलागान सर्वत्र उनके साथ रहा। उसके ख़्याल से इतनी तरह-तरह की बातचीत के बाद आरिफ़-अका का दिमाग़ ज़रूर चकरा गया होगा लेकिन वे अपने विचारों को एक नया मोड़ देते जा रहे थे। उन्हें कोई नयी बात सूझती महसूस हुई।

ट्रैक्टर मरम्मत खाते में आरिफ़-अका से बिना किसी परिचय एक नौ-जवान ने ज़ोर-ज़ोर से बोलना शुरू कर दिया:

"अगर मैं नहीं चाहूँगा तो मुझे कौन मजबूर करेगा? बेकार की बात है। मैं ख़ुद अपनी इच्छा से काम कर रहा हूँ। सरकारी फ़ार्म ग़रीब है, इसलिए आमदनी ज़्यादा नहीं। फिर भी काम करता हूँ। क्यों? ज़रा सोचिये! क्या मैं अपना पेट भरने के लिए रोटी नहीं ढूँढ़ सकता हूँ?" और तेल से सना हाथ कपड़े में पोंछकर फेंकते हुए, वह उनके क़रीब चला आया। "क्या आप किसी समिति से सम्बद्ध हैं? आप भी लिखिये। पिछली बार भी काफ़ी कुछ बताया था मैंने लेकिन वह एक पत्रकार निकला और मेरी बातें उलटकर अख़बार में लिख दीं। आप भी लिखिये! पर एक बात बताइये: स्तेपी, लू, काम, फिर वहीं। हर दिन एक ही तरह! क्या ज़िन्दगी का यही अर्थ होता है? बाद में क्या होगा?"

आरिफ़-अका की जगह कुछ दूर टूटी चारपाई पर पैर रख बैठे, मख़मली टोपी पहने, सिगरेट पीते एक बाँके नौजवान ने मुस्कराकर जवाब दिया:

"होगा क्या? यही कुत्तोंवाली ज़िन्दगी रहेगी आगे भी!"

तोलागान ऐसी बातें रोज़ सुनता था और आरिफ़-अका ने घण्टों बात-चीत के बाद अपनी नोटबुक भर डाली।

"यह दूसरा बाँके छैला-सा कौन था?" उन्होंने पूछा।

"उसका नाम उबैदुल्लाजान है। क्लब का मुखिया है। रेकार्ड बजाकर सुनाना उसका काम है," तोलागान ने जवाब दिया।

छठे दिन ख़ुद डाइरेक्टर साहब आ पहुँचे।

"ज़ियाम ज़ियाख़ानोविच," आरिफ़-अका को उसका परिचय देकर वह उसकी आगवानी करने बाहर निकल आया।

आरिफ़-अका भी खिड़की के पास आ खड़े हुए। डाइरेक्टर का मकान सड़क के उस पार था। 'वोल्गा' कार के रुकते ही बाल-बच्चे निकल आये और पाँच-छह आदमी मिलकर कार से सामान उठाकर घर के अन्दर ले जाने लगे। सामान में मलाई से लेकर नान तक थे।

ज़ियाख़ानोव इलाक़ाई समिति का भूतपूर्व सेक्रेटरी था। जब उसे पद से बर्ख़ास्त किया गया, बैठक में उन्होंने उसे आख़िरी बार देखा था। वह उसके बारे में बहुत सारी बातें सुन चुके थे। सुनने में आया था कि वह ख़ुद शहर के मकान में रहता था और तीन-चार दिन में यहाँ आकर अपनी डाइरेक्टरी झाड़ जाता। शायद अभी भी वह उसी रंग-ढंग में था।

आधा घण्टे बाद ज़ियाख़ानोव होटल में आया। उसने आरिफ़-अका का अभिवादन किया और माफ़ी माँगी। यूँ तो उम्र में वह आरिफ़-अका से छोटा था लेकिन उसके चेहरे पर अनगिनत झुर्रियाँ पड़ गयी थीं। आंखें धँस गयी थीं, भौंहों का रंग उड़ा था, उसका गंजा सिर घास के बीच पड़े चमकते पीले टिन की तरह दिखाई देता था।

"हफ़्ते भर से हम यहाँ हैं," आरिफ़-अका ने हँसकर कहा, "न मलाई है, न नान। लगता है, आप ने खेतीबारी छोड़ दी है।"

"उसी का ग़म लिये तो एक इदारे से दूसरे में फिर रहे हैं," ज़ियाख़ानोव ने जवाब में बताया मानो व्यंग्य को समझा ही न हो। "कभी एक विभाग में कलपुर्जे मांगना पड़ता, दूसरे में रसायनिक खाद... तोलागान! ज़रा चाय लाओ!"

आरिफ़-अका ने हैरान होकर डाइरेक्टर पर दृष्टि डाली फिर दरवाज़ा खोलकर तोलागान को बुला लिया।

"चाय बाद में पीएँगे, यहाँ हमें आप की ज़रूरत है।"

तोलागान आकर बैठ गया।

"ज़ियाख़ानोव," आरिफ़-अका ने कहा, "आप ख़ुद पार्टी कार्यकर्ता रहे हैं... लेकिन लगता है, आप कभी... पार्टी कार्यकर्ता नहीं रहे। पार्टी समिति का सेक्रेटरी हालाँकि जवान है, वह हम दोनों से ज़्यादा ज्ञान रखता है।"

ज़ियाख़ानोव का मूड बिगड़ गया, उसके चेहरे की झुर्रियाँ मानो गहरी हो गयीं।

"इलाक़ाई पार्टी समिति के सेक्रेटरी हैं तो मुझे सिखा रहे हैं, ठीक

है, बताइये, मैं कान लगाये सुन रहा हूँ।" दोनों हाथ मेज़ पर रखकर वह बोला।

"आप अपने पद से क्यों हटाये गये, क्या ज़रा भी नहीं समझ पाये, ज़ियाख़ानोव?"

"समझा, क्यों नहीं? भावुक था, नरम था। यही कारण है।"

आरिफ़-अका उस के चेहरे को ताकते रहे मानो जानना चाहते हों, यह कैसा आदमी है। ज़ियाख़ानोव ने अपनी बात जारी रखी:

"ख़ूब सबक़ सिखाया गया मुझे, ख़ुद दोषी हूँ। भविष्य की शानदार इमारत का निर्माण कर रहे हैं, सदा के लिए बना रहे हैं उसे। पाँच-दस लाख रूबल तथा अतिरिक्त पाँच-छः सौ लोगों की दया नहीं करनी थी। भूख सहनी थी, जागते रहना था, बस जी-जान से काम करना था। क्योंकि यह इमारत सदियों के लिए बनायी जा रही है, पीढ़ियों के लिए बनायी जा रही है।"

"और भावी पीढ़ियाँ इस प्रकार की सख़्ती का मूल्यांकन करेंगी या नहीं?" आरिफ़-अका ने पूछा। "अपने आप को क्यों धोखा दे रहे हैं ज़ियाख़ानोव? आप को इसलिए अपने पद से नहीं हटाया गया था। इसके विपरीत आपकी सख़्ती सीमा से बाहर हो चुकी थी पर आप में आत्मीयता और सामान्य मानवीयता की कमी थी"

"अब आप आ गये हैं तो कीजिए मानवीयता!"

"बात यह है कि आप यहाँ आकर भी पुराने उसूलों का उपयोग कर रहे हैं। सरकारी फ़ार्म के मज़दूरों की ज़िन्दगी..."

"हम सरकारी नौकर हैं, कॉमरेड आचीलोव।"

"आप जनता की सेवा कर रहे हैं। जब तक लोग, मज़दूर, हरेक मेहनतकश को संतुष्टि नहीं मिलती, सरकार संतुष्ट न होगी।"

"सब से पहले सरकारी फ़ार्म को अपने ख़र्च की पूर्ति करनी है।"

"सात साल तो बीत चुके हैं, कब पूर्ति करेगा? और तब तक क्या होगा? क्या लोगों की ज़िन्दगी ऐसे ही चलती रहेगी?"

"क्या हुआ उनकी ज़िन्दगी को: अच्छे खासे मकान हैं। शायद किसी ने शिकायत की होगी। बंजर ज़मीन नहीं देखी उन्होंने। वहाँ के जवान झोंपड़ियों, तहख़ानों में रहते हैं। आदमी का अजीब स्वभाव होता है: राहत–आराम के आदी होते ही उसकी क़ीमत चूकने लगेगा।"

अब आरिफ़-अका ज़ियाख़ानोव को नहीं देख रहे थे। उनके ख़याल शायद कहीं दूर जा पहुँचे थे, शरीर थोड़ा पीछे हटाये और किसी की ओर न देखते हुए वह इस तरह बोले मानो ख़ुद से बातें कर रहे हों।

"आदमी सदियों से बेहतर जीवन के लिए संघर्ष करता आया है, मेहनत करता है, कठिनाइयाँ झेलता है। अगर आज वह कुछ बेहतर ढंग से रहने लगा है तो हम हैरान क्यों हों?" फिर ज़ियाख़ानोव की ओर देखकर कहा, "अच्छा, तो आपके इरादे क्या हैं, डाइरेक्टर साहब?"

"आप ही बताइए। कपास का मूल्य घटाएँगे, योजना कम कर देंगे अथवा लू को बन्द करा देंगे? अथवा सरकारी फ़ार्म के क्षेत्र से कोई ख़ज़ाना ढूँढ़ निकालेंगे?"

"यह सब सोचना पड़ेगा" आरिफ़-अका ने कहा।

मुस्कराते ज़ियाख़ानोव के तेवर फिर चढ़ गये थे।

"जहाँ तक ख़ज़ानों का सम्बन्ध है, एक तो आप के पास ही बैठा है जिससे आप चाय बनवाते हैं।"

ज़ियाख़ानोव ने तोलागान की ओर देखते हुए अपना गंजा सिर खुजलाया।

"आइये, अब हम एक काम करें। तोलागान, थोड़ा क़रीब आ जाओ," आरिफ़-अका ने काग़ज़-क़लम निकालकर कहा।

तीनों गोल मेज़ के गिर्द बैठ गए। सफ़ेद डॉगरी पहने एक रूसी महिला चाय ले आयी। धूप न आये, इसलिए उसने खिड़की का सफ़ेद पर्दा खींच दिया, दीवार घड़ी चला दी और निकल गयी। ऐसा लगा, कमरे में जोश आ गया है, दिमाग़ तेज़ी से काम करने लगे हैं, इन तीन तरह के लोगों में कोई निकटता पैदा हो गयी है। बाद में उज़ईरोव और प्रधान मुनीम भी आ पहुँचे।

"इलाक़ाई पार्टी समिति की एक कमी यह है," आरिफ़-अका ने अपनी बात शुरू की, "हम अर्थव्यवस्था के नेतृत्व सधे-बँधे ढंग से करते हैं। हमारे हाथों में आर्थिक मोहरा नहीं है। इलाक़ाई समिति को एक वैज्ञानिक-आर्थिक मोहरे की ज़रूरत है। समरक़न्द के एक सामूहिक फ़ार्म में मुझे एक बात मालूम हुई। सामूहिक फ़ार्म के अध्यक्ष मंडल को वैज्ञानिक सलाह देने के लिए एक आर्थिक समिति का गठन किया गया है। अध्यक्ष उसका मुखिया है। यही समिति सभी आर्थिक मामलों, योजना बनाने

ग्रौर हिसाब-किताब के मामलों को ग्रध्यक्षमंडल की सभाग्रों के लिए तैयार करती है, इस समिति ने हिसाब-किताब करनेवालों के लिए एक पाठ्यक्रम भी चलाया है। हरेक जोत की ग्रपनी कॉपी है जिसे हम लोग खेत के रोगों का इतिहास भी कह सकते हैं। वस्तुत: इस कॉपी में फ़ायदा-नुक़-सान, उसकी ग्रावश्यकताएँ – सब कुछ ग्राइने जैसा स्पष्ट है। यह खेती-बाड़ी का ग्रार्थिक विश्लेषण है। समिति के विशेष कमरों में लटके नक़्शों, तालिकाग्रों से हरेक साक्षर किसान यह देख सकता है कि किस काम में किस बात की कमी हुई – उर्वरक डालने में, काश्तकारी में यह कमी किस कारण हुई, यह भी जाना जा सकता है। यह नक़्शे सब के लिए हैं। उनमें रुचि रख-नेवाला हरेक किसान ग्रपने को समूचे सामूहिक फ़ार्म के काम के लिए उत्तरदायी, सारे फ़ार्म का मालिक महसूस करता है।

"पहले सामूहिक फ़ार्म के सदस्यों को यह नहीं मालूम हो पाता था, कहाँ क्षति हुई – उसकी ग्रामदनी कम क्यों हुई। "इससे मेरा क्या सरो-कार ?" बस वह यही कहकर रह जाता था। कहाँ किस ट्रैक्टर की मर-म्मत नहीं हुई ग्रौर उससे कितने हज़ार रूबल का नुक़सान हुग्रा – इससे उसका कोई मतलब नहीं था, उसे मालूम ही नहीं रहता था। ग्रब वह एक-एक बात जानता है, मांग भी करता है! इस पहलक़दमी का मा-नसिक तौर पर बड़ा गहरा ग्रसर है। ग्रादमी समष्टि में ग्रपनी स्थिति का ग्रनुभव करता है। वह ख़ुद को फ़ार्म का स्वामी समझने का गौरव मह-सूस करता है, सामूहिक फ़ार्म की सम्पत्ति के लिए उसमें उत्तरदायित्व की भावना पैदा होती है। उसे मालूम है, सामूहिक फ़ार्म की क्षति उस की क्षति है। पहले हम दीवारों पर वायदे ग्रौर काम के परिणामों के बारे में लिखा करते थे। ग्रब काम का विश्लेषण सबके सामने रखेंगे। यह ग्रार्थिक प्रेरणा के बारे में थोथे शब्द मात्र नहीं, ग्रार्थिक प्रेरणा देने का एक सबल उपाय भी है। ग्रार्थिक समिति के ग्रनेक या यूँ कहें, बहु-मुखी काम हैं। लेकिन मेरे विचार से इस समय सरकारी फ़ार्म में वही किया जाना चाहिए जो मैंने बताया। ग्राप लोगों का क्या ख़्याल है?"

पास बैठे लोगों ने एक-दूसरे पर नज़र डाली लेकिन कुछ बोले नहीं। तोलागान की ग्राँखें चमक रही थीं, उज़ईरोव काग़ज़ पर कोई डिज़ाइन बना रहा था, प्रधान मुनीम बन्द कमरे में एक खिड़की से दूसरी खिड़की की ग्रोर उड़नेवाले पक्षी की तरह इधर-उधर टहल रहा था। काफ़ी देर

चुप रहने के बाद सब एक साथ ही बोल उठे, सवालों की बौछार लग गई। समिति में कितने लोग हैं? वे कौन हैं? क्या यही काम कृषि का आर्थिक प्रबंध करनेवाला कार्यालय नहीं कर सकता? इस पहलक़दमी के बारे में कोई किताब है? अगर समरक़न्द जाकर देख आयें तो कैसा रहेगा?

इन प्रश्नों पर विचार-विमर्श के बाद आरिफ़-अका ने सुझाव रखा:

"समिति के संगठन का काम इलाक़ाई पार्टी समिति तोलागान को सौंपती है। वह पार्टी संस्था का सेक्रेटरी है, अर्थशास्त्री है, चुस्त और जवान है..."

अब तक चुप बैठा ज़ियाख़ानोव एकदम अपने स्थान से उठ तो खड़ा हुआ और उसने तोलागान पर ऐसी नज़र डाली मानो कह रहा हो: "तो आप लोग पहले ही साँठ-गाँठ कर चुके हैं।" वह बेचैन हो उठा मानो किसी गुप्त षड्यंत्र का उसे पता चल गया हो, "आप ने सामूहिक फ़ार्म के अनुभव बताये, साथी आचीलोव," उसने न जाने क्यों मेज़ पर के काग़ज़ इकट्ठा करते हुए कहा, "सरकारी फ़ार्म स्वयं सरकार के नियंत्रण में है।"

"बात नियंत्रण की नहीं, ज़ियाख़ानोव। यह आत्म विश्लेषण मात्र है। अनवरत विश्लेषण। समझ रहे हैं?" आरिफ़-अका ने उसे समझाया। वह ज़ियाख़ानोव के एकाएक घबरा उठने का कारण समझने की चेष्टा कर रहे थे: आख़िर वह पीला क्यों पड़ गया? क्या उसे तोलागान के कार्य-क्षेत्र के बढ़ने से डर है? या उसे समिति द्वारा अपने अधिकार छीन लिये जाने का भय है या फिर कुछ और?

आरिफ़-अका और चार दिनों तक अन्य सरकारी फ़ार्मों का दौरा करके, थके, धूप से संवलाये और दाढ़ी से ढँका चेहरा लिये जब घर लौटे, उनकी बेटी धूल से तरबतर उनके सीने से लिपटकर रो उठी। बाप से इतने दिनों तक अलग रहने का दुख आनाबीबी कभी इस तरह नहीं ज़ाहिर करती थी। ज़रूर कोई बात हो गयी थी।

"क्या बात है। आनाबीबी?" बाप ने घर में चारों ओर नज़र दौड़ाते हुए कहा, घर एकदम साफ़ सुथरा था, सभी चीज़ें करीने से रखी थीं। सान्ध्य प्रकाश में सभी चीज़ें आरिफ़-अका की थकी आँखों को बड़ी प्यारी लगीं। "सब ठीक-ठाक तो है न?" "जी," आनाबीबी बोली लेकिन फिर फफककर रो पड़ी। नाक झाड़कर पीछे मुड़कर चेहरा छुपाया। उसने कई चोटियाँ कर रखी थीं।

"आप को स्कूल में बुलाया गया है।"

"यह कौन-सी बड़ी बात हुई," ठण्डी सांस लेकर आरिफ़-अका ने सोचा। फिर प्रसन्न भी हुए। शायद बड़े पदों पर काम करने के कारण उन्हें कभी स्कूल में बातचीत के लिए नहीं बुलाया गया था। मगर दिखावे के लिए वे गंभीर रहे।

"क्या किया है तुम ने?"

"कुछ भी नहीं... शिक्षिका तो घर पर आनेवाली थीं लेकिन मैंने कहा, आप ख़ुद जायेंगे। सब के बाप स्कूल जाते हैं..." आरिफ़-अका का जी चाहा, वह बेटी को सीने से लगाकर प्यार करें, लेकिन सोचा अध्यापिका से पहले बातचीत करके बात तो जान लें। इस लिए ख़ुद को संभाल लिया। स्कूल में इसने अवश्य कुछ किया होगा, यूँ ही बेकार तो नहीं बुलाया जायेगा।

अगले दिन आरिफ़-अका स्कूल गये।

प्रधान अध्यापक के कमरे में आनाबीबी की वर्ग अध्यापिका शफ़ीगूलीना ने उनका स्वागत किया। वह प्रकृतिशास्त्र और समाजशास्त्र पढ़ानेवाली वयोवृद्ध महिला थी।

"हम आप से मिलने जानेवाली थीं, पर हमें बताया गया कि आप दौरे पर गये हुए हैं, ख़ुद आने की ज़हमत आपने उठायी, माफ़ कीजि-येगा। शुक्रिया... हम आपको आनाबीबी के बारे में बताना चाहती थीं।

"क्या कोई बुरा काम किया?"

"क्या कहें? यही समझिये। पिछले सप्ताह रूसी भाषा के क्लास में "मेरा परिवार" विषय पर लेख लिखने कहा गया था। यह रहा आप की बेटी का लेख!" और शफ़ीगूलीना ने लेख को एक बार फिर ऐनक के निकट लाकर देखने के बाद आरिफ़-अका के सामने रख दिया।

आनाबीबी ने लेख में अपने बाप के बारे में जो कुछ सुना था, वह सब लिखा था। उसके कारण माँ पर आयी मुसीबत और शर्मिन्दा होने के बारे में। माँ बीमार थी लेकिन उसने उसकी कोई ख़बर न ली। बेचारी उसी के कारण तड़पती मर गयी। आनाबीबी जब पैदा हुई तब भी उसने उसकी कोई खोज-ख़बर नहीं ली। आनाबीबी को इस बात से बड़ा गुस्सा था कि ऐसा गन्दा आदमी भी दूसरों की तरह इस धरती पर जी रहा है। अंत में आनाबीबी ने लिखा था: "उसी के कारण मेरा कोई परिवार

नहीं, दूसरों की तरह माँ नहीं, मौसी नहीं, भाई नहीं। कम से कम एक छोटी बहन तो होती। अब मैं एक नेक आदमी के साथ रहती हूँ जिसने मुझे गोद लिया है।"

देर तक आरिफ़-अका उसे ध्यान से पढ़ते रहे। हाथ में कागज़ लिये, ख़ामोशी से गीली बरौनियाँ झपकाते बैठे रहे। दुख के मारे यह भी भूल गये कि कहाँ बैठे हैं। उन्हें ख़ामोश देखकर शफ़ीगूलीना ने ही बात छेड़ी:

"देखा?" उसकी फटी आवाज़ से वह चौंक पड़े।

"आप किस के बारे में बता रही हैं?"

"जो आप के हाथ में है, उसी के बारे में।"

"ओ, हाँ," आरिफ़-अका ने कागज़ पकड़े ही पकड़े कहा। उनकी आवाज़ में बड़ी थरथराहट, उदासी, हमदर्दी थी।

"हाँ!"

"हमारा और आप का कर्तव्य बच्चों को ऐसे नीच विचारों से बचाना है," बूढ़ी अध्यापिका ने अपनी नसीहत शुरू कर दी। "उनमें ऊँची, शुद्ध भावनाओं, हमारे उज्जवल दौर के बारे में ज्वलंत विचारों का विकास करना चाहिए..."

"देखिये, आप," आरिफ़-अका ने लेख दिखाकर अध्यापिका की ओर आश्चर्य भरी आँखों से देखा, "आप क्या इसी के लिए आनाबीबी की निन्दा कर रही हैं? यहाँ तो सब कुछ ठीक है!"

"सोवियत परिवार के बारे में एक छोटे बच्चे के इस प्रकार के विचारों को क्या आप हमारे शिक्षा विज्ञान के अनुकूल समझते है?"

"शिक्षा विज्ञान... मैं नहीं जानता," आरिफ़-अका ने कंधे झटके, "मगर यह सब सच है। वास्तविकता यही है। हरेक को अपने परिवार के बारे में लिखना था, न?"

"ठीक है, पर दूसरे बच्चों के लेख देखिये। यह, यह देखिये!" शफ़ीगूलीना ने कई दर्जन लेख मेज़ पर रख दिये। "सब एक से एक बढ़ कर हैं! छोटी-मोटी बातों की उलट-पुलट के बिना सुखी परिवार के बारे में, सुख के बारे में उन्होंने गौरव से लिखा है?"

"सुख... मुझे यक़ीन है, आनाबीबी सुख का अर्थ नहीं समझा सकेगी। सच कहूँ तो मैं भी नहीं। लेकिन आनाबीबी ने अपने विचार, अपने

मन की बातें लिख डाली हैं। यह कोई बुरी बात नहीं। मैं उसे मना नहीं कर सकता।"

"यह अनुचित, असुन्दर है, आप नहीं समझते?" शफ़ीगूलीना ने आनाबीबी का लेख हाथ में लेकर हिलाते हुए कहा।

"लेकिन यह – हक़ीक़त है!" आरिफ़-अका बोले।

"कॉमरेड आचीलोव, आप घर में कम ही रहते हैं, दिन-रात सफ़र में होते हैं। बच्ची अकेली रहती है। चाल-ठाल ठीक नहीं, जो ज़बान पर आ जाता है, कह या लिख डालती है। हम ऐसा नहीं होने दे सकते हैं।"

"जो मुँह में आता है वह नहीं बल्कि जो सोचती है, वही बोलती है। अपनी बेटी को मैं भी जानता हूँ, आदरणीया अध्यपिका जी!"

"ठीक है, आप पिता हैं, लेकिन आपके पितृ-स्नेह के कारण हमारी शिक्षा में बाधा नहीं पड़नी चाहिए। साहित्य की अध्यापिका की शिकायतें मैंने अभी आप को बतायी ही नहीं हैं।"

"उनकी क्या शिकायतें हैं?"

"आनाबीबी ने अध्यापिका की योजना पर रचना लिखने से इंकार कर दिया।"

"क्यों?"

"कारण यह है," और वर्ग अध्यापिका ने एक कागज़ निकालकर उन्हें थमा दिया, "लीजिये, रचना की जगह अध्यापिका की प्रतिष्ठा को आघात पहुँचानेवाला यह ख़त लिखा है आप की बेटी ने।"

आरिफ़-अका ने भौंहें सिकोड़कर वह ख़त भी ध्यान से देर तक पढ़ा:

"मैं आनेगिन का फ़ार्म नहीं भरूँगी। अगर आप की इजाज़त हो तो मैं "येवगेनी आनेगिन" को क्लास में सुनाना चाहूँगी। मुझे वह पूर्णत: कंठस्थ है "क्लासिक" नामक ठंडा शब्द मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं पुश्किन को अपने भाई, एक आम ज़िन्दा आदमी की तरह समझती हूँ। मैंने उसे सपने में देखा..."

"देखा, देखा था!" आरिफ़-अका बच्चों की तरह कह उठे। "वसंत का मौसम था, सुबह-सवेरे दौड़ी-दौड़ी आयी और मुझे अपना वह सपना उसने सुनाया था। यह सब सच है! सच!"

शफ़ीगूलीना की सफ़ेद होती भौंहें जुड़ गयीं। अपना बूढ़ा चेहरा बदसूरत ढंग से सिकोड़कर वह आश्चर्य से देख रही थीं। आरिफ़-अका को यह

बात याद आयी कि उन के हाथों में जो ख़त है, वह अध्यापिका की शिकायत का प्रमाण देनेवाली एक दस्तावेज़ है और उनकी बच्चों-सी ख़ुशी दूर हो गई। गंभीरता से बोले:

"देखिये, मैं इस के लिए भी उसे नहीं डाँट सकता हूँ। जो सोचती है, वही लिखा है उसने। क्या उसे अपने विचार छिपाने चाहिए? दिल में कुछ ज़बान पर कुछ, यही होना चाहिए क्या? क्या हमारा कर्तव्य यह है कि हम घर पर दूसरी बात बतायें और स्कूल में दूसरी बात लिखना सिखाएँ?"

"आप यह भी तो सोचिये कि अध्यापिका इस ख़त पर उसे क्या नम्बर* रखे? हम रचना व शैली के अनुसार नम्बर देते हैं। यह ख़त – एक उद्दंडता है... हमें नम्बर रखना है। हम किस चीज़ के लिए नम्बर रखें? आप की बेटी को दो नम्बर मिलें, तो आप कैसे बाप हैं..." बुढ़िया समझ गई कि आवेश में आ गई है। उसने काँपते हाथों से अपना ऐनक पोंछा और कहा, "माफ़ कीजिये..."

"नम्बर की फ़िक्र है आपको लेकिन बच्चा क्या सोचता है, इसकी कोई परवाह नहीं?"

"क्यों? बच्चे के मन में उज्ज्वल विचार आने चाहिए। हम इसी के लिए प्रयत्नशील हैं।"

और यदि कभी उसके मन में उज्ज्वल विचार न हों तो? क्या उसे द्विमुखी होना चाहिए? स्कूल में पढ़ते समय से, है न?"

अध्यापिका ग़ुस्से में आयी या उसे कोई जवाब नहीं सूझा, वह चुप रही। काफ़ी देर तक ज़मीन पर देखते रहने के बाद आरिफ़-अका ने अपनी बात जारी रखी:

"माफ़ कीजिये, मन में एक बात आई: वही... आनाबीबी के बाप का झूठापन, कपटाचरण... इसी प्रकार के स्थान पर तो नहीं शुरू हुआ?"

शफ़ीगूलीना बेचैन हो उठी।

एक क्षण बाद आरिफ़-अका ने धीमी आवाज़ में इस तरह कहा मानो अपने आप से कह रहे हों:

---

* सोवियत स्कूलो में नीचे स्तर का नम्बर "दो" है और उच्च स्तर का नम्बर "पाँच" है।

"ज़ियाख़ानोव का भी... उस से बड़ों का भी..."

"क्या? कुछ कहा आप ने?"

"नहीं, कह रहा हूँ, कुछ सोचना चाहिए। मुलाक़ात के लिए धन्यवाद। मैं अपनी आज की बातचीत पर अवश्य सोच-विचार करूँगा। अलविदा!"

आरिफ़-अका अपनी नमदे की टोपी बग़ल में बाहर निकल आये। घर आये तो आनाबीबी को क्या कहें, उन्हें कुछ सूझा ही नहीं। लड़की भय खा रही थी कि बाप के मुँह से क्या बात निकलेगी। काम करते-करते बार-बार कनपटी से उन्हें देख लेती। आनाबीबी ने तख़्ते पर बैठकर दार्शनिक बातें करनेवाले तैमूर को आंगन से चलता कर दिया। फिर वह बाप के लिए चाय बनाकर ले आयी और फिर कनपटी से आँखें नीचे करके उनकी ओर देखा। आरिफ़-अका यह सब देख, समझ रहे थे। उनसे रहा नहीं गया। उन्होंने बेटी को सीने से लगा लिया। पिता के वक्ष में अपना चेहरा छुपाकर आनाबीबी सिसक उठी।

लेकिन इसके बाद आरिफ़-अका का पिछले दिनों का असंतोष फिर लौट आया। इलाक़ाई समिति में भी, जब वह अध्यक्षमंडल में बैठा करते थे और यात्रा के समय भी उनके मन में कुछ पत्थर की तरह हमेशा अटका-सा रहता था। इससे उनके काम में बाधा पड़ती, वह परेशान रहते। नए सेक्रेटरी ने कई महीने तक ब्यूरो में भाषण नहीं दिया, बड़ी पहलक़दमियों में हाथ नहीं बटाया, उसका काम में लग जाना "बड़ा लम्बा" चला।

एक दिन प्रांतीय सम्मेलन में मरीया वसील्येवना का बहुत लम्बा भाषण सुनने के बाद वह सीधे उसके घर जा पहुँचा।

मरीया निकम्मे पति से तलाक़ लेने के बाद सफ़ेद बालोंवाली मौसी और युद्ध में शहीद भाई के दो बच्चों के साथ तीन कमरोंवाले मकान में रहती थी।

वह अभी-अभी नहाकर आई थी। उसके चेहरे पर सफल काम के दिन के बाद उत्पन्न होनेवाले संतोष की झलक थी। पीछे से बालों का जूड़ा बनाकर उसने घर की चौड़ी-सी पोशाक पहन रखी थी।

"बहुत अच्छा हुआ जो तुम आ गये," वह सन्नतापूर्वक बोली। "ख़ुद तुम्हें बुलानेवाली थी। दिन भर सम्मेलन में बैठे रहने के बाद चाय-वाय के बिना रास्ते पर निकलना..."

"इस बार विचारों की गुत्थियाँ सुलझाकर आया हूँ।"

पिछली बातचीत को याद करके मरीया वसील्येवना ने होंठ चबाये।

"घर पर काम की कोई बात नहीं। आओ, बैठो," उसने मेज़ के गिर्द कुर्सियाँ रखते हुए कहा।

"मौसी जी!"

"अभी आयी, माशा!" मौसी ने रसोई से ही रूसी में ज़ोरो से कहा। "मेहमान कुछ पीते भी हैं?"

"पीते हो? हाँ, पीता है, पीता है!" मरीया ने मेहमान के जवाब की प्रतीक्षा किये बिना कहा।

"घर में न बताओ कहती हो न? तो क्या घर में एक बात, दफ़्तर में दूसरी बात है? घर पर अपने विचार अपने मन की बातें कहें और सभा में केवल अच्छी-अच्छी, पत्रकारों, दस्तावेज़ों, नेताओं के लिए ज़रूरी बातें बताएँ, यही है, न?"

उनकी आँखें चार हुईं। मरीया वसील्येवना का नहाने के बाद दमकता चेहरा बुझ-सा गया।

"तुम क्या कह रहे हो, आरिफ़? क्या फिर मूड ख़राब है..."

आरिफ़-अका ने कुहनियाँ मेज़ पर डालकर अपना माथा हथेली पर रखा।

"हाँ, बड़ा दुष्ट बन गया हूँ, मरियम। माफ़ करो..."

मौसी प्लेटों में कुकुरमुत्ता का सूप भर लायी थीं। प्याले से मलाई डालकर पुराने ढंग के फूल कढ़े लकड़ी के चम्मच के साथ रखकर चली गयीं। रसोई से कटलेट तलने की छनछन सुनाई दी।

अच्छा कि यह छनछन है। नहीं तो इस सन्नाटे में सूप खाने की आवाज़ सुनाई देकर और भी असुविधाजनक स्थिति पैदा कर देती। मरीया वसील्येवना की भूख मिट गयी थी। कुछ काले-काले रंगवाले सूप पर चाँद की तरह पड़ी मलाई को मिलाकर उसने चम्मच रख दिया।

"तो बताओ... मेरी रिपोर्ट के बारे में क्या कह रहे थे?"

आरिफ़-अका सूप पर नज़र गड़ाये हँस रहे थे।

"मुस्कुरा रहे हो?"

"तुम तो जानती ही हो। मैं सोच रहा था कि अगर तुम नहीं जानती तब कितनी बुरी बात होती। वास्तव में दोनों भयानक हैं..."

"कुछ स्पष्ट रूप से नहीं बता सकते हो क्या?"

"हाँ... आदमी अपने लिए—जो है, वही रहता है। अपनी मानवीयता, अपने विचारों के साथ... दफ़्तर या सभा में जाता है तो एक पोस्टर बन जाता है। यानी एक रूप में दो आदमी। मैं कह रहा हूँ, यह दोनों अच्छे नहीं हैं।"

"अच्छा, मैं भी वैसी ही दोमुँही हूँ? क्यों?"

"मैं इतने कटु शब्दों का उपयोग नहीं करूँगा। तुम्हारी रिपोर्ट किसी चीज़ को पेश करने, प्रदर्शन करने के लिए आडंबरपूर्वक लिखी गई है। उसमें विश्लेषण नहीं। उसके लिए अच्छाई बुराई, वास्तविक स्थिति की ज़रूरत है। और तुम्हारे पास वह नहीं। कहने का मतलब है, सभावाली मरियम में नहीं है।"

"अच्छा, आगे बोलो।"

"मिसाल लो। तुम कहती हो, पहाड़ी इलाक़े से आठ हज़ार देशभक्त आकर स्तेपी में बस गये हैं। तुम्हें मालूम है, उनमें से सात सौ भाग गये हैं। लेकिन मन की यह बात तुम नहीं कहती हो। तुम ने कहा, हमने स्तेपी में ज़िन्दगी फूंक दी। जानती हो, इसी बीच पहाड़ी इलाक़ों के प्राचीन काल से आबाद गाँव कुम्हला मुरझा गए हैं। यह बात जानते हुए भी तुम उसे छुपाती हो। तुम ने कहा कि बहादुर किसानों की पहलक़दमी पर छः सरकारी फ़ार्म स्थापित किये गये हैं। इसका अर्थ राज्य को तीन लाख टन कपास है। और तुम जानती हो, सरकारी फ़ार्म सात साल से अपने ऊपर आये ख़र्च की पूर्त्ति नहीं कर पा रहे हैं। लू उन के लिए बड़ी मुसीबत है, फ़सल कम होती है, आमदनी छोटी है, बहादुर किसानों का जीवन कठिन है। मगर तुम मन की यह बात सभा में पेश नहीं करती हो क्योंकि वहाँ तुम मरियम नहीं बल्कि एक पोस्टर बन जाती हो। लेकिन इस बात से पोस्टर ख़राब हो सकता है।

"साम्यवाद के निर्माण का काम आसान नहीं। तुम यह जानती हो लेकिन इसी प्रकार पेश करने की कोशिश करती हो। हरेक काम की कोई कठिनाई होती है, अन्तर्विरोध होते हैं, यह तुम जानती हो लेकिन सभी कामों को एक जैसा चमकीला बनाकर दिखाने की कोशिश करती हो। हॉल में बैठे हम सब यह जानते हैं फिर भी सुनते हैं, तालियाँ बजाते

हैं। मेरे विचार से हम काम नहीं करते बल्कि अपने आप से लुका-छिपी खेलते हैं।"

"अच्छा... अगर सभा में इन दोनों पहलुओं के बारे में बता दें तब क्या होगा?"

"क्या होगा? तब वास्तविक स्थिति हमारे सामने आ जायेगी। हम विश्लेषण कर सकेंगे। सन्तोष का अनुभव करेंगे। अधिक मानवीय हो जाएँगे। सौहार्द सामने आयेगा। ज़िन्दगी अधिक सामान्य होगी। एक-दूसरे का दिल देख सकेंगे। अच्छा, तुमने शायद कहा था, पीने को कुछ है, कहाँ है?.."

"मौसी जी!" मरीया वसील्येवना ने आवाज़ दी। "ठीक है, पर एक काम तो हम कर ही रहे हैं। आगे तो बढ़ रहे हैं, क्या इसका प्रमाण देना नहीं चाहिए?"

"किस को?"

"लेकिन चाहे जो भी हो, उपलब्धियों को समझाने, जनता में इनका प्रचार करने का काम तो हो रहा है, क्या इसे भी न मानोगे?"

"अगर मात्र मौखिक और एक पक्षीय हो तो नहीं मानूंगा," आरिफ़-अका बोले और हँस पड़े। फिर आधा जाम वोद्का डालकर पी ली।

"और तुम्हारी बातें मौखिक ही नहीं, कल्पनावादी भी हैं।"

"नहीं, मैं ठोस ढंग से सोचता हूँ... मैं समझता हूँ, तुम्हारा क्या ख़्याल है: बस यूँ ही बात की बात है। अमल में लाने की ज़रूरत है। पर मैं समझता हूँ सोच-विचार भी काम ही है। नेता के लिए एहसास करना प्रमुख काम है। जानती हो, एक किसान ने मुझे क्या कहा," कहकर आरिफ़-अका अपनी बही उलट-पलटकर देखनी शुरू कर दी। "यह है: 'केवल ख़ज़ाना ही सम्पत्ति नहीं, स्नेह भी बड़ी सम्पत्ति है। आदमी की आँखों में ख़ुशी की झलक भी सम्पत्ति है'।"

"हम भी सुन्दर विचार करते, एहसास करते चलेंगे और अगर एक साल में सरकारी फ़ार्म को मुनाफ़ेवाला न बना पाये तो भंगकर देंगे।"

"इसमें जल्दबाज़ी न करो। मेरे स्वभाव की कठिनता यह है कि मैं इन दोनों में फ़र्क़ नहीं कर पाता हूँ। बिना एहसासवाले विचार न करनेवाले अदाकारों को मैं भी शायद एक-एक करके काम से अलग कर दूंगा।"

"इलाक़े का लम्बा दौरा करके इसी विचार पर पहुँचे क्या?"

"मैं इस विचार पर पहुँचा हूँ कि कोयकि इलाक़े को भंग करना, वहाँ के सात पीढ़ियों से कुशल बाग़बानों को प्रशासकीय रूप से स्तेपी में बसाना ग़लत रहा है!"

"वाह, फिर वही कोयकि इलाक़ा!" यह कहकर मरीया वसील्येवना ने ख़ुद थोड़ी वोद्का पी। "आख़िर, यह आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा इलाक़ा था। विकास की गुँजाइश नहीं थीं, भूमि विस्तृत नहीं की जा सकती। वह राज्य को जो फल देता था, वह एक सामूहिक फ़ार्म की कपास जितनी भी नहीं था। सारे क्षेत्र में पहाड़-पत्थर निजी बाग़ और अंगूर के खेत। निजी मिलकियत की मांद थी वह। और स्तेपी के सरकारी फ़ार्म राज्य की टेक हैं। ये बातें बच्चे भी जानते हैं और मुझे तुम को समझाना पड़ रहा है।"

"मैं कोई बच्चा नहीं। मैं जानता हूँ, स्तेपी में कपास बाप-दादे का काम भली-भाँति जाननेवाले बाग़बानों का दिल दुखाये बिना भी पैदा की जा सकती थी। हमें बंजर भूमि को खेती योग्य बनाने के बहुत अनुभव प्राप्त हैं। जहाँ तक वादी के बाज़ारों का संबंध है, मैं चाहता हूँ, उनमें सदा बहुतायत रहे। पहले कहते थे, कोयकि-वादी की यह ख़ूबी है, वह ख़ूबी है। अब यह सारी बातें हास्यास्पद बन गयी हैं। सब तुम पर और हम पर हँसेंगे, मरियम। यदि सुन्दर लड़की अपना सौंदर्य पैसे पर बदलेगी तो वैसी ही हँसी होगी..."

"बेकार की बातें न बताओ। आर्थिक दृष्टि से दुर्बल इलाक़े में देश रुचि नहीं रखता है, यह तुम जानते हो।"

"तब काकेशिया के तटवर्ती इलाक़ों को ख़तम कर दें, क्रीमिया को बन्द करें, वहाँ स्वास्थ्यप्रद हवा और प्राकृतिक सौन्दर्य के अतिरिक्त कुछ नहीं है। वह इलाक़ा कपास नहीं देता है, आख़िर, क्या हक़ है..."

"बड़ी भद्दी तुलना की है। कटलेट ठंडे हो गये हैं।"

मरीया वसील्येवना ने ख़ुद को रोक रखा था, छोटे-छोटे सवाल का जवाब देती रही, पर कभी-कभी यह स्पष्ट हो जाता था, वह अन्दर से उबाल खा रही थी। "यह क्या करनेवाला है? प्रांतीय समिति के सात साल के काम, प्रांत की प्रसिद्धि बढ़ानेवाली पहलक़दमी को धूल में मिलानेवाला है क्या? क्यों अपने लिए गड्ढा खोद रहा है? छोटे व ग़लत विचार, स्थिति को समझने में असमर्थ... मैंने कभी न सोचा था, ऐसा

होगा। क्या सोचता है, ऊपर का कोई उसके इस विचार का समर्थन करेगा!"

मरीया वसील्येवना ने उसके कुछ पीले पड़ गये मोटे चेहरे को देखा। तब तक आरिफ़-अका दो बार पी चुके थे। वोद्का उसे अच्छी नहीं लगती, जब भी पीते, चेहरा पीला पड़ जाता।

"देखो, आरिफ़, क्या तुमने साम्यवाद की आर्थिक-तकनीकी नींव डालने की बात सुनी है? समस्त देश इसी काम में लगा है और तुम अपने भावुक विचार लेकर मारे-मारे फिर रहे हो।"

ग़ुस्से में आकर मरीया वसील्येवना उठ खड़ी हुई। शायद कुछ ठंड लगी तो रोएँदार स्कार्फ़ ओढ़कर आलमारी का सहारा ले खड़ी हो गई।

आरिफ़-अका अपने स्थान पर सिर झुकाये बैठे थे। इस प्रकार काफ़ी समय बीत गया। सड़क पर कभी का अंधेरा और सन्नाटा छा गया था, नुक्कड़ों की बड़ी लालटेन भी कब के बुझ चुकी थी।

"क्या सोच रहे हो?" मरीया वसील्येवना ने पूछा।

"एक बात याद आ गई।" आरिफ़-अका ने सिर उठाये बिना कहा। उनकी आवाज़ बड़ी धीमी और लड़खड़ाती थी। "जब युद्ध से लौटा, सबसे पहले आचिल बुवा को देखने गया," आरिफ़-अका अपने पिता को हमेशा आचिल बुवा कहते थे, "फिर सारागुल को... दूसरे ही दिन सुबह सवेरे दौड़कर सुम्बुलतामची गया। दूर से देखते ही मन में यह विचार आया कि यदि लड़ाई में मर जाता तो क्या होता? मोर्चे पर मौत के बारे में सोचते हुए कभी उतना भयभीत नहीं हुआ था जितना वहाँ आकर..." आरिफ़-अका मन की बात कभी धीमी, कभी ऊँची आवाज़ में देर तक बताते रहे। "सुम्बुलतामची इस योग्य है कि उसे एक बार और देखने के लिए जान तक न्योछावर कर दिया जाये। उसने मेरे अन्दर ऐसे ही विचार भर दिये हैं।"

"सुम्बुलतामची..."

"हाँ। मान लो, अंधेरी रात है। अज्ञात पगडंडियों पर भूत मंडरा रहा है। मौत का भूत। हम उसे चिढ़ा रहे हैं। मालूम होता है, अंधेरा ख़तम ही नहीं होगा। अचानक सूरज! कोई बेगाना सूरज। हम ख़ुफ़िया टोह से लौट रहे हैं। अब की बार भी सही सलामत लौट रहे हैं। तभी बर्फ के नीचे, दलदल में, स्थल पर अथवा खंडहरों में एक फूल मिलता

7—3486

है, साफ़ आसमान की तरह नीला फूल अथवा अकेले भनभनाती शहद की मक्खी। मैं रोता हूँ... पिल्ले की तरह, नासमझ बच्चे की तरह दोस्तों से छिपकर रोता हूँ। मुझे सुम्बुलतामची याद आती है..."

मरीया वसील्येवना ने उस की पीठ पर हाथ रखकर ज़रा हिलाया। आरिफ़-अका ने सिर उठाकर उसके मस्कुराते चेहरे पर नज़र डाली। वह कह रही थी, "जागो, कहाँ गुम हो गये, क्या शराबी हो?"

"नहीं, देखो तुम ने कितने आँकड़े पेश किये: टन, हेक्टर, काम के दिन, किलोमीटर!.. और लोगों की ख़ुशी, मेरे आँसू, दिलों में बर्फ़ से ढकी इन चोटियों, स्रोतों के सुन्दर प्रतिबिंब एक बूढ़े के मन की रंजिश, आरज़ुओं, लोगों की भावना, विश्वास, मन की अखंडता... ये सब कैसे मापेंगे? कहाँ बताएँगे?"

मरीया वसील्येवना "बस, अब देर हो गई, तुम नशे में आ गए हो" कहनेवाली थी, मगर उसका "कहाँ बतायेंगे" शब्द सुनकर सामने बैठ गई। उसने देखा, आरिफ़-अका नशे में नहीं।

"मैं तोयचि एर्गीगीतोव* को नज़दीक से जानता था," उसने अपना सोच-विचार जारी करते हुए कहा। "पढ़ा-लिखा, चेतनायुक्त नौजवान, युवा कम्युनिस्ट था। बहुत से लोग नहीं जानते, तुम्हें भी यह मालूम नहीं कि उसमें एक और गुण था, एक शौक था—गुलदस्ते बनाने का। कभी आलस नहीं करता था। कभी-कभी तो सुबह से शाम तक इसी काम में लगा रहता था। गुलदस्ते बनाना वह एक कला समझता था। जब अपनी इच्छा के अनुसार गुलदस्ता बना पाता तो उसे उतनी देर तक देखता रहता था मानो कोई किताब पढ़ रहा हो। जापानी फूलवालों की किताबें कहीं से ढूँढ़ लाया था। लड़कियों के लिए गुलदस्ते बनाने का पाठ्यक्रम शुरू करने के सपने देखा करता था... जब यह नौजवान अपने शरीर से दुश्मन की मशीनगन का मुँह बन्द करने के लिए कूद पड़ा था तो उस वक़्त क्या सोचा था उसने?

"तुम्हारा मतलब है, गुलदस्तों के बारे में?"

"नहीं।"

"तो फिर?"

---

* द्वितीप महायुद्ध में मर गया एक उज्बेक बीर। —सं॰

"कुछ भी नहीं। ऐसे वक़्त आदमी कुछ भी नहीं सोचता, सोचने को मौक़ा ही नहीं होता। अब तुम यह बताओ, किस चीज़ ने उसे ऐसे करिश्मे के लिए प्रेरणा दी थी। "

"क्रोध।"

"क्रोध तो शेर में भी होता है।"

"विवेक।"

"क्रोध और विवेक के साथ दिल की भी ज़रूरत है। बड़े, सम्पन्न, सज्जन दिल, कम्युनिस्ट के दिल की।"

दोनों हाथों से माथा थामकर मरीया वसील्येवना ने मेज़ की ओर देखते हुए थकी-सी आवाज़ में कहा:

"यह सब ठीक है। मगर यदि तुमने इलाक़ाई अर्थव्यवस्था को इसी दृष्टिकोण से संभाला तो हमें शायद योजना-पूर्ति की जगह सिर्फ़ बातें ही बातें मिलेंगी..."

"बुद्धि, इरादा, तर्क – सब कुछ है, लेकिन काश रत्ती भर भावना होती, दिल भी होता!" आरिफ़-अका ने जवान मरियम की याद करते हुए सोचा। "यह उसमें था। था! कहाँ खो दिया उसने..."

मरियम सेब की तरह चिमड़े शरीरवाली, नटखट, आग जैसी लड़की थी, उसकी हँसी चाँदी की घण्टियों-सी गूंजती थी। मज़दूर संकाय में आरिफ़ से एक साल पीछे थी, उससे शायद कुछ मुहब्बत भी करती थी, जब वह दूसरी लड़कियों से बातें करता तो ईर्ष्या भी करती थी। जब कोई तुझे लेकर ईर्ष्या करे तो कितना अच्छा लगता है! उसकी डाह भरी निगाहें देख-देखकर आरिफ़ को अपनी शान में इज़ाफ़ा महसूस होता। सन् १९२७ की बात है शायद। उस घटना की याद आज भी ज्यों की त्यों बनी है। नज़मी नाम की एक सीधी-सादी लड़की आरिफ़ से प्यार करती थी। आरिफ़ तब अपने ही ग़रूर में रहता था। अपने से जूनियर कोर्स की लड़की उसके मन नहीं भायी। एक दिन आरिफ़ के नाम उसी नज़मी का प्रेमपत्र न जाने कैसे डाइरेक्टर के हाथों पड़ गया। फूहड़पन में उससे पत्र गलियारे में गिर पड़ा था...

सब कहीं इसी की चर्चा चल पड़ी। उस समय ऐसी बातें फ़ौरन सभा में पेश कर दी जाती थीं। डाइरेक्टर ने आम सभा बुलाई। आरिफ़ की स्थिति ख़राब थी: यदि वह सभा में नज़मी का समर्थन करता तो लड़की

को ग़लतफ़हमी हो सकती थी। समर्थन न करता तो अनुचित चाल-चलन के लिए लड़की को मजदूर संकाय से निकाल दिया जा सकता था।

सभा बड़ी गर्मागर्म रही। कोई नज़मी की तरफ़ से नहीं बोला। यहाँ तक कि वयोवृद्ध अध्यापकों ने भी छात्रों में इस अनैतिकता पर ग़ुस्सा व्यक्त किया। तभी दहकते अंगारे-सी मरियम मंच पर जा पहुँची। उसकी वह शक्ल आज भी आरिफ़-अका को पूरी तरह याद है।

मजदूर संकाय के सभी नौजवानों की आंखों में लौ फूंक देनेवाली इस लड़की ने मानो हॉल को थर्रा दिया। उसने जैसे ही अपनी बात शुरू की हॉल में उपस्थित जवान दिलों में मानो एक ज्योति-सी जल उठी जिसने सबके साथ मिलकर आग की एक लपट का रूप धारण कर लिया।

"उज़्बेक लड़की का आज खुल्लम-खुल्ला "प्यार करती हूँ" कहना तो अपने आप में एक करिश्मा, एक जीत है!" मरियम ने ऊँची आवाज़ में कहा था। वह देर तक जोश के साथ बोलती रही, तालियाँ बजती रहीं। पर आरिफ़-अका को न जाने क्यों बस एक ही बात बार-बार याद आ रही थी, कचोट रही थी...

नहीं, उसमें दिल था! जरूर था...

"हम और तुम किसी एक निर्णय पर नहीं पहुँच पाए, आरिफ़। अगर चाहते हो तो कल प्रथम सेक्रेटरी से मिलो।" आरिफ़-अका के बहककर दूर चले गये विचार एकदम थम गये। यह अब की मरीया की आवाज़ थी।

"नहीं," आरिफ़-अका ने कहा। सिगरेट जलाये बिना उसे मोड़कर उन्होंने राखदानी में डाल दी। "मैं तुम्हीं से बातचीत करूँगा। ठीक है, आज मैं बहुत बोल गया। लेकिन अंतिम सवाल है, तुम मुझे यह बताओ, कब, कहाँ खो दी तुम ने... अपनी जवानी?"

मरीया वसील्येवना ने चौंककर सिर ऊपर उठाया। यह बात उसे बहुत बुरी लगी थी। जवाब न दे पायी। कुछ आश्चर्य में पड़ गयी। कष्टमय विचारों ने दिल की धड़कनें तेज़ कर दी थीं। रसोई के दरवाज़े में मौसी दिखाई पड़ी। उनको मरीया पर बड़ा तरस आ रहा था और सूखकर काँ-टा हुई अँगुलियों पर ठोड़ी टिकाये वह खड़ी थीं।

"मुझे कुछ भी कह सकते हो, लेकिन इलाक़े की स्थिति के बारे में तुम्हारे विचार ग़लत हैं।"

"मैंने लोगों से बातचीत की है।"

"तुमने शिविलगान के भूतपूर्व निवासियों से जो बाज़ार में ही रहते थे बातचीत की और जिन की हड्डियाँ सट्टेबाज़ी से ही मज़बूत हुई थीं।" अचानक मरीया वसील्येवना की आवाज़ लोहे की तरह गूँज उठी। वह अपने स्थान से उठ खड़ी हुई थी। आरिफ़-अका ने बैठे ही बैठे उसके क्रोध भरे चेहरे पर नज़र डाली और कोमल स्वर में कहा:

"मरियम तुम प्रांतीय समिति के सेक्रेटरी पद के योग्य नहीं हो।" और इतना कहने के बाद वह उठ खड़े हुए, खूँटी से कोट उतार लिया। दरवाज़े के निकट खड़ी बुढ़िया को खाने के लिए शुक्रिया कहकर, उसका हाथ चूमा और नमस्कार करके चले गये।

मरीया वसील्येवना उसे छोड़ने द्वार तक जा पहुँची, जब दरवाज़ा बन्द हुआ, वह उसके सफ़ेद रोग़न से रंगे ठंडे चौखटे पर माथा रखकर निढाल-सी खड़ी रह गयी। हड़बड़ाकर आयी मौसी ने उसके फ़िसल गये रूमाल को कंधों पर ढाँककर उसे अपनी बाँहों में भर लिया।

"कब से सता रहा है... मर्द होकर... क्यों तू इजाज़त देती है? क्यों वह तेरे दिल को बीमार कर देता है? क्या अधिकार है उसे!" रुआँसे ढंग से उसने कहा।

सड़क पर गाड़ियों का चलना बन्द हो चुका था। घुप्प अंधेरा छाया था। रात्रिकालीन हवा के झोंके पोपलर पेड़ों के पत्तों को रहस्यमय ढंग से सरसरा रहे थे। आरिफ़-अका सुनसान मार्ग पर थोड़ी देर चलते रहे, फिर पीछे लौट पड़े। तीसरी मंज़िल पर एक ही खिड़की, मरीया वसील्येवना की खिड़की में रोशनी थी। एक हाथ से टोपी थामकर आरिफ़-अका ने खिड़की पर नज़र डाली। फिर कुछ इधर-उधर टहलने के बाद प्रांतीय समिति के सामनेवाले शामियाने के नीचे अपनी मोटर ढूँढ़कर वह उसमें बैठ गये मानो सचमुच अभी ही अपने इलाक़े को रवाना हो जायेंगे। लेकिन उन्होंने मोटर स्टार्ट नहीं की, चुपचाप बैठे रहे।

रात के सन्नाटे की आवाज़ सुनते-सुनते उन्हें एकाएक नीन्द आ गयी। नीन्द में सपना देखा: आनाबीबी होंठ बिदकाकर रो रही थी: "एक छोटी-सी बहन होती, तो भी अच्छा..."

आरिफ़-अका की नीन्द खुल गयी, आनाबीबी के लेख की बात याद करके वह मुस्करा पड़े। सपना और विचार घुल-मिल गये: अकेली है, वस्तुत: अकेली है, बेचारी। अब छुट्टियाँ हैं।

तैमूर भी पायोनीयर कैंप में बच्चों की देखभाल में मदद करने चला गया होगा। आनाबीबी घर में अकेली बैठी प्रतीक्षा कर रही होगी। और बाप यहाँ है...

अब वहीं आरिफ़-अका को अहसास हुआ कि उनकी आंखें लग गयी थीं। तब तक सुबह हो चुकी थी।

एक ही क्षण में शहर की सड़कों में जान आ गयी। अस्फ़ाल्ट सड़कों पर आहटें सुनाई देने लगीं, दुकानों और गैरेजों के दरवाज़े खोलने की चरचराहट, दूधवालों की आवाज़ें आने लगीं। आरिफ़-अका आँखें खोले बिना, सिर पीछे की ओर टिकाये कुछ देर यूँ ही बैठे रहे।

"घरवाली... अंगूर की कांट-छाँट!" कहकर कोई फटी आवाज़ में चिल्लाया। आरिफ़-अका अपने आप मुस्कुरा उठे। आँखें खोलीं तो चिल्लानेवाला आदमी कहीं नहीं था! मोटर के पास से एक महिला अपने बच्चे को जिस की नीन्द अभी पूर्णत: नहीं खुली थी, हाथ से पकड़े गुज़र गयी।

"एक छोटी बहन..." अगर आनाबीबी के घर में ऐसा कोई बच्चा होता तो वह जी जान लगाकर दिन रात दौड़ती-फिरती। अगर किसी को गोद लूँ तो कैसा रहेगा। क्या आज के ज़माने में ऐसा कोई मिल सकता है? असाध्य कल्पना। और यदि मिल जाये? यदि मिल गया, तो! आरिफ़-अका मोटर से निकलकर उसके गिर्द घूमने लगे, पहियों पर लात मारकर देखा। और यदि मिल गया, तो? सलाह लेने को भी कोई नहीं। मरियम... मरियम को ख़फ़ा कर दिया। अच्छा नहीं हुआ। क्या उससे माफ़ी माँग लूँ?

कुछ दूरी पर फौवारे से खनखनाकर बहनेवाले पानी की आवाज़ से आरिफ़-अका होश में आये। यह क्या बात है? लोग काम का नया दिन शुरू कर रहे हैं और वह अपने सपने के ख़यालों में व्यस्त हैं। फौवारे के पास जाकर उन्होंने हाथ-मुँह धोया, पुराने चार्ज* के उस ओर फल के बाज़ार जाकर एक प्याला दही पी लिया।

---

* चार्ज – क्रांति से पहले उज़्बेकिस्तान में रहनेवाले धार्मिक रूसियों ने बनाया था। – सं.

"अब चलना चाहिए," सोचकर जब वह हड़बड़ाकर उठे तो वही फटी आवाज़ फिर से सुनाई दी।

"घरवाली... अंगूर की काट-छांट।"

आरिफ़-अका ने आवाज़ पहचान ली।

"सिमयोग़ोच?"* उन्होंने सामने से निकलकर आवाज़ दी। यह शिबिरग़ान का एरगश था। वह हल्का कैनवस का बूट पहने था, सफ़ेद यक्तक के ऊपर कई कमरबन्द बाँध रखे थे, कमरबन्दों पर फूल काटने की कैंची, छूरी, पैवंद लगाने का औज़ार और बहुत-सी अन्य चीज़ें लटकी थीं, कन्धे पर लम्बे फलोंवाली कैंची रखी थी।

"वाह, आरिफ़-अका!.. वाह... अस्सलाम अलयकुम!" घबराकर एरगश ने दोनों हाथ बढ़ा दिये। सिमयोग़ोच उपनाम उसे बाप से मिला था। बाप सुप्रसिद्ध बाग़बान था पर बड़ा सीधा-सादा। एक दिन एक नौजवान शैतान बिजलीफ़िटर ने उसे खेत पर के खंभे बेच दिये। बिजलीफ़िटर बिजली के तार लगा रहा था। "क्या कर रहे हो?" बूढ़े ने उससे पूछा। "यह खंभे लगा दिये हैं," नौजवान ने कहा और शायद कुछ पीना चाहता था, इस लिए मज़ाक़ में कहा: "खंभे तो खड़े कर दिये, पर ग़लत हुआ। अब ले जाना महँगा पड़ेगा। हम इन्हें बेचना चाहते हैं।" खंभे अगर लंबाई में काटे जाये तो सोरि बनाने के काम आ सकते थे। सौदा देर तक नहीं चला। बूढ़े ने सब कुछ सस्ते में ख़रीदकर अपने जेब के सारे पैसे उस नौजवान को दे दिये। तभी से लोग उसे सिमयोग़ोच कहने लगे। एरगश को विरासत में न ही यह लक़ब बल्कि धंधा भी मिला। अंगूर के खेतों में झोंपड़ी में पले इस प्रतिभाशाली नौजवान ने पन्द्रह बरस की उम्र में ही बड़ी निपुणता हासिल कर ली। फिर उसने अपनी महारत को कला के उच्च स्तर पर पहुँचा दिया। शिबिरग़ान में एक गीत भी था:

सिमयोग़ोच के बाग़ों में अंगूर मूंगे हैं
हार बनाकर पहन लो मृगनयनी...

---

* सिमयोग़ोच – बिजली का खंभा।

सितंबर में उसके बाग़ में पत्ते नहीं सिर्फ़ अंगूर ही दिखाई देते थे, इतनी अच्छी होती थी उसकी फ़सल। हुस्सैनी क़िस्म के अंगूर का हरेक गुच्छा टोकरी भर होता था। हरेक अंगूर कहरूबा की तरह पीला, पारदर्शी। जब सूरज डूबता तो लगता मानों अंगूर के इन दानों के नीचे अंगारे जल रहे हों।

"क्या कर रहे हो, सिम... एरगश?"

"यों ही..." बाप की तरह सीधे सादे एरगश ने कहा।

रंगे हाथ पकड़े गये बच्चे की तरह वह समझ नहीं पा रहा था, अपनी कमर व गले से लटकते औज़ारों को कहाँ रखे।

"सुना है कि इलाक़ाई सेक्रेटरी बन गये, अका, सुनकर ख़ुशी हुई।"

"बात न बदलो। क्या स्तेपी के सरकारी फ़ार्म में जा बसे हो?"

"जी, अका! जा तो बसा था!"

"तो क्या अच्छा न लगा?"

"जी!"

"तो अब सरकारी फ़ार्म से भागकर शहर के घर-घर में अंगूर काटते फिरते हो?"

एरगश का दाढ़ी से ढँका चेहरा पीला पड़ गया, अवाक् होकर उसने चारों ओर देखा।

"बीमारी फैली है, अका, किसी भी घर क्यों न जाएँ, अंगूर बीमार हैं। पहाड़ों से एक रोग आ रहा है," एरगश ने ऐसी परेशानी से बताया मानो अपने बीमार बच्चे के बारे में बता रहा हो।

"क्यों, कपास की खेती की कठिनाइयाँ नहीं झेल पाये?"

"मैं कोई भी कठिनाई झेल सकूँगा, अका। कुछ भी सह सकूँगा..." एरगश ने पत्तों के रस सोखे घट्टेदार हथेली की ओर देखा, सख़्त कमानीवाली बाग़ की कैंची दृढ़ता से थाम ली। "यहाँ भी पैसे मुझे व्यर्थ नहीं मिलते... आप मुझे बाग़ दीजिये, मैं लौटकर जाऊँगा, सेक्रेटरी-अका!"

आरिफ़-अका को नौजवान की आवाज़ में रुआँसी पीड़ा सुनाई दी। उसी क्षण उनके अपने मन में भी एक ग़ुबार-सा पैदा हो गया।

"ख़ुद भाग खड़े हुए, अब रहने दो!" क्रोध से आरिफ़-अका बोले और तुरंत पलटकर चल दिये।

चलने को तो चल दिये लेकिन एरगश के लिए दिल में बड़ी कचोट-

सी हुई। कितना माहिर बाग़बान था, उसकी प्रसिद्धि सारे इलाके में थी। अपना स्थान बना लिया था। जीवन से संतुष्ट था। और अब घर-घर भटकता फिर रहा है। और वह भी उससे कितनी कटुता से पेश आये थे। किसी के यहाँ अंगूर की बीमारी हो तो रोने को तैयार है। क्या क़ुसूर है उसका? सिर्फ़ यही न कि वह अपना पुनीत काम इतना पसन्द करता है।

कुछ देर इधर-उधर चक्कर काटकर आरिफ़-अका उसी जगह लौट आये तो देखा, एरगश मोड़ पर कंधे से दीवार का सहारा लिये सिर नीचा करके खड़ा है।

आरिफ़-अका ने उसे आवाज़ नहीं दी, ख़ुद उसके पास गये। खाँसे। एरगश ने चौंककर सिर उठाया।

"मुझे याद आया, आप शायद नसवार लेते थे, एरगशबाय, है आप के पास?"

"हाँ, हाँ-हाँ, है" नौजवान कमरबन्दों को टटोलने लगा। नसवार के काँसे से टके कद्दू की गुच्छेवाली डाट से भी रोग से पीड़ित अंगूर की नम बू आ रही थी।

"हाँ, रोग आया, बहुत बुरा हुआ," आरिफ़-अका ने थोड़ी नसवार लेकर कहा। "उसे ख़त्म करना कठिन है?"

"ख़त्म किया जा सकता है। लेकिन यदि सारी वादी में फैल गया तो बुरा होगा।"

"हाँ... तो ऐसी बात है," आरिफ़-अका ने कमर से टोपी निकाली और झटकारकर पहन ली। धूप काफ़ी गर्म हो चुकी थी। "देखिये, एरगश, आप... शिविलग़ान वापस लौट जाइये।"

एरगश ने आंखें फाड़कर, न समझनेवाले अन्दाज़ में उनपर नज़र डाली।

"लौट जाइये, हाँ, सदा के लिए।"

"मज़ाक न कीजिये, आरिफ़-अका।"

"वहाँ कुछ बूढ़े बाग़बान हैं। हम मनसूर-आता को भी वहाँ भेज देंगे। जहाँ तक हो सके, बाग़ों को फिर से ठीक कीजिये। सुम्बुलतामची के बाग़ों को भी धीरे-धीरे वापस लौटा देंगे।"

"आरिफ़-अका! सेक्रेटरी-अका! आप सच कह रहे हैं?"

"हाँ, हाँ। अच्छा, बाल-बच्चे तो ठीक हैं, सही-सलामत हैं ?"

"जी"।

"तो सबको ले जाइये ! मकानों, झोंपड़ियों को ठीक कीजिये। बाद में जाकर देख लूँगा। पैसे-वैसे तो हैं न?"

"ऐं-ए, पैसे की कोई ज़रूरत नहीं मुझे ! दिन गुज़र जाएँगे। हमारी ख़ुशक़िस्मती है जो आप आ गए, अका, शुक्रिया ! अगर मैंने शिविलगान को फिर से सजा-सँवार नहीं दिया तो स्वर्गीय पिता की सौगन्ध। उनकी आत्मा को शान्ति न मिले।"

हालाँकि उसकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी, एकाएक वह न जाने कैसे हृष्ट-पुष्ट हो उठा। प्रसन्न होकर आरिफ़-अका से गले मिलने को भी तैयार हो गया पर ख़ुद को क़ाबू में करके बस हाथ ही बढ़ाये। आरिफ़-अका भी ख़ुश हो उठे।

"सिमयागाच !" उन्होंने उससे विदा लेते हुए कहा और कंधा थप-थपाया।

जब आरिफ़-अका घर लौटे आंगन बच्चों से भरा था। शोर मचाते हुए उन्होंने मोटर को घेर लिया। एक मोटर के अन्दर घुस गया, दूसरा पीछे चढ़ गया; इस प्रकार वे ख़ूब चिल्ला-चिल्लाकर खेले। आनाबीबी ने बाप से गले मिलने के बाद सबको एक-एक करके हटा दिया। आंगन में सन्नाटा छा गया।

"शैतान कहीं के !" आनाबीबी ने सबको हटाने के बाद कहा। फिर खिलौनीवाली रेलगाड़ी, खेलने के लिए ले जाई गई कुर्सियों, बाल्टी, किताबों और बहुत सी अन्य चीज़ों को आंगन में इकट्ठा करके रख दिया।

आरिफ़-अका सिर्फ़ बनियान में बाहर निकल आये। उन्होंने सोरि के चारों ओर पानी छिड़काया।

रेडियो से ओपेरा के उदास गीत सुनाई दे रहे थे। दमघोंट हवा में धीरे-धीरे आरामदेह, शीतल प्रवाह आने लगी। चाय के बाद आरिफ़-अका ने पुस्तकें, समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं के पुलिन्दे लाकर तख़्ते के ऊपर मेज़ पर रख लिये। कई दिनों से वह पहाड़ी इलाक़ों की आर्थिक व्यवस्था का अध्ययन कर रहे थे।

दस्तरख़ान साफ़ करने के बाद आनाबीबी ने आकर बिजली जला दी।

"मरियम चाची को देखा, अब्बाजान?"

"हाँ देखा, तुझे सलाम कहा है।"

"क्या होटल में सोये थे?"

"हाँ..."

आनाबीबी कभी इधर, कभी उधर फिरती हुई कोई न कोई काम करती रही और बराबर बोलती भी रही।

"होटल सुन्दर होगा, न? खिड़कियाँ बड़ी-बड़ी! आप चौथी मंज़िल पर थे न, पिताजी!"

"क्या? हाँ, हाँ। चौथी मंज़िल पर।"

"अंगारों की तरह लाल रंग के गलीचे बिछे होंगे। अच्छा रहा, न, अब्बाजान?!"

"यह तो अपने मिज़ाज पर निर्भर करता है, बेटी। यदि दिल प्रसन्न हो, ख़ुश हो, काम से संतुष्ट हो तो सब अच्छा लगता है।" आरिफ़-अका पहलू के सहारे लेटकर अपने नोट बुक में कुछ लिख रहे थे। पुस्तकों में काग़ज़ रखकर निशान बना रहे थे।

"ठीक कहते हैं, अब्बा, मेरा भी मिज़ाज विविध प्रकार का होता है। कभी अच्छा, तो... क्यों अच्छा, कभी बुरा-शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता," आनाबीबी तोशक पर अपने लम्बे पतले पैरों को आँचल से लपेटकर बैठ गयी।

"तैमूर की क्लास में एक दिन ख़ूब गर्मागर्म बहस हुई। तैमूर कहता है, हरेक चीज़ का वर्णन किया जा सकता है, सब कुछ समझाया जा सकता है। उसने सुख का भी, मनोभाव का भी और मुहब्बत का भी वर्णन किया..."

"क्या कहा?"

"वाह, मुझे क्या कोई याद है?! फिर कामीला आपा ने उसे ख़ूब सबक़ सिखाया। उनकी कामीला आपा नाम की अध्यापिका है। इसी साल आयी है। एकदम जवान है और अध्यापिका–अजीब लगता है। उसी कामीला आपा ने कहा: "अच्छा, तो गुलाब की बू का वर्णन करो।" यह कहते हुए आनाबीबी हँस पड़ी। "तैमूर वर्णन न कर पाया, बड़ा शर्मिंदा हुआ। अच्छा रहा, आगे डींग न मारेगा, ठीक है, न अब्बा?"

"हाँ, बेटी, दुनिया में ऐसी बहुत-सी चीज़ें हैं, जिनका शब्दों में

वर्णन नहीं किया जा सकता," आरिफ़-अका बोले और पुस्तक बन्द करके एकटक देखने लगे।

रेडियो बन्द हो गया। केवल बत्ती खर्र-खर्र करके जल रही थी। काफ़ी देर बाद देखा तो आनाबीबी जहाँ बैठी थी, वहीं कंबल ओढ़कर लेट गयी थी, उसकी आंखें बन्द हुई जा रही थीं।

"अब मेरा मिज़ाज बड़ा अच्छा है," उसने नीन्द से बोझिल होती बरौनियों को उठाने में असमर्थ बड़े प्यारे ढंग से होंठों में किसी मीठी चीज़ का स्वाद लेते हुए कहा। "क्यों अच्छा है, वह भी जानती हूँ। क्योंकि आज आप घर पर हैं..." और इतना कहने के बाद वह ऊँघने लगी।

आरिफ़-अका उसके छोटे से मासूम चेहरे को ताकते रहे, मन अजीब-सा हुआ। काफ़ी समय तक किसी काम में उनका जी नहीं लगा।

फिर बत्ती बुझाकर, आनाबीबी को कंबल से अच्छी तरह ओढ़ाकर काँपियाँ उठाकर पंजों के बल मकान के अन्दर चले गये।

वह इलाक़ाई समाचार-पत्र के पुराने अंक पलट रहे थे कि एक विशिष्ट समारोह अंक के मुख पृष्ठ पर एरगश की तसवीर मिल गयी। "सि-मयाग़ाच" मुस्कुराऊँ, न मुस्कुराऊँ सोचते हुए, अस्पष्ट भावना से आंखें फाड़कर खड़ा था। तसवीर के नीचे उसी का लिखा लेख था। एरगश सभी पहाड़ियों से स्वेच्छा से जाकर स्तेपी में बसने की अपील कर रहा था। वह विश्वास प्रकट कर रहा था कि हमारे बीच अतीत के पुनर्वास न चाहने जैसे अपमानजनक अवशेष न मिलेंगे। एरगश का वह लेख ऐसी भाषा में लिखा गया था कि भाषा के विशेषज्ञ भी उसका पीछा नहीं कर सकते थे। "शेर की तरह चौड़े वक्षवाले देशभक्त बहादुरों के साथ स्तेपी को खेती योग्य बनाने जाने का सुअवसर मिला – यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है।"

उन महीनों के हरेक दिन के समाचार-पत्र "शेरों की तरह चौड़े वक्ष-वाले बहादूरों" की अपीलों, आह्वानों से भरे थे। उनसे ऐसा लग रहा था कि स्तेपी में सुख समृद्धि, खज़ाने यों ही पड़े हैं और अब तक किसी के मन में जाकर उन्हें अपनाने की बात न आयी हो। इसी लिए पहाड़ी बा-ग़बानों के गांवों का पुनर्वास करने पर कोई वाद-विवाद, कोई मतभेद नहीं हुआ। कोई कठिनाई अथवा उलझी हुई समस्या सामने न आयी।

आरिफ़-अका ने फिर से एरगश की तसवीर ध्यान से देखी। यहाँ वह

कितना सामान्य लग रहा था। उसकी दृष्टि की घबराहट, उसके शब्द और विचार। और सुबह शहर में मिला एरगश बिलकुल इससे भिन्न था। उसकी आँखों में देखकर, सीधी-सादी बातें ध्यान से सुनकर उसके विचारों, दर्द, मन की भावनाओं का एहसास किया जा सकता था।

नहीं, जीवन को अधिक सरल नहीं बनाया जा सकता है। वह अपने उलझन भरे विकट प्रवाह पर चलता रहता है। आरिफ़-अका को लीजिये, वह दिन-रात सफ़र में, खेत में, दफ़्तर में हैं। जिन लोगों से उनकी मुलाक़ात हुई, वे सब शेर की तरह चौड़े वक्षवाले बहादुर नहीं हैं, एक दूसरे से मिलते-जुलते नहीं, हरेक की अपनी दुनिया है मगर हरेक एक अलग, बेजोड़ खज़ाना है। हरेक सामूहिक या सरकारी फ़ार्म की अपनी समस्याएँ, अपनी श्रेष्ठताएँ, अपनी कठिनाइयाँ हैं। ऊसर भूमि को खेती योग्य बनानेवाले वास्तविक बहादुर-सेना में नौकरी से लौटे युवक, उच्च शैक्षणिक संस्थाओं के डिप्लोमा लेकर आये विशेषज्ञ, स्कूल में शिक्षा समाप्त करके आये कोमसोमोल अथवा कल-कारखानों के प्रशंसा-पत्रों पर आये स्वयंसेवक हैं। यही सैंकड़ों लोग नयी भूमि पर स्थायी रूप से बस रहे हैं। जो लोग प्रशासकीय रूप से लाये गये, जो लोग भूल से आए और अपने बाग़ों से वियोग का दुख न सह सके, यहाँ की स्थिति के आदी नहीं हो सके, वे चले जा रहे हैं। हरेक का आना भी और जाना भी एक अलग घटना है। बहुत से विचार और ख़ज़ाने आदमी के व्यवहार से, परिवार, मनोभाव, व्यवसाय, भाग्य से संबद्ध हैं।

नहीं, आदमी को, जीवन को अधिक सरल नहीं बनाया जा सकता है। पिछले कुछ दिनों से स्वयं आरिफ़-अका भी इस जीवन के साथ पूर्णतः तन्मय होकर अपने आप में जोश, उत्साह व संतोष पाने लगे थे। दूरवर्ती गांवों में जाते, सभा-सम्मेलनों में पहले की तरह मौन नहीं बैठते, यहाँ तक कि कोलख़ोज़वालों के शिविर में भी भाषण देते थे। बहुत से लोगों से उनका झगड़ा हुआ, बहुत से लोगों से उन्होंने दोस्ती की, विकट मामले सामने आने पर रातों की नीन्द ख़राब की। इसके फलस्वरूप अब उन्हें सर्वत्र या तो लोग प्यार करते या तो बुरा मानते। अब कोई उनके प्रति उदासीन नहीं रह सकता था, देखकर अनदेखा नहीं कर सकता था।

एक दिन वह दूरवर्ती सरकारी फ़ार्म से देर से लौटे तो सुबह कार्यालय भी देर से पहुँचे। आकर देखा, केबिन लोगों से खचाखच भरा है। कई

सामूहिक फ़ार्मों के अध्यक्ष, सरकारी फ़ार्मों के डाइरेक्टर और संपादक नज़ारोव भी था। आरिफ़-अका की दृष्टि तुरंत तोलागान पर भी पड़ी। उसे ख़ुद उन्होंने बुलवाया था। वह भूल गये थे।

"माफ़ कीजिये," उन्होंने उपस्थित लोगों का अभिवादन करके कहा। फिर सब को एक साथ अन्दर आने के लिए आमंत्रित किया। कमरा छोटा-सा था, मामूली कुर्सियाँ बेतरतीब पड़ी थीं, आलमारियाँ कुछ खुली थीं, किताबें यहाँ-वहाँ पड़ी थीं, कहीं-कहीं फूल भी रखे थे।

यह प्रथम सेक्रेटरी का केबिन नहीं बल्कि शोध प्रबन्ध पेश करनेवाले किसी युवा छात्र का कमरा लग रहा था। अपनी मेज़ पर जाने से पहले आरिफ़-अका तोलागान के पास जाकर बैठ गये।

"फ़िरूज़ा कैसी है?"

"ठीक हो गयी है, आरिफ़-अका, शुक्रिया। मैं... मुझे थीसिस का समय बढ़ाने की इजाज़त मिल गई। यह उसी का तार है।"

"क्यों?" आरिफ़ अका ने तार ध्यान से पढ़ा।

तोलागान ने काले हाथ से अपने उभरे माथे को सहलाकर चारों ओर इस प्रकार देखा मानो पूछना चाहता हो "क्या, बता दूं?" आस-पास के लोग जब अपनी बात करते तो कान दूसरे की बातों पर लगाये रहते।

"तो, क्यों?" आरिफ़-अका ने फिर से पूछा।

"आप ने जिस आर्थिक समिति के बारे में कहा, वह तो पूरा एक संस्थान ही साबित हुआ!"

"अच्छा?"

"मैं उसी के चक्कर में फँसकर रह गया हूँ, आरिफ़-अका। हम अंधे थे, रास्ता टटोलकर चलते थे। घरेलू अर्थव्यवस्था के जिस हिसाब-किताब की आप ने चर्चा की, वह मेरे विचार से एक प्रकार का ख़मीर है। सब की आँखें खुल गयीं, सब प्रयत्न करने लगे। सबके सब किसी प्रक्रिया में किसी के हित को क्षति न पहुँचाने के लिए प्रयत्नशील हैं। हरेक आदमी स्वतंत्र है, पर दूसरों के लिए उत्तरदायी। अगर उसकी आय कम होती है तो अब वह जानता है, इसके लिए मशीन ऑपरेटर दोषी हैं, हवाबाज़,* पानी देनेवाला या कोई और। "पानी दफ़्तर" अपनी रिपोर्ट में

---

* आज खेतीबाड़ी में हवाई जहाज़ का भी इस्तेमाल हो रहा है।

पानी को डेढ़ गुना अधिक करके लिखता था। कल पशुपालक फ़ार्मों में जाकर देखा तो वहाँ बिजली के भी, पानी के भी मीटर लगा दिये गये। अब टोली के हर अध्यक्ष उत्पादन का लागत मूल्य साल के अंत में नहीं, बल्कि हरेक माह में जान सकते हैं। हमने हिसाब करनेवालों को शिक्षा दिलानी शुरू कर दी है। तोलागान ख़ुशख़बरी सुनाने आये बच्चे की तरह घबराकर बड़ी तेज़ी से बोल रहा था। उसने नत्थी किये काग़ज़ निकाले। "यहाँ हमारी संभावनाएँ लिखी गयी हैं। अभी पता चला कि लाखों रूबल की हम फ़िज़ूलख़र्ची कर रहे थे। यदि अगले वर्ष योजना नहीं बढ़ाई गयी तो हमारा सरकारी फ़ार्म लागत कम करके पहली बार मुनाफ़ा पा सकेगा।"

"यदि योजना नहीं बढ़ाई जाये?"

"जी हाँ।"

"यह हम देखेंगे..." आरिफ़-अका ने तोलागान के हिसाब-किताब के काग़ज़ात देखते हुए कहा। दूसरे लोगों को भी यह बातचीत रोचक लगी थी और अपनी-अपनी जगह से उठकर उन्होंने इन दोनों को घेर लिया था।

"देखिये, तोलागान, समिति में और कई समस्याएँ उठाई जानी चाहिए: सबसे पहले "अफ़ग़ानी" पर क़ाबू पाने की समस्या! वैज्ञानिकों से संपर्क स्थापित कीजिये। अपनी संभावनाओं का हिसाब कर लीजिये: क्या आप स्तेपी में पेड़-पौधे लगाने के लिए विशेष टोलियाँ स्थापित करने में समर्थ हैं?

"दूसरी बात, पुराने बाग़बान-किसानों को उनकी इच्छा, आयु, काम और समय को ध्यान में रखकर उनके लिए सरकारी फ़ार्म की बस्ती में बाग़ लगाने के लिए सुविधाएँ देने की निश्चित व्यवस्था कीजिये।"

तोलागान सब कुछ लिखता जा रहा था। आस-पास के लोगों में भी जैसे प्राण आ गये थे, शोर मचने लगा।

"आरिफ़-अका! कॉमरेड आचीलोव..."

"क्यों..."

आरिफ़-अका ने अभी अपनी बात नहीं समाप्त की थी:

"चूंकि समिति ने अपना काम शुरू कर लिया है, हम उसे काम सौंपेंगे। इलाक़ाई समिति आप को पहला काम यह सौंपती है कि प्रतियोगिता

में प्रथमता की कसौटी वैज्ञानिक ढंग से तैयार की जाये। क्या काम सबसे पहले पूरा करनेवाला जीतेगा अथवा दूसरी शर्तें ध्यान में रखी जायेंगी? उदाहरण के लिए उत्पादन का मूल्य या सामूहिक फ़ार्म में प्रशासकीय क़दम... हाँ, ज़ियाख़ानोव कैसे हैं, मदद दे रहे हैं?"

तोलागान यह न जानते हुए कि क्या बताये, कंधे हिलाकर सोच में डूब गया। इतने में फ़ोन बज उठा। आरिफ़-अका ने जाकर रिसीवर उठायी:

"हाँ कौन?.. वाह सिमयागाच!" वह प्रसन्नतापूर्वक बोल उठे फिर थोड़ा झेंपकर आस-पास के लोगों से कहा, "माफ़ कीजिये!" फिर फ़ोन पर बोले, "हाँ तो, सुन रहा हूँ, एरगशबाय!.. बाग़ कैसे हैं? क्या-क्या, कौन?" आरिफ़-अका कुछ मौन रहे, उनका चेहरा पीला पड़ गया। "कब? मुहल्ले में। अच्छा: अस्पताल में। हाँ... बाद में नहीं आया?" और रिसीवर रखकर उन्होंने लोगों की ओर देखा। पर शायद उन्हें कुछ भी नहीं दिख रहा था। फिर ख़ुद को संभालकर याद करने की कोशिश की कि बातचीत कहाँ आकर रुक गयी थी। सामने नज़ारोव को देखकर मज़ाक़ करने की कोशिश की।

"आप का नायक... एरगश!"

संपादक शायद नहीं समझ पाया। मज़ाक नहीं समझने के कारण कोई नहीं हँसा। आरिफ़ अका के चेहरे के भाव परिवर्तन को न देख पाने से एक डाइरेक्टर ने अपनी बात जारी रखी:

"कॉमरेड आचीलोव, हमारे यहाँ क्यों नहीं है ऐसी समिति?"

"हाँ, ठीक बात है। क्यों? हमारे सरकारी फ़ार्म क्या किसी से कम हैं?"

"क्या हम पीछे रहेंगे?"

"पता नहीं..." आरिफ़-अका मुस्कुराकर बोले। उन्हें बीच में छूट गयी बात याद आ गयी। देखा, मुलाक़ात के लिए आये सभी लोग अपना-अपना काम भूलकर तोलागान की बात की ओर उन्मुख हो गये थे। अब अन्य सभी समस्याएँ उन्हें गौण लग रही थीं। "इलाक़ाई समिति उसे सभी सामूहिक-सरकारी फ़ार्मों के लिए प्रयोग केन्द्र बनाने के बारे में सोच रही है," उन्होंने समझाना शुरू किया। "हमारी यह भी इच्छा है कि भविष्य में इन्हीं आर्थिक समितियों के आधार पर कृषि की अर्थव्यवस्था

के क्षेत्र में वैज्ञानिक अनुसंधान करनेवाली संस्था स्थापित की जाये जिस में स्वयंसेवक काम करें... लेकिन नाम देना आसान है। इस के बारे में अभी बहुत कुछ सोचना, परखना, बहुत काम करना है। अगर चाहते हैं तो तोलागान आप को विस्तार से बता सकता है। विचार-विनिमय कीजिये। मैं... मेरा एक बहुत ज़रूरी काम है।"

वह कोलाहल भरे कमरे में इनको छोड़ बाहर चले आये पर सीढ़ियों के नीचे रुक गये। आखिर कहाँ जाना है? वह जानता था, उसे कहीं जाना है, जल्दी करनी है। लेकिन कहाँ? किस लिए?

आरिफ़-अका ने अपने को हड़बड़ाकर घर जाते हुए पाया। हाँ, घर, आनाबीबी के पास। नहीं तो और कहाँ जा सकते हैं वह? उन्हें जल्दी ही आनाबीबी को देखना है... एरगश ने फ़ोन पर उन्हें एक बुरी ख़बर सुनाई थी। आनाबीबी का बाप, इस्रोईलोव नामक आदमी शिविलगोन में भटकता फिर रहा था। उसने लोगों से अपनी बच्ची के बारे में पूछताछ की थी, मुहल्ले की समिति और अस्पताल में भी। "मालूम होता है, उसके इरादे ठीक नहीं, इस लिए आप को आगाह करना उचित समझा," एरगश ने कहा था। क्या इरादा हो सकता है उसका? आनाबीबी पर उसका ज़रा भी हक़ नहीं!

फिर भी आरिफ़-अका के दिल की धड़कन अचानक इतनी तेज़ हो गयी थी कि वह डर गये। रास्ते में सलाम कहनेवालों को भी जवाब देने तक की सुध उन्हें न थी। वह हड़बड़ाये चले जा रहे थे। दरवाज़े के पास रुककर माथे का पसीना पोंछा, साँस पर क़ाबू पाया।

दरवाज़ा अन्दर से बन्द था। छेद में हाथ डालकर खोलना चाहा तो जल्दी नहीं खुला। उनके हाथ काँप उठे। किसी न किसी तरह खोल ही लिया। आँगन सुनसान पड़ा था। लेकिन उनका मन न जाने कैसा हो गया। रोएँ खड़े हो गये थे। उन्होंने आवाज़ दी, "आनाबीबी!"

कोई जवाब नहीं मिला। बस पड़ोसी का कुत्ता ही भोंका।

आरिफ़-अका की ताक़त जवाब दे गयी। अशक्त पैरों को घसीटते हुए घर के अन्दर पहुँचे। अगर उसी क्षण नींद भरी आंखों को मलती, आनाबीबी उनके सामने आ खड़ी न होती तो वह शायद गिरकर बेहोश हो जाते। उन्होंने बेटी को बाँहों में भर लिया। इस छोटी-सी, दुबली-पतली लड़की ने उन्हें एकदम बल प्रदान किया। फिर भी आनाबीबी कुछ शायद

समझ गयी थी। बाप ने कभी हड़बड़ाते हुए आकर उसे माथे पर इस तरह काँपते हुए नहीं चूमा था, बालों पर इस तरह हाथ नहीं फेरे थे, कभी ऐसे खौफ़ से नहीं देखा था।

"क्या हो गया, अब्बा? क्यों इतनी जल्दी आ गए?"

जवाब दिये बिना आरिफ़-अका ने फिर उसे सीने से लगा लिया। फिर उसके पास वह ड्योढ़ी पर बैठ गये।

"आप को पसीना आ रहा है। आँख लग गयी थी। बड़ी उमस है। मैं चाय बनाऊँ?"

"छोड़ो, आनाबीबी..." आरिफ़-अका ने उसका हाथ पकड़कर कहा। फिर क्या कहें जब कुछ सूझा नहीं तो छोड़ दिया। "हाँ, अच्छा, जाओ, चाय बनाओ!"

इसी दिन से आरिफ़-अका घर से कम निकलने लगे। अगर निकलते भी तो जल्दी ही लौट आते। हड़बड़ाये हुए घर में प्रवेश करते और जब आनाबीबी की आवाज़ सुनाई दे जाती तभी आपे में आते।

छुट्टी के दिन आनाबीबी को शहर ले जाकर घुमाया, अपनी कला का प्रदर्शन करने आये थियटर की अदाकारी में "डॉक्टर आयबलीत" नामक ओपेरा सुनवाया, फ़ाक खरीदकर दिये। विविध उपहारों की गठरी लेकर वे लौट आये।

आनाबीबी उन दिनों कुछ बड़ी लगने लगी, कुछ मोटी हो गयी, बदली-सी। उसकी खुशी का कोई ठिकाना नहीं था, जब हँसती तो चेहरे से नूर बिखरता था। लेकिन उसके खिलने के साथ ही साथ आरिफ़-अका के मन पर बादल छा जाते। उन्हें इस्राईलोव का ख्याल सताता रहता। शायद किसी दिन आ धमके। लेकिन प्रतीक्षा उसके खुद आ धमकने से अधिक कष्टमय थी। आज आएगा, कल आयेगा, रात को भी आरिफ़-अका उसी के बारे में सोचते रहते। "क्या करेगा आकर, क्या मुँह लेकर आयेगा? गांव में गया, तो जाने दो..." पर जब सोने को आँखें बन्द करें तब कोई शोर सुनाई देता, लगता, कोई भड़ाक से दरवाज़ा खोलकर आ रहा हो।

सबसे बड़ी बात इस स्थिति को आनाबीबी से छुपाने की थी। आरिफ़-अका झूठ बोलने, दोमुँही बातें करने के आदी नहीं थे...

दो सप्ताह तक इसी तरह दिन रात एक ही दुश्चिन्ता में पड़े रहने के

कारण आरिफ़-अका घँबरा गये। इस्राईलोव न आया। उसकी बदमाशी पर आरिफ़-अका का विश्वास और पक्का हो गया, उनकी घृणा बेतरह बढ़ गयी थी। इसी घृणा ने घबराहट को थोड़ा कम कर दिया। आरिफ़-अका सामान्य ढंग से जहाँ ज़रूरत पड़ती आने-जाने लगे, काम पुराने ढंग से चलने लगा, पर इसके साथ ही दिल में यह निश्चय कर लिया कि उस बदमाश को ज़रूर ढूँढ़ निकालूँगा! ज़रा यह काम समाप्त हो जाये और वह कहीं भी न जाये तो उसे ढूँढ़ लूँगा, उसके मुँह पर थूककर कोप उतारूँगा।"

गर्मियों में एक तेज़ धूपवाले दिन आरिफ़-अका एरगश को दिये वायदे के अनुसार बाग़ो को देखने भूतपूर्व कोयकि इलाक़े को रवाना हो गये। स्तेपी, वादी, पहाड़ी ढलानें—सब सूखकर पीली हो गयी थीं और बर्फ़ से ढकी चोटियों के नीचे बसे पहाड़ी गाँव हरे-भरे थे। पहाड़ी खड्डों में लगे पिस्ता के बाग़ काले-काले से दिखाई दे रहे थे। सरिताओं की अनवरत कलकल ध्वनि सुनाई दे रही थीं, चट्टानों के नीचे रह गये अखरोट से आयोडिन की बू आ रही थी जिसे नम हवा धीरे-धीरे चारों ओर फैला रही थी।

यहाँ कोई नहीं, सांप के निशानों-सी पगडंडियों पर घास-पात उग गये थे, ऊबड़-खाबड़ स्थान, ढूह व ढलानें—सभी जगहें हरी-भरी हैं। कभी अगर आप चट्टान पर चढ़ जायें तो एक विलक्षण दृश्य आपको दिखाई देगा। अल्हड़ ढंग से उगनेवाले बाग़ों से उठती हल्की-सी भाप नीलाभ पारदर्शी पर्दे की तरह पहाड़ी वादियों को छुपा-सी डालती है और यदि ध्यान से देखें तो दूर की चोटियाँ, पहाड़, पोपलर के पेड़ परीकथाओं में वर्णित बहुत सी मीनारोंवाले क़िले का आभास कराते हैं।

जब आरिफ़-अका ऐसी एक चट्टान पर चढ़े तो उन्हें आँखों को चौंधियानेवाली एक चीज़ दिखाई दी। बेशक यह कोई मोटर ही थी; मोटर का आगे का शीशा सूरज में इस तरह चमक रहा था। पर यह कौन है, सड़क के बिना कैसे आया यहाँ, क्या कर रहा है?

पत्थरों से कूदते, छलांग मारते आरिफ़-अका दौड़कर नीचे आ गये। पर मोटर तक पहुँचने के पहले ही ठिठककर रुक गये: देखा, ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर धीरे-धीरे क़दम रखती मरीया वसील्येवना चली आ रही थी।

वह अकेली थी, लड़कियों की तरह छोटे आस्तीनवाला फ़ाक, एड़ी

रहित जूते पहने और सफ़ेद पतला-सा रूमाल सिर पर इस तरह बांध रखा था कि चेहरे पर सूरज की किरणें न पड़ें। उसका चेहरा और बाँहें गर्मी से लाल हो गयी थीं। आरिफ़-अका छाया में खड़े-खड़े दूर से उसे देखते रहे। वह जानते थे, मरीया वसील्येवना के यहाँ आने का कारण वही हैं। चाहे जो भी हो, उसका आना आरिफ़-अका के लिए एक अप्रत्याशित आनन्दायक बात थी। हालाँकि वह अपनी प्रसन्नता व्यक्त नहीं करना चाहते थे, पर उन्हें लगा शायद उनकी बातों का प्रभाव पड़ा था।

मरीया वसील्येवना ने भी आरिफ़-अका को देख लिया और रंगे हाथ पकड़े गये बच्चे की तरह लाल हो उठी। उसे मालूम था, आरिफ़-अका सोचेंगे, मेरी बातों के प्रभाव से कोयकि देखने आयी है। सो मरीया वसी-ल्येवना पहले बोल उठी:

"यूँ ही कुछ साफ़ हवा खाने... थकावट दूर करने चली आयी। स्तेपी में चलते-चलते फेफड़ा धूल से भर गया।"

"नहीं, मरियम, सच बताओ, मेरी बातों के बाद पहाड़ी इलाक़े में दिलचस्पी पैदा हुई न? आदमी को अवश्य वह काम करना चाहिए जिस में उसका मन लगता है। अच्छा किया तुमने।"

मरीया वसील्येवना ने आरिफ़-अका पर बड़ी तीखी नज़र डाली मानो कह रही हो: छलिया!

खड़ी पहाड़ियों पर आरिफ़-अका शिष्टाचार वश उसका हाथ धीरे से थाम उसकी मदद करते।

"क्या तुम समझते हो, मेरे लिए रमणीय स्थानों की यात्रा करना, पहाड़ों की यूँ ही सैर पर निकल पड़ना शर्म की बात है? अगर तुम आ-र्थिक समिति के आँकड़ों में जी जान से रम सकते हो तो क्या मैं थोड़ी भावुक नहीं हो सकती?"

दोनों ठहाका लगाकर हँस पड़े और उनकी हँसी चारों ओर गूँज उठी। मरीया वसील्येवना के गालों के गड्ढे झलक उठे। आरिफ़-अका को ऐसा लगा मानो मजदूर संकाय की वह मोटी-सी आग जैसी लड़की दिख गयी हो।

"अच्छा सुन लिया?"

"और कैसे सुना! सामूहिक फ़ार्मों में बाक़ी सारा काम ठप्प है। सब सुन चुकी हूँ। सोवियतों के सदस्यों के कमरे ख़तम किये जाने, पार्कों से

पोस्टर हटवाने, पहाड़ियों को सरकारी फ़ार्मों से गांव लौट जाने की इजाज़त देने, शिक्षा प्रणाली, समाचार पत्रों के काम में दख़ल देने के बारे में भी... मैं बस यही नहीं जानती, अब और क्या करिश्मा दिखाओगे!"

आरिफ़-अका हँसते रहे। मरीया वसील्येवना की इस बात का अर्थ यदि उसके काम की सराहना नहीं तो निन्दा भी नहीं थी। एक ढलान पर चढ़ते समय उन्होंने जड़ से उखड़कर रास्ते पर गिरे काले पोपलर के पेड़ पर बैठकर आराम किया। दायीं ओर एक जैसा परिधान पहने, क़द और शक्ल से भी एक जैसे देवदार पहाड़ी पर चढ़नेवाले सैनिकों की क़तारों की तरह खड़े थे। यहाँ शायद हमेशा विराट सन्नाटे का राज रहता था।

अभी ज़मीन, घास-पात और फूलों पर हल्की शबनम छिड़की-सी है। आसमान साफ़ होने के कारण सारी वादी एकदम स्पष्ट दिखाई देती है मानो अगर शबनम से भीगी इन पगडंडियों पर नंगे पैर चलकर ज़मीन से अपनी एकता का एहसास किया जाये तो मन शांति और नेकी से लबालब हो जाता है।

"ये स्थान आदमी के सुन्दर विचारों से मिलते-जुलते हैं, मरियम। आदमी चल बसता है। उसके सुन्दर विचार रह जाते हैं।"

मरीया वसील्येवना एक पत्ती लेकर उसे उलट-पलटकर देख रही थी मानो पहली बार देखा हो। उसकी कोमल धारियों को वह देर तक ताकती रही।

"देखती हो, यदि इसकी धारियों, रूप-रंग, आकार-प्रकार को ध्यान से देखा जाये तो इस छोटी-सी पत्ती में भी नियम हैं। आनाबीबी के साथी तैमूर के कथनानुसार नियम संयोगों से पैदा होते हैं..."

मरीया वसील्येवना पत्ती के अजीब ढंग से उलझे किन्तु नियमबद्ध रूप-रंग को किसी कलाकृति की तरह निहारते हुए आनन्द ले रही थी। यह देखकर आरिफ़-अका को बड़ी संतुष्टि महसूस हुई, वह कुछ बातूनी हो उठे।

कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार हरेक चीज़, यह पत्ती और आदमी भी एलेक्ट्रोनों की विशेष मिलावट से बने हैं। करोड़ों साल बाद यह मिलावट अगर संयोग से दोहराई गई तो आदमी दोबारा पैदा हो सकता है। यदि, जैसा कि तैमूर कहता है, नियम संयोगों से पैदा होता है तो..."

"अच्छा मौक़ा हाथ लगा है!"

"लेकिन मुझे अच्छा नहीं लगता। एलेक्ट्रोन, मेल, नियम... स्वर्ग नरक, उस दुनिया के बारे में अफ़साने इससे कहीं अधिक सुन्दर हैं..."

"दोबारा रहने के मौक़े से संतुष्ट न होकर सौंदर्य की भी मांग कर रहे हो।"

"और तुम यहाँ भी सौंदर्य को भूल रही हो!"

"बात तो विज्ञान पर हो रही थी, शायद।"

"आदमी की आध्यात्मिक दुनिया की बात चल रही है..."

वे फिर चुप हो गये। जब तेज़ धूप के कारण उमस बढ़ गयी, वे उठकर चल पड़े। आरिफ़-अका ने पत्थर के नीचे से निकलनेवाले चश्मे में लेटकर पानी पीया। पानी बड़ा सर्द था, दांत टीस उठे। उन्होंने मरीया वसील्येवना को दोलाना* चुनकर दिये। फिर इस्राईलोव की बात छिड़ गयी। उसके शिविलग़ान में आने के बारे में अपनी घबराहट, आनाबीबी के भी कुछ एहसास करने के बारे में, रात को आकर पिता की नीन्द की ख़बर लेने – सब कुछ के बारे में विस्तार से बता दिया।

"नहीं, मैं उसे ढूंढ़ लूंगा, धरती पर मिला तो कान से खींचकर, आसमान पर मिला तो पैरों से खींचकर..."

"उसे ढूंढ़ कर करोगे क्या? कुछ समझ में नहीं आता," मरीया वसील्येवना ने कहा। "न्यायालय में उसपर शिकायत नहीं कर सकते, तुम्हारे पास कोई प्रमाण नहीं... वह न्यायालय में याचिका देकर बच्ची को न ले जाये यही काफ़ी है। अपनी ख़ुशी, अपनी आंखों की पुतली से महरूम होकर रह पाओगे क्या? इतनी मेहनत, इतना पालन-पोषण करने के बाद... तनहाई तुम्हें खा ही डालेगी।"

"अगर मैं उसे अपने ग़ुस्से के बारे में न बताऊँगा तो मेरा कलेजा ही फट जायेगा," आरिफ़-अका ने न जाने क्यों अधिक तेज़ी से चलते हुए कहा। फिर यह देखकर कि मरियम पीछे रह गई है, पीछे लौट पड़े।

"दूधमुँहे बच्चे को छोड़नेवाला, आदमी की मानवता की भावनाओं पर लात मारनेवाला वह हैवान है। अगर वह कहीं और यही काम कर

---

* दोलाना – पहाड़ों में उगनेवाला एक दानेदार फल। सं०

रहा हो, तो?! ऐसा आदमी यहीं कहीं चल-फिर रहा है, यह जानकर मैं कैसे चैन से सो सकता हूँ?"

"तौबा..." मरीया वसील्येवना ने कहा। उसने अपने हाथ की टहनी तोड़कर छोड़ दी। "ख़ूब आदमी मिल गया है हम को इलाक़ाई सेक्रेटरी के लिए, तुम्हें कैसे चुना गया है, मेरी समझ में नहीं आता।"

"इलाक़ाई सेक्रेटरी भी एक चीज़ है," आरिफ़-अका ने कहा। "मुझे अगर भगवान बना दिया जाये तो भी मैं ऐसे ही रहूँगा। मैं तो आदमी हूँ और इलाक़ाई समिति में सब से पहले आदमी की ज़रूरत है। फिर प्रांतीय समिति में भी। जैसे तुम ही हो, तुम ने सेक्रेटरी के कार्य के अतिरिक्त क्या काम किया?"

"क्या करना था मुझे?"

"मैं कोई बच्चा गोद लेना चाहता हूँ, आनाबीबी अपने लिए बहन चाहती है। सलाह दो, मदद करो, मुझे क्या करना चाहिए?"

आरिफ़-अका की आवाज़ कुछ भारी हो उठी थी। उसका विचार था कि मरिया "वाह अब इलाक़ाई सेक्रेटरी बच्चे के पालन-पोषण में संलग्न रहेगा!" कहकर एतराज़ करेगी। मगर मरीया वसील्येवना ने ऐसा न कहा, रुककर पहले उसकी आँखों में, फिर चौड़े वक्ष की ओर देखा। अब इस आदमी के भद्दे सवाल उसे क्रोधित नहीं कर रहे थे। उल्टे ही जब वह अकेली होती, उसके सवालों के बारे में ही सोचती, बरसों से काम में व्यस्त रहकर अपने नीरस अकेले जीवन के बारे में सोचती। आज उसे ऐसा लगा था मानो इस अजीब आदमी ने उसे एक अलग दुनिया की सैर करा दी थी।

जब सूरज शीर्ष बिन्दु पर पहुँचा, वे विदा लेने लगे। आरिफ़-अका को जाकर एरगश और मनसूर-अका के बाग़ देखने थे। और मरीया वसील्येवना को शाम को शहर में अधिवेशन में भाग लेना था।

"ख़ूब हवा खायी, बड़ा अच्छा रहा..." मरीया वसील्येवना ने मोटर की ओर बढ़ते हुए कहा। जब तक उसने दोलाना चुननेवाले ड्राइवर को बुलाया और उन्हों ने मोटर स्टार्ट की तब तक आरिफ़-अका कुछ दूरी से देखते रहे।

मोटर पर चलते समय मरीया वसील्येवना को मानो अचानक कुछ याद आ गया और वह आरिफ़-अका के पास आ गई:

"मैं बहुत बदल गई, बहुत कुछ खो दिया। यह जानती हूँ। पर कब? कहाँ?" ज़मीन पर देखकर उसने कंधे हिलाये। "यह सवाल तुमने पूछा था। अब मैं ख़ुद अपने आप से पूछ रही हूँ..." कुछ देर तक मौन रहकर वह फिर मोटर की ओर बढ़ गई। आरिफ़-अका धूप में लाल हुए उसके कंधे, गिरे पत्तों के क़ालीन पर उसके क़दमों को देखते खड़े रहे। जब मोटर चल पड़ी उन्हें एकाएक बहुत सारी बातें याद आ गयी और वह चिल्लाकर बोल उठे:

"आनाबीबी के लिए बहन के बारे में बातचीत करेंगे?"

"करेंगे!"

"पहाड़ी इलाक़े को पुनस्स्थापित करेंगे?"

"क्या?"

आरिफ़-अका ने दोनों हाथ मुँह के गिर्द लगाकर ऊँची आवाज़ में अपनी बात दोहरायी। पहाड़ों से उनकी बात की प्रतिध्वनि गूँज उठी? लेकिन मरीया वसील्येवना ने नहीं सुना। "मास्क्वीच" कार नीचे जंगल की धूल उड़ाती पिस्ता के घने जंगलों में ग़ायब हो गयी थी।

हालाँकि कभी-कभी आरिफ़-अका और मरीया वसील्येवना इस प्रकार एक-दूसरे के क़रीब आ जाते थे लेकिन उनका अन्तर्विरोध अपनी जगह बरक़रार रहता। विशेषकर काम के सम्बन्ध में उनके दृष्टिकोण बिलकुल अलग अलग थे। इलाक़े में भी और प्रांत में भी, पार्टी व सरकारी कर्मचारी सम्मेलनों, सभाओं और ब्यूरो में, समाचार-पत्रों में लोग उनकी कहा सुनी के आदी हो चुके थे और यदि उनमें से एक भाषण देना शुरू करता, दूसरा बोलने के लिए बेसब्री से अपनी बारी का इन्तज़ार करता। अगर कभी उनकी कहाकही न हुई तो सभा अरोचक लगती थी।

पर इलाक़े की पार्टी समिति के अंतिम पूर्ण अधिवेशन में उनकी कहा-सुनी सब से बड़ी रही। इसकी ख़बर अन्य इलाक़ों तक पहुँच गयी और सारी जनता में फैल गई। जहाँ चार व्यक्ति इकट्ठे हो जायें वहीं "आचीलोव का हाल फिर से उतावला सो बावला जैसे हो गया", "ख़ूब किया! कब तक...", "अब क्या होगा?" जैसी हलचल की बातें सुनाई देतीं। वास्तव में कुछ नहीं हुआ था। बस आरिफ़-अका ने उस अधिवेशन में अपने मन की सब बातें बता दी थीं।

उनके प्रमुख प्रस्ताव यही थे: पहाड़ों से स्तेपी में लाकर बसाए गए

लोगों में अगर अपने गाँव लौटने की मांग करनेवाले हों तो उन्हें इजाज़त दी जाये, सरकारी फ़ार्मों में स्थाई तौर पर रहनेवाले सभी लोगों को दो साल में बाग़ लगाने की शर्त के साथ भूमि दी जाये, सरकारी फ़ार्मों की देश को कपास बेचने की योजना दो साल तक नहीं बढ़ाई जाये और आयोजित रूप से अधिक कपास बेचनेवालों को प्रोत्साहन दिये जायें, भूतपूर्व पहाड़ी इलाक़े कोयकि को पुनरस्थापित किया जाये और उसकी विशेष अर्थव्यवस्था पर ख़ास तौर से ध्यान दिया जाय! ..

इन प्रस्तावों को पेश करने से पहले आरिफ़-अका बहुत-सी संस्थाओं के अनेक अधिकारियों की कटु आलोचना की, बताया कि कुछ लोग मानसिक दुनिया भूलकर बड़े पाखंडी बन गये हैं, कमज़ोर बन गये हैं। विशेषकर ज़ियाख़ानोव की, यहाँ तक कि मरीया वसील्येवना की भी उन्होंने कड़ी आलोचना की। "यह ठीक है कि कठिनाइयों और कड़ी मेहनत के हिसाब पर रिपोर्ट लिखने का दौर ख़तम हो चुका है। लेकिन मुझे अब दूसरी ख़ामियाँ पेश आयीं महसूस होती हैं उदाहरण के तौर पर कुछ अधिकारी स्रष्टा नहीं बल्कि यूँ ही अदाकार बन गये हैं। जिस चीज़ को हम नेतृत्व कहते हैं, वह निर्देश देनेवाली एक मशीन लगती है। जनता को स्पष्ट है कि हममें अधिकांश सुधबुधवाले लोग हैं। पर क्या वह यह जानती है, हमारा कोई दिल भी है? अगर जनता नेता को बेदिल समझे, तो यह विडंबना होगी!"

जब आरिफ़-अका बोल रहे थे मरीया वसील्येवना कई बार उठ खड़ी हुई। यह हॉल में उपस्थित लोगों के लिए सामान्य बात थी पर बात उस हद से अधिक बढ़ जाने से हॉल में शोरगुल मच गया था। इस कहासुनी के प्रति कोई भी बेपरवाह नहीं रहा। रह-रहकर हॉल में शोर मच जाता, कहीं-कहीं तालियाँ बजायी जातीं, इसके बाद फिर से सन्नाटा छा जाता।

"आपका कोई भी प्रस्ताव राष्ट्रीय महत्व नहीं रखता," मरीया वसील्येवना ने कहा। जब झगड़ा गर्म होता जाता, वे एक-दूसरे को "आप" कहना शुरू कर देते थे।

"यही बात तो है," आरिफ़-अका बरस पड़े। "जब हम किसी पद पर बैठ जाते हैं, ख़ुद को देश के हित का एकमात्र रक्षक समझने लगते हैं, गोया दूसरे लोग देश के हित का हम जितना आदर नहीं कर सकते, गोया हमें उनसे देश की रक्षा करनी है। यहाँ बैठा हरेक आदमी

जानता है, हमारे देश को उत्तरोत्तर मज़बूत होना है। पर यहीं बैठे, खेतों में काम करनेवाली हमारी जनता ही देश नहीं है क्या? उनका हित, उनकी समृद्धि, उनका संतोष, उनका सुख देश का हित नहीं है? क्या देश से लोगों का संतोष, देश पर उनका विश्वास, उनकी ख़ुशहाली, देश के प्रति उनकी निष्ठा और वफ़ादारी—हमारे देश की असीम समृद्धि और शक्ति नहीं है? हमारे जीवन की श्रेष्ठता यह है कि जहाँ आदमी की भलाई, आदमी का फ़ायदा है वहीं देश की भलाई, देश का फ़ायदा है।"

"उल्टी बात!"

"इसका उल्टा भी यही होगा। और अगर कोई इन दोनों को अलग अलग समझता है तो वह या तो संकुचित विचारोंवाला है या नौकरशाह।"

"आप ख़ुद उन्हीं संकुचित विचारोंवालों में से हैं!" मरीया वसील्येवना ने कहा।

"और आप नौकरशाह हैं।" आरिफ़-अका ने बात तो धीमी आवाज़ में कही थी पर हॉल में उपस्थित लोगों ने सुन लिया था। हॉल में ऐसा सन्नाटा छा गया मानो सब अवाक् हो गये हों। बस ज़ियाख़ानोव और उसके पास के कई आदमी अपनी कुर्सियाँ चरमराकर राहत से मुस्कुरा रहे थे। जब लोग यह न जानकर कि क्या कहें, मौन थे, ज़ियाख़ानोव कुर्सी की पीठ से टेककर लापरवाही से उठा। वह पुराना अधिकारी होने के नाते बहुत अनुभवी था। ऐसी हालत में अधिवेशन को उलझी स्थिति से बचाना है। मंच पर खड़े होकर उपेक्षा से नीचेवालों पर देखने का भी उसका यही मतलब था।

"हम बहुत से अधिवेशन, बहुत-सी सभाएँ देख चुके हैं। पद-विशेषों पर इतने साल तक काम करने पर भी हमने कभी ऐसी बात नहीं सुनी," उसने झुर्रियों से भरे चेहरे को सिकोड़कर कहा। "हमारे दो अगुओं के संबंध बिगड़े हुए हैं तो हमारा क्या कुसूर? हरेक बैठक में इनका झगड़ा सुनते-सुनते हमारे कान फट गये हैं। यह कब तक चलेगा? और आज प्रांतीय समिति की सेक्रेटरी को खुल्लम-खुल्ला नौकरशाह कहा गया। शायद यह सच है, शायद... ग़लत, बात यह नहीं। लेकिन हम पार्टी अधिकारियों..."

ज़ियाख़ानोव ने बहस के मुख्य विषय पर कोई ध्यान न देकर केवल

दो नेताओं के संबंधों के बारे में सोचते हुए अपना भाषण भी इसी पर दिया। आरिफ़-अका ने जो समस्या उठाई, वह गहरी थी, लोग उसपर बहस करने के लिए तैयार नहीं थे, इसी लिए अधिकांश लोग चुप रहे। और जो भाषण मंच पर आये, वे ज़ियाख़ानोव के दिखाये रास्ते पर चले।

"हम शेर के वक्षवाले पहलवानों के साथ बड़ी शान से, करनाय-सुरनाय की धुनों पर स्तेपी को बाग़ बनाने आये हैं। कॉमरेड आचीलोव हमें वापिस लौटने की इजाज़त देनेवाले हैं, यह हमारे लिए अपमान है। आप हमें क्या समझते हैं, कॉमरेड आचीलोव?"

आरिफ़-अका काग़ज़ पर सुन्दर शैली में लिखे भाषण पढ़नेवाले, सिर पर मख़मल की टोपी पहने उस आदमी को पहचान गये। यह चौथे सरकारी फ़ार्म के क्लब का संचालक – उबयदुल्लाख़ान था। वह हॉल को नहीं बल्कि अलग-अलग लोगों, पहले मरीया वसील्येवना को, और उसकी नज़र न मिलने पर प्रांतीय समाचार-पत्र के संपादक नज़ारोव को संबोधित करते हुए बोला।

फिर तोलागान बोला। वह हॉल की ओर नहीं बल्कि ज़मीन पर देखते हुए, धीमी आवाज़ में अनाड़ी भाषणकर्ता-सा बोला। उसके आँकड़ों से लबालब भाषण से यही मालूम हुआ कि यदि दो-एक साल तक योजना में परिवर्तन नहीं किया जायेगा तो सरकारी फ़ार्म अंततः अपना वज़न आप उठाना शुरू कर देंगे, कामगार राज्य का निर्देश पूरा करने और उससे भी अधिक माल तैयार करने से संतुष्ट होकर आर्थिक और आध्यात्मिक प्रेरणा पा सकेंगे। तब "अफ़ग़ानी" पर भी काबू पाया जा सकेगा, फ़सल भी बढ़ जायेगी। स्तेपी खेती योग्य बनाई गई है। यह अच्छा है। लेकिन क्या छः साल से "स्तेपी को खेती योग्य बनाया! स्तेपी का उद्धार किया!" कहकर डींग मारते रहना, ठीक है? आगे बढ़ने की भी सोचना चाहिए। आख़िर यह स्तेपी है। यहाँ लू लगातार चलती रहती है। ऐसी हालत में यहाँ बाग़ों की बहुत बड़ी ज़रूरत है। बाग़ के बिना, पेड़ के बिना यहाँ नहीं रहा जा सकता है। विशेषकर पहाड़ों की ताज़ा हवा, हरी-भरी प्रकृति के आदी हो गये लोगों के लिए... वे यह ख़ुद कोयकि के निवासी होने के कारण नहीं बता रहे हैं। बाग़ एक जायदाद के रूप में नहीं बल्कि स्वास्थ्य के लिए, आध्यात्मिक समृद्धि के लिए भी आवश्यक है। इस लिए आचीलोव के प्रस्ताव सही हैं। कोयकि इलाक़े को पुनरस्था-

पित करना भी आवश्यक है। वह तो हमारी वादी के लोगों की सैर करने की जगह, रमणीय बाग़ है। तैयार बाग़ को सूख जाने देना हमारी जनता के स्वभाव के अनुकूल नहीं।

बैठक के बाद आरिफ़-अका, मरीया वसील्येवना तथा कई अन्य लोग कैंटीन में लेमोनेड पीने चले गये।

"बैठक ख़राब हो गई..." मरीया वसील्येवना ने कहा। उसका चेहरा विवर्ण हो उठा था।

आरिफ़-अका हँसे।

"आप का भी शायद वही दृष्टिकोण है जो ज़ियाख़ानोव का है?"

"बैठक अच्छी रही," थोड़ी सी लेमोनेड पीये हुए नज़ारोव ने कहा, "दरवाज़े से निकलते ही भूली जानेवाली चिकनी बैठकों की अपेक्षा यही अच्छी है, लोगों को कुछ सोचने पर मजबूर तो करेगी।"

संध्या हो चुकी थी, हवा उमसभरी थी। आरिफ़-अका के माथे पर पसीने की छोटी-छोटी बून्दें चुहचुहा आयी थीं। वह मरीया वसील्येवना को पहुँचाने साथ-साथ निकले, घर चलकर एक प्याला पानी पीने के लिए आमंत्रित किया।

"जनता की बात सुनी?" मरीया वसील्येवना ने निमंत्रण का जवाब न देकर, अपनी कार की ओर जाते हुए कहा।

"जनता... वही उबयदुल्लाख़ान है क्या? देखो, मरियम।" आरिफ़-अका उसके पीछे-पीछे चले आये, "जनता के दिल की बात तो दूर रही, वह अपने मन के भी ख़िलाफ़ बोला। अगर उस से बातें करें तो बस यही सुनाई देगा, 'कुत्तों की ज़िन्दगी'..." और बैठक में शेर के वक्ष-वाले देशभक्त! ऐसे लोगों को हम ही लोग पाल-पोस रहे हैं।"

"आपने मुझे भी उसी में शामिल कर दिया था, याद है न?"

"क्या करूँ, बुरा लगता है मुझे!" आरिफ़-अका ने छाती पर हाथ रखते हुए कहा। जब वे मोटर तक पहुँचे, मरीया वसील्येवना उसमें न बैठकर कहीं दूसरी ओर देखते हुए सोच में डूब गई।

"ज़ियाख़ानोव की बात आज ही प्रथम सेक्रेटरी तक पहुँचेगी..."

"हाँ, ज़ियाख़ानोव ने ख़ूब किया!" आरिफ़-अका ने एकाएक याद करके कहा। "वस्तुत: अनुभवी आदमी है। अब उसे पद से अलग करना एक कठिन समस्या बन जाएगी।"

"क्या उसे पद से अलग करना चाहिए?" मरीया वसील्येवना आश्चर्य में पड़ गई।

"हाँ, ऐसी ही बात थी, शायद वह भाँप गया था। अब काम अधिक कठिन हो जायेगा: कहेगा कि नेताओं की आलोचना करने के कारण हटाया गया मुझे। तुम ख़ुद देख लोगी। इसी को स्थिति का लाभ उठाना कहते हैं।"

"क्या किया है उसने?"

"तोलागान की आर्थिक समिति बहुत सारी बातों पर प्रकाश डालती है। डाइरेक्टर बहुत-सी संभावनाएँ छुपाता आया, क्यों, कारण अभी मालूम नहीं। पर सबसे बड़ी बात है ज़ियाख़ानोव में नेतृत्व प्रतिभा नहीं है।"

मरीया वसील्येवना मौन रही, और धीरे से कैब में बैठकर चली गई।

अगले दिन इलाक़ाई पार्टी समिति में हुई बैठक के बारे में अफ़वाहें चारों ओर फैल गईं। समाचार-पत्रों ने भी उसपर विविध रूप से प्रकाश डाला: एक ने एक पहलू को कलंकित किया तो दूसरे ने दूसरे पहलू को, अन्य ने "झगड़ेवाले" सम्मेलन पर हास्यजनक व्यंग्यात्मक लेख लिखे। नज़ारोव ने अपने समाचार-पत्र में बहस के विषय पर अधिक ध्यान दिया, कुछ साहसरहित ढंग से ही सही, फिर भी उसने आरिफ़-अका के विचारों का समर्थन किया। प्रांतीय समाचार-पत्र ने दो नेताओं की मुठभेड़ की जिससे सब तंग आ गये हैं, ग़ुस्से के साथ निन्दा की और सिर्फ़ उबयदुल्लाख़ान का ही भाषण पूर्णत: प्रकाशित किया। बैठक के भंग किये जाने, आचीलोव द्वारा अजीब धारणाएँ पेश करने, प्रांतीय नेताओं में से एक को बैठक में 'नौकरशाह' कहने की ख़बर प्रांतीय पार्टी समिति के प्रथम सेक्रेटरी तक भी पहुँची। सुनने में आया कि प्रथम सेक्रेटरी बड़े ग़ुस्से में थे। कहा: "अब काफ़ी है, बहुत सब्र की, झगड़े को ख़त्म कीजिये: एक काम करे या दूसरा!" जब आरिफ़-अका के प्रस्तावों से अवगत हुए तो दिन भर अपने कैबिन में बैठे रहे! अगले दिन ब्यूरो के सदस्यों को एक-एक करके बुलाकर उनसे बातचीत की। मालूम नहीं क्या हुआ, सारांश में स्थिति गंभीर थी।

इन्हीं परेशानियों में आरिफ़-अका बदमाश इस्राईलोव को ढूंढ़ निकालने

का अपना इरादा क़रीब-क़रीब भूल चुके थे लेकिन उसने अपनी याद ख़ुद दिला दी। झुँझलाहट के उन्हीं दिनों आनाबीबी पर पैत्रिक अधिकार का दावा करते हुए उसने आरिफ़-अका के विरुद्ध न्यायालय में याचिका दे दी थी।

प्रांतीय न्यायालय के जाँचकर्ता ने आरिफ़-अका को कार्यालय में फ़ोन करके इसके बारे में बताया। उसने बातचीत के लिए आने की इजाज़त मांगी।

"बातचीत... ज़िरह ही क्यों नहीं कहते... आइये," आरिफ़-अका ने कहा।

"हम आप पर कोई इलज़ाम तो नहीं लगा रहे हैं। लेकिन इलाक़ाई समिति में आना अनुचित तो नहीं होगा?" जांचकर्ता ने पूछा।

"बिलकुल उचित होगा।" आरिफ़-अका घर पर बातचीत नहीं करना चाहते थे, सोचते थे कि इस ग़लतफहमी के बारे में आनाबीबी को मालूम ही न हो, यही अच्छा होगा। "हम महत्त्वपूर्ण सामाजिक-नैतिक प्रश्न पर बातचीत करेंगे, आ जाइये।"

आरिफ़-अका इसे एक छोटी ग़लतफ़हमी कहकर उसपर ध्यान न देने की कोशिश करते रहे लेकिन ख़ुद चैन न पाकर रात भर आँगन में टहलते रहे। जीवन में मुक़दमे जैसी चीज़ कभी नहीं देखी थी, अब जांचकर्ता से साबक़ा पड़ा था। धृष्ट इस्राईलोव किसी बदसूरत बदमाश की शक्ल में उनकी आंखों के सामने खड़ा हो गया। लेकिन अब उसे देखने की इच्छा उनमें नहीं थी। अब वह अपने आप पर हैरान हो रहे थे कि कुछ दिन पहले तो ग़ुस्से में आकर उससे मिलकर बातचीत करने का इरादा कर रखा था, अब बोलने की भी इच्छा नहीं हो रही थी। उन्हें बड़ी थकान हो आयी थी और मुद्रा में द्वेष की झलक थी। इसी हालत में अगले दिन उन्होंने जाँचकर्ता का स्वागत किया। वह चमकते बालों के बीच से मांग निकाले, साफ़ कपड़े पहने एक वीतराग-सा नौजवान था। उसका चेहरा ऐसा भावहीन था मानो सफ़ेद मोम से बना हो। आरिफ़-अका ने उसे आनाबीबी का क़िस्सा, अपनी पत्नी सारागुल की मृत्यु, उसके बाद के वर्षों के बारे में विस्तार से बताया। बताने को तो बता दिया पर यह देखकर कि इतनी प्रभावशाली बातों ने भी उस नौजवान के चेहरे पर कोई भावना नहीं पैदा की है, उनकी जान ही निकल रही थी।

"अब जान लिया कि इस्राईलोव नाम का आदमी कौन है?" आरिफ़-अका ने झिड़ककर कहा। उन्हें ऐसा लग रहा था मानो इसी बेदिल आदमी ने इस साफ़ सुलझी समस्या को उलझा दिया था। "पत्नी चल बसी, ख़बर नहीं ली, बच्चा पैदा हुआ, ख़बर नहीं ली, अब पन्द्रह साल हो चुके हैं पर उसने कभी आकर नहीं पूछा कि मेरा बच्चा ज़िन्दा भी है या नहीं? अब क्या चाहिए उसे? यह बच्ची मुझे दो औरतों से विरासत में मिली है। मुझे वह बड़ी महँगी पड़ी, उसके लिए मेरी सारागुल की मृत्यु हुई। उससे कहिये, वह बदमाश मुझसे बखेड़ा न करे।"

"मैं उसे कुछ नहीं बताऊँगा," जाँचकर्ता ने कहा, "मेरे लिए दोनों पक्ष बराबर हैं।"

"बराबर?"

"हाँ, हम दोनों पक्षों की बातें सुनेंगे, दस्तावेज़ें देखेंगे।"

"मेरी कोई दस्तावेज़ नहीं। मेरी दस्तावेज़ यही लड़की है जिसे मैंने पाल-पोस कर बड़ा किया है! मैं उसका बाप हूँ।"

"आप उसके गोद लेनेवाले बाप हैं और वह उसे पैदा करनेवाला बाप है। हमारा कर्तव्य समस्या को सुलझाना है।"

"बाप? कैसा बाप? क्या मैं उसके बराबर हो गया? क्या आप हम दोनों को एक ही तराज़ू पर तौलेंगे? कहाँ मैं, कहाँ वह..."

आरिफ़-अका बहुत घबरा गये पर नौजवान पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा, उसने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया। सारी बातें लिखकर वह अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ और जिस रुखाई से अभिवादन किया था, उसी रुखाई से विदा लेकर दरवाज़े की ओर चल दिया।

"अभी आपको बच्ची से पूछना होगा, देखेंगे वह क्या कहेगी," आरिफ़-अका क़ालीन पर चहलक़दमी करते हुए बोले।

"ज़रूर पूछेंगे। पर हमें मालूम है, वह आपको ही चुनेगी क्योंकि अपने बाप को वह नहीं जानती है," नौजवान ने बाहर जाते हुए कहा।

"यही बात है! आप तो ख़ुद भी जानते हैं!" आरिफ़-अका उसी कठोरता से बोलते रहे। जाँचकर्ता चला गया था पर आरिफ़-अका को ऐसा लग रहा था कि उन्होंने ही उसे निकाल दिया था। "देखो, उसके लिए दोनों पक्ष बराबर हैं। मैं भी बाप हूँ, वह भी बाप है। कैसे बराबर कर दिया, व्यर्थ बात है!" देर तक वह यूँ ही बड़बड़ाते रहे।

फिर काफ़ी देर तक वह इसी हालत में रहे। क्या करें, कुछ सूझ नहीं रहा था। कोई काम भी नहीं किया जा सका। मरीया वसील्येवना से बातचीत करने की इच्छा हुई, दो बार रिसीवर उठाया, फिर रख दिया। जिन काग़ज़ों की कोई ज़रूरत नहीं थीं, उन्हें उलटते-पलटते सी-टी बजाने लगे। फिर यह एहसास करके कि सब कुछ व्यर्थ है, दिल पर एक पत्थर पड़ा है, वह घबरा उठे और हड़बड़ाकर घर जा पहुँचे।

"अब्बा जान!" ख़ुशी से चिल्लाते हुए आनाबीबी ने उनकी अगवानी की। उसके बाल बिखरे हुए थे, हाथों में काजल लगा था।

"तैमूर कैंप से लौट आया है," वह बोली, "अपनी पुस्तकें देखिये, सीढ़ी लगाकर दुछत्ती पर हमने उन्हें सजाकर तरतीब से रखा। आइये, देख लीजिये," उसने बाप को अन्दर खींचा।

"और कोई नहीं आया?"

"आया था," आनाबीबी ने कहा। उसकी आवाज़ में और चेहरे पर उत्साह की झलक एकदम ख़तम हो गयी, हाथ लटक गये, "एक आदमी आया था।"

"क्या कहा?" आरिफ़-अका ने बैठकर अपने को कुछ सम्भालते हुए पूछा।

"वह... उसने पूछा, अपने बाप को जानती हो?" 'नहीं,' मैंने कहा। फिर... 'इस बाप से प्यार करती हो?' पूछा, 'हाँ,' मैंने कहा। "क्या तुम्हारे अपने बाप को ढूँढ़कर ला दें?" पूछा, 'पता नहीं,' मैंने कहा। 'यदि ढूँढ़ लें तो किस बाप के साथ रहोगी,'... पूछा।"

आरिफ़-अका के माथे पर सर्द पसीना आ गया। घबराकर आनाबीबी के रुआँ-से हाथों को ऐसे घूरा मानो बड़ी अधीरता से अपनी क़िस्मत का फ़ैसला सुनने की प्रतीक्षा कर रहे हों।

आनाबीबी अचानक ज़ोर से रोते हुए उनकी बाँहों में आ गयी।

"नहीं, अब्बा जान! नहीं चाहिए मुझे! आप हैं मेरे बाप! बाप!"

आरिफ़-अका की जान में जान आ गई। उसके कंधों पर हाथ फेरते हुए उन्होंने हँसकर उसे तसल्ली दी: "अरे पगली, ज़रूर! अब छोड़ो इस बात को, एकदम भूल जाओ। उस आदमी ने व्यर्थ बातें बताईं।

भूल जाओ इस बात को, अच्छा? कोई बात नहीं," आरिफ़-अका सूट उतारने के लिए अन्दर चले गये, "तो तैमूर कैंप में मोटा हुआ या नहीं?" उन्होंने उत्साह भरी आवाज़ से पूछा। पर खुद आंखों से निकली बूंद को छुपाकर पोंछ लिया। "खूब तरतीब से रखी तुम लोगों ने किताबें। अब यदि किसी पुस्तक की ज़रूरत पड़ी तो बिलकुल नहीं ढूंढ़ पाऊँगा!"

आनाबीबी ज़ोर से हँस पड़ी, बाप की भी हँसी छूट गयी। लड़की दौड़कर पुस्तकों के कमरे में जा पहुँची। उन्होंने दुछत्ती से लगाकर सीढ़ियाँ रखीं, पहले उसपर आनाबीबी चढ़ी और दिखाया, पुस्तक ढूंढ़ लेना एकदम मुश्किल नहीं। फिर आरिफ़-अका ने भी ऊपर चढ़ने की कोशिश की लेकिन नीचे गिर पड़े। इसपर तो हँसी के मारे दोनों की हालत ख़राब हो गयी।

वे लगातार हँसे जा रहे थे और बारी-बारी से कमरे भी देख रहे थे। आज कमरे पहले से अधिक आकर्षक, अधिक गुंजायमान लग रहे थे। बिजली के चायदान में पानी उबलने के कारण उसका ढक्कन झन-झन कर रहा था मानो उसे भी हँसी आ रही हो।

पड़ोस की बुढ़िया पुलाव लेकर आ गई। "गांव से देवरानी आयी हैं। तुम्हारी आवाज़ सुनकर ख़्याल आ गया। यह रहा तुम्हारा हिस्सा..." यारमत और नारमत की नानी ने तख़्ते पर पुलाव भरी थाली रखते हुए कहा।

खाना खाने के बाद आनाबीबी जल्दी ही सो गई। आरिफ़-अका पीठ पर हाथ रखे, पाँवों में चप्पल पहने काफ़ी देर तक आंगन में चहलक़दमी करते रहे। उन्होंने गहराती रात के सन्नाटे में कान लगाया। पड़ोस के अहाते से शैतानी कर रहे यारमत और नारमत की आवाज़ें अभी थमी नहीं थीं। तिस पर दूर से आये मेहमानों की बातें भी सुनाई दे रही थी: "आप के नारमत की शक्ल-सूरत बाप से बहुत मिलती-जुलती है न देवरानी! बिलकुल बाप जैसा है..."

आरिफ़-अका दूसरों की बातें न सुनने के लिए दीवार से दूर चले गये। गये तो गये, पर उनके कान में जो बात आ गई वह गूँजती ही रही: "बाप से बहुत मिलती-जुलती है" "बिलकुल बाप जैसा है..." घर के अन्दर गये, पुस्तक पलटने लगे पर कानों में यही बात गूँजती रही...

फिर वह आकर तख्ते पर आनाबीबी के पास बैठ गये। लड़की चाँदनी में मीठी नीन्द ले रही थी। आरिफ़-अका ने उसके बालों पर हाथ फेरा, उसके छोटे से फूल जैसे होंठ देखे। "और तुम बिटिया? तुम्हारी शक्ल-सूरत किससे मिलती है? मुझसे तो नहीं... वह ख़ूबसूरत है।"

आरिफ़-अका ने आह भरी, रात का सूनापन काट खाता था। झुककर अपना सिर बेटी के माथे पर रखकर वह कुछ बुदबुदा उठे।

फिर सिर उठाकर दुबारा उसके चेहरे को ध्यान से देखा। वह किससे मिलती जुलती है? उसकी स्वर्गीय माँ तो सुन्दर नहीं थी...

अचानक आरिफ़-अका झिझक उठे। बाप से? क्या वास्तव में? उसी दग़ाबाज़ इस्राईलोव से? आरिफ़-अका के ख्याल से उसे एक बदसूरत बदमाश होना चाहिए। "इस्राईलोव... ठहर जा! चाहे तू सुन्दर ही हो, पर तू बेईमान है। हो सकता है, तू ने इसे सौंदर्य दिया हो पर मैंने इसे पिता का प्यार दिया है। यह अनमोल है। मैंने दिल दिया है उसे।"

अपने आप को तसल्ली देने के लिए आरिफ़-अका ने बहुत-सी दलीलें पेश कीं। मगर मन शांत न हो पाया। उनके मन में यही सारे विचार मंडराते रहे। क्या वास्तव में उनकी शक्ल-सूरत उसी से मिलती-जुलती है? अच्छा है कि उसे नहीं देखा...

यदि लड़की उससे इतनी मिलती-जूलती है तो सदा उसकी याद दिलाती रहेगी? आजीवन! नहीं, नहीं, वह उससे नहीं मिल पायेगा, नहीं देख पायेगा।

आरिफ़-अका को डर था आनाबीबी से उसके प्यार पर छाया पड़ जाएगी, यह धूमिल हो जायेगा।

दो दिन बाद जाँचकर्ता नौजवान फिर से आ पहुँचा। उसने कई सवाल पूछे और जाते समय मेज़ पर एक लिफ़ाफ़ा रख दिया जिसमें मुकदमें में बुलाने का सम्मन था, आरिफ़-अका फ़ौरन भाँप गये। फिर भी ख़ुद को क़ाबू में रखते हुए पूछा:

"कुछ भी हो आप ज़रा यह बताइये, प्रांतीय न्यायालय क्यों इस मुक़दमे की जाँच कर रहा है?"

"सईद की यही प्रार्थना है। इलाक़ाई न्यायालय के पक्षपातपूर्ण होने की संभावना है।"

"सईद! इसका अर्थ यही निकलता है कि आप मुझे अभियुक्त कहते

हैं! मेरी स्वर्गीय पत्नी और मैं, हम दोनों सोचते थे, हमने एक पुनीत कार्य किया है। तेरह साल से मेरा यही विचार था और मैं ख़ुद से संतुष्ट था। आप अपनी सर्द नज़रों से इस भावना को क्यों नष्ट कर रहे हैं?! आप..."

जाँचकर्ता के सफ़ेद मोम जैसे निश्चिंत चेहरे पर कोई भावना उत्पन्न नहीं हुई।

"अपनी बातें आप मुक़दमे में सुनवाई के दौरान बतायेंगे।" इतना कहकर वह चलता बना।

"नहीं जाऊँगा! व्यर्थ हैं!" उसके पीछे बस इतना ही चिल्लाकर आरिफ़-अका रह गये। काग़ज़ को उन्होंने फाड़कर कूड़े की टोकरी में डाल दिया।

उन्हें विश्वास था, वह ठीक कर रहे हैं। इसी लिए उनका मन शांत हो गया। एक दिन, दो दिन, तीन, चार, पांच... इस तरह कई दिन बीत गये।

आरिफ़-अका अपने सरकारी फ़ार्मों, आर्थिक समितियों, लू पर क़ाबू पाने, बाग़बानी की टोलियों के संगठन, पहाड़ी इलाक़े की पुनस्स्थापना जैसे मामलों में व्यस्त हो गये। शाम को वह घर पर आनाबीबी से और कभी-कभी दार्शनिक तैमूर से बातचीत करते, यारमत व नारमत को गोद में लेकर जी बहलाते आराम करते।

आपको याद ही होगा, ऐसी ही एक शाम को अचानक आचिल बाबा और अज़ीमजान वहाँ आ पहुँचे थे। यारमत और नारमत दौड़कर ख़ुशख़बरी सुनाने गये। आचिल बाबा ने छोटी आनाबीबी से और आरिफ़-अका ने अपने भतीजे अज़ीमजान से ज़िन्दगी में पहली बार परिचय प्राप्त किया। मेहमानों का हार्दिक स्वागत किया गया। आरिफ़-अका ने उन्हें इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं बताया था। तभी फ़ोन आया और किसी वाद-विवाद के संकेत मिले, यह भी आपको याद ही होगा।

आगे की घटनाओं में मेहमान भी भाग ले रहे हैं।

"क्या प्रांतीय समिति के सेक्रेटरी से भी इस तरह बात की जाती है?! तुम ख़ुद कौन हो!" ऊँची आवाज़ में आचिल बाबा ने पूछा। वे नाराज़ हो गये थे। आरिफ़-अका सिर झुकाकर बैठे रहे।

"प्रांतीय समिति के ब्यूरो में... मेरी "गतिविधियों" की रिपोर्ट

पेश की जायेगी," उन्होंने कुछ देर बाद उदास होकर कहा। "मरियम रिपोर्ट पेश करेगी। आपने सुनी उसकी आवाज़?"

रात के दौरान मेहमान तीन-चार महीने की घटनाओं के बारे में विस्तार से जान गये। रात भर जागकर बातचीत करने के बाद आरिफ़-अका सुबह में ब्यूरो में जाने के लिए तैयारियाँ करने लगे।

तभी तैमूर आ पहुँचा। आनाबीबी और अज़ीमजान के साथ किताबोंवाले कमरे में ग़ायब हो गया। अज़ीमजान में भी कुछ बचपना था। हर चीज़ को ध्यान से देखता, हर चीज़ से हैरान होता... बाप-बेटे का उनसे कोई काम नहीं था। पर पुस्तकालय से रह-रह कर आनाबीबी की गूँजती आवाज़ सुनाई पड़ जाती:

"अब्बा जान! अज़ीमजान-अका की माँ का नाम भी आनाबीबी था!"

"दादा, दादा जी! तैमूर अपनी अध्यापिका के साथ एक मसले पर बहस करके जीत गया!"

बाप-बेटे के कानों में यह बातें नहीं आ रही थी। उनका ध्यान दूसरी ओर था। आक़िल बाबा आरिफ़-अका को बढ़ावा दे रहे थे। वे जता रहे थे: "कुछ भी हो, बस मन की बातें बताओ, अगर अपने विचारों से तुम बाल जितना भी डिगे, तेरी जीत बेकार होगी।"

बेटे के मन पर विश्वास रखकर उसकी पीठ थपथपाकर वह उसे दरवाज़े तक पहुँचा आये। जब आरिफ़-अका घर से निकले, उनकी निगाह डाकवाली पेटी पर पड़ी, खोलकर देखा तो सांप की खाल जैसा हरा काग़ज़ मिल गया—फिर मुक़दमे पर बुलाया गया था। उसे हाथ में लेकर वह कुछ देर तक खड़े रहे फिर तोड़-मरोड़कर जेब में रख लिया। उनका ख़्याल था, मामला ठण्डा पड़ गया होगा। तो अब भी कोशिशें जारी हैं।

"लेकिन मैं भी जानेवाला नहीं हूँ। इलाक़ाई पार्टी समिति का सेक्रेटरी हूँ, क्या कर सकेंगे!.."

इलाक़ाई समिति में जाकर मोटर मँगवायी और प्रांत की ओर रवाना हो गये। जाते हुए सब कुछ भूलकर उन्होंने अपना ध्यान ब्यूरो की बैठक में केन्द्रित करने की कोशिश की: "क्या वहाँ उन प्रस्तावों पर विचार किया जायेगा जो मैंने पिछली बैठक में पेश किये थे या सिर्फ़ मेरी गतिविधियों की चर्चा की जायेगी। यदि मेरे प्रस्तावों पर विचार किया गया

तो मैं उनसे हटूँगा नहीं बल्कि उन्हें और अधिक ठोस, तर्कसंगत रूप से सामने रखूँगा। प्रांतीय समिति को उनके बारे में पहले नहीं बताया, तो क्या हुआ? मुझे इलाक़ाई पार्टी समिति की बैठकों में अपने विचार बताने का पूरा अधिकार है। हाँ, जो सोचता हूँ, वह सर्वत्र कह जाता हूँ, कुछ लोगों की फफूंदी दूर हो जायेगी। मुझे हटायेंगे तो कोई बात नहीं, मैं भावना तो जगाऊँगा, भावना! मरियम चेहरा तमतमाये, आवाज़ ऊँची करके बोलेगी। तो बोलने दो! मैंने उसे नौकरशाह कहा था तो माफ़ी नहीं मांगूंगा... मुझ में संकुचित विचार का असर पाया तो अच्छा। लेकिन उसमें भी नौकरशाही कुछ तो है। याद रहे।"

ब्यूरो की बैठक बड़ी देर से शुरू हुई। मरीया वसील्येवना नहीं आयी थी। कुछ देर उसकी प्रतीक्षा करने के बाद, प्रांतीय समिति के प्रथम सेक्रेटरी ख़ुद आ गये। वे कुछ घबराये हुए थे। उन्होंने घोषणा की: "मरीया वसील्येवना नहीं हैं, आज नहीं आएँगी, इस लिए दूसरे प्रश्न से शुरू करेंगे।" प्रथम सेक्रेटरी नाटे कद के, चौड़ी पेशानीवाले, तेज़ आँखोंवाले आदमी थे। उन्होंने आरिफ़-अका को सरसरी निगाहों से देखा और कहा: "साथियो, मैं मरीया वसील्येवना के न आने का कारण भी बता दूं ताकि अन्यथा नहीं सोचा जा सके। वह जब इलाक़े से लौट रही थीं तो स्तेपी के एक सरकारी फ़ार्म में अचानक उनकी तबीयत ख़राब हो गई। ख़बर है, दिल का दौरा पड़ा है।"

आरिफ़-अका ने दृढ़ संकल्प कर रखा था, चाहे टुकड़ा-टुकड़ा हो जाऊँ लड़ूँगा ज़रूर। अब उन्हें ऐसा लगा मानो उनका हथियार ही खो गया हो और वे उधेड़बुन में पड़ गए। उनकी आंखों के सामने पहाड़ों पर चढ़ते समय मरियम का हाँफना, उसका पीला पड़ा चेहरा, सब नाच उठा।

कहाँ है वह? किस सरकारी फ़ार्म में? उसपर लू का प्रभाव तो नहीं पड़ा? नम लू तो दम घोंटता है... पता नहीं, आरिफ़-अका चले जानेवाले थे या कुछ और, पर खोये-खोये उठकर, इधर-उधर देखने के बाद फिर धीरे से बैठ गये। सभा शुरू हो चुकी थी। ट्रैक्टरों की मरम्मत करनेवाले केन्द्रों के कर्ज़ों की बात चल रही थी। दिल!.. दिल की बीमारी। आरिफ़-अका ने अनुभव किया, उनका अपना दिल भी यूँ धक-धक कर रहा है मानो अब बाहर निकल आयेगा। उनके मन में

ग्राग-सी जली थी . . . "उसे एम्बुलेंस भेजा गया कि नहीं, कुछ बताया ही नहीं . . . कौन-सा सरकारी फ़ार्म? ग्रगर तीसरा हो तो वहाँ क्लिनिक है . . ."

लोग इस तरह एक के बाद एक बोलते जा रहे थे मानो कुछ हुग्रा ही नहीं। ग्रारिफ़-ग्रका को लगा, एक ही समस्या पर बेमतलब पाँच-छ: घंटे से बहस हो रही हो। किसी न किसी तरह निकलना चाहिए . . . निकल जाना चाहिए।

जब ग्रारिफ़-ग्रका दरवाज़े की ग्रोर जाने की तैयारियाँ करते हुए इधर-उधर देख रहे थे, प्रथम सेक्रेटरी ने ग्रपना थुलथुला चेहरा मेज़ के ऊपर से उठाए बिना पूछा:

"ग्रौर ग्राप क्या सोचते हैं, ग्राचीलोव? ग्राप का क्या सुझाव है?"

गहरी सोच में डूबे ग्रारिफ़-ग्रका बैठक में हो रही बहस से बेख़बर थे।

"मैं . . . मेरा कोई भी सुझाव नहीं," उन्होंने कहा।

"इतने महत्वपूर्ण प्रश्न पर? ग्रजीब बात है।"

कमरे में सन्नाटा छा गया। देखे बिना ग्रारिफ़-ग्रका ने ग्रनुभव कर लिया, ब्यूरो के सभी सदस्यों की निगाहें उन्हीं पर हैं। किसी न किसी तरह यह क्षण भी बीत गया। ग्रवकाश शुरू होते ही वह बड़ी तेज़ी से बाहर निकल ग्राये। लेकिन मोटर के पास पहुँचकर रुक गये। मन में कोई बात ग्रायी। मोटर के इर्द-गिर्द थोड़ी चहलक़दमी करने के बाद वह ग्रन्दर जा बैठे लेकिन फिर निकल ग्राये। उन्हें मालूम था, ग्रब सभा में उनसे नहीं बैठा जायेगा। सरकारी फ़ार्म भी नहीं जा सकेंगे। ग्राख़िर कार में बैठकर घर की ग्रोर चल दिये। क्यों? वह ख़ुद नहीं जानते थे।

मानो उनका मूड ग्रौर ख़राब करने के लिए सड़क पर मरम्मत का काम शुरू कर दिया गया था। उन्हें ऊबड़-खाबड़ धूल भरे मार्गों से चल-ना पड़ा।

ग्रारिफ़-ग्रका हैण्डल व्हील को सख़्ती से पकड़े थे। उनकी कार उछ-लती-कूदती बड़ी तेज़ी से ग्रागे बढ़ रही थी। माथे से पसीना लगातार बह रहा था, पसीने से नम चेहरे व ग्राँखों पर धूल उड़कर उन्हें ग्रौर चिढ़ा रही थी! बैठक में भाग लेना था, वहाँ बैठ नहीं पाये, बतौर इनसानियत मरियम को देखने जाना चाहते थे, नहीं जा सके। ग्रब कहाँ चल दिये? क्या करने? घर? लेकिन घर पर क्या है?

वस्तुत: घर पर कोई नहीं था। आरिफ़-अका हड़बड़ाकर अन्दर घुसे और सभी कमरों को झाँक गये। चारों ओर सन्नाटा छाया था। आरिफ़-अका कपड़े उतारे बिना आनाबीबी के पलंग पर बैठ गये। टोपी को हथेली में भींजकर फ़र्श पर नज़र गड़ा दी। कहाँ गये सब? दिल की बीमारी... दिल की बीमारी तो बहुत तरह की होती है। आदमी को एकदम ख़तम करनेवाली... महीनों तक हिलने न देनेवाली... अचानक आरिफ़-अका को अहसास हुआ, वह बहुत तुच्छ हैं। तुच्छ। बेसहारा। बड़ा हिचकिचानेवाला। किसी एक निश्चय पर न पहुँचनेवाला। अपनी भावनाओं को क़ाबू में लाने में असमर्थ...

"मैं क्यों बैठा हूँ!" यह सोचकर वह गुस्से से उठ खड़े हुए तभी दरवाज़े की चरमराहट सुनाई दी। आचिल बाबा लौट आए थे, उनके घुटनों तक लम्बे सफ़ेद रंगवाले यकतक पर कुछ चुनटें पड़ी थीं, बूटों पर धूल। धीरे से आकर उन्होंने बाल्टी का पानी लेकर पीया। अपनी शानदार दाढ़ी हाथ से पोंछी। उस शांतचित्त रूप को देखकर आरिफ़-अका को भी शांति महसूस हुई। वे बैठकख़ाने में मेज़ के पास मिले।

"कहाँ थे, पिता जी?"

"मरियम को देखने गया था," आचिल बाबा ने कहा। आरिफ़-अका का चेहरा दहक उठा। कुछ भरे मन से वह अपने पिता की ओर ताकते रहे और अचानक बच्चों की तरह उनसे लिपट गये। वृद्ध ने सिर हिलाते हुए अपने झुर्रीदार हाथ बेटे के कंधे पर फेरा।

"अरे, तेरे कपड़े तो धूल से भरे हैं..."

"कैसी है?" आरिफ़-अका ने बाप के सफ़ेद बालोंवाले वक्ष से सिर उठाए बिना पूछा।

"ठीक है। अस्पताल में भरती की गयी है।"

"धन्यवाद, अब्बाजान!"

आवाज़ बदल जाने से आरिफ़-अका शायद लजा गये और चेहरा मोड़ लिया। बाप और बेटा लम्बे अर्से से इस तरह गले नहीं मिले थे।

इसी क्षण कहीं से मर्माहत रोने की आवाज़ सुनाई दी। कुछ ख़ौफ़ से उन्होंने कान लगाकर सुना।

"आनाबीबी!" आरिफ़-अका दौड़कर पुस्तकों के कमरे में जा पहुँचे फिर बाहर निकलकर भी देखा। आनाबीबी कहीं नहीं थी। पर रोनेवाली

आनाबीबी ही थी, आरिफ़-अका ने फ़ौरन भाँप लिया था। कहाँ है वह, क्यों रो रही है?

"इधर आओ, आरिफ़जान..." आचिल बाबा ने अन्दर से उन्हें आवाज़ दी। हालाँकि उनकी आवाज़ अब भी शांत थी, आरिफ़-अका को उसमें किसी तरह की घबराहट का आभास हुआ। वह लौटकर अन्दर आ गये। आचिल बाबा एक काग़ज़ लिए मेज़ के पास खड़े थे। ख़ौफ़ के साथ उन्होंने बेटे पर सवाली निगाह डाली।

"यह लो... मेज़ पर पड़ा था, क्या तुमने इसे पढ़ा?"

आरिफ़-अका ने काग़ज़ ले लिया। यह न्यायालय के निर्णय की एक कॉपी थी। न जाने क्यों आरिफ़-अका ने उसे उलट-पलटकर देखा। निर्णय बड़ा लम्बा था। उसे पूरा पढ़ पाना – उनके वश में नहीं था अब। डरावने काग़ज़ में किसी शब्द, किसी निर्णायक वाक्य की खोज की। ढूँढ़ नहीं पाया। तो शुरू से पढ़ना पड़ा।

मुक़दमे में दोनों पक्षों की प्रार्थनायें, दलीलें सुनी गयीं, दस्तावेज़ें ध्यान से देखी गयीं। फलस्वरूप यह निर्णय लिया गया है: नागरिक आरिफ़ आचीलोव ने बच्ची का शिशुकाल से पालन किया, भरसक शिक्षा-दीक्षा दी और इस प्रकार एक पुनीत कार्य किया। बच्ची का असली बाप मुहम्मदामीन इस्राईलोव व्यक्तिपूजाकाल की ग़लतियों का शिकार बना, अन्यायपूर्ण रूप से जेल में रहा, इस लिए पत्नी और बच्ची की ख़बर नहीं ले सका। साथ ही अध्यापिका शफ़िगुल्लिना की गवाही के अनुसार नागरिक आचीलोव के घर पर आनाबीबी के ठीक पालन-पोषण के लिए उचित सुविधाएँ नहीं हैं। नागरिक आचीलोव नौकरी से संबद्ध कामों में व्यस्त रहता है, बाहर जाया करता है और बच्ची दिन-रात अकेली रहती है, अध्यापकों से अशिष्ट व्यवहार करती है, ज़िद्दी है और बेचैन रहती है। कुल मिलाकर लड़की को आगे भी इस स्थिति में छोड़ना शिक्षा विज्ञान के उसूलों के ख़िलाफ़ तो है ही, लड़की के भविष्य के लिए भी ख़ौफ़नाक है।

नागरिक इस्राईलोव बिलकुल माफ़ कर दिया गया, उसके परिवार और घर की परिस्थितियाँ अच्छी हैं। माफ़ कर दिये जाने पर वह पैतृक अधिकार पुनःस्थापित करने की भी माँग करता है। यह अनुचित भी नहीं।

उपर्युक्त बातें ध्यान में रखकर प्रांतीय न्यायालय लड़की इस्राईलोव को लौटा देने का निर्णय करता है।

आरिफ़-अका निर्णय अंत तक नहीं पढ़ पाये, उनका सिर चकरा गया। वह कुर्सी पर बैठ गये। गला सूख गया, सांस भारी हो गयी। सामने के चायदान और प्याली को देखते रहे पर प्याली में डालकर बून्द भर सर्द चाय पीने की नहीं सूझी। उन्हें फिर से वही रोने की आवाज़ सुनाई दी। उन्होंने नहीं सोचा। आवाज़ कहाँ से आ रही हैं। उन्हें बस ऐसा लग रहा था मानो यह मकान रो रहा है, वह ख़ुद रो रहे है।

आचिल बाबा भी असहाय! यह न जानते हुए कि क्या करें उन्होंने बूट उतारकर बालाई जूते पहन लिये, इसी तरह कुछ-कुछ करते रहे पर सब व्यर्थ। "आनाबीबी!!!" आरिफ़-अका अचानक चिल्ला उठे मानो अभी-अभी होश में आये हों। आनाबीबी की जगह तैमूर आ पहुँचा। उसके पीछे, दहलीज़ पर अज़ीमजान दिखाई दिया। वह भारी भरकम बेक़सम चोग़ा पहनकर दुम की तरह तैमूर के पीछे लटके रहता था।

"आप की खोज में हम शहर जा चुके हैं...' तैमूर ने फ़र्श पर देखते हुए कहा। फिर आँख उठाकर आरिफ़-अका पर नज़र डाली। उस आंखों में नाराज़ी, गुस्से की आग जल रही थी: 'आप मुक़दमे पर नहीं गये, आरिफ़ चाचा, आनाबीबी के लिए पैरवी नहीं की, खिसक गये!" और इतना कहकर वह अन्दर चला गया।

आरिफ़-अका अपनी जगह से उठकर "आनाबीबी," "आनाबीबी" आवाज़ लगाते दरवाज़े की ओर बढ़ गये। वह समझ गये, तैमूर आनाबीबी को कहीं छुपाकर गया था। शायद छोटे कमरे में है, रोने की आवाज़ वहीं से आ रही है।

इसी समय एक टैक्सी आकर दरवाज़े के सामने रुकी। उससे उतरकर एक मर्द औरत सीधे आंगन में आ पहुँचे। इधर-उधर देखा मानो जानना चाहते हों, कहीं कुत्ता तो नहीं। फिर बरामदे की ओर चल दिये। दोनों अधेड़ उम्र के, सुडौल, अच्छे कपड़े पहने हुए थे। विशेषकर मर्द: उसकी धारीदार रेशमी क़मीज़ का गरेबान खुला हुआ था। एक बाँह में उसने कोट टाँग रखा था, अभी-अभी हजामत बनवाया हुआ, बराबर मुस्कुराता। उसकी ख़ूबसूरती ऐसी थी कि देखकर आदमी का दिल रीझ जाये। आरिफ़-अका को लगा, इसे कहीं देखा था। एक बार नहीं,

अनेक बार। सड़क पर या मोड़ पर इसी को देखा अथवा उसकी छाया को, पता नहीं...

जब वे अन्दर आये आरिफ़-अका ने उसके हाथ का काग़ज़ देखा तो बिलकुल घबरा उठे। उनका रंग पीला पड़ गया। वह अवाक्, ठगे से कमरे के बीच खड़े रह गये। बेशक, यह वही इस्राईलोव था। उसके साथ की औरत – उसकी पत्नी थी। वे आनाबीबी को ले जाने आये थे। आगन्तुकों ने शायद सलाम कहा था। शायद कुछ बोले भी लेकिन आरिफ़-अका को सुनाई नहीं दिया। अजीब बात है। उनका ख़्याल था, इस्राईलोव कोई भद्दी शकल-सूरतवाला बदमाश होगा लेकिन यह तो लड़कियों की तरह सुन्दर है। किसी को दुख पहुँचानेवाला भी नहीं लगता...

तभी अन्दर का द्वार खोलकर आनाबीबी निकली। आँखें लाल, चेहरे पर आँसुओं के निशान, उसका दुबला-पतला शरीर कांप रहा था, हाथों में एक छोटी-सी गठरी थी।

वह पहले इस्राईलोव की ओर बढ़ी। उसके सामने रुककर उसके सुन्दर चेहरे को देखा जिसपर चित्रवत मृदु मुस्कान थी। इस्राईलोव के पीछे बड़े मुँहवाली लंबी-तड़ंगी बीवी खड़ी थी जिसके कानों में सोने की भारी-भारी बालियाँ थीं। वह समझ नहीं पा रही थी कि हँसना चाहिए या नहीं। इस लिए उसके चेहरे पर ऐसी बनावटी भावना थी जो रोने से अधिक मिलती-जुलती थी। पति के कंधों के पीछे से वह अपनी भावी सौतेली बेटी को देख रही थी। तेज़ी से मुड़कर आनाबीबी आरिफ़-अका की ओर बढ़ी, उनके सामने रुककर उनके विवर्ण चेहरे की ओर देखा। वह रो नहीं रही थी। लगता था, अंधेरी कोठरी में सुबह से रोते-रोते आंसू चूक गये थे। आरिफ़-अका ने उसकी ओर बढ़कर अभी अपने हाथ फैलाये ही थे कि लड़की हाथ की गठरी उनके पैरों के पास फेंककर इस्राईलोव के पास से दौड़ती हुई धड़ाम से दरवाज़ा बन्द करके चली गई। द्वार के ऊपर का बड़ा-सा सूटकेस नीचे झटका खाकर गिर पड़ा उसमें भरे नववर्ष वृक्ष को सजाने के खिलौने टुकड़े-टुकड़े हो गये। सब लोग द्वार की ओर चल पड़े। आनाबीबी दौड़ती हुई आकर टैक्सी का दरवाज़ा खोल उसके अन्दर बैठ गई। उसके पीछे-पीछे तैमूर दौड़ता आया। इसके बाद मुस्कुराता हुआ इस्राईलोव अपनी पत्नी के साथ आया और फूहड़ ढंग से टैक्सी में जा बैठा।

तैमूर मोटर के गिर्द दौड़ते हुए चिल्ला रहा था, रो रहा था। आरिफ़-अका दौड़कर निकलने में असमर्थ थे। वह बरामदे के खंभे पर सिर टेककर खड़े रहे। बाहर से टैक्सी के चलने और धूल में तड़पते तैमूर की करुणाजनक आवाज़ सुनाई दी। आचिल बाबा ने बेटे को कुर्सी लाकर दी: आरिफ़-अका खंभे को पकड़े पकड़े ही बैठ गये। उनकी दृष्टि बाहर की ओर टिकी थी लेकिन उन्हें कुछ दिखाई नहीं दे रहा था...

तैमूर लौटकर वापस अन्दर नहीं आया। अज़ीमजान पर भी इस घटना का गहरा असर पड़ा था। वह आंखें फाड़े हैरानी से देख रहा था।

आरिफ़-अका घर के अन्दर गये तो उन्हें आंगन का सन्नाटा काटता-सा लगा। जब उन्होंने दहलीज़ से आगे क़दम रखे, पैरों तले खिलौने कड़क करते टूट गये। रंग-बिरंगे कांच के टुकड़े सारे घर में फैले थे। आरिफ़-अका की आदत थी, यदि आंगन में कांच का कोई भी टुकड़ा देख लेते तो झुककर उठा लेते और कहीं दूर फेंक देते थे...

उन्होंने फ़र्श पर पड़ी गठरी उठा ली। रूमाल में वह रेशमी कपड़ा था जो उन्होंने आनाबीबी के लिए पिछले इतवार को ख़रीद दिया था। नीली आंखोंवोली वह गुड़िया भी थी जिसे आनाबीबी बचपन से प्यार करती आयी थी। आरिफ़-अका फिर से कुर्सी पर बैठ गये, दोनों हाथों से सिर थामकर मेज़ पर टिका दिया। दिल पर गहन विषाद था, उनकी सारी ग्लानि अब इनके दिल में जमा हुई थी, चीख़कर रोने से किसी तरह ख़ुद को रोका।

"अब्बा..."

आचिल बाबा आंगन में ही थे लेकिन क्या करें, उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। अगर बेटे के पास जायें तो क्या करें, झिड़कें या तसल्ली दें... अच्छा है, थोड़ा रो ले, कम से कम कुछ शांति तो मिलेगी।

कोई पन्द्रह मिनट बाद फिर आरिफ़-अका की आवाज़ आई।

"अब्बा!"

आचिल बाबा अन्दर चले आये और दोनों हाथ कमरबन्द पर रखे बेटे के सामने खड़े हो गये। सिर उठाये बिना आरिफ़-अका ने पूछा।

"मरियम ने ब्यूरो के बारे में... कुछ नहीं कहा?"

"नहीं.., बस यह ख़त दिया है"... वृद्ध ने कमरबन्द की तह से एक लिफ़ाफ़ा निकाला। शायद इसमें कोई आपसी बात हो—इसी सन्देह में ख़त उन्हें देने का मौक़ा नहीं मिल पाया था।

आरिफ़-अका ने ख़त लेकर खोले बिना मेज़ पर रख दिया, फिर हाथों में उठाकर किसी सोच में डूब गये और थोड़ी देर बाद उसे खोलना शुरू किया। बेटे का मन दूसरी ओर हट जाने से प्रसन्न हो आचिल बाबा बाहर चले आये। जाकर रसभरे अंगूरों को देखा, उसके भारी कस्तूरकों को छूकर देखा। ख़ूब अच्छी फ़सल पैदा हुई थी। लेकिन अब इस सुनसान आंगन में वह किस की आँखें प्रसन्न करेगी?

बेटे पर रहम आने की बात बाबा छुपाना चाहते थे, इस लिए ऐसा दिखा रहे थे मानो अंगूर पर ही तरस आया हो।

तभी अन्दर से ज़ारों के कहकहे की आवाज़ सुनाई दी। वृद्ध अपने कानों पर विश्वास न करते हुए घर की ओर पलट पड़े। पाँव तले ज़मीन पर पड़े सूखे पत्ते सरसराये। कहकहा दुबारा सुनाई दिया। आचिल बाबा ठिठक गये। घर पर तो आरिफ़ के अलावा कोई नहीं था। हाँ, आरिफ़। उसी की आवाज़ थी।

आचिल बाबा सीना थामे हिलते-डुलते हुए दौड़े। हँसी अब भी सुनाई दे रही थी, अब साफ़-साफ़, ख़ुशी भरी हँसी।...

"दादा! ह्-ह्-हा! वाह, ह्-ह्-हा!"

बाबा जब दरवाज़े से अन्दर आये आरिफ़-अका आनाबीबी की छोटी-सी मेज़ पर लेटकर, पैर ऊपर की ओर उठाये बराबर कहकहा लगाये जा रहे थे। एक हाथ पेट पर था, दूसरे हाथ में ख़त।

"वाह, कैसी लड़की है! द्वार कितने ज़ोर से बन्द करके गई!!" कहकर वे हँसे जा रहे थे।

उन्होने काग़ज़ बाप की ओर बढ़ा दिया।

मरियम ने लिखा था:

"प्रांतीय न्यायालय में मुकदमे की सूचना पाकर मैंने इस्राईलोव के बारे में पूछताछ की। यह मुझे कैसे मालूम हुआ, वह बाद में बताऊँगी। अब तुम्हारे लिए यह जान लेना ज़रूरी है कि इस्राईलोव एक बड़ा दग़ा-बाज़ आदमी है। न्यायालय में उसने जो दस्तावेजें पेश कीं, वे सब जाली हैं। पहली बार उसे जालसाज़ी व सट्टेबाज़ी के लिए पकड़ा गया था।

बारह साल के कारावास की सज़ा मिली थी। अब "व्यक्ति पूजा" का शिकार बनकर फिर सट्टेबाज़ी में व्यस्त है। यह सब एकदम सच है। आनाबीबी के लिए परेशान न हो। मैं कल ही उस शहर की प्रोस्पेक्टिंग मंजिस्ट्री में गई थी जहाँ वह काम कर रहा है। काम पूरा भी नहीं कर पायी थी कि लौटते हुए यहीं बीमार पड़ गई... म..."

आरिफ़-अका अब अपनी जगह से उठ खड़े हुए थे। बिलकुल बदले हुए, पुरजोश, फुर्तीला। बाप के आस-पास चहलक़दमी करते हुए वह किसी चीज़ को इधर, किसी चीज़ को उधर करते, बराबर बोलते जा रहे थे।

"वाह, शैतान लड़की, दरवाज़ा कैसे धड़ाम से बन्द करके गयी थी?" वह इस तरह कह रहे थे मानो बेटी ने जीवन में यही सबसे अच्छा काम किया हो।

फिर बाप के सामने रुककर कहा: "किसी के बदमाश निकलने से इतना प्रसन्न होना अच्छी बात नहीं, मैं जानता हूँ, दादा?! लेकिन नहीं... मैं इससे प्रसन्न नहीं हूँ। मैं पहले भी जानता था, वह दगाबाज़ है, दिल यही कह रहा था। लेकिन अब ख़ुश हो गया हूँ" और कंधों को उचकाकर वह हँस पड़े, "पता नहीं, क्यों ख़ुश हो गया हूँ, मैं इसकी व्याख्या नहीं कर सकता। हाँ तैमूर बता सकता है। वह दार्शनिक है।"

अज़ीमजान को बुलाकर उन्होंने तैमूर को ढूँढ़ लाने कहा। स्वयं पुलाव पकाने में लग गये।

"भाँजेराम, आते समय ज़ीरा भी लेते आना!"

"जी, अच्छी बात है, मामा जी और वह? वह नहीं चाहिए?" हाथ से वोदका का इशारा करता है।

आरिफ़-अका हँस पड़े।

"अरे वाह भाँजेराम! ठीक कहते हो। लाओ, अब तो यहाँ नौजवान ही नौजवान रह गये हैं" शोख़ ढंग से उन्होंने पिता को आँख मारी। "एक पार्टी ही मना लें। वाह शैतान लड़की! द्वार कैसे धड़ाम से बन्द करके गई थी! वाह आनाबीबी शरारती बच्ची"

इसके साथ ही पहला क़िस्सा समाप्त होता है। अब मेहमानों को जाना है। आरिफ़-अका ने सुबह सवेरे इलाक़ाई समिति के गैरेज से मोटर

मँगाकर ड्राइवर से इन लोगों को शहर ले जाकर हवाई अड्डा पहुँचाने कहा। उधर उनकी ओर देखते हुए अज़ीमजान सोच रहा था: इस आदमी को पहली बार देखा और कुछ ही दिनों में बिलकुल अपना कैसे बन गया! उसे ऐसा लग रहा था मानो उसने मामा के भीतर-बाहर को हर तरह, हर पहलू से जान लिया था। रिश्तेदारी जो है और फिर इन कुछ ही दिनों में कितनी सारी घटनाओं का साक्षी वह बन बैठा था। विदा लेते समय अज़ीमजान देर तक अपने मामा के चेहरे को देखता रहा मानो उनकी सूरत दिल में सँजो लेना चाहता हो।

"पता नहीं, फिर मुलाक़ात होगी या नहीं... सही सलामत रहो, भाँजे, सकुशल अपने घर लौटो, सुखी रहो," आरिफ़-अका ने कहा।

नाती का दिल भर आया है, यह भाँपकर आचिल बाबा ने ज़ोरों से उसका कंधा थपथपाया:

"अब इसे कामीला से मिलाऊँगा" वह बोले। "फिर अक्बरअली के यहाँ जायेंगे। मैंने ख़ुद उसे कोई छः-सात साल से नहीं देखा है। बाप नहीं, माँ भी नहीं, कुछ असहाय-सा था। तुम ने अच्छा नहीं किया जो उसकी कोई ख़बर नहीं ली।"

आरिफ़-अका ने अपनी ग़लती मानी और बाप से गले मिलकर विदा लेते समय अक्बरअली को बहुत-बहुत सलाम कहने के लिए कहा।

सुबह की नम मिट्टी पर फूलदार तस्मे की तरह के दो निशान छोड़ती मोटर इलाक़ाई केन्द्र की प्रमुख सड़क से होती शहर के बाहर चली गयी। शबनम अभी भी जमी थी।

खेतों में कपास की चुनाई की तैयारियाँ हो रही थीं। नौजवान अपने यकतक की आस्तीनें चढ़ाकर खेत के शिविर के रेडियो की आवाज़ ऊँची करके चुनी कपास के लिए जगह तैयार कर रहे थे। खेत-कैंप के साये में लड़कियाँ कभी बुदबुदाकर, कभी हँसकर मेकअप करतीं, ओस्मा लगातीं और कपास चुनने के लिए पेशबन्द लगातीं। दूर से खेतों में दवा छिड़कनेवाले हवाई जहाज़ों का शोर सुनाई देता और लड़कियों की हँसी को कुछ लमहों के लिए दबा देता। काम अभी ज़ोरों पर नहीं था। ख़िज़ाँ का मौसम निकट आ गया था, सभी लोग खेतों में आ पहुँचे थे।

आरिफ़ का ड्राइवर नाटे क़द का तगड़ा-सा नौजवान था, उसके चेहरे

पर चेचक के दाग़ थे। आज वह अच्छे मूड में था। जब उसे पता चला, पास बैठा अज़ीमजान कौन है तो वह अपने दिल की बातें सुनाता गया।

हवाई अड्डे पर इस चेचकरू नौजवान से विदा लेते समय अज़ीमजान को काफ़ी दुख हुआ। वह समझ गया, यहाँ सबसे बड़े दुख की बात लोगों से विदा लेना, जुदा होना है। हरेक बार लगता है, जी का एक टुकड़ा टूट रहा है। शायद इस लिए कि उसे मालूम है, वह दोबारा इन लोगों से नहीं मिल पायेगा।

हवाई अड्डा बहुत बड़ा है, लोगों से खचाखच भरा। कई विनम्र नौजवानों ने आकर आचिल बाबा का अभिवादन किया। एक वृद्ध और वृद्धा पोते का हाथ पकड़कर गुलदस्ता लिये किसी का स्वागत करने दौड़े, फूलों की तेज़ ख़ुशबू हवा में मंडराती रह गयी। शहरी, गाँव के लोग, मर्द, औरतें, कंधे पर थैला लटकाये नौजवान, शोर मचाते बच्चे—सब एक दूसरे से मिलकर स्वागत करने या एक-दूसरे को चूमते हुए विदा ले रहे थे... कितने अधिक हैं यहाँ के लोगों के रिश्तेदार!

तभी मेकअप किये, आँखों में सुरमा लगाये, मर्ग़िलान के अतलस की मिनी फ़ॉक पहने हवाई परिचारिकाएँ गुजरीं। सब की सब सुडौल परियों-सी हसीन और एक दूसरे से जुड़वों की तरह मिलती-जुलती। चेचकरू ड्राइवर जिन चमत्कारों का ज़िक्र कर रहा था, उनमें से शायद एक यही होगा...

अजीब बात है, यहाँ सब कुछ बड़ा विशाल, असीम है। हवाई जहाज़ भी एक आलीशान महल की तरह है, उसके नीचे दिखाई देनेवाली वादियाँ भी, चारागाह, रेगिस्तान भी असीम हैं। इन सफ़ेद बादलों के ऊपर कुछ काला-सा अंतरिक्ष भी असीम, चिरन्तन शाश्वत है। अज़ीमजान को पास ही बैठे अपने नाना भी सनतनी, शाश्वत लगते थे और एक क्षण के लिए अज़ीमजान को लगता, वह उनसे बहुत दूर है। वह चौरानवे बरस के हैं... अज़ीमजान ने अपनी उम्र में उन्हें पहली बार देखा है। वह कितनी दूर है अज़ीमजान से... पर नाना की सफ़ेद लम्बी भौंहों, गहरी झुर्रियों से भरे आकर्षक चेहरे पर नज़र डालते ही यह क्षणिक विचार एकदम दूर हो जाता। नाना की आंखों में सारी दुनिया के लिए चिंता होती। अज़ीमजान के मन को बड़ी राहत मिलती।

उन्होंने खाना खाकर प्लास्टिक के बरतनों की चाय भी ख़त्म नहीं की

थी कि हवाई जहाज़ उतरने लगा। उड़ान की चौड़ी पट्टी दिखाई देने लगी। बादलों के ऊपर के अनंत अंतरिक्ष के धब्बे अपने परों पर लिये हवाई जहाज़ धरती पर उतर पड़ा। शायद ज़मीन-आसमान के मिलने का स्थान यही है।

जब तक वे होटल पहुँचे, शाम हो चुकी थी। थियटर के सामने के फ़ौवारों से पानी बराबर ऊपर उछल रहा था। उसके आस-पास की फूल-वाटिकाओं के बीच की बेंचों पर एक भी जगह ख़ाली नहीं रही थी। अज़ीमजान होटल की बालकनी पर खड़ा होकर नीचे भीड़ भरी सड़कों और मैदानों को, दूरी पर रंग-बिरंगे नियोन विज्ञापनों को देर तक देख रहा था।

फिर दोनों ने गठरी में से नान निकाल, चाय मँगाकर खाना खाया।

अब तक नाना-नाती ने एक-दूसरे को कोई भी बात नहीं बताई थी पर शायद दोनों के मन में एक ही बात थी। कुछ आराम करने के बाद आरिफ़-अका के बारे में उनमें बातचीत शुरू हो गई। अज़ीमजान चिन्तित था, अब उसके मामा का न जाने क्या होगा? आनाबीबी को वह लौटा सकेगा कि नहीं? कहीं काम से उसे बर्ख़ास्त न कर दिया जाये...

"वह रूसी औरत आरिफ़ मामा की बड़ी दुश्मन है न?!" अज़ीम-जान ने कहा।

"कौन? मरियम?" पलंग पर पैर समेट कर बैठे आचिल बाबा हँस पड़े। "वे कभी एक-दूसरे के दुश्मन नहीं हो सकते हैं, तुम यह बात याद रखो, बेटे," बाबा दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बोले। "यह बात कुछ लोग नहीं समझ पाते लेकिन मुझे तब भी हैरानी नहीं होगी, यदि वे किसी दिन शादी करके पति-पत्नी बन जायें। हाँ!"

"आरिफ़-अका और वह महिला?"

"हाँ, ये लोग चाहे आजीवन तू-तू, मैं-मैं करें फिर भी अभिन्न हैं। उनमें कोई भी फूट नहीं डाल सकता। इस दोस्ती की जड़ें बहुत गहरी हैं, बेटे। बहुत गहरी..."

अज़ीमजान फिर खिड़की के सामने जा खड़ा हुआ। मैदान में अभी भी बड़ी भीड़ थी। राजधानी का यह सबसे बड़ा मैदान था।

आचिल बाबा ने बत्तियाँ जलाये बिना लेटे-लेटे ही अपनी बात जारी रखी:

"तुम नहीं जानते, बेटे, यह कितनी पुरानी बात है, कितनी गहरी..."

अज़ीमजान की आंखों के सामने एक और मैदान मंडराने लगा।

हिकायत

मैदान में क़ब्रिस्तान-सा सन्नाटा छाया था। लोगों से खचाखच भरा होने के बावजूद सन्नाटा। हाँ, कभी-कभी गोलियों के चलने की आवाज़ उस सन्नाटे को भंग कर जाती। लगता है, विशाल मैदान के एक सिरे से दूसरे सिरे तक बड़े-बड़े पत्थर बिछे हुए हैं। पर ये पत्थर नहीं, लोगों के कंधे हैं। फटे-पुराने कपड़ों से ढके कंधे, नंगे, दुबले-पतले कंधे, झुके कंधे। छः हज़ार लोगों के कंधे। उनके चेहरों को नहीं देखा जा सकता। उन्हें इसी तरह झुककर खड़े रहने का आदेश दिया गया है। सिर उठाना मना है। जो सिर उठायेगा, उसे गोली मार दी जायेगी। कभी-कभी जो गोली चलाई जाती, वह बेसब्र लोगों को मौत के घाट उतार देती जो प्रिय शहर पर नजर डालने अथवा किसी रिश्तेदार को ढूंढ़ लेने के लिए इधर-उधर देखने लगते।

छः हज़ार झुके हुए सिर। यह उस विद्रोही शहर के निवासियों का एक हिस्सा है जिन्होंने किसी न किसी तरह सबेरे से शुरू हो गयी गोलीबारी से अपनी जान बचा ली थी। उन में अधिकांशतया बच्चे, महिलाएँ, बूढ़े लोग हैं; शहर के सैनिक दस्ते उन्हें शहर के अंचल में, इस ख़ाली मैदान में खदेड़ लाये थे। बन्द बाज़ार की सहन कहलानेवाला यह स्थान सर्दी हो या गर्मी, भूमिगत पानी में भीगकर दलदल बना रहता था। वहाँ सदा नमक निकलते रहता था। गर्मियों में वहाँ शहर के सैनिक दस्ते अभ्यास करते, निशाना साधते, बोरे में भूसा भरकर संगीन भोंकते। शहर के ग़रीब लोग दीवार में बने छेदों के पास खड़े होकर इसे ख़ूब देखते, छोटे-छोटे बच्चे आस-पास के टीलों पर आकर लेट जाते थे। अब मालूम हुआ, यह अभ्यास व्यर्थ नहीं था। वही सिपाही मैदान के सिरे के ऊँचे टीले की ढलान पर क़तारों में खड़े थे। उनकी बन्दूकों की संगीनें मैदान की ओर थी। बन्द बाज़ार के ओसारे के पास बिलकुल लाल, [illegible] रंग के मूँछोंवाला एक अफ़सर खड़ा था। वह इन सिपाहियों का

कमांडर था। मैदान में किसी के सिर नहीं उठाने से वह शायद ऊब गया था। रह-रहकर वह अपने सफ़ेद दस्तानोंवाले हाथ मलने लगता था। आज सुबह से उसने इतना काम किया था कि कोई दूसरा होता होश ही गँवा बैठता। लेकिन अब वह शायद ऊबने लगा था। कोहरा फैल गया, उसे हल्की ठण्ड-सी महसूस होने लगी, वह सिपाहियों की कभी इधर, कभी उधर क़तार बनाता। जब गोली नहीं चलती होती, मैदान में बस उसी की आवाज़ गूँजती रहती। आदेश के शब्द समझ में नहीं आते थे, बस तेज़ आवाज़ ही गूँजती: हाऊ-हाऊ, हाऊ-हाऊ! मैदान के लोग उसे, और उसकी आवाज़ भी ख़ूब पहचानते थे। उसे "कांसे के मूँछोंवाला" कहते थे। यह क़िले का सबसे अनपढ़, शराबी, निरंकुश अफ़सर था। जिस शराबख़ाने में भी जाता, किसी न किसी को मारकर अवश्य अपाहिज बना देता। लोग बताते हैं, ईर्ष्यावश उसने कुल्हाड़े से अपनी पत्नी को भी मार डाला था। अब वह ऊब रहा था। क़िले में बड़े अफ़सर जनरल के साथ इस प्रश्न पर सलाह कर रहे थे कि मैदान के लोगों का क्या करें। "कांसे के मूँछोंवाले" का वश चलता तो वह सबको मौत के घाट उतार देता। औरतों-सी शक्ल-सूरतवाले इस वृद्ध से सलाह बड़ी लम्बी चली। अंधेरा छा रहा था, ठंडा कोहरा अधिक गहरा हो गया था। जिस मैदान पर लोग कन्धे झुकाये खड़े थे वहाँ से दुर्गंधयुक्त भाप उठ रही थी। जब कभी कोई चेहरा चमक उठता, "कांसे के मूँछोंवाले" के इशारे पर तुरंत उसे बुझा दिया जाता है। किसका कौन ज़िन्दा है, कौन विधवा बन गई, और अनाथ हो गया – यह अभी मालूम नहीं। इन लोगों की दुख-पीड़ा, घबराहट, उनकी सारी दुख भरी चीखें अभी उनके अन्दर ही घुटी थीं। मैदान मुर्दे की तरह चुप है। केवल नीचे, कंधों की आड़ में, पैरों तले ही जीवन की छाया कम्पायमान थी। उसी हालत में लोग एक-दूसरे का चेहरा देखते, धरती से आँखें उठाये बिना फुसफुसाकर बातें कर लेते।

"शहर तो धराशायी दिया गया है, मदुमार," आचिल लोहार ने अपने बेटे का गला झुकाते हुआ कहा।

मुदमार-कुम्हार गलगंड का रोगी था, तीन घंटे तक झुककर खड़े रहना उसके लिए बहुत बड़ी मुसीबत थी। लेकिन उसे अपने बच्चे की चिन्ता थी। बच्चा पास में ही था। इकलौता बेटा।

"सिर मत उठाना," वह बराबर फुसफुसा उठता और बेटे की चोटी पकड़कर उसे नीचे कर देता।

पंद्रह वर्ष की उम्र तक बेटे की चोटी नहीं कटवा सका बेचारा। इस साल एक बकरी को पाल-पोसकर शाहे ज़िन्दा* जानेवाला था लेकिन तभी यह मुसीबत आई।

"सिर मत उठाना, अधमियों का मुँह देखकर कोढ़ का शिकार बन जाओगे!" वही मदुमार खरखर आवाज़ में बोल रहा था। आचिल लोहार मदुमार को पहचानता था, कुम्हारों की क़तार लोहारों के बिलकुल नज़दीक ही थी।

मदुमार बड़ा दिलदार आदमी था। कुशल कारीगरों का बड़ा आदर करता था। हरेक धंधे के पीर को जानता और ठहाके लगाते हुए आचिल लोहार की पीठ थपथपाकर बोलता कि तुमने स्वयं दाउद पैग़ंबर से हाथ मिलाया होगा। लेकिन उसमें एक बड़ी कमी थी – रूसियों से वह घृणा करता था। बरसों तक साथ-साथ काम करने, बरसों बहस करने के बावजूद आचिल लोहार उस के इस अंधविश्वास को नहीं दूर कर पाया था।

कंधे झुकाये इन लोगों के पैरों तले ज़िन्दगी रेंगती है और कभी कोई, कभी कोई अफ़वाह फैल जाती।

"क्या तुमने सुना? कहते हैं, आधी रात को सब को गोली मार दी जायेगी..."

दबी-दबी चीख़, रुलाई धरती पर रेंगती चली जाती।

"इतने लोगों को नहीं मारा जा सकेगा, क्या शहर की सड़कों पर पड़ी लाशें काफ़ी नहीं हैं?

"सुना है, विद्रोह के अगुओं को ले जाया जायेगा..."

कोई औरतों-सी फफकती आवाज़ में रोते हुए नाक सुड़ककर बोला।

"मैं तो विद्रोह के बारे में कुछ जानता ही नहीं, उससे मेरा कोई मतलब नहीं, मैं सड़क पर निकला ही नहीं। मुझे मज़दूरी के लिए बुलाया गया था। बताइये प्यारे पड़ोसियो, रूसी को बताइये, कमांडर को बताइये..."

"चुप हो जाओ!" किसी ने उससे कहा। "बन्द करो। क्या तुम पगले हो! हज़ारों लोग यहाँ सिर झुकाकर खड़े हैं।"

---

* शाहे ज़िन्दा – पहले समरक़न्द में मुसलमानों का तीर्थस्थान।

"हाय-हाय, भाइयो! हमारा क्या क़ुसूर है, हम क्यों मरे!"

तभी गोली चली और कोई चल बसा। आचिल लोहार सारी बातें सुनते हुए अपने नौ वर्ष के बेटे की कमर पर हाथ फेर रहा था जो उसी की तरह बड़े धैर्य से झुककर खड़ा था। आचिल लोहार गहरे सोच में डूबा था। वह मृत्यु के बारे में नहीं, आज की घटना के बारे में सोच रहा था। क्या वह इसी से ख़तम होगी? नहीं, इतना रक्तपात, इतनी क़ुर्बानियाँ व्यर्थ नहीं जा सकती हैं। उज़बेक भूमि पर अब तक कभी ऐसा नहीं हुआ।

मदुमार-कुम्हार का बेटा बराबर कसमसा उठता और वह उसकी चोटी पकड़कर उसे नीचे खींच लेता। शाम की ठंड बढ़ गयी थी। मैदान काफ़ी रोशन था। सिपाही चारों तरफ़ आग जलाकर उसकी गर्मी से राहत ले रहे थे। क़तार में टीले की ढलान पर खड़े सैनिक अब भी अपनी बन्दूकें मैदान की ओर ताने थे। "कांसे की मूंछोंवाला" अफ़सर भी अपनी संगीन ताने क़तार के सामने चहलक़दमी कर रहा था।

लोग एक-दूसरे से टिककर सहारा ले रहे थे। बुर्क़ा ओढ़े एक वृद्धा कीचड़ पर पड़ी थी और कोई उसपर झुककर क़ुरान पढ़ रहा था। आधी रात के बाद मदुमार का बेटा आख़िर गोली खा ही गया। बाप की चिंता निराधार न थी, ज़िद में सिर उठाकर बेचारे ने सिपाहियों की ओर देख लिया था। आचिल-लोहार आवेश में अपनी कमर सीधी कर ग़ुस्से से कुछ चिल्लानेवाला था कि मदुमार ने ज़ोर से उसकी गरदन झुका दी। इसके बाद मदुमार अपने बेटे के शव पर झुका भोर तक मौन रहा।

सुबह में क़िले से सुनहरी पत्तीवाले कोई दस अफ़सर बाहर निकले। दसों ने एक साथ आसमानी फ़ायर किये। नगाड़े बजे और एक ऐनकवाले आदमी ने टीले पर चढ़कर फ़रमान सुनाया। जनरल महोदय ने गोरे बादशाह की ओर से रहम करके आम जनता की जान बख़्श देने का निश्चय किया है हालांकि विद्रोही शहर के निवासियों का अपराध अक्षम्य है। गोरे बादशाह के ख़िलाफ़ आगे कोई षड्यंत्र न हो, इसलिए शहर की आम जनता इसी समय मिर्ज़ाचूल में निर्वासित की जाती है। यदि कोई किसी को कहीं भी, शहर या गांव में पनाह देगा तो उसे कड़ी सज़ा दी जाएगी।

मैदान एकदम हिल उठा। लोग के सिर में ख़ून जमा हो गया था।

आंखें लाल हो उठी थीं। अब इन लोगों में जो समर्थ था उसने कमर सीधी कर ली, जो असमर्थ थे वे चिल्ला उठे: एक पीड़ा से, तो दूसरा जान बचने के कारण, कोई "निर्वासित" का भीषण शब्द सुनकर। कुछ लोगों ने भगवान का नाम लिया तो कुछ इस लिए चिल्ला पड़े कि अपने नज़दीकी-रिश्तेदार का शव ले जाकर नहीं दफ़ना सकते थे...

शव ले जाने की इजाज़त नहीं थी। मदुमार की आंखों के आंसू सूख गये, हाथों में जान नहीं रही। बेटे की चोटी काटकर उसने बग़ल में रख ली और सिपाहियों के पैरों तले पड़े शव से बड़ी कठिनाई से आंखें हटाकर भीड़ में किन्हीं का सहारा लिये आगे बढ़ने लगा। घोड़ों पर सवार सिपाहियों ने गड़रियों की तरह चिल्लाते हुए भीड़ को पहले एक स्थान पर इकट्ठा किया, फिर सुबह से पहले ही स्तेपी की ओर खदेड़ दिया।

जब दिन निकला आचिल लोहार किसी को पहचान नहीं पाया। भीड़ धूल के बादल के बीच धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी। पीछे से चिल्लाते हुए घुड़सवार कोस्साकों की गालियाँ सुनाई दे रही थीं। आचिल लोहार अपने बेटे के हाथ पकड़े, चारों ओर देखते चला जा रहा था।

"मदुमार चाचा कहाँ हैं? तुमने नहीं देखा?" उसने पूछा।

लड़के ने नहीं सुना। उसके नाक-कान में धूल भर गयी थी। प्रभातकालीन झुटपुटे में हुई हलचल में कुछ लोग भागने में सफल हुए थे, कुछ गोली खा गये। स्तेपी में भीड़ को शायद दो टुकड़ों में बांट दिया गया था। अब लोगों की संख्या कल शाम की अपेक्षा कम थी। जब सूरज चढ़ आया और सुनसान, सड़क रहित स्तेपी का विशाल क्षितिज दिखाई देने लगा तब सूरज ने निर्वासितों की पीठ को गर्मी पहुँचायी। भीड़ में थोड़ी जान आ गई।

कुछ भी हो, पैरों तले ज़मीन और ऊपर आसमान तो है, ज़िन्दा तो बचे। आख़िर उनकी क़िस्मत होगी, रोज़ी-रोटी कहीं न कहीं मिल ही जायेगी। इस से भी बदतर दिन कटे हैं, ख़ुद सही-सलामत रहें, यही बड़ी बात थी।

उन तीन दिनों में न जाने कितने बेगुनाह नौजवान चल बसे थे। उन दिनों जो कोई सड़क पर निकलता, मौत के घाट उतार दिया जाता। मुहल्ले ध्वस्त कर दिये गये, बाज़ार पर गोले बरसाए गए, शहर मटियामेट कर दिया गया! मस्जिदें भी नहीं छोड़ी गयीं।

पर सूरज चढ़ने के साथ ही चलना कठिन होता गया। पानी कहीं नहीं, धूप से सूखी स्तेपी आग उगल रही थी। बूढ़ी औरतें बेबस, बुर्क़ों में उलझकर गिरती-पड़ती चल रही थीं। नंगे पैर बच्चे कांटों से परेशान हो रो रहे थे। गिरनेवालों को कुछ मज़बूत मर्द सहारा दे रहे थे।

घुड़सवार कोस्साकों की संख्या ज़्यादा नहीं, कोई आठ रही होगी, स्तेपी में पहुँचने पर वे भीड़ की ओर कम ध्यान देने लगे। वे पीछे रह गये, कुछ चबाते हुए या एक-दूसरे से लेकर बीड़ी सुलगाते हुए, कुछ कपड़े उतार धूप सेवन करने लगे। सबसे पीछेवाले तो ज़ीन पर बेतकल्लुफ़ी से सो रहे थे। वे जानते थे, यह थकी हुई भीड़ अब न उनका सामना करने में समर्थ है, न कहीं भाग जाने में।

वस्तुत: नंगी स्तेपी में भीड़ एक रेवड़ की तरह अपनी धूल के साथ चल रही थी। हालाँकि वह बहुत धीरे-धीरे चल रही थी, पर आगे बढ़ रही थी – घिसटती-सी, अज्ञात मंज़िलों की ओर।

शाम के समय एक स्थान पर एकत्र होकर लोग रुक गये। उनके साये उस भूमि पर लम्बे-लम्बे होकर पड़ रहे थे जिस पर नमक ऊपर निकल आया था। चूंकि रुकने का आदेश नहीं था, लोग एक-दूसरे का सहारा लेते आगे घिसीटते गये। कोई आधा घंटा बाद आठों घुड़वसार दूर पर एक काले धब्बे से दिखाई देने लगे फिर वे शायद चलते बने थे: जहाँ वे खड़े थे वहाँ धूल का बादल-सा रह गया था।

"चले गये, आचिल, छोड़कर चले गये," मदुमार ने कहा।

अपने बेटे से महरूम होने के बाद मदुमार पहली बार बोला था। उसकी आवाज़ पीड़ा से सनी थी मानो सिपाहियों को छोड़कर चले जाने से उसे बड़ा दुख हुआ हो। भीड़ ने पीछे मुड़कर देखा और चारों ओर देखने के बाद वह फिर पहले की तरह सिर झुकाकर आगे चलती गई क्योंकि चारों ओर कुछ भी न था, बस धूप से जली कांटेदार घास, गिट्टी, बालू और सफ़ेद बन गई, क्षारी भूमि... ज़िन्दगी का यहाँ कोई आसार ही नहीं था। यह रुकने लायक स्थान नहीं था। भीड़ बढ़ती गई मानो आगे कोई मंज़िल हो...

मगर आगे भी कुछ नहीं था। स्तेपी ही स्तेपी... वही जलती हुई स्तेपी। कितने क़ाफ़िलों को निगल चुकी मृत स्तेपी। असीम स्तेपी। तभी तो उसका नाम मिर्ज़ाचूल पड़ गया था।

एक छोटी पहाड़ी से आगे बढ़ने के बाद भीड़ ढलान पर बैठ गई। लगता था, नाउम्मीदी, लाचारी और शाम के अंधेरे ने उसे अपने बोझ से दबाकर बैठा दिया था। सवेरे तक उनके सिर ऊपर नहीं उठे। क्रूर नियति ने लोगों को एक-दूसरे के नज़दीक कर दिया था, परिचित, अपरिचित सब एक हो गये थे, सब एक दूसरे को दिलासा दे रहे थे। किसी ने अपनी स्थिति के बारे में नहीं कहा, किसी ने नहीं पूछा कि अब क्या होगा...

शोर-शराबे की शुरुआत सुबह में हुई। अब अनुभव हुआ कि कल से उन्होंने मुँह में कुछ नहीं डाला है, कि बड़ी प्यास लगी है, कि भाग्य ने उनके साथ निष्ठुर खेल खेला है। कुछ भी मालूम नहीं था: अब क्या होगा, कहाँ जायें, क्या खायें? कल जान बचने की ख़ुशी में उन्हें कुछ भी ख़्याल नहीं आया था। अब मालूम हो रहा था कितनी बड़ी मुसीबत में वे फँस गये थे...

ऐसी उधेड़बुन में ही उन्हें मालूम हुआ, भूख बराबर बढ़ती है और मौत बड़ी तेज़ी से आ रही है। लोग कई घंटों तक भटकते रहे, जहाँ कहीं कोई हरी घास दिखाई दी या पानी का भ्रम हुआ, वहीं भागकर गये कुछ न पाकर लौटे और दुबारा एक स्थान पर एकत्र हो गये। आदमी सदा साथ रहता है, एक-दूसरे से मदद चाहता है, वह एक-दूसरे के बिना नहीं रह सकता। सो, ये लोग भी अलग नहीं हुए। भूमिगत पानी से उगनेवाले सरकंडों के पास मकान बनाने का फ़ैसला किया। भीड़ में सबसे तेज़ और क्रियाशील आचिल लोहार और मदुमार कुम्हार थे। कुछ अन्य लोगों के साथ जाकर वे शाम को गेहूँ की कुछ बालियाँ चुन लाए। इसे साफ़ करके बच्चों को खिलाया गया। मुसीबत आदमी को आगे बढ़ना सिखाता है, क्रियाशील बनाता है। रोज़ किसी को कुछ न कुछ सूझ जाता था। पत्थरों पर शबनम का पानी, धानीमूष की मांद में इकट्ठा अनाज, सरकंडा, भूमिगत पानी, जंगली पोस्त का प्याज़–सब काम आने लगे। फिर भी सबसे महत्त्वपूर्ण गेहूँ और जौ की बालियाँ थीं। जो कोई चल सकता था, दूर-दूर जाकर उन खेतों में दिन भर भटकता रहता था जहाँ फ़सल काटी गई थी। शाम को वह अपनी जेब में बालियाँ भरकर लौटता।

रात में बेहिसाब ठण्ड पड़ती तो दिन में भयानक गर्मी। आचिल और

मदुमार ने ज़मीन खोदकर तहख़ानेनुमा गड्ढे बनाने कहा। उन्होंने भीतर सूखी घास बिछवाई।

महिलाएँ अंगीठी के लिए सूखी घास, आदि इकट्ठा करतीं, बूढ़े सरकंडों से चटाइयाँ बनाकर रोगियों के नीचे बिछाते, बच्चे सुबह उठकर बालियाँ खोजने जाते। बच्चे... आचिल और मदुमार देखते हैं, ज़िन्दगी हालाँकि एक रास्ते पर चलने लगी थी फिर भी लोगों की आंखें बुझी-बुझी थीं, वे उदास थे। आख़िर इस तरह कब तक दिन काटे जाएँगे, कल क्या होगा? सर्दियों का मौसम आनेवाला था, गिरे, भूख से फूले लोगों की संख्या बढ़ती जा रही थी, बच्चों का बचपन ख़तम हो चुका था, खेल, हँसी नहीं रह गई थी। वे अपने पिताओं की आँखों में ध्यान से देखते रहते थे।

आचिल लोहार रोज़ शाम को अपने तहख़ानेनुमा गड्ढे में बेटे की प्रतीक्षा करता। वह "आज मैं सबसे अधिक चुनकर लाऊँगा, बड़ी अच्छी जगह ढूंढ़ ली है" कहकर अपने पिता को बढ़ावा देकर जाता। मगर जब लौटता, उसके पैर ख़ूनी होते, पतली-सी पिंडलियाँ रगड़ खायी होतीं, उंगलियाँ नीली। एक दिन वह रोते हुए लौटा, मच्छरों के काटने से उसका चेहरा पीला पड़ गया था। बेबस वह अपने बाप के घुटनों पर गिर पड़ा। बाप समझ गया, आज एक भी बाली नहीं मिली। आचिल ने बेटे के ज़ख़्मों से भरे सिर पर हाथ फेरकर कहा: "छोड़ो, यह भी रोने की बात है क्या? लो, मैं ने शलग़म उबालकर रखा है, खा लो।" उसने बड़ी कठिनाई से अपने आंसू रोक लिये थे।

शलग़म से उनका मतलब एक प्रकार की जड़ से था जो उन्हें पिछले दिनों मिली थी।

फिर उसके बेटे ने रोना बन्द कर दिया, यहाँ तक कि एक दिन जब वे बालियाँ चुनने गये, साथी के अचानक मर जाने पर, वह उसे उठाकर लाने की जगह वहीं दफ़नाकर लौट आया। वापस आने पर उसने इसके बारे में बिना रोये-धोये बता दिया। मृत लड़के की माँ भी नहीं रोयी-धोयी। आचिल-लोहार के बेटे के बारे में लोग कहने लगे: अब वह बड़ा हो चुका है।

अब अधिकतर मृतकों को रोये-धोये बिना दफ़नाया जाने लगा। रोज़ किसी न किसी की आंखें बन्द हो जातीं: कोई भूख से मर जाता, कोई

बीमारी से, कोई खारा भूमिगत पानी पीने से... मौत की ख़बर पाकर अधिकांश लोग "छुटकारा पाया, बेचारे ने" कहकर भूख मिटाने के लिए कुछ खोजने चले जाते। सबके सब भाग्य के सामने घुटने टेक चुके थे। उन्हें विश्वास हो चुका था, सबके शव इसी स्तेपी में रह जायेंगे। पर कुछ ऐसे भी लोग थे जो अभी तक हिम्मत नहीं हारे थे। वे कुछ होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके मन में विद्रोह के अंगारे ठण्डे नहीं पड़े थे। ऐसे लोग आचिल और मदुमार के साथ थे। सलाह-मशविरा करते, अटकलें लगाते। लोगों को इस बात की याद दिलाते रहते कि चारों ओर आदमी हैं, दुनिया बहुत बड़ी है। इस प्रकार वे बाक़ी लोगों के दिलों में भी अंगारे जलाने, उनके जीवन दीप न बुझने देने की कोशिशें करते।

"कोई न कोई तो ख़बर लेगा, आख़िर हमारे दोस्त भी तो हैं... "

"या ऊपर से ही तरस खाकर... "

"यहाँ से चल देना चाहिए!"

"कहाँ?"

"जहाँ लोग रहते हैं, वहीं। लोग तो कोढ़ के रोगी तक को शरण देते हैं। अगर हम चलते रहें तो कोई न कोई शहर या गाँव या चारागाह तो ज़रूर ही मिल जायेगा।"

"और फिर तेरे कारण उन लोगों को फ़ाँसी दे दी जायेगी, गांव को जला दिया जायेगा? यही चाहता है तू न? नहीं, हम बेगुनाह लोगों को मुसीबत में नहीं डाल सकते।"

एक दिन जब इसी प्रकार की गपशप हो रही थी सरकंडों के झुंड की ओर से कुछ सुनाई दिया। काफ़ी अंधेरा था। लोगों ने सोचा, वायु के झोंकों के कारण ऐसी आवाज़ सुनाई दी होगी। वे फिर से अपनी बातचीत में लग गये। पर किसी का हाँफ़ना साफ़-साफ़ सुनाई दिया।

"अरे, यह तो हमारा अपना दीवाना है!"

वस्तुत: यह वही कुबड़ा था जिस का पिछले दिनों दिमाग़ फिर गया था। पर वह अकेला नहीं था, उसके हाथों में किसी बच्चे का शरीर था। सब अपने-अपने स्थान से उठकर उसकी ओर देखने लगे। किसी ने कहा "और कोई बचवा मर गया है, शायद!"

कुबड़े ने बच्चे को ज़मीन पर रख दिया। यह कोई लड़की थी। सरकंडों के नीचे से चुल्लू भर पानी लेकर उसने लड़की के चेहरे पर छिड़का।

"कौन है यह, दीवाने?" चिल्लाकर लोगों ने पूछा। दीवाना मौन रहा। लड़की ज़िन्दा थी, उसने सिर उठाया। दीवाना ने उसे पैरों पर खड़े होने में मदद दी और उसे लोगों के पास ले आया।

"ओ-ओ-व!" दीवाना ने दूरी की ओर संकेत करते हुए कहा—"ओ-ओ-व! वहाँ मिली मुझे। मरी हुई थी... बहुत दूर!" जब लड़की आग के पास आई, सब ने सब से पहले उसका चेहरा देखा, गोला-सा चेहरा। यहाँ के लोगों जैसी नहीं थी, उसके गाल मोटे और लाल थे। वह हैरानी से मुस्कुराते खड़ी थी। अपनी आंखों पर विश्वास न करके लोग पहले घबरा उठे। इतने में लड़की अचानक चिल्लाकर आग की ओर बढ़ गई।

"हायबाला! हायबाला! मैंने तेरी तलाश की, और तेरे पास चली आयी!" कहकर वह दौड़ती हुई आचिल लोहार के बेटे के पास जा पहुँची और उसे गले लगा लिया।

"क़िज़िमका*..." लड़के ने अन्दर धँसी आँखें फाड़कर कहा—"अब्बा जान, यह तो क़िज़िमका है, क्या आप ने नहीं पहचाना? क़िज़िमका, तुम कहाँ से आई, हमें तो निर्वासित किया गया है, तुम क्यों आई?"

"तेरे पास आयी, यह लो!" कहकर लड़की ने तीन सेब निकाले और अपने पेशबन्द के जेबों से मुर्ग़ी, घंटीवाली मिठाइयाँ निकालकर "हा-यबाला" को दे दिया।

"क़िज़िमका, तुझे कुछ रोटी लानी चाहिए थी। देख रही हो, यहाँ अलीमत भी, मुकम्बर चाची भी मर रही हैं।"

"अरे, मिठाइयाँ तो रोटी से बेहतर हैं..." क़िज़िमका बोली, फिर एकाएक डर गई, नीली आंखें फ़ाड़-फाड़ कर उसने पूछा: "मर रही हैं, क्यों मरती हैं?"

लड़की ने अपने चारों ओर खड़े दुबले-पतले, फोड़ों से पीड़ित लोगों के सूजे चेहरों पर एक-एक करके नज़र डाली। वह किसी को पहचान नहीं सकी। सोचा शायद सपना देख रही है। चीख़ न निकले, इसलिए उसने अपने मुँह पर हाथ रख लिया। आग बुझ रही थी, उसके धुएँ से भयानक चेहरे दूर हो गए। तभी भीड़ में शोर मचा। कोई चिल्ला उठा:

---

* क़िज़िमका—उज़्बेकी में "बिटिया" का पर्याय।

"कांसे की मूँछोंवाले" की बेटी है! उसी की बेटी है!" धुआँ फैलाती राख पर क़दम रखते हुए मदुमार आगे बढ़ आया।

कुम्हार की ग़ुस्से से उबलती आंखें बाहर को निकल आयी थीं। वह अपने नसदार पंजे फैलाकर क़िज़िमका पर टूट पड़ने को तैयार था।

"जल्लाद की यह हरामी औलाद मुझे दे दो। अभी मैं इसका गला घोंट डालूँगा, कुत्ते की बच्ची का!" उसने चिल्लाकर कहा। उसके सूजे गलगंड की नसें नीली पड़ गयी थीं। उत्तेजनावश अपने पंजे लड़की के गले की ओर करके वह आगे बढ़ रहा था। आचिल लोहार ने उसे झटके से परे हटा दिया।

"मदुमार!"

ऐसा मालूम हो रहा था मानो कुम्हार की आंखें लड़की के अलावा कुछ नहीं देख रही थीं। वह फिर बढ़ने लगा। आचिल ने उसे अधिक ज़ोर से परे हटाया तो वह लोगों के पैरों के पास राख पर गिर पड़ा।

"क्या बच्चे से बदला लोगे, नामर्द?" आचिल चिल्लाया। भीड़ में मदुमार का साथ देनेवाले दूसरे लोग भी थे। उनकी आँखों में ख़ून उतर आया था। यह देखकर आचिल, उसके बेटे तथा अन्य दो-तीन व्यक्तियों ने लड़की को घेर लिया।

"बच्ची का क्या क़ुसूर है?" आचिल ने फिर से कहा।

"और हमारे बच्चों का क्या क़ुसूर था?"

"जो यहाँ मृत्यु शय्या पर पड़े हैं, उन बेचारों का क्या क़ुसूर था?"

"आख़िर यह तो बच्ची है, इसमें उसका कोई हाथ नहीं, वह बेचारी तो हम को ही ढूँढ़ते आयी है!" लोहार ने विनती भरे स्वर में कहा।

"तेरे बच्चे की तलाश में आयी है," मदुमार फटे-पुराने कपड़ों से राख झाड़कर बोला, "तुम सदा से रूसपरस्त रहे हो, आवारा!"

आचिल लोहार जिज़्ज़ख़ का रहनेवाला नहीं था। अभी छह साल पहले ही [illegible]नमार से आकर उसने यहाँ बाज़ार में लोहार की दुकान खोली थी। अपने काम [illegible] बड़ा ही निपुण था। हालाँकि ग़रीब नहीं, फिर भी मेहनतकश इनसान था। अपनी मेहनत से सम्पत्ति बढ़ाई, नाम कमाया। इसी लिए "आवारा" कहना उसके लिए बहुत बड़ा इलज़ाम था, यह समझकर बूढ़े लोग उन्हें शांत करने लगे।

"नाजायज़ बातें छोड़ो, मदुमार! वह दूसरे स्थान से ज़रूर आया है फिर भी हमारे दुख-दर्द में हमेशा शरीक तो रहा है।"

भीड़ आहिस्ता-आहिस्ता तितर-बितर होने लगी। लड़की हायबाला के पीछे उसके टाँगों का सहारा लिए सो गई थी। आचिल लोहार उसे उठाकर तहखाने में ले आया। उसके बेटे के जलाये आवकूराय की रोशनी में क़िज़िमका को चटाई पर सुला दिया गया। वह गहरी नींद में पड़ी थी। उसके लाल रंग के लम्बे बूट में खरोंचें लगी थीं, पेशबन्द गन्दा हो गया था, पिता के मूँछों की तरह कांसे के रंगवाले उसके बाल चेहरे पर फैले थे जिसपर झाइयाँ पड़ी थीं।

"क़िज़िमका," हायबाला ने फुसफुसाकर कहा। वह "तुम डरो मत" कहकर उसे तसल्ली देनेवाला था। मगर उसने कुछ सुना नहीं। क़िज़िमका बड़ी बहादूर, रोबदार है। जब क़िले के पास तरह-तरह के खेल खेलते थे तो वह लड़कों से ख़ूब लड़ती थी, चेहरा, आंखें चोट से सदा नीले रहते थे। गोफ़नी फेंकने में वह लड़कों से किसी तरह पीछे नहीं रहती थीं। हायबाला के साथ भी कई बार उसका झगड़ा हुआ, दोनों ने एक-दूसरे के बाल भी नोचे थे। एक दिन उन्होंने बिल्लियों की अदला-बदली की। हायबाला की बिल्ली कुछ जंगली स्वभाव की झबरी थी, पड़ोसी लड़कों के कबूतरों को बहुत तंग करती थी। इस लिए हायबाला बिल्ली बदल कर बहुत ख़ुश हुआ मगर दूसरे ही दिन वह लौट आयी। क़िज़िमका की बिल्ली भी वापस चली गई। दोनों ख़ूब हँसे थे। फिर वे अपनी बिल्लियों से विविध वस्तुओं का आदान-प्रदान और एक-दूसरे को उपहार भेजने लगे। जैसे हायबाला ख़ुद गोफ़नी बनाकर उसकी बिल्ली के गले में बाँधकर भेज देता तो उसी दिन उसकी झबरी बिल्ली कमर पर एक छोटी-सी थैली बाँधे लौट आती थी। उसमें फैक्टरी की ख़ूब मज़ेदार मिठाइयाँ होती थीं जो केवल गोरे बादशाह के अफ़सरों के घरों में ही मिलती थीं। तभी से हायबाला केक बहुत पसन्द करने लगा था। अफ़सोस की बात थी कि इस समय क़िज़िमका जो केक लाई थी, उनमें से एक ही हायबाला को मिला। बाक़ी केक को बाप अन्य तहख़ानों में लेकर बीमारों में एक-एक टुकड़ा बांट आया। एक सेब उन्होंने क़िज़िमका के लिए चटाई के नीचे रख लिया। जब उठेगी तो खा लेगी। सेब की सुगंध से हायबाला देर तक नहीं सो पाया, फिर अचानक नींद आ गई। बाप रात भर नहीं

सोया। कभी तहख़ाने में, कभी खेत में चहलक़दमी करते हुए वह कुछ सोचता रहा। सुबह उसने लड़की को जगाया।

"कैसी नीन्द आयी?" उसने मुस्कुराकर पूछा। लड़की आँखें मलते हुए भय से अंधेरे तहख़ाने के चहूँ ओर नज़र दौड़ाते रही।

"अब तुझे लौटना है, क़िज़िमका," आचिल गंभीर स्वर में बोला। "देखती हो, यहाँ खाने को कुछ नहीं, पानी भी नहीं, लोग प्यासे हैं, बच्चे भूखों मर रहे हैं। तुम लौट जाओ। तुम्हें घाटी पार तक पहुँचा दिया जायेगा, शाम तक शहर पहुँच जाओगी।"

लड़की सोच में डूब गई।

"हायबाला भी मेरे साथ चले!" उसने कहा।

"हमें मना है। हायबाला को भी जाने की इजाज़त नहीं। बस तुम्हीं जा सकती हो।"

लड़की सोच में डूबी चुप रही। ऐसा लग रहा था मानो इसी एक दिन में उसका भी बचपन ख़त्म हो गया था। आचिल और उसके बेटे ने उसे मौन देख समझ लिया कि वह जाने को राज़ी है।

"लौटने पर बाप को क्या कहोगी? यहाँ आने के बारे में तो नहीं बताओगी?" आचिल ने पूछा।

"नहीं, पिता जी के पास नहीं जाऊँगी!" लड़की चिल्ला उठी। उसका झाइयोंवाला चेहरा बदल गया, आंखों में ग़ज़ब की चमक आ गयी। "नहीं जाऊँगी! वह शराब पीकर आते हैं, रात को भी शराब मांगते हैं, छत पर गोली चलाते हैं, मुझे डर लगता है। मैं पिता जी के पास नहीं जाऊँगी!"

लड़की चिल्लाकर पैर ज़मीन पर पटकते हुए रो रही थी। इसी बीच तहख़ाने के सामने लोग आ जुटे थे। उन्होंने एक दूसरे की ओर देखकर सिर हिलाये।

"शायद सपनों में भी ख़ून में तैरता होगा, रक्तपिपासू इसी लिए रात को गोली चलाता होगा," मदुमार बोला। अब तक वह काफ़ी शांत हो चुका था।

"बड़ा बेईमान है यह "कांसे की मूँछोंवाला!"

"ईमान कहाँ से आये उसे?"

आचिल लोहार ने तहख़ाने से निकलकर कमर सीधी की फिर क्षितिज की ओर देखा जहाँ उजाला फैल रहा था।

"हवा का रास्ता बन्द न कीजिये, तहख़ाने में साँस लेना कठिन होता जा रहा है," उसने लोगों को एक ओर ले जाते हुए कहा। फिर लोगों पर इस प्रकार नज़र डाली मानो पूछ रहा हो: अब क्या करेंगे, भाइयो! लोग उसके पास एकत्र हुए, लोहार की चाल-ढाल से वे समझ गये थे, उसके मन में कोई बात आयी है। काफ़ी दूर जाकर वे घुटनों के बल बैठकर सलाह करने लगे। कोई पन्द्रह मिनिट बाद शोर मचा, सभा भंग हुई, सब तहख़ाने की ओर चल दिये। उनमें सब से अधिक शोर मदुमार मचा रहा था।

"सांप का बच्चा—सांप ही होता है! हो सकता है, उसे बाप ने सिखा कर भेजा हो!"

"सिखाने को तो नहीं सिखाया पर बच्ची है, उसपर विश्वास कैसे किया जा सकता है? मान लो। शहर से लौटकर बाप के पास जायेगी और वह पूछेगा "कहाँ गई थी?" तो वह कहीं सब कुछ डरकर बता दे तो..."

"उसी क्षण घोड़ों पर सवार होकर आ पहुँचेंगे और हमें ख़त्म कर चलते बनेंगे," मदुमार ने कहा और आंखें यूँ दौड़ाईं मानो स्तेपी में पड़े सैंकड़ों शवों को देख रहा हो। चूँकि ऐसा होना संभव था, लोग घबरा उठे और आचिल के समर्थक भी दो भागों में बंट गये।

"अच्छा, तो क्या करें?" आचिल ने कुछ सोचते हुए पूछा। "क्या हमें भूखों मरना है? इस समय हमारे आधे लोग मृत्यु शय्या पर पड़े हैं। यदि भूख के साथ कोई बीमारी आ जाये तो एक सप्ताह भी नहीं ज़िन्दा रह पायेंगे। हमें मदद कहाँ से मिल सकती है? हम किस चीज़ की प्रतीक्षा कर रहे हैं? इस प्रकार असहाय, शर्मनाक मृत्यु से कोई भी संयोग बेहतर है।"

मदुमार के पागलों जैसे चिल्लाने से लोगों को यह बात अधिक विवेकपूर्ण लगी। आचिल के पक्ष का पलड़ा फिर से भारी हो गया। जब किसी ने विरोध नहीं किया, आचिल तहख़ाने के अन्दर चला आया।

"क़िज़िमका," लड़की के पास बैठकर बड़ी नरमी से वह बोला। "अच्छा, तुम बाप के पास न जाना। ठीक है, बिलकुल न जाना। लेकिन तुम्हें शहर ज़रूर जाना पड़ेगा।"

"हायबाला भी जायेगा!"

"नहीं। हायबाला नहीं जा सकता है। तुम खुद जाग्रोगी। तुम्हें पहुँचा दिया जायेगा। ईंट के भट्ठे के धुएँ की ग्रोर चलोगी तो शाम को शहर पहुँच जाग्रोगी। सीधा जाकर बेशक़ुवुर चर्च के घेरे को पार करके मतवेय चाचा की खिड़की खटखटाग्रोगी। समझ गई? वही मतवेय चाचा जो घंटी बजाता है, पहचानती हो तुम उसे?"

लड़की ने सिर हिलाया।

"लो, ग्राधा सेब खा लो।"

तहख़ाने के सामने खड़े लोगों में मदुमार फिर चिल्ला उठा:

"घंटी बजानेवाला! फिर रूसी! फिर रूसी के हाथ सौंप देगा हमें यह लोहार!"

"चुप रहो, कब तक चिल्लाते रहोगे!"

"तुमने रूसियों में क्या ग्रच्छाई देखी?" कहकर मदुमार कुम्हार ने किसी की गरदन पकड़ ली। "तेरी पत्नी को घोड़े के पैरों से रौंदकर किस ने मार डाला? तेरे मकान को ध्वस्त करनेवाला कौन था? कल तेरी हड्डियों को भी गीदड़ चटकर जायेंगे।"

किसी उपाय की तलाश में, सोच-विचार से थकी-हारी भूखी भीड़ को यह चिल्लाहट ग्रच्छी नहीं लगी। मदुमार को परे हटाकर उन्होंने तहख़ाने में हो रही बातों पर कान लगा दिये।

"क़िज़िमका, घंटी बजानेवाले को तुम बताग्रोगी कि सब भूखे हैं, पानी नहीं है, क़रीब एक सौ ग्रादमी मर चुके हैं। बाक़ी लोगों में भी ग्रधिकांश चटाइयों पर बेबस पड़े हैं। समझा?" लड़की सिर हिलाती रही। ग्रब वह भली-भांति समझ गई थी, शहर में जाना ज़रूरी था।

"ग्रगर तुम ऐसा न करोगी तो हायबाला भी भूखों मर जायेगा ग्रौर बहुत से ग्रन्य बच्चे भी। समझी?"

"समझ गई।"

"ग्रपने पिता की ग्रांख न पड़ना। मतवेय चाचा जो कहे, वही करना। उसी के घर में रहना, वह बुर्ज पर, घंटीख़ाने में तुम्हारे लिए जगह बना देगा। वहाँ से कहीं मत निकलना।"

"मैं यहाँ ग्रा जाऊँगी, ग्रच्छा? हायबाला के लिए रोटी लाऊँगी।"

"नहीं, नहीं! तुम मेरी बात घंटी बजानेवाले तक पहुँचा दोगी, बस।"

मदुमार का दिमाग़ फिर बहकने लगा। माथे पर हाथ मारकर, मुँह का पानी फेंकते हुए वह चिल्लाया। पर पास के लोगों ने उसे शांत करा दिया।

"और एक बात है, क़िज़िमका," आचिल लोहार ने बात जारी रखी। "घंटी बजानेवाले को अकेले में सब कुछ बताना: आप को यरोफ़ेय बाबा के हमाम में जाना है। उस पत्थरोंवाले मुहल्ले में लँगड़ा यरोफ़ेय जो है, जानती हो उसे?"

"तंग गली में?"

"हाँ, शाबाश। कहना लँगड़े यरोफ़ेय के हमाम में जाना है। समझ गयी? भूलोगी तो नहीं?"

"नहीं।"

"अच्छा तो क्या बताओगी तुम?"

"मतवेय चाचा आप को लँगड़े यरोफ़ेय के हमाम में जाना है। यही बताऊँगी।"

आचिल लोहार ने लड़की को और अपने घुटनों पर बैठे बेटे–दोनों को एक साथ बाँहों में भरकर प्यार किया।

"शाबाश, अक़्लमन्द क़िज़िमका!"

जब हायबाला और लड़की विदा ले रहे थे, लोहार की आंखों में आंसू भर आए। लड़की को नौजवान घाटी पार तक पहुँचाकर लौट आये। सब उसी ओर देखते खड़े थे।

"डटे रहो, भाइयो, बीमारों की देखभाल करते रहो। मुझे विश्वास है, दोस्त हमें ज़रूर बचायेंगे," लोहार ने कहा।

नौजवान सरकंडे काटने और बच्चे अपने चटककर ख़ून आनेवाले पैरों पर लत्ते बाँधकर बालियाँ खोजने निकल पड़े, कोई टोपी में पानी ला-लाकर धानीमूष को उसकी माँद से निकालने की कोशिशें कर रहा था। सब अपने काम में लग गये। लेकिन मदुमार के पास कुछ लोग अब भी चिल्लाते, धमकियाँ देते खड़े थे।

"यह बिच्छू, कल घुड़सवार कोस्साकों, रूसियों को लेकर आये तो..."

"इतने लोगों के लिए तुम्हीं ज़िम्मेदार होगे, लोहार!"

"यदि तुम हमें रूसियों को बेचकर ख़ुद बचना चाहते हो तो घुड़सवार

दिखाई देते ही सबसे पहले तेरी गर्दन हम नाप लेंगे, जान लो," मदुमार ने कहा।

यह धमकी देकर वे चले गये। आचिल लोहार तहख़ाने के पास एक पत्थर पर माथा पकड़कर अकेला बैठा रहा।

नाराज़ मदुमार की बातों ने लोगों के विश्वास को कम कर दिया था। आचिल इस बात से बहुत परेशान था। फिर बहुत सारे लोग इकट्ठे आचिल के पास आये।

"लंगड़े यरोफ़ेय के हमाम में हथियार हैं, क्या?"

"हाँ, हथियार हैं," आचिल ने भी साफ़-साफ़ कहा।

"शहर ध्वस्त कर दिया गया, क्या यह तेरे लिए कम है? अब भी तुम्हें कोई पछतावा नहीं? तेरे जैसे लोगों के कारण ही यह रक्तपात हो रहा है!"

"हाय, मदुमार, तुम तो "कांसे की मूँछोंवाले" सी बातें कर रहे हो", एक वृद्ध बोला। इससे आचिल को कुछ बढ़ावा मिला।

"भाइयो," उसने गंभीरता से कहा, "अगर आपका कोई और सुझाव हो तो बताइये, मैं अपने रास्ते से हट जाऊँगा।"

"आचिल ठीक कहता है, मरनेवाला बैल कुल्हाड़े से नहीं डरता।"

"अब हथियार उठाने के अलावा कोई चारा नहीं," आचिल ने कहा।

"यह तो ठीक है, मगर तुमने इतने लोगों का भाग्य एक अब्बी के हाथों क्यों सौंप दिया?.."

"और वह भी एक रक्तपिपासु जल्लाद की बिटिया को..."

"बस करो, मदुमार!"

"यह हथियार तुम्हें ख़ुद ख़तम कर देगा!" मदुमार बोला और जाते-जाते कह गया: "लोहार पर नज़र रखो, नौजवानो!"

आचिल फिर से पत्थर पर अकेला रह गया। वह भी समझता था: मदुमार की बात निराधार नहीं है। बड़ा जोखिम का काम किया था उसने। "कांसे की मूँछोंवाला" बेटी को ढूँढ़ने लगा होगा। अगर वह उसे पकड़कर, डराकर सब कुछ बताने पर मजबूर कर दे... न बताए तो वह उसे मार डाल सकता था। लड़की ने कहीं डरकर बता दिया तो हथियार चले जायेंगे, साथी शहीद हो जायेंगे, समरक़न्द, ख़ावास से संबंध

सूत्र टूट जायेंगे, यहाँ के लोग... यहाँ के लोग तो ऐसे भी ख़तम हो जाएँगे।

इन्हीं आशंकाओं में डूबा आचिल गुमसुम रहता था। दो दिनों तक उसने न कुछ खाया, न रात में उसे नीन्द ही आयी। उसी पत्थर पर बैठा रहता।

तीसरी रात मदुमार के नेतृत्व में कुछ लोग आये। आचिल इन दुबले-पतले, फटे-पुराने कपड़े ओढ़े लोगों को पहचान ही नहीं पाया। कुछ क्षणों तक मौन खड़े रहकर वे लोग चले गये। मालूम नहीं, उन्हें दया आई थी या वे गुस्से में थे। आधी रात में उस ओर से प्रकाश दिखाई दिया जहाँ से किसी की प्रतीक्षा नहीं की जा रही थी। कहते हैं, रात को शायद हड्डियाँ जल उठती हैं... नहीं, मालूम होता है, कोई मशाल लिये आ रहा था। लेकिन कौन? कोई स्तेपी की ओर से तो नहीं आ रहा?

आचिल उठ खड़ा हुआ। अब कुछ न कुछ अवश्य होगा। उसने डर के मारे रोनेवाली औरतों, बुरी बातों की भविष्यवाणी करनेवाले मदुमार जैसे लोगों को चुप रहने और आग बुझाने का आदेश दिया। नौजवानों को अपने पास बुलाकर वह उस ओर पहले से जाकर घुटनों के बल बैठ गया जहाँ से मशाल आ रहे थे। पहले यह जानना था कि ये लोग कौन हैं, फिर उसी के अनुकूल काम करना था।

"रूसी हैं..." मदुमार बोला।

"सिपाही नहीं हैं, यह तो स्पष्ट है।"

"भूख से मरती भीड़ को चुपके से ख़त्म करने के लिए पिस्तौल धारी चार पुलिसमैन भी काफ़ी होंगे।"

"चुप!"

"हे जिज़ज़ख़ के लोगो!" किसी ने रूसी में रुँधी-सी आवाज़ में पूछा।

आचिल उठ खड़ा हुआ।

"हे लोगो! है कोई?" फिर उसी आवाज़ ने कहा।

आचिल आगे बढ़ा। फिर एकाएक दौड़ने लगा। दूसरे लोग भी पहुँच गये। आगंतुकों ने रेत में गाड़कर अपनी मशालें बुझा दीं। एक साथ वे तहख़ानों के पास पहुँच गये। जिज़ज़ख़ के लोगों ने उन्हें घेर लिया।

ये सात रूसी किसान थे। लम्बे बाल, लम्बी दाढ़ी, सूती कपड़े की कमीज़ें, दो नंगे पैर हैं, बाक़ी ने छालों के सैंडल पहन रखे थे। सब की पीठ पर बोरे थे, हाथों में लाठी।

बोरे ज़मीन पर रखकर वे उनपर बैठ गये। वे काफ़ी थके थे।

"आचिल कौन है?" सब से बूढ़े ने पूछा जिसका सारा चेहरा दाढ़ी से ढका था। केवल शलग़म-सी नाक ही दिखाई दे रही थी। आचिल आगे बढ़ आया। "हम बलाशोवका गांव के हैं। लोग केसे हैं?"

"लोगों की हालत मुश्किल है। हर तीन लोगों में से एक... आप..."

"हमें उजाला होने से पहले गांव लौट जाना है। यह सब आप के लिए है: सूखी रोटी, चरबी, नमक, प्याज़, जीदा,* मछली..."

बोरे छोड़कर वे कुछ बताए बिना वापिस जाने को तैयार हो गए। लोग मौन खड़े थे मानो वे अभी तक कुछ नहीं समझ पाये हों। आचिल उन लोगों के पीछे गया:

"आप को बहुत-बहुत धन्यवाद! लेकिन ज़रा यह बताइये, आपको यह काम किसने सौंपा, आगे क्या होगा? कुछ बताया तो नहीं गया? मेरा नाम आप कहाँ से जानते हैं?"

शलग़म-सी नाकवाला वृद्ध ने आचिल के सामने रुककर उसके चेहरे की ओर देखा फिर अपना हाथ उसके कंधे पर रख दिया।

"हमें बस यही काम सौंपा गया था। हमें भी कभी निर्वासित किया गया था। हमने अपनी सहमति जतायी थी। बस। और कुछ हम नहीं जानते हैं," यह कहकर वह चला गया।

रात के अंधेरे में वे जल्दी ही आंखों से ओझल हो गये। जब आचिल तहख़ानों के पास लौटा, मदुमार सब कुछ तरतीब में रखकर खाने-पीने की चीज़ें बांट रहा था। वह कुछ बदल गया था, लोगों से अच्छा व्यवहार कर रहा था, बच्चों को शांत कर रहा था, मानो सब कुछ उसने अपने अधिकार में कर लिया हो।

"हायबाला!" दूर से बुलाया गया। अब आचिल के बेटे का नाम 'हायबाला' पड़ चुका था। "पिता जी का भी हिस्सा ले जाओ!"

---

* जीदा—एक फल का नाम।

ग्रौर पिता पत्थर पर बैठकर कोई योजना बनाने की सोच रहा था। किसानों को यह काम अवश्य "घंटा बजानेवाले" के संकेत पर सौंपा गया होगा। इसका अर्थ है, लड़की पहुँच गई। ग्रच्छा, ग्रब लोग कुछ खा-पीकर ग्रापे में ग्रायें।

जिस दिन खाना समाप्त हुग्रा, उसी दिन प्रभात के समय ग्यारह घुड़सवार कोस्साक सिपाही क्षितिज पर धूल उड़ाते ग्राते दिखाई दिये। कंधों पर बंदूकें, बग़ल में तलवार। एकदम मानो क़यामत ग्रा रही हो। लोगों को शोर न करने के लिए कहकर ग्राचिल घुड़सवारों की ग्रोर बढ़ गया ग्रौर उनसे बातें करने लगा। जनता मृत्यु की प्रतीक्षा कर रही थी, सन्नाटा छा गया था। बस कुछ लोग दुग्रा कर रहे थे। उन्हीं की फुसफुसाहट सुनाई दे रही थी।

"देखा, बेच दिया न हमें रूसियों के हाथ!" कोई चिल्ला उठा। यह वही मदुमार था, "क्या मैंने ग्राप को नहीं कहा था, मुसलमानो! मैंने क्या कहा था ग्राप को!" उसने गुस्से भरी रुग्रांसी ग्रावाज़ में कहा। "ग़द्दार का बेटा कहाँ है, लाग्रो इसे यहाँ!" उसने हायबाला की पतली सी गर्दन सख़्ती से पकड़कर क़तार में सबसे ग्रागे खड़ा कर दिया, "मारो इसे! चलाग्रो गोली, जल्लादो!"

लेकिन यह गोली मारनेवाले नहीं बल्कि समरक़न्द के गैरिज़न के बोलशेविक थे। उन्हें निर्वासितों को ख़ावास के रेलवे कर्मचारियों के पास पहुँचाने का काम सौंपा गया था। जब ग्राचिल ने यह बात लोगों को समझाई, भीड़ घुड़सवार सिपाहियों के पीछे-पीछे ख़ावास रेलवे स्टेशन की ग्रोर चल पड़ी।

रास्ते में मिलनेवाले रूसी गांवों, ख़ानाबदोश पशुपालकों के ख़ेमा-घरों में लोग: "जिज़्ज़ख के विद्रोहियों को साइबेरिया खदेड़ा जा रहा है" कहकर उनके पीछे देखते रह जाते थे। बहुत से छोटे बच्चे, बूढ़े ग्रौर विशेषकर बीमार लोग उन्हीं ख़ानाबदोश कज़ाख़ों, रूसी लोगों के साथ रह गये जो कभी मिर्ज़ाचूल में निर्वासित किये गये थे। बाक़ी लोग दो दिन बाद रात को पहरेदार दस्ते के साथ ख़ावास पहुँच गये।

वहाँ के रेलवे मज़दूरों ने उनमें से एक ग्रुप को फ़र्ग़ाना की गाड़ी में, दूसरे ग्रुप को ताशक़न्द की गाड़ी में बिठाकर विभिन्न क्षेत्रों में भेज दिया।

हृष्ट-पुष्ट नौजवानों को मज़दूरों ने घर-घर में छुपा दिया। यरोफ़ेय के हमाम में छुपा हथियार भी ग्रा गया। फिर स्वयं लंगड़ा यरोफ़ेय, "घंटा बजानेवाला" मतवेय "क़िज़िमका" के साथ वहीं ग्रा गये।

"उनकी मुलाक़ात मुझे ग्राज भी याद है," ग्राचिल बाबा ने लेटे ही लेटे छत की ग्रोर देखकर कहा। उनकी ग्रांखों में बरसों पहले की एक छोटी ख़ुशी की झलक दिखाई दे रही थी। "क़िज़िमका" लाल कपड़ा पहने थी, उसके गेन्द जैसे गोल गाल पर झाइयाँ पड़ी थीं। दुबला-पतला हायबाला, फटे-पुराने कपड़े पहने था। "हायबाला!" "क़िज़िमका!" चिल्लाते हुए वे एक-दूसरे की ग्रोर दौड़ पड़े थे। फिर सेब, मिठाइयाँ। ऐसा लग रहा था, इस बालिका ने हायबाला को देखने के लिए ही ग्रपने बाप से नाता तोड़, इतना ख़ौफ़नाक रास्ता तय कर यहाँ ग्रायी थी ग्रौर बड़े मुश्किल काम किये थे। "क़िज़िमका" वही मरीया वसील्येवना थी, समझे? ग्रौर "हायबाला"–तेरा ग्रारिफ़ मामा।"

ग्रज़ीमजान ने सिर हिलाया मानो कह रहा हो, समझ गया।

उसके भी ख़याल दूर-दूर भटक रहे थे। वह भूल गया था कि वह ताशक़न्द के होटल में बैठा है ग्रौर ग्राधी रात हो चुकी है।

"नहीं, बेटे, वे कभी एक-दूसरे के दुश्मन नहीं बन सकते। उनकी दोस्ती की जड़ें बहुत गहरी हैं," ग्राचिल बाबा ने शाम की बात फिर से दोहराई। "मैं उसी वर्ष पैदा हुग्रा था, जब यहाँ रूसी ग्राये थे। तरह-तरह के रूसियों को देख चुका हूँ। पर उनमें जो लोग ग्रच्छे थे, उसी समय से उनमें दोस्ती हो गयी थी!"

उन्होंने हवाई ग्रड्डे पर खड़े-खड़े कबाब खाया। फिर ग्राधे घंटे बाद वे नुकूस के लिए रवाना हो गये।

बाबा ग्रपने नाती के साथ हवाई जहाज़ पर, मोटरों, घोड़ों, पैदल ग्रौर जहाज़ों के माध्यम से जनतंत्र के कोने-कोने में जाएँगे। ग्रभी बहुत-सी बातें करेंगे। बाबा इस क्षेत्र के इतिहास के ख़ुद स्रष्टा हैं ग्रौर उनका पोता विदेश में पैदा हुग्रा, पला। उन्हें एक-दूसरे को ग्रभी बहुत कुछ बताना है। उन्हें बातें करने दें। ग्रगर नसीब हुग्रा तो उनसे कामीला के यहाँ मिलेंगे।

ग्रौर ग्रब परम्परानुसार एक रिवायत सुन लीजिये।

अजीबोग़रीब देश – मुहब्बती देश! सदा बहार, सदा प्यारा-प्यारा सूरज चमकता रहता है, बनारस के आसमान की तरह असीम क्षितिज भी नीले, कोमल, लतीफ़। कभी-कभी हवा के झोंके आते, उज्ज्वलता का पर्दा पार करके हल्की बारिश होती और बाग़ों व हरी-भरी वादियों की ख़ुशबू चारों ओर फैल जाती।

यहाँ प्रेमियों के दिल मीठे-मीठे धड़कते हैं। आँखों में मस्ती का आलम होता है, इस लिए वे एक दूसरे को देखते हैं, बस। मुहब्बती देश के राजा-रानी, हकीम और जनता भी वही हैं।

आप कह सकते हैं, सिर्फ़ दो व्यक्तियों के लिए एक देश ज़्यादा तो नहीं? नहीं, ज़्यादा भी नहीं, छोटा भी नहीं। क्योंकि मुहब्बत का राज्य उन्होंने अपने लिए, अपने सामर्थ्य के अनुकूल ख़ुद बनाया है। और उन्हीं के लिए वह उतना सुन्दर, उतना कोमल, असीम है।

हाँ, उसकी कोई सीमा नहीं है।

अरे? क्या सीमारहित राज्य भी होता है?

नहीं, सीमा तो है उसकी। मगर कहाँ? कहीं भी नहीं। और सर्वत्र है। हर क़दम पर। रास्ते पर, बाग़ में, दिल में, काम में, बातों में। वह काँच की तरह नाज़ुक है। ज़रा-सी ग़फ़लत उसे टुकड़ा-टुकड़ाकर दे सकती है।

क्या पूरे एक राज्य को?

हाँ, पूरे राज्य को।

इसी लिए कहते हैं, हालांकि मुहब्बत के राज्य की सीमा-निर्धारित नहीं थी, फिर भी उसका सीमा रक्षक था।

एक दिन एक शोख़ नौजवान सीमा पर आकर सीमा रक्षक से मिला।

"अच्छा, कहाँ जाना चाहते हैं?"

"रानी को देखना चाहता हूँ, कहते हैं, बहुत हसीन है।"

सीमा रक्षक ने उसे जाने नहीं दिया। सामने मुहब्बती देश की प्रफुल्ल वादियाँ बारिश से और हरी-भरी होकर इन्द्रधनुष जैसे रंग बिखेर रही थीं।

"आख़िर रानी के सौंदर्य को हम जैसे हृष्ट-पुष्ट नौजवान न देखें..."

"नहीं!" सीमा रक्षक ने कहा।

"मैं इस हसीना के लिए सारी दुनिया का हार्दिक प्रेम लाया हूँ।"

"नहीं, तुम नहीं जा सकते।" सीमा रक्षक ने कहा: "हमारी रानी प्रेम की मोहताज नहीं।"

"क्या एकदम जाने नहीं देंगे?"

"अगर रानी के माँ-बाप भी आयें तो उन्हें भी जाने न दूँगा"

इस प्रकार सीमा रक्षक ने नौजवान को जाने नहीं दिया।

इसी बीच सीमा पर एक औरत आ पहुँची—सुडौल, दया से ओत-प्रोत।

"कहाँ जा रही हैं?

"बच्चों के पास," औरत ने कहा।

"नहीं, मैं इजाज़त नहीं दे सकता।"

"मैं तो उनकी माँ हूँ! वे मेरे स्नेह, ममता, सलाह-मशविरों के मोहताज हैं।"

"नहीं, वे इस देश में सिर्फ़ एकांतिकता के ही मोहताज हैं।"

"उन्हें भूख लग सकती है, शायद मुझे उन्हें कुछ सिखाना-समझाना है।"

"वे लबालब हैं, मुहब्बत से तृप्त।"

"जाने दो मुझे अपने बच्चों के पास!"

"अल्लाह आये तो भी नहीं जाने दूँगा।" सीमा रक्षक ने कहा:

इसी क्षण सीमा पर अल्लाह प्रकट हो गये।

"कहाँ जानेवाले हैं?" सीमा रक्षक ने पूछा।

"मुझ से ऐसे प्रश्न नहीं पूछे जाते हैं, मैं अल्लाह हूँ," सफ़ेद चेहरे-वाले, नूर बरसाते वृद्ध के रूप में आये दुनिया के स्रष्टा ने कहा।

"किसी को वहाँ जाने देना मेरे वश में नहीं।"

"अरे।" अल्लाह ने कहा। "आख़िर तुझे भी, उन्हें भी, मुहब्बत के इस राज्य को भी मैंने पैदा किया है, क्या मजाल कि कोई मुझे जाने न दे?"

"मैं जाने नहीं दूँगा," सीमा रक्षक ने कहा।

"आख़िर वे मेरी मेहरबानी रोज़ी-रोटी के मोहताज हैं, हो सकता है मुहब्बत का राज्य उनके लिए उत्तम नहीं, मैं चाहता हूँ..."

"मैं सीमा रक्षक हूँ, जाने नहीं दूँगा," सीमा रक्षक ने कहा।

अल्लाह को भी लौटना पड़ा।

अपने आप से संतुष्ट हो सीमा रक्षक मोहित दृष्टि से असीम, साफ़

आसमान को, साफ़ बाग़ों, फूलवाटिकाओं को देखकर आनन्द लेने लगा। अचानक ज़बरदस्त विस्फोट से मुहब्बत का राज्य टुकड़े-टुकड़े हो गया। न प्यार, न प्रेमी, न साफ़ आसमान, न ही बाग़ ... बस धुआँ ही धुआँ।

आप शायद सोचते होंगे, यह सीमा से क्रोधित होकर लौटे अल्लाह ने किया होगा?

नहीं। बात यह है कि एक रहमदिल चींटी ने सोचा, प्रेमियों को भूख लगी होगी। गेहूँ का एक दाना लेकर उसने छिपकर सीमा को पार किया, एक क़दम रखते ही विस्फोट हो गया...

क़िस्सा

> "इसका आविष्कार केवल दो व्यक्ति करते हैं, चाहे वह कोई भी क्यों न हो, तीसरा अनावश्यक होता है।"
> (कहाँ से – याद नहीं)

वे कामीला के यहाँ शाम को ही पहुँचे, विशाल आँगन में कोई भी दिखाई नहीं दे रहा था। प्रपौत्रों के लिए उपहार से भरी खुर्जी आचिल बाबा ने नीचे ज़मीन पर रख दी। फिर दहलीज़ पर खड़े हो, उन्होंने अन्दर की ओर झाँक कर देखा। आँगन के चारों ओर मज़बूत ऊँची दीवार बनी थी। दीवार के पासवाली नाली में खनखन करता पानी बह रहा था। नाली के किनारे पोपलर के पेड़ों की क़तार शाम की वायु में कभी काली, कभी सफ़ेद लग रही थी। पेड़ों की सरसराहट बराबर सुनाई दे रही थी। आँगन के भीतर सेब, ख़ूबानी, आड़ू, चेरी के पेड़ लगे थे। ख़ाली जगह पर टमाटर, प्याज़, आलू, सोआ। क्यारियाँ ख़ूब सींची गई थीं। मकान के पास तारों के जाल से मुर्ग़े-मुर्ग़ियों के दरबे थे। पास ही ईंधन रखने की जगह थी और मवेशियों के शेड बने थे। बड़े बरामदे की छत पर मिर्ची और भुट्टों के गुच्छे लटके हैं।

आचिल बाबा अपनी पोती व अपने दामाद को याद करके मूँछों ही मूँछों में मुस्कुरा उठे। सत्तार को उन्होंने तभी देखा था जब कामीला बहू होकर आई थी। बड़ा शर्मीला नौजवान था, किसी की ओर सिर उठा-

कर नहीं देखनेवाला। बड़ा चतुर निकला। आँगन को देखो, फल, सब्जियाँ, भाजी – सब कुछ हैं। यहाँ तक कि झाड़ू भी।

"मगर कहीं भी कोई फूल नहीं लगाया, यह अच्छा नहीं," आचिल बाबा ने सोचा। यह ख़याल आते ही मन में कुछ उदासी आई। इसी कारण अथवा कुछ एहसास करके, पता नहीं।

"ऐ, है कोई? उचक़ुन! तोलक़िन!" आचिल बाबा ज़ोरों से प्रपौत्रों को आवाज़ दे बरामदे के अन्दर चले आये। प्रपौत्रों को अभी तक उन्होंने नहीं देखा था, बस पिछले साल कामीला की भेजी तसवीरों से ही वे उनको जानते थे। अब दौड़कर आएँ तो ज़रूर पहचान लेंगे...

अन्दर से छोटे उचक़ुन का हाथ पकड़े भद्दे ढंग से झूलती अनज़िरत निकली। सत्तार की माँ। वह जवानी में ही विधवा हो गयी थी। अब भी काफ़ी ख़ूबसूरत थी। मोटी-ताज़ी, तगड़ी-सी औरत। झाड़ू हाथ में पकड़े-पकड़े वह बड़ी लापरवाही से मेहमानों को देखती रही।

"कैसी हो अनज़िरत, क्या पहचाना नहीं?"

महिला मौन रही।

अज़ीमजान ने भी व्यवहार की उदासीनता महसूस कर ली थी। वह घबरा गया। वह समझ नहीं पा रहा था, अपनी खुर्जी बरामदे में रखे या न रखे। आचिल बाबा को सड़कों पर मिलनेवाले लोग, इलाक़ाई केन्द्र के लोग, हवाई अड्डे पर के लोग, केन्द्रीय समिति के लोग पहचानते हैं और पोती की सास न पहचाने, यह क्या बात है?!

"क्यों, पहचाना?"

आचिल बाबा यह सोचकर कि शायद वह स्वभाव से ही ऐसी है, हाथ फैलाए अपने परपोते की ओर बढ़ गये। उस के पास पहुँच, झुककर उन्होंने देखा।

उचक़ुन कोई छह वर्ष का प्यारा-सा लड़का था। नंगे पाँव, बेक़सम का चोग़ा पहने, कमर पर रूमाल बाँधे। आचिल बाबा को लगा, उसका माँगा, ठोड़ी या चेहरे का कोई और अंग कामीला से मिलता-जुलता है।

"और तुम, तुमने पहचाना अपने बाबा को? आओ, आओ! तुम उचक़ुन हो न? वाह, शाबाश, बड़े नौजवान हो गये हो तुम! चाचा की खुर्जी खोलो, न, क्या है वहाँ उचक़ुन के लिए," आचिल बाबा ने परपोते को लेकर उठाना चाहा मगर अनज़िरत ने उसकी कमर पर बँधे रूमाल से उसे अपनी ओर खींच लिया।

"छोड़िये, उसके अपने खिलौने बहुत हैं?"

"क्या बात है, समधिन?" आचिल बाबा ने उठकर अनज़िरत पर खटके भरी नज़र डाली।

"मुझे समधिन न कहिये। बच्चे को छोड़ दीजिये, उस पर आप का कोई हक़ नहीं। जाओ, मेरे बेटे, जाओ खेलो," कहकर अनज़िरत ने उचक़ुन को अन्दर भेज दिया। बच्चा अन्दर तो गया मगर दरवाज़े की आड़ से मेहमानों को देखता रहा।

"ज़रा बताओ तो कामीला कहाँ है? उसे कुछ हो गया क्या?"

"आप की कामीला को कुछ हुआ या नहीं, मुझे मालूम नहीं। जहाँ तक हमारा संबंध है, सब कुछ ठीक है, सब कुशलपूर्वक हैं।"

"कुछ स्पष्ट बताओ न, बहू कहाँ है तेरी?"

"मेरी ऐसी कोई बहू नहीं।"

"कामीला..."

"कामीला नहीं है... मैं कह चुकी, वह चली गई, इन दो बच्चों को अनाथ करके। माँ ज़िन्दा है और वे उसकी ममता से महरूम हैं, हाँ!" अनज़िरत की आवाज़ ऊँची होती गयी और अंत में वह ज़ोर से रो पड़ी; "दूसरे मर्द से शादी कर ली। आप की लाड़ली पोती का उस से पहले से प्यार था। उसी के साथ चली गयी, मेरे बेटे को चुल्लू भर पानी में डुबोकर, बेहया कहीं की!" अनज़िरत ने झाड़ू कोने में खड़े संदूक के पीछे फेंक दिया।

आचिल बाबा को काटो तो ख़ून नहीं। उन्होंने आँखें इधर-उधर दौड़ाकर बैठने के लिए जगह तलाश की। अज़ीमजान की ख़ुर्जी भी कँधे से सरककर गिर पड़ी थी। उसने नाना को सहारा दिया।

"रोना-धोना छोड़कर, पहले हमें ज़रा घर के अन्दर बैठाओ तो। हम दूर का रास्ता तय करके आए हैं। यह कामीला की फूफी का बेटा है। विदेश से आया है। ज़रा बैठने के लिये जगह बनाओ, तोशक बिछाकर बिठाओ, आराम से बातें करें। शाम हो चुकी है, हमें नहीं निकालोगी, आख़िर..." आचिल बाबा संदूक पर बैठ गए।

अनज़िरत बराबर बड़बड़ाती जा रही थी:

"आप मुझे अपनी कामीला के बारे में न बताइये। इन बेगुनाह फूल जैसे बच्चों को छोड़ने के लिए ख़ुदा उसे बड़ी सज़ा देगा। उसने शायद

सोचा होगा, सत्तार तो भेड़ की तरह धीर है, वापस जाऊँगी तो सीने से लगाएगा। मैं उसे अपने आंगन में क़दम रखने नहीं दूंगी, उस रांडी को।"

"सत्तार कहाँ है?" अंतिम शब्द से दिल में चोट लगे आचिल बाबा ने कहा।

"मेरा सत्तार पहले की तरह काम कर रहा है, उस की साख, प्रतिष्ठा ठीक है। ऐसे नौजवान के लिए लड़कियाँ बहुत हैं, अभी मैं उस के लिए ऐसी लड़की ढूंढ़ लूंगी कि ख़ुद आप देखते रह जायेंगे।"

इसी बीच तोलक़िन स्कूल से लौट आया, दादी की बात सुनकर उसका चेहरा लाल हो गया था। यह कोई दस ग्यारह बरस का लड़का था, ऐसी बातें समझने योग्य हो गया था। फिर से शर्मिन्दा न हों, इसलिए आचिल बाबा ने अपने इस पड़पोते का हाल-चाल सिर्फ़ थोड़े ही शब्दों में पूछ लिया। यह देखकर कि दादी की बातें सुनकर वह कांप उठा था, बाबा को लड़के पर बड़ी दया आई। यहाँ शायद ऐसी बातें बहुत कही जा रही थीं। बच्चों की स्थिति मुश्किल है। उन का पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा... क्या हो गया इस कामीला को? यह आचिल बाबा की सब से प्यारी पोती थी। किसी और की नहीं, नाविक आलिमताय की बेटी, अमू-दरिया के बेड़े के जाने-माने कप्तान की बेटी! यह क्या है? क्या हो रहा है उसे?

"कहाँ मिल सकती है वह..." आचिल बाबा ने पूछा। वह समझ गया था समधिन को कामीला के नाम से भी चिढ़ है, इस लिए उन्होंने आवाज़ धीमी करके कहा:

"कामीला..." अब यह नाम ख़ुद उन को भी बुरा लगने लगा। ऐसा महसूस हुआ, इस घर में यह नाम ज़बान पर लेना भी हराम था।

"जाकर उस के प्रेमी से पूछ लीजिये!"

"वह कहाँ है? कौन है?"

"वह मेरे सत्तार की तरह गाड़ीवाला नहीं है, अलबत्ता। वह विद्वान है, अकादमी में काम करके बहुत कमाता है। उसके पैसे पर ललचायी, भाग जाए। सुना है, तपेदिक का रोगी है, हाँ। पलटकर बच्चों के पास आयी तो कौन फटकने देगा?"

आचिल बाबा सिर झुकाकर बेबस बैठे रहे। कामीला के बारे में सो-

चते रहे। वे ऐसी स्थिति में कभी नहीं फँसे थे। अब तो उनका दिमाग़ ही सन्न हो गया था, अवाक् बैठे रहे। प्यारी पोती, लाड़ले पड़पोतों को देखने, उन्हें अज़ीमजान को दिखाने की उम्मीद से इतना लम्बा रास्ता तय करके आए थे। अब इस अपमान को कैसे सह पायेंगे? आचिल बाबा के ख़ानदान में कभी ऐसा नहीं हुआ था। कितनी बड़ी शर्म की बात थी!

अनज़िरत कमरों में चलती किसी को शाप दे रही थी। कामीला को विभिन्न शब्दों में गालियाँ दे रही थी। यह सुनकर आचिल बाबा का झुका कंधा एकाएक काँप उठा। उन के पड़पोते भी न जाने किस कोने में छिप गये थे...

और कामीला इस समय चारजोय बन्दरगाह में खड़े "आराल" नामक मोटर जहाज़ के कप्तान के पुल पर खड़ी हो तार पढ़ रही थी: "शोध-प्रबन्ध की प्रतिरक्षा सप्ताहाँत के लिए तय है। चुम्बन सहित, मतनियाज़।"

कामीला ने अपनी तेज़ चमकती आँखों से चारों ओर देखा। जहाज़ों के बेतरतीब भोंपू, छोटे तेज़ जहाज़ों के इंजनों के शोर, डिस्पैचरों की चिढ़ भरी चिल्लाहट, बन्दरगाह के क्रेनों की चरचराहट के बीच उस की बुद्धि तेज़ी से काम कर रही थी, वह कोई उपाय ढूँढ़ती योजना बना रही थी।

अच्छा तो सप्ताहांत में। अब चारों ओर दस दिन से अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहे भारी जहाज खचाखच हैं। किनारे की दीवार के पास रत्ती भर ख़ाली जगह नहीं। अगर प्रतीक्षा करे तो 'आराल' की बारी एक सप्ताह में भी नहीं आएगी। इस का माल उतारकर नया माल लादने के लिए भी कम से कम एक दिन, एक रात की ज़रूरत है।

नहीं ऐसे नहीं चलेगा। कुछ भी हो, कामीला को बुधवार को नुकूस पहुँचना है, चाहे उसे इस के लिए पैदल चलना पड़े, चाहे नाव डुबो देने के कारण उस पर मुकदमा ही क्यों न चलाया जाये। यह मतनियाज़ और ख़ुद उसके लिए भी जीवन की प्रमुख समस्या थी: यह जनतंत्र के लिए एक महत्वपूर्ण समस्या, आराल के भाग्य का प्रश्न, कामीला की मुहब्बत की समस्या थी जिस के लिए उस ने इतनी कठिनाइयाँ झेलीं, इतनी कुर्बानियाँ दी थीं। बुधवार के दिन वहाँ जनतंत्र के कोने-कोने से, नदी के मुहाने पर स्थित सरकारी फ़ार्मों से ताशक़न्द से बहुत से विशेषज्ञ,

बहुत से वैज्ञानिक आयेंगे। उन में मत्नियाज़ के दोस्त-दुश्मन होंगे, प्रोफ़ेसर शूमन भी अवश्य आयेगा। वह उसे क्या मदद, क्या तसल्ली दे सकती है पर शोध-प्रतिरक्षा के दिन उसे ज़रूर वहीं होना चाहिए। मत्नियाज़ की हालत बहुत नाज़ुक होगी, कामीला को अवश्य पहुँचना चाहिए।

जहाज़ भोंपू बजाकर आसमान सिर पर उठाये थे, बजरे तेलभरे पानी में झूल रहे थे, किनारे पर "वीरा! मायना!" के शब्दों से कान फट रहे थे।

कुछ देर तक कामीला साहसी समुद्री चिड़ियों को देखती रही जो शोर मचाती अपने को लहरों पर जा मारती थीं। फिर उसने सभी नाविकों को बुला भेजा। आबशिनास क़ाइपबेरगेन-अका को छोड़कर जहाज़ के सभी नाविक हृष्ट-पुष्ट नौजवान थे। वे अपने कप्तान को बहुत चाहते थे जो बहुत निर्भीक और बड़ी अडिग थी। वे उसके लिए आग-पानी में कूदने को भी तैयार रहते थे। बस क़ाइपबेरगेन ही जिसे नाविक वृद्ध कहते हैं, कामीला को पसन्द नहीं करता था और कहता, अगर वह युवक होती तो बड़ी गलकट होती। कामीला भी अपने नाविकों के लिए कोई भी ख़तरनाक काम करने को तैयार रहती थी। उसके "आराल" जहाज़ का अन्य जहाज़ों में प्रमुख स्थान था। उस के मस्तूल पर चार साल से सम्मान का निशान—लाल पताका है। जब ऐसे जहाज़ के नाविक किसी बन्दरगाह की सड़कों या रेस्टारेंट में जा पहुँचते हैं, लड़कियों के लिए यह अविस्मरणीय घटना बन जाती है। पैसे बहुत, ठाट के कपड़े, बटन सोने की तरह चमकते।

वे कहा करते हैं:

"कुछ भी हो, हमारी कप्तान सचमुच नौजवान है। नाविक आजिमताय की संतान जो है।"

वह जो भी आदेश देती, सब पूरा किया जाता।

आज भी कप्तान का एक संकेत ही काफ़ी रहा। पीछे खड़ा "आराल" अन्य जहाज़ों के बीच अपने लिए टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता ढूँढ़कर संयोगवश ख़ाली रह गयी एक ही जेटी पर आ लगा था। जब तक कामीला ने फ़ोन से बन्दरगाह के गुस्से में आए अधिकारियों को बहला-फुसलाकर राज़ी किया, नाविकों ने माल ग्रहण व हिसाब करनेवाली लड़कियों की ख़ुशामद करके माल लादने के लिए उपयुक्त मालों का जायज़ा ले क्रेन पर काम करनेवाले नारनों को भी वचनबद्ध कर लिया।

कामीला ने जब किसी न किसी तरह अधिकारियों की इजाज़त पा ली, नौजवान बोझ ढोनेवालों की प्रतीक्षा किये बिना तहख़ाने की ओर दौड़ पड़े। सारे क्रेन अपनी पहली जगह छोड़ यहाँ रेंगते आकर रात भर "आराल" की सेवा करते रहे, यह देखकर दूसरे कप्तान स्तब्ध रह गये। फिर लाचारी से यह अपनी ज़िन्दादिली मानकर कहने लगे:

"कौन मर्द युवती का सामना कर सकता है!"

इस प्रकार अगले दिन सुबह ही सुबह "आराल" यात्रा के लिए तैयार था। रात भर झपकी न ले पाने के बावजूद कामीला अपनी चमकती आँखों से देखते हुए नक्शावाले केबिन में खड़ी हो सावधानी से जहाज़ को सर्पिल रास्तों से नदी की स्वतंत्र धारा में निकाल लायी और जब उसने "पूरी गति के साथ आगे बढ़ो" का आदेश दिया तभी सब ने एहसास किया, थकान के मारे खड़ा रहना मुश्किल था। लेकिन उस समय भी केवल वृद्ध ने ही अपने पास के लोगों से कहा: डरता हूँ कि इतनी जल्दबाज़ी करके हम जहन्नुम में न फँसें। यह तो दूल्हे की बाँहों में पड़ने को अधीर है और हम? हमें क्या फ़ायदा है इन खौफ़नाक कार्रवाइयों से?"

उसे किसी ने जवाब नहीं दिया। वे सब कामीला पर विश्वास करते थे। वह जो कुछ करती है, सब ठीक है। यहाँ तक कि जब उस के अपना परिवार छोड़कर नए आदमी से शादी करने के बारे में सुना तब भी वृद्ध के अलावा किसी ने उस की निन्दा नहीं की। ऐसा किया तो ज़रूर, ज़रूर ही कोई कारण, कोई उद्देश्य होगा। गंदला अमू-दरिया अपना पानी चौड़ा फैलाकर, लहरों के बिना, एक अजीब महानता, महिमा से बह रहा था। ऊपर से देखने पर ऐसा लग रहा था, उसका बहाव एकदम धीमा है मगर वास्तव में वह ज़ोरों से गहरी धारा से बह रहा था। यहाँ हर क़दम पर ख़तरे थे। ज़रा-सा चूके और माल व जहाज़ नेस्तनाबूद।

लेकिन अब बहार का खौफ़नाक मौसम नहीं था। इस समय अमू-दरिया कभी दायें, कभी बायें निरर्थक छटपटाता नहीं। अब ख़िज़ाँ का मौसम था। किनारे वही हैं। पर ख़िज़ाँ की भी अपनी चालें, अपनी हरकतें थीं। ख़िज़ाँ के समय अचानक नदी में रेती आती और नुकीले चट्टान दिखाई देने लगते। अगर उन में से कोई रास्ते में पड़े तो उस से चाहे न भी टकराएँ तो पास की ज़ोरदार धारा के विपरीत चलना कठिन होता था।

मगर जब नक़्शाघर में बुद्धिमान और माहिर कप्तान कामीला खड़ी हो तो जहाज़ सामान्य से अधिक तेज़ी से भी चल रहा हो, नाविक निश्चिंत रहते थे।

उसके ऊँचे-पतले शरीर पर गहरे नीले रंग की वर्दी खूब चिपटी है। सफ़ेद गरेबान, टाई, वक्ष पर दूरबीन, सिर पर टोपी, बाल छोटे हैं और नदी की हवा में फहराते रहते हैं। चिपटी-सी नाक और कुछ आगे निकली टोड़ी के बावजूद वह काफ़ी सुन्दर, साँवले रंग की आकर्षक युवती थी। पर लौ जैसी चेहरेवाली सारे नौजवान उसकी सुन्दरता पर नहीं धैर्यशीलता पर मोहित थे।

"भारी लहर!"

"तिरछी धारा!"

"सावधान, रेती टीला!" कहकर जब नेविगेटर आगाह करता तो आबशिनास से लेकर पीछे के बजरे के लोग सब के सब छोटे शब्दों का महत्व समझकर एकदम व्यस्त हो जाते थे।

सिर्फ़ बूढ़ा ही अभी तक बड़बड़ा रहा था:

"अपने प्रेमी तक हुँपचने के लिए हम सब की बलि चढ़ा देगी यह दीवानी बिल्ली। हम तो बहाव के साथ चल रहे हैं। और वह भी माल के साथ! अगर बजरे को तिरछा चलायें तो हम लोगों को किनारे पर दे मारेगा और टुकड़े-टुकड़े कर देगा! जवानो! हमारे काम में देर करना अच्छा नहीं पर जल्दबाज़ी करना कुछ और नहीं—नरक ही है।"

मगर जहाज़ ठीक चल रहा था। पहली रात को आँखें थोड़ी झपकाकर कामीला फिर से नक़्शेवाले केबिन में ख़ुद जा खड़ी हुई थी। ख़िज़ाँ के सूरज की कमज़ोर धूप को सरित झोंके ख़त्म कर देते थे और जी उस आग की ओर जाने को करता जो नाविकों ने बजरे पर मछली का सूप बनाने के लिए जला रखी होती। वहाँ हमेशा बड़ा गप-शप होता रहता, गप्पें मारे जाते, मज़ाक़ किये जाते। पहले कामीला ऐसी बातों पर कान लगाये रहती थी लेकिन इस समय उसे तनिक फ़ुरसत नहीं, आँखें दबाकर वह आगे की ओर देख रही थी, जहाज़ को अधिक तेज़ी से चलाने के लिए प्रयत्नशील थी। वह मतियाज़ से मिलने को उतावली थी। उसकी सूरत इस समय आँखों के सामने मंडरा रही थी। मन ही मन में वह उससे बातें भी कर रही थी।

मत्नियाज़ आराल में युद्ध के अंतिम साल, सर्दियों के मौसम के आखिर में आया था। कामीला उस समय मछली पकड़नेवाले छोटे तेज़ जहाज़ में काम करती थी। उम्र बीस बरस की थी लेकिन बड़ी प्रचण्ड थी यह नकचिपटी लड़की। उसे सब लोग जानते थे। युद्ध के ज़माने में किनारेवाली बस्तियों में लोग कम हो गए थे, कारख़ाने भी ख़त्म होते जा रहे थे। मछली पकड़ने के लिये वे केवल शांत, ठंडे दिनों में ही जाते थे क्योंकि इंजन बहुत ख़राब हो गए थे। मछली पकड़ने के साज़-सामान भी बहुत पुराने पड़ गए थे।

सर्दियों के अंत में आराल कुछ उन्मत्त-सा हो उठता था। तक़रीबन हर सप्ताह कहीं न कहीं से काले बादल आ पहुँचते, तूफ़ान उठते और ऐसे उकतानेवाले दिन शुरू हो जाते जब कोई घर से निकल नहीं सकता था। यहाँ के लोगों को ऐसे दिनों की शुरुआत का पता एक दिन पहले ही चल जाता था।

एक ऐसे ही धुँधले दिन कामीला जब सुबह में कप्तानों के बैरक से निकल रही थी तो कुछ दूरी पर उसे एक अजनबी दिखाई दे गया। वह जेटी के सड़े सहायक खंभों, सड़ी मछलियों के लिए लड़नेवाले पक्षियों के झुंड देखता, सनसनाती हवा में खड़ा, किसी सोच में डूबा था। फ़ौजी वर्दी के ऊपर उसने लाल गुलूबन्द बाँध रखा था जो इस कपड़े पर तनिक नहीं फबता था। पर वह बड़ी सावधानी से गला बन्द किये बदहवास हो रहा था।

शायद इस लिए कि यहाँ नये लोग बहुत कम मिलते थे, कामीला को सिपाही से मज़ाक़ करने की इच्छा हुई। मतलब यह कि किसी चीज़ ने उसे उस ओर खींचा।

"क्या रानी के लाल की प्रतीक्षा कर रहे हैं?" कामीला ने फ़ब्ती कसी।

नौजवान उदासीनता से हँसा। उस का चेहरा दुबला, बेरंग था, नाक रोमन ढंग की और गहरे धँसी हुई बड़ी-बड़ी आँखों की सफ़ेदी कुछ नीली-सी लगती थी।

"परीकथा का नायक राजकुमार तो मेरे जैसा सीधा-सादा नहीं था।"

"आप यहाँ के नहीं हैं?"

"ठीक, मैं खोराज़्म से आया हूँ। अगर कोई काम मिल जाये तो यहीं रह जाऊँगा।"

कामीला ने भौंहें टेढ़ी करके कंधे उचकाये। फिर नीचे देखते हुए कहा:

"क्या खोराज़्म में काम ख़त्म हो गये?"

बात अचानक रुक गयी। नौजवान न जाने क्यों जवाब नहीं दे सका।

"संकोची है, मैंने शर्माया उसे," कामीला ने सोचा।

"लेकिन अच्छा किया कि आये। आजकल आराल में सिपाहियों के योग्य काम बहुत हैं..."

समुद्र से आकर हवा के ज़बरदस्त झोंकों ने उस की आगे की बात निगल ली। नौजवान ने वायु की ओर पीठ फेर ली और एक हाथ से अपना वक्ष थाम, दूसरे से रूमाल लेकर मुँह बन्द कर लिया। उस का चेहरा लाल हो गया था मानो दम घुटा जा रहा हो। आँखों से आँसू बहने लगे थे। वह इस तरह खाँस रहा था मानो फेफड़े फटे जा रहे हों, दुबले कंधे उचक-उचक जाते वक्ष किसी लोहार की हवा देनेवाली पुरानी भाँथी की तरह खड़खड़ा रहा था। गले पर की नीली नसें उभर आयी थीं। नौजवान ने दो-एक मिनट इस तरह कष्टपूर्वक खाँसने के बाद लड़की की ओर ऐसी दृष्टि से देखा मानो उससे कोई अपराध हुआ हो।

"माफ़ कीजियेगा... कभी-कभी ऐसा होता है।"

"मोर्चे पर घायल..."

"हाँ, गोले का एक टुकड़ा फेफड़े पर पड़ा था।"

फिर उसने गुलूबन्द के सिरे से अपने माथे का सर्द पसीना पोंछा और ख़ामोश हो गया। "यह अपरिचित लड़की मेरे पास क्यों आई और क्यों मैं उसे अपना हाल सुना रहा हूँ? क्या ज़रूरत थी इसकी?" नौजवान ने सोचा। "क्या मैं यह नहीं बता सकता था कि यों ही चलता फिरता मुसाफ़िर हूँ?" फिर भी उसने बात जारी रखी:

"डाक्टरों ने मछली का तेल पीने कहा है। काफ़ी अधिक।" खाँसी बन्द होने से नौजवान की जान में जान आ गयी थी, चेहरे पर लाली आ जाने से वह सुन्दर दिखने लगा था। उसकी दृष्टि विचक्षण व स्वच्छ थी। इन परिवर्तनों से हैरान हो कामीला उसकी ओर देखती रह गई।

"अब इतना तेल कहाँ! ताश्क़न्द में भी नहीं मिल रहा है। कुछ लोगों ने कहा: 'आराल जाओ, वहीं मिलेगा।' सच कहूँ तो इसी लिये

आया हूँ। पर कोई काम भी ढूँढ़ लेना है। काम न करनेवाले को कौन क्या देगा? .. "

"नहीं, नहीं, आप को अभी काम नहीं करना चाहिये," कामीला ने आशंका से कहा। पर ख़ुद कोई सलाह देने में असमर्थ थी। हाँ, उन के कारख़ाने में एक छोटी-सी शॉप है जहाँ मछली का तेल निकाला जाता है। पर उसका उत्पादन किस को दिया जाता है, यह कामीला को मालूम नहीं था।

"यहाँ आप का कोई परिचित नहीं?"

"एक तो था, उसी को ध्यान में रखकर आया था... " नौजवान ने कहा। उस की आवाज़ कुछ धीमी और भारी पड़ गयी थी। कामीला डर गई। सोचा, "अब उसे फिर से खाँसी आएगी।" उसे मालूम था, उस से दोबारा यह नहीं देखा जा सकेगा। ऐसी हालत में किसी को छोड़ना भी अच्छा नहीं, मदद भी नहीं दी जा सकती। कुछ कहकर तसल्ली दे तो न जाने कैसा लगेगा। अपरिचित आदमी का मन कौन जाने।

"तो क्या वह आप को नहीं मिला?"

"मोर्चे पर शहीद हो गया। उसका नाम असनजोलोव था। युद्ध के पहले कारख़ाने में मुनीम था।"

"तो अब कहाँ ठहरे हैं?"

"उसी दोस्त की वृद्धा माँ है, यहीं मुयनाक़ में। अब वहीं हूँ... "

कामीला कुछ शांत हुई। अगर उस के पास रात बिताने की भी जगह न होती तो वह क्या करती? छोड़ा तो नहीं जा सकता था। कहाँ टिकाती वह? आकर उससे बात छेड़ने पर वह ख़ुद पछताने लगी।

बड़ी पशोपेश वह नौजवान के पास से लौटी। मुयनाक़ की सड़कों पर घुटनों तक रेत थी, वह बड़ी कठिनाई से पैर उठा पा रही थी। मछली को नमकीन बनानेवाली लड़कियों के पास जाकर उसने कुछ गपशप की, फिर दोबारा रेत पर चलते घर लौट गई। पर मन अब भी उदास था। बेकारी। तन्हाई। एक मात्र लड़की होने के कारण वह कप्तानों के बैरक में नहीं बल्कि मुयनाक़ की एक तंग गली में एक बूढ़े के यहाँ कमरा किराये पर लेकर रहती थी। समुद्र में रवाना होते ही यह उदासी एकदम दूर हो जाएगी। समुद्र असीम है। विचार भी, भावनाएँ भी वहाँ असीम होती हैं। समुद्र के अपने खौफ़नाक रास्ते, कोई बेसिर साहस, जोखिम

की ज़रूरत पैदा करनेवाली कठिनाइयाँ हैं। यह स्वतंत्र और तनावपूर्ण जीवन बिताने का स्थान है। वह आदमी को शहर के रोज़मर्रा के जीवन में मिलनेवाली कठिनाइयों से आदमी को दूर ले जाता है जिन से जी ऊब जाता है। कुछ समय के लिए वह मन को बहलाता है।

अब कामीला को इसी प्रकार की उदासी सता रही थी। उस की आँखों के सामने वही अपरिचित सिपाही, उसके गले की नीली नसें, पीड़ा से काँपते उसके कंधे और बीमारी के बावजूद सुरक्षित मर्दाना सिपाही के चिह्न उसका खूबसूरत चेहरा, उसकी गंभीर, रंज भरी आँखें।

वह उसी बीमार, निर्बल अपरिचित आदमी के बारे में सोचती रही। तूफ़ान थम गया। लेकिन इस बार समुद्री यात्राएँ भी पहले की तरह नहीं लगीं। कामीला की आँखों में नीन्द नहीं थी। एक दिन अचानक उसे कुछ समझ गया और वह बोल उठी:

"यह विचार मुझे पहले क्यों नहीं सूझा, कितनी बेदिमाग़ हूँ मैं," और वह कारख़ाने की ओर दौड़ पड़ी। वह सीधे मछली का तेल निकालनेवाले वर्कशॉप में गई। वहाँ लकड़ी की टांगोंवाला अजिनियाज़ नाम का एक वृद्ध काम करता था। पुराने भाप के देग को चलाकर यहाँ मछली का तेल निकालने की व्यवस्था करनेवाले वही थे। ख़ुद चलाता, ख़ुद मरम्मत करता। उत्पादन भी उसी के हाथों में था। मगर बड़ा भद्दा, बेरहम आदमी था, केवल हाथ बहुत निपुण होने के कारण ही यहाँ टिक गया था।

"अजिनियाज़ चाचा, मुझे यह... दो बोतल तेल की जरूरत है!" कामीला ने दरवाज़े से बड़ी तेज़ी से घुसते हुए कहा।

"क्या करोगी?"

"ए... ए... यह... मेरे भाई का बच्चा, वह... तपेदिक की चपेट में आ गया है। छोटा-सा बच्चा है। यही बात है," कामीला ने अपने घुटनों तक का क़द दिखाया। शायद सोचा, अधिक विश्वसनीय लगेगा।

"डाइरेक्टर की इजाज़त लेनी होगी।"

अजिनियाज़ से गिड़गिड़ाने का कोई फ़ायदा नहीं था, सो, कामीला कारख़ाने के डाइरेक्टर के पास दौड़ी। डाइरेक्टर एक बूढ़ा रूसी था – ज़ोसिम पावलोविच। यहाँ के पुराने लोगों में से था और अपनी ईमानदारी, न्यायप्रियता के लिए प्रसिद्ध। सब के साथ क़ाराक़ाल्पाक़ भाषा में बोलता था।

तो पता चला, वह बहुत कुछ नहीं जानती है। अपनी नादानी से नाराज़ होकर उसने समुद्र से लौटने के बाद पुस्तकालय में जाकर विश्व-कोश देखने का निश्चय किया।

जहाज़ के मस्तूल पर मछली पकड़नेवाले क़ाराक़ाल्पाक़ नौजवान दोम्ब्रा बजाकर कुछ गा रहे थे। कामीला के कानों में कुछ नहीं आ रहा था। लौटने की इच्छा हुई। पिछले कुछ दिनों से योजना के लक्ष्य से भी उसका कोई मतलब नहीं रहा था। "यह मुझे क्या हुआ?" वह कभी-कभी मन ही मन में कहती थी। "गया तो क्या हुआ, बेगाना आदमी जो है। हाँ, क्या हुआ? बीमार आदमी। इनसानियत के नाते थोड़ी भलाई की, बस!" वह अपना हाल अपने को समझाती थी।

समुद्र से लौटने पर वह फिर डाइरेक्टर के पास गई। ज़ोसिम प्रोको-फ़्येविच ने प्रार्थनापत्र लेकर मेज़ पर रखा और लड़की पर पितृवत दृष्टि डालकर कहा:

"शाग़ालाय, तुम जानती हो, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, मगर..."

"और मैं अजिनियाज़ बाबा को राज़ी कर लूँ, ज़ोसिम प्रोकोफ़्ये-विच?"

"तब उस पर मुक़दमा चलाया जाएगा।"

"ज़ोसिम प्रोकोफ़्येविच..."

"तुम साफ़-साफ़ बताओ, किस के लिए ले जाती हो?"

कामीला ने सच-सच बता दिया। सब कुछ। इस तरह बताया कि दूसरा डाइरेक्टर होता तो रो पड़ता। लेकिन ज़ोसिम प्रोकोफ़्येविच नरम नहीं हुए।

"देखो, शाग़ालाय! अजिनियाज़ के इस छेददार देग पर उम्मीद बां-धकर बैठे लोग कम नहीं हैं। अस्पताल, अनाथघर, बच्चे... जानती हो कितने हैं ये लोग? लेनिनग्राद, कियेव, मिन्स्क, स्मोलेन्स्क... में। इस तेल की हर बून्द हिसाब में है।"

कामीला घबरायीसी डाइरेक्टर की ओर देखती रह गई। उसकी कहा-नी कामीला की कहानी से भी अधिक दयनीय थी। अब क्या होगा? क्या करेंगे? उन्होंने एक दूसरे पर सवाल भरी नज़र डाली।

"दे नहीं सकता हूँ, शाग़ालाय, मुझे इस का ओई अधिकर नहीं।"

कामीला सिर झुकाये निकली मानो किसी ने उसे पीटा हो।

इस के बाद कामीला बेचैन रहने लगी। रात को सोते समय आँखें बन्द करती तो उसे मत्तियाज़ की कष्ट भरी खांसी सुनाई देती महसूस होती। अब वह चला जाएगा। तो क्या विदा भी नहीं लेगा? नहीं, वद्धा के आंगन से रंदे की आवाज़ सुनाई देती, कामीला ने संयोगवश उस गली से गुज़रते समय साफ़-साफ़ आवाज़ सुनी थी। अब क्या किया जाये? क्या वह मछली के तेल की प्रतीक्षा कर रहा होगा? कामीला को वे दिन विशेष रूप से कष्टमय लगते जब समुद्र में नहीं जाना होता।

तूफ़ान की प्रतीक्षा के दिन जब मौसम ख़राब रहता है, बहुत मन्द गति से गुज़रते हैं। अगर मत्तियाज़ को देखने जाए भी तो खाली हाथ कैसे? उसे तो दवा की ज़रूरत थी।

ऐसे ही दिनों जब कामीला का जी छटपटाता और बेचैन रहता वह चिपकू भी आ आकर उसे परेशान करता, रोज़-रोज़ परवाने की तरह वह कामीला के आस-पास भटकता रहता, इसी लिए कामीला उसे चि-पकू कहती थी। नाम उसका सत्तार था। मोटर इंजन चलाता था। बस्ती का रहनेवाला। जब काम नहीं होता, मुयनाक़ में भटकता फिरता। बियर पीता, कप्तानों के बैरक में जाता, कामीला की गली से गुज़रता। मगर खुदा ने ज़बान नहीं दी थी उसे। कामीला का जीवन-साथी बनने को तैयार तो था मगर दिल की बात नहीं बता सकता था।

भेड़ की तरह धीर और कम बोलनेवाले इस नौजवान की वफ़ादारी पहले कामीला का मन बहलाती थी। कभी-कभी वह उसके मन में एक रोशन बिन्दु लगता था। और अब कामीला उस से ऊबने लगी। वह ऐसे क्षण आ धमकता जब कामीला बेकार और बहुत उदास, बेचैन बैठी हो-ती। इसी लिए अब वह उसे बरसात के धुँधले दिनों का एक निशान लगने लगा।

आज सुबह से ही आसमान पर काले बादल छाये थे और चारों तरफ़ अंधेरा था। समुद्र में अभी लहरें नहीं उठ रही थीं पर वह सीसे की तरह काला हो चुका था। दो-तीन दिनों तक समुद्र में जाना नहीं होगा। सबने अपने काम बन्द कर दिये थे। बैरक के पास पहुँचकर रास्ता रोके खड़े सत्तार को उसने इशारे से बुलाया। पहले तो उसे अपनी आंखों पर विश्वास ही नहीं हुआ लेकिन फिर दौड़ता उसके पास जा पहुँचा।

"समुद्र में जायेंगे," कामीला बोली।

सत्तार ने विकलता से काले-काले बादलों से घिरे आसमान की ओर देखा, फिर हाथ छाती पर रखकर कहा:

"जैसी आपकी मर्ज़ी!"

उसने कारण भी नहीं पूछा। कामीला के आदेश का मोहताज था यह बेचारा दीवाना। लेकिन इसके साथ ही बड़ी बेचैनी से वह समुद्र और आसमान की ओर भी देखता रहा, इसी लिए कामीला ने हड़बड़ाकर उसे समझाया:

"मछली के तेल की ज़रूरत है। बहुत बड़ी ज़रूरत।"

किसी की, कामीला के किसी नज़दीकी रिश्तेदार की जान खतरे में है... सत्तार शायद यह समझ गया। उसके लिए इस का कोई महत्व नहीं था। उस के लिए यही काफ़ी था कि वह कामीला के किसी काम आये, थोड़ी देर उसके पास रहे। इसी लिये उस ने आनेवाले तूफ़ान, ऐसे क्षण समुद्र में जाने की मनाही के बारे में, कामीला जैसी अनुभवी नाविक की इस बेवकूफ़ों सी करतूत, ख़ौफ़-खतरे–कुछ के बारे में नहीं सोचा। वह समुद्री जाल लाने के लिए सामूहिक फ़ार्म की ओर दौड़ पड़ा। ऐसे दिनों मछली को समुद्री जाल से ही पकड़ा जा सकता था।

कामीला ने घर जाकर खाना खाया, बाल कनवास की टोपी के नीचे छुपाया, मछली की बू से लबालब कपड़ा और रबड़ का बूट पहना। जब तक वह समुद्र तट पर आयी, सतार बड़ी-सी किश्ती में बैठा उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। किश्ती में डोल तह करके रखा गया बादबान और न जाने क्या क्या था। कामीला पतवार के सामने बैठ गई। सत्तार ने डाँड़ पकड़ लिये।

लहर अचानक किश्ती को ले गई। तट से दूर जाने के साथ ही साथ समुद्र दिल में दहशत भर रहा था, सतार रह रहकर कामीला पर सवाली दृष्टि डालता लेकिन साथ ही साथ बड़ी सख़्ती से डांड़ भी चलाता जाता। उसे मालूम था, समुद्री जाल से मछली पकड़ने के लिए आराल समुद्र में दूर-दूर तक जाना होगा। फिर तूफ़ान का अनुभव करके मछली नीचे भागती है। सत्तार बड़ा सीधा-सादा था, उसके मन में यही बात थी कि कामीला अपने यहाँ जाने-माने लोगों में से है। "अगर उसे मछली की ज़रूरत होती वह मोटर बोट लेकर जा सकती थी। लेकिन वह सामूहिक फ़ार्म की किश्ती लेकर जा रही है। यह तो एक बहाना है, मेरे

साथ निकलने का बहाना।" इस विचार से सत्तार का मन खिल उठा और वह बड़े साहस के साथ बीच समुद्र की ओर डांड़ चलाता गया। समुद्र ऐसे लहरा रहा था मानो अभी उलट जाएगा। वह अधिकाधिक काला होता जा रहा था जैसे काले आसमान के साथ एकाकार होना चाहता था।

निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचकर उन्होंने समुद्री जाल पानी में डाल दिया। अब कुछ प्रतीक्षा करनी थी। कोई काम नहीं। सत्तार अपने सामने बैठी कामीला को देख रहा था जिस के लिए वह दो साल से दीवाना था।

वह कनवास की टोपी से निकले उसके बालों, समुद्री हवा में नमकीन हो गए उसके होंठों को (सत्तार को यही विश्वास था कि ये होंठ नमकीन हो गए होंगे) ताकता रहा। वह मदहोश-सा एकटक उसे देख रहा था लेकिन कुछ भी बोल नहीं पा रहा था। फिर भी आज के मौक़े से वह सुखी था।

और कामीला की आँखें क्षितिज पर टिकी थीं। गहरी लहरें किश्ती को झुला रही थीं। यह ख़ौफ़नाक काम कहीं भ्रम तो नहीं? सभी नाविकों को मालूम था कि ऐसे दिनों केवल वही लोग समुद्र में निकलते हैं जो अपने आप को ख़तम करना चाहते हैं। कामीला भी समझती थी लेकिन अभी प्रतीक्षा करनी थी, जाल को उतारना था, फिर तीन-चार घंटे का रास्ता...

कुछ देर बाद बार्सा-केलमेस* की ओर से शीतल हवा आयी, भारी काले बादल हिले, ज़बरदस्त लहर आकर किश्ती से टकरायी। यह परिचित लहर थी। ऐसे तूफ़ान में किश्ती तो क्या, बड़े-बड़े जहाज़ भी छिलके की तरह उड़कर टुकड़े-टुकड़े हो जाते।

"आओ, जाल उठा लें!" कामीला ने गंभीरता से कहा। झूलती किश्ती में बड़ी कठिनाई से पैरों पर खड़े होकर वे जाल को समेटने लगे।

जाल में थोड़ी काड मछली भी मिल रही थी जिसके जिगर से तेल निकलता था।

सत्तार के हाथ पर अंकुड़ा लगने से ख़ून बहने लगा, पर उसने न ख़ून पर, न ख़ौफ़नाक लहरों और वायु पर ध्यान दिया, बल्कि आवेश

---

* बार्सा-केलमेस — जो जाएगा वह नहीं लौटेगा — आराल समुद्र के बीच स्थित एक भीषण रेगिस्तानी द्वीप। — सं०

में आकर (मछुए का बेटा जो था) एक-एक करके मछलियों को निकालता रहा। फिर किश्ती में बड़ी-बड़ी मछलियाँ भर गईं, कोई सौ किलो तो ज़रूर होंगी।

"बस, काफ़ी है!" कामीला ने आदेश दिया। क्षितिज की ओर एक नज़र डालकर फिसलाऊ मछलियों को रौंदते हुए पतवार के पास पहुँची – "चलाओ!"

नम, लिजलिजी आस्तीन से चेहरा पोंछ सत्तार उछलकर बेंच पार बैठ गया। स्वभाव से यह नौजवान कुछ लालची था, इस लिए बहुत मछली पकड़े जाने से उस की जान में जान आ गयी थी मगर तूफ़ानी समुद्र में भारी किश्ती को खेना बहुत कठिन हो गया, सो उस की खुशी जल्दी ही काफ़ूर हो गई। वायु के झोंके कभी दायें, कभी बायें से आकर उस पर यों पड़ते थे मानो कोई हाथ के दबाव से उसे उसके स्थान से हटाने की कोशिश कर रहा हो। किश्ती अधिकाधिक ज़ोर से झूलने लगी। ऐसा लग रहा था जैसे किश्ती आगे नहीं बढ़ रही है बल्कि कुबड़ी कुबड़ी लहरों में क़ैद होकर एक ही स्थान पर झूल रही हो। सत्तार बेबसी से माथा पोंछ रहा था, उस का शरीर जल रहा था, होंठ नमकीन हो गये थे, लहरें चेहरे पर टकरा रही थीं और उसे कामीला की आवाज़ भी नहीं सुनाई दे रही थी। उसने अपना रूईदार कपड़ा, जूते उतारकर फेंक दिये, अपने को संभालना उसके लिए कठिन हो गया था। किनारा नहीं दिखाई दे रहा था, आसमान काले बादलों से घिरे रहने के कारण दिन में भी शाम की तरह अंधेरा छाया था। जब उन्होंने खाड़ी के निकट आने का अनुमान लगाया, तब तट से लौटनेवाली लहरें एक एक करके किश्ती को उठा-उठाकर फेंकने लगीं। कामीला तह किये बादबान पर गिर पड़ी, सत्तार ने मछलियों पर फिसलकर डांड़ को छोड़ दिया। इस समय समुद्र में सच्चा तूफ़ान आया था, लहरों, बारिश के साथ शीतल वायु आई और मानो कोड़े बरसाने लगी। आँखें खोली नहीं जा सकती थीं, ज़मीन, आसमान, पानी, कुछ नहीं दिखाई दे रहा था। कामीला जिस की कनपटी पर किसी चीज़ ने ज़ोरदार आघात किया था, जी जान से चिल्ला रही थी:

"डाँड़ को न छोड़ो! डाँड़! डाँड़!"

"किश्ती को और चार-पाँच मीटर उतारकर जब उसे एक और भीषण

लहर की खौफ़नाक गोद भँवर में डाला गया और मस्तूल से टकराकर जब सत्तार की कमर में ज़ोरदार चोट लगी तब वह कामीला को भी भूल गया। इसी क्षण किश्ती एक ओर झुक गयी। सत्तार क्या करे न जानते हुए कुंठित हो गया। नहीं, उस की सुध-बुध ठीक थी। उसने ज़ोर से किश्ती के नीचे के डिब्बे को उतारना शुरू कर दिया। कोई तीस किलो मछलियाँ लहरों को समर्पित कर दी। फिर मछलियों के ऊपर फिसलते हुए जाकर दूसरे डिब्बे को पकड़ लिया। कामीला तूफ़ान के कारण पहले उसे अच्छी तरह नहीं देख पायी, फिर देखकर भी नहीं समझ पाई कि वह क्या कर रहा है।

"डांड़ को संभालकर रखो, उसे खोने न दो!" चिल्लाकर उसने लंगड़ाते हुए जाकर पतवार को पकड़ लिया। फिर तूफ़ानी लहरों में मरी हुई मछलियों, किश्ती से आकर टकरानेवाली डिब्बे की लकड़ियों को देखकर वह समझ गई। सत्तार की ओर बढ़ी। देखती क्या है?! सत्तार एक और डिब्बे को समुद्र में डालने की कोशिशें कर रहा था।

कामीला उस पर टूट पड़ी।

"क्या कर रहे हो?! मैं तुम से पूछती हूँ: क्या कर रहे हो?"

सत्तार को काटो तो खून नहीं। आँखें मृत भेड़ की आँखों की तरह पथरायी थीं।

"डरपोक! नामर्द!" कहकर चिल्ला पड़ी कामीला। वह सत्तार को यह काम रोकने पर मजबूर करने के लिए पूरी कोशिश कर रही थी। उस के भीगे हुए बाल बिखर गए, चेहरे से, आँखों से लिपट गये, आँखें जल रही थीं, कनपटी पर खून, आवाज़ बन्द हुई थी। और सत्तार जिसे मौत दिखाई दी थी उसे भरे डिब्बों के अतिरिक्त कुछ नहीं दिख रहा था। पर कामीला उसके हाथों पर लटक गई थी। जब किश्ती खौफ़नाक रूप से झूली तब वे एक साथ गिरे, पर कामीला ने उसके हाथ नहीं छोड़े।

सत्तार के गुस्से की कोई सीमा न थी। अपने को संभालने में असमर्थ वह रो पड़ा:

"क्या आप के लिए मुझे भी डूब जाना चाहिए... मैं ने किसी को कुछ नहीं बताया। छोड़िये इन लानती डिब्बों को... क्या अपनी जान आपको प्रिय नहीं," फिर ज़ोर से खींचकर उसने अपना हाथ छुड़ाकर डिब्बे को पकड़ लिया।

"नहीं!" कामीला ने कहा। रोते हुए इस मर्द से उसे घृणा हो गयी। फिर वह उस पर टूट पड़ी।

"आख़िर तभी हम जान बचा सकेंगे!" सत्तार ने फिर से कोशिश की।

"नहीं!"

सत्तार भड़िये की तरह चिल्लाकर एकाएक अपने पीछे की ओर झूल पड़ा। अगर कामीला उसके बाल पकड़कर न संभालती तो लहर उसे ले गयी होती। सतार किश्ती के नीचे लेटा एक हाथ पकड़कर चिल्लाता रहा। कामीला ने क्रोधित होकर उसका हाथ अपने दाँतों से इतने ज़ोर से काटा कि ख़ून बह उठा। तभी सत्तार चुप हो गया और एक हाथ से किश्ती को सख़्ती से पकड़कर बैठा रहा। कामीला ने हड़बड़ाकर डांड़ को पकड़ लिया। उसका गुस्सा कुछ थम गया, शायद इसी लिये उसे लगा कि तूफ़ान थोड़ा शिथिल हो गया। सारी शक्ति बटोरकर वह खाड़ी में पहुँच जाने के लिए लहरों से लड़ने लगी। उसने तोड़े गये डिब्बों, किश्ती के नीचे पानी में रूईदार कपड़ों, कुचली मछलियों, चपटे डोल, उलझी हुई रस्सी को देखा। इसका अर्थ यह है कि बारिश कुछ थम गई, हवा कुछ साफ़ होने लगी। पर किनारा अभी नहीं दिखाई दे रहा है। कामीला खेना, नाव चलाना जानती है, बस तट से आयी•लहर से न टकराए।

"पतवार पर जाओ!" उसने गज़ब ढंग से चिल्लाकर कहा। सत्तार अपना ज़ख़्मी हाथ दूसरे हाथ से पकड़े हुए पतवार पर चला गया। कुछ देर बाद उसने देखा, डाँड़ चलाने के लिए कामीला की शक्ति काफ़ी नहीं है तो जाकर उसके पास बैठ गया। एक डाँड़ अपने हाथ में ले लिया। वे दोनों एक साथ डाँड़ चलाने लगे।

खाड़ी पहुँचने पर लहरों की शक्ति कम हो गई, मगर किनारे पर अंधेरा छाया हुआ था।

प्रभात के समय अजिनियाज़ को जगाकर वे उसे तेलख़ाने में लाए। आधी मछली सुरक्षित रह गई थी। बूढ़े ने मछलियों के जिगर से दो बोतल तेल निकालकर दिया। कहरूबा तेल बोतलों में बहते देखकर कामीला की सारी थकावट दूर हो गई, दिल में आराम मिलने लगा, अप्रत्याशित रूप से सत्तार से माफ़ी माँगी:

"माफ़ करो गुस्से में आकर..."

सत्तार के मन में दूसरी बात थी।

"मछलियों को क्या करेंगी?"

"मछलियों को?" कामीला ने इस के बारे में कुछ सोचा ही नहीं था, अब बहुत अच्छा ख़याल आया: "तेल मेरा, मछलियाँ तुम्हारी!" उस ने कहा। सत्तार मछलियों को किश्ती पर घर ले गया।

"अजीब बात है, हमारी जान बच गयी..." वह ख़ुशी से बार-बार दोहराता जा रहा था।

दो बोतल तेल उठाकर कामीला मल्तियाज़ के यहाँ गई। नौजवान ने शायद उस की प्रतीक्षा बन्द कर दी थी, वह हैरानी से उसे देखता रह गया। घबराहट से खांसी आ गई। तेल सीने से लगाकर खाँसने लगा।

"आप... आप यह कहाँ से लाती हैं, कामीला?"

"अरे, कहाँ से ले सकती हूँ, वही गोदाम से" लड़की ने लापरवाही से कहा। "फ़ुर्सत नहीं थी, आ नहीं सकी। कैसे हैं?"

मल्तियाज़ की खाँसी पहले की तरह नहीं, कुछ हल्की थी, हड्डियों पर कुछ गोश्त चढ़ आया था, चेहरे पर लाली आ गयी थी। लेकिन कामीला की दृष्टि ख़ुद पर महसूस कर वह घबरा उठा और चुप हो गया। कामीला को इस बार भी देर तक बातें किये बिना लौट जाना पड़ा।

सर्दियों का मौसम ख़त्म हुआ, तूफ़ानी दिन कम होने लगे। पहले कामीला इन नम हवावाले, शीतल वायुवाले दिनों से ऊब जाती थी, अब उन्हें चाहने लगी। जब तक उसने कड़े स्वभाव के अजिनियाज़ को मानकर काम ठीक कर लिया तब तक दूफ़ानी दिन कम हो गये। तेलवालों के लिए मछली पकड़ना केवल तूफ़ान के दिनों ही संभव था, अन्य दिनों कामीला ख़ुद अपने काम से जाती थी। शायद कामीला की रात को फुसफुसाकर की गई प्रार्थनाओं के असर से कई शीतलवायुवाले दिन आए। पर बाद में सत्तार उसकी बात मानने से इंकार करने लगा। पहले वह अपनी बाँह सब को दिखाकर: "कामीला ने काटा है" कहकर डींग मारता था। कामीला इस ओर कोई ध्यान नहीं देती। सत्तार उसके लिए ज़रूरी था, सत्तार भी दर्जनों किलो संगमरमर जैसी मछलियों से ललचाकर आगे भी दो-एक बार तूफ़ान में समुद्र में गया। बाद में इस जोखिमी प्यार से उसने तोबा कर लिया। इस के बाद कामीला मोटरबोट ले अकेली जाने लगी।

जब वह तेल लेकर जाती थी, हर दफ़ा मत्तियाज़ बड़ी दिलचस्पी से उससे पूछता था। कहाँ से लायीं? पर ग्राख़िरी बार उसने कुछ फूहड़ ढंग से पूछा:

"कहाँ से लाती हैं, साफ़-साफ़ बताइये न?!"

कामीला फ़ौरन जवाब नहीं दे पायी, सिर झुकाकर उसकी बाँह थाम, ज़मीन में ग्राँखें गड़ाते हुए बोली:

"गोदाम से।" फिर ग्रचानक ग्रावाज़ एकदम धीमी करके उसने कहा: "ग्राप को ठीक हो जाना चाहिये, मत्तियाज़ ... नहीं तो ..."

"नहीं तो क्या?" कामीला एकाएक रो पड़ी ग्रौर दौड़कर भाग खड़ी हुई।

फिर तूफ़ान के दिन वह ग्रकेले समुद्र में गई। मृत्यु से बाल-बाल बचकर लौटी तो ग्राधी रात को बूढ़े ग्रजिनियाज़ को जगाया। उस के कपड़े बिलकुल भीगे थे, बाल बिखरे। बड़ी कठिनाई से ग्राधी बोतल तेल निकालकर वह सुबह ही सुबह वृद्धा के यहाँ गयी। ग्रन्दर जाकर देखा मत्तियाज़ नहीं है। वह चला गया था। कहाँ, मालूम नहीं।

कामीला सब कुछ समझ गई, उसी हाल में सर्द हवा में कँपकँपाते चलते-फिरते समुद्र तट पर पहुँची। उसके बूट रेत में धँस जाते। बाल बिखरे थे, सुनसान समुद्र तट पर क्यों जा रही है, यह ख़ुद उसे मालूम नहीं था। चला गया! गया ... कामीला के दिल में पहले से बेचैनी पैदा करनेवाली बात यही थी। पहले से उसका माथा ठनका था। क्यों बेवक़ूफ़ी करके ग्रपना रहस्य उसे बता दिया? क्यों बेवक़ूफ़-सी हर तूफ़ान के दिन उसके लिए ग्रपनी जान ख़तरे में डालती रही? शर्म की बात है! भाग गया!

कामीला ग्रपने ग्राप पर तरस खाकर रो रही थी। उस के जीवन में कभी ऐसे दुख ग्रौर पीड़ा के क्षण नहीं ग्राये थे।

"ग्रच्छा हुग्रा, बहुत ग्रच्छा!" वह समुद्र तट पर सर्दी में ग्रकेली रेत पर बड़ी तेज़ी से कहीं जाती-जाती ग्रपने-ग्राप से बड़बड़ाये जा रही थी। "यही सबक़ चाहिये तुझे, एक बार देखकर नौजवान से लिपट पड़ी, लड़की होकर!"

इसी तरह वह ग्रपने ग्राप को झिड़कती रही लेकिन मत्तियाज़ को भुला नहीं पायी। रात में ग्राँखों की नीन्द उड़ गयी थी, कभी ख़ुद को कोसती

कभी दुनिया को शापती, कभी मत्नियाज़ को... अपना अता-पता भी नहीं छोड़ गया। उन दिनों की अपनी बेवकूफ़ी के बारे में सोचती तो आज भी दिल की धड़कनें तेज़ हो जातीं, गालों पर सुर्ख़ी छा जाती।

"किनारे के पास आओ! किनारे!"

कामीला के विचार भंग हुए। यह वृद्ध क़ाइपबेरगेन की घबराई हुई आवाज़ थी। कामीला को इस पर क्रोध आया, विचार भंग करने के लिए नहीं बल्कि कप्तान की इजाज़त के बिना आदेश देना शुरू करने के लिए। अंधेरा घिर आने के साथ-साथ नदी पर धुँधलका भी फ़ैला था। गंदले अमू-दरिया का रंग भूरा पड़ गया था, उस की खनखनाहट रहस्य-पूर्ण और फटी लगने लगी। कामीला समझ गई कि तुयाचोकदी नज़दीक है। बड़े अफ़सोस की बात थी कि यह दरिया की शैतान के गले जैसी ख़तरनाक संकरी व गहरी जगह रात को आयी।

मगर अब कामीला को जहन्नुम भी नहीं रोक सकता। आगे मत्नियाज़ है, वही मत्नियाज़ जो कामीला को बहुत महँगा पड़ा है। वही मत्नियाज़ जिस के लिए उसने बरसों तक मुसीबतें सहीं, जिसे पाने के लिए उसने शर्म-हया, परिवार, अपने बेटों–उचक़ुन और तोलक़िन–सब को छोड़ दिया। आगे निर्दयी मुहब्बत, मुसीबती सुख... की प्रतिमा वही मत्नियाज़ उसे बुला रहा है!

तुयाचोकदी–अमू का सब से तंग स्थान है। दोनों किनारों पर ऊँची ऊँची लाल ढालें हैं, नदी के मध्य में एक स्थान पर दो चट्टान हैं जो उष्ट्रककुद की तरह पानी से निकली रहती हैं। जब पानी अधिक होता, चट्टानें पानी से बाहर नहीं निकलतीं मगर धारा को दो हिस्सों में बाँटकर ऊँचे किनारे पर दे मारतीं और भीषण भँवर पैदा कर देतीं।

इस समय यह सब कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा था। अंधेरा तो था ही तिस पर एक दमघोंट भारी भयानक कोहरा।

"रहने दो!" कप्तान ने आबशिनास के आदेश को रद्द करते हुए कहा। वृद्ध ने क्रोध से काँपते हुए कामीला की ओर देखा: "यह आप क्या कर रही हैं?!"

"बड़ी सर्चलाइटें जलायी जाएँ!" कप्तान ने जवाब की जगह कहा और लम्बे-लम्बे सिगनल दिये। सर्चलाइटों के प्रकाश में तुयाचोकदी दूर

से एक छेद की तरह काला होकर दिखाई दे रहा था। नदी से भाप उठ रही थी, लगता था ऊपर से गिरनेवाले कोहरे से इस का संघर्ष हो रहा है।

"सिगनल किस को दे रही हैं, इस समय यहाँ कोई परिन्दा तक नहीं, जिसका दिमाग़ ठीक है, वह रात को कभी तुयाचोकदी के निकट नहीं आएगा," वृद्ध बोला।

"अभी देखेंगे..." कामीला बोली। ख़ुद उसको भी पूरा विश्वास नहीं था कि वह ठीक कर रही थी मगर रुककर सवेरे की, कोहरा छँटने की प्रतीक्षा करने की बात उसके दिमाग़ में नहीं समा रही थी।

"लंगर डालने का आदेश दीजिये, मैं आप को पितृवत सलाह दे रहा हूँ, बिटिया! कोहरे को देखिए, पास के बजरे की रोशनी भी नहीं देखी जा सकती," वृद्ध क़ाइपबेरगेन, किसी तरह अपने क्रोध को रोककर बोला। वृद्ध चाहता था, इस ख़ौफ़नाक स्थान से जहाज़ को अलग और बजरे को अलग चलाया जाये। लेकिन तब इसका मतलब होता कम से कम बारह घंटे की देर।

"डरिये मत! पहले जाकर हम चट्टानों का हाल देख आएँ," कामीला ने कहा। स्पष्ट था, वह ख़ौफ़नाक काम करने का संकल्प कर चुकी थी।

"आप सर्चलाइट का प्रबंध कीजिये। नौजवानो, किश्ती पानी में!"

मैं आप के इस काम में हाथ नहीं बटाऊँगा। आप जहाज़ को दर्रे जैसे ढलवाँ किनारे से टकराकर ख़त्म कर देंगी, बजरे में तख़्ियाताश बिजली-घर के डिज़ेल है, यह बात याद रखिये। मैं अमू पर तीस साल से काम कर रहा हूँ, एक फटा-पुराना बजरा भी नहीं डूबा मेरा। आप... आप ने नई शादी कर ली तो नाविकों का क्या कुसूर!"

कामीला चमड़े के दस्ताने पहने, हाथ आँखों पर रखे कुछ देर तक नीचे देखती रही। वृद्ध ने सोचा मैंने उसे रुला दिया मगर अगले ही पल कामीला की आँखें देखीं जिन से मानो चिनगारियाँ निकल रही थीं।

"आदेश का पालन कीजिए!" कामीला बोली।

वह स्वयं दौड़ती हुई सीढ़ियों से उतर गई और उछलकर किश्ती में जा बैठी जिसे दो नौजवानों ने पकड़ रखा था। वृद्ध उसके "माफ़ कीजिये!", "आप यहाँ चलिये" आदेश सुनते खड़ा रहा। एक क्षण भी

न गुज़रा कि चारों ओर किश्ती के इंजन की आवाज़ गूँज उठी, सर्चलाइट के दूर-दूर तक फैले प्रकाश में मोटरबोट दिखाई दिया, फिर काले छेद की ओर जाते हुए वह आँखों से ओझल हो गया।

चट्टानों के निकट पहुँचने के साथ ही किश्ती के लोगों को मोटर की आवाज़ धीमी लगने लगी। ऊँचे दर्रे के बीच दो धाराओं में बँटे प्रवाह की आवाज़ गरज जैसी लग रही थी। सफ़ेद लगनेवाली चट्टानों के नज़दीक पहुँचने पर मालूम हुआ, प्रवाह के विरुद्ध चलते समय आसानी से उन के निकट ही पहुँचा जा सकता है।

"लो, ये लानती खड़े हैं!" कामीला ने कहा। उस बात किसी ने नहीं सुनी। मगर कप्तान जल्दी में है, यह सब के लिए स्पष्ट था। चट्टान पानी के नीचे अधिक ख़तरनाक होते हैं। पानी कम होने के कारण जहाज़ चलाते समय यह आसानी से देखा जा सकेगा कि खौफ़ कहाँ है।

"बायीं तरफ़ अधिक चौड़ा, फिर इस किनारे पर गहरा भँवर भी नहीं..."

नौजवानों ने समझा, क्यों उसने बायीं तरफ़ संकेत किया मगर वहाँ कोहरा अधिक गहरा था, किनारा नहीं दिखाई दे रहा था। कामीला ने क़ाइपबेरगेन को पुरुषों की तरह गालियाँ दीं क्योंकि वह सर्चलाइट का प्रकाश आवश्यक क्षेत्र में नहीं दे रहा था। फिर उसने जहाज़ को बायीं तरफ़ की ज़ोरदार धारा में चलाया। धारा की शक्ति और दिशा का ठीक-ठीक पता लगाना, किनारे का अनुमान लगाना था।

इसी समय मोटरबोट प्रवाह को हराने में असमर्थ होकर मुड़ा और सीधे किनारे की ओर, शीतल अंधेरे में चला गया। अंधेरा, कोहरा, वे एक-दूसरे को न देख सकते और न ही सुन सकते थे। मोटर चलानेवाला नौजवान अपने स्थान से उठ नहीं सकता था। वह कामीला को नहीं देख पा रहा था: वह यहाँ है या लहरों ने उसे उठा लिया?

"कप्तान! कप्तान!" वह मोटर का दस्ता पकड़े चिल्लाता रहा... "कप्तान! कहाँ हैं आप?"

इस बीच मल्लियाज़ बहुत घबराकर, बड़ी बेचैनी से अपनी आँखों से हॉल में कामीला को ढूँढ़ रहा था। उसके ऊपर उज़्बेकिस्तान और क़ारा-क़ल्पाक़ का मानचित्र बिलकुल पीला होकर लटका था। मानो क़ाराक़ुम

और क़िज़िलक़ुम रेगिस्तानों की धूप भरी साँस ने काग़ज़ को भी सुखा दिया हो। ख़ून की नीली धमनियों की तरह सिर-दरिया व अमू-दरिया रेगिस्तान में हज़ारों किलोमीटर का टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता तय करके बर्फ़ से ढकी पहाड़ी चोटियों के ख़ज़ाने, पुरानी वादियों की आरामदेह सर्दी को लाकर बूढ़े आराल के हवाले कर देते हैं। असीम और सुनसान रेत के महासागर में आराल वस्तुतः एक नीला द्वीप,* प्रकृति का एक चमत्कार, उसका अतिसुन्दर इनाम है!

मलियाज़ मानचित्र के सामने हाथों में संगीन की तरह एक छड़ी लिये अपनी थीसिस का अर्थ समझा रहा था। कपड़ों में कुछ लापरवाही उसकी आदत थी। आज भी उसकी टाई सख़्ती से नहीं बँधी थी, पतलून पर चुनटें पड़ी थीं। लेकिन वह कुछ-कुछ मोटा हो गया था और बुढ़ापे के निशान दिखाई देने लगे थे। उसके साँवले चेहरे पर सुस्वास्थ्य, विश्वास, दृढ़निश्चय और कुछ हद तक ज़िद की झलक भी थी।

कामीला उसे कहीं नज़र नहीं आयी। बड़ा-सा हॉल लोगों से खचाखच भरा था। कोई ख़ाली जगह नहीं। उत्पादक शक्तियों के अध्ययन की संस्था के वैज्ञानिक कर्मचारी – मलियाज़ के दोस्त भी यहीं हैं, पहली क़तार में रोएँदार खालों के सरकारी फ़ॉर्म के प्रधान पशुपालन विशेषज्ञ, जल व्यवस्थाओं की डिज़ाइनें बनानेवाली संस्था के इंजीनियर, भू-सुधार स्टेशन के प्रधान, विज्ञान के उम्मीदवार मरकर्यान, ताश्क़न्द से आये परिचित-अपरिचित वैज्ञानिक... सभापतिमंडल में उसका अपना गाइड, विपक्षी लोग, वैज्ञानिक अधिवेशन के सदस्य तथा सब से प्रसिद्ध मेहमान – प्रोफ़ेसर शूमन बैठे थे।

मध्य एशिया के वयोवृद्ध जल विज्ञानी शूमन के लिए ऐसे सभापतिमंडल में बैठना वैसी ही सामान्य बात थी जैसे अपने घर में सोफ़े पर लेटना।

प्रोफ़ेसर जब कभी कोई भाषण देता, बड़ी हलचल मचती है। दो-तीन साल में एक बार जब वह कुछ लिखते तो बड़े कारगर ढँग से, अप्रत्याशित व सनसनीजनक विषय पर। फिर लम्बे अर्से तक उसी की चर्चा चलती रहती। वह ऐसे जीवन के आदी हो गये थे।

शूमन के कोई पाँच-छह महीने पहले लिखे एक लेख का शोर अभी

---

* आराल का मतलब द्वीप है।

थमा नहीं था। "क्या आराल का रहना ज़रूरी है?" नामक अपने इस लेख में उन्होंने वैज्ञानिकों को भी, अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में काम करनेवालों को भी हैरानी में डाल दिया था, हलचल मची ही थी और मत्नियाज़ की सात साल की सख़्त मेहनत पर करारा आघात भी किया था।

प्रोफ़ेसर ने अपने उस लेख में आराल को धीरे-धीरे सुखाने की बात कही थी और उस चालीस अरब घन मीटर पानी से जो अमू-दरिया आराल में पहुँचाता है, पचास लाख हेक्टर अतिरिक्त ज़मीन की सिंचाई के आर्थिक लाभों को सप्रमाण प्रस्तुत किया था। इस से मत्नियाज़ का ख़ून उबल पड़ा था, पिछले छह महीनों में उसने अपनी थीसिस पर काम तेज़ कर दिया था। और उसने प्रोफ़ेसर के इस विचार को गलत प्रमाणित करने का दृढ़ निश्चय कर रखा था। बहुत से लोगों के विचार में शूमन के साथ बहस करना, उससे जूझना अपना सिर दीवार पर मारने के बराबर था। कुछ दोस्तों ने मत्नियाज़ से यहाँ तक कह डाला था कि क्या तुमने क्रिलोव* की "हाथी और पिल्ला" नामक कविता नहीं पढ़ी? मगर वह भी कृतसंकल्प था। उसने बहुत सोचा, उसमें कभी सन्देह पैदा हुए, कभी उसने अपने आप में इसके योग्य शक्ति का एहसास किया, कुछ भी हो, उसने अपने दिल की बात मान ली।

निश्चय ही पहले उसका विचार था, प्रोफ़ेसर शूमन उसकी थीसिस के बारे में मुँहतोड़ राय लिखकर भेजेंगे। मगर अब ख़ुद वह उसकी थीसिस के मण्डन-समारोह में आकर बैठे थे। अभी वह कुछ नहीं बोले थे, बड़ी शिष्टता से सलाम का जवाब दे वह सभापतिमंडल में मूँछों ही मूँछों में मुस्कुराते बैठे थे। न चेहरे पर नाराज़गी थी, न बेचैनी। विशेषकर हॉल में कामीला को न देखकर मत्नियाज़ ने थोड़ा हकलाते हुए अपनी थीसिस के पक्ष में बोलना शुरू किया। फिर हॉल में सन्नाटा और उपस्थित लोगों की दिलचस्पी देखकर उसने शूमन पर सीधा प्रहार किया।

"हमारे प्रदेश पर नज़र डालिये," उसने कुछ काँपते हाथ से छड़ी को मानचित्र पर फेरते हुए कहा, "यह पीला रंग, यह मृत रंग यों

---

* क्रिलोव – पशुओं से संबंधित अपनी कविताओं के लिए प्रसिद्ध महान रूसी कवि।

भी बहुत है। और हम, माननीय प्रोफ़ेसर महोदय, यहाँ एक और सहारा पैदा करनेवाले हैं।"

"आप इस की जगह पैदा होनेवाले नख़लिस्तान के बारे में कुछ नहीं कह रहे हैं, सहकर्मी," शूमन ने पहली बार रिमार्क किया। वह मुस्कुराते हुए नरमी से बोले थे मगर मलियाज़ ने उनके "सहकर्मी" शब्द में निहित ज़हरीले ताने को महसूस कर लिया था।

"आप त्रीश्का का काफ़तान जानते हैं, प्रोफ़ेसर?" उसने कहा। हॉल में हल्की सी हँसी सुनाई दी। मलियाज़ ने बात जारी रखी:

"आराल के विरोधी इस कड़ाके की धूपवाले प्रदेश में वहशियाना सहारा के नाच के लिए व्यापक संभावनाएँ उत्पन्न करनेवाले हैं। आप ज़रा कल्पना कीजिये: सत्तर हज़ार वर्ग किलोमीटर के आराल समुद्र के स्थान पर सहारा पैदा होने से इस प्रदेश की जलवायु वहशी हो जाएगी, यहाँ नीली लहरों की जगह रेत के तूफ़ान उठेंगे, भूतपूर्व समुद्र के नीचे से हानिकारक नमक मिश्रित धूल हवा में भरकर चारों ओर की हरियाली ख़त्म कर डालेगी।"

"जलवायु में ऐसे परिवर्तन का, नमक के तूफ़ान आने का प्रमाण देना चाहिये, सहकर्मी।"

"पर ऐसा न होने को भी किसी ने प्रमाणित नहीं किया, और उन में आप भी हैं, आदरणीय प्रोफ़ेसर!" मलियाज़ ने हाज़िरजवाबी का परिचय देते हुए कहा। फिर आगे बोला:

"अंतत: प्रकृति का सौंदर्य बोध! हमारे प्रिय प्रदेश का सौंदर्य, यहाँ की प्राकृतिक शोभा तो आँखों की ख़ुशी, जीवन के चश्मे हैं। क्या ये सब आप के लिए बेगाने हैं, प्रोफ़ेसर? आराल – प्रकृति का एक अजीब तोहफ़ा है! आराल मध्य एशिया का अपना बायकाल* है बल्कि उससे भी बेहतर, उससे भी ज़्यादा! क्योंकि वह धरती के सबसे बड़े रेगिस्तानों की गोद में लहरा रहा है। दुनिया में कला के स्मारक, प्रकृति के चमत्कार केवल उनके फ़ायदे, उन से मिलनेवाले आर्थिक लाभों को ध्यान में रखकर सुरक्षित नहीं किये जाते। राष्ट्र की प्राकृतिक सम्पदा के प्रति सिर्फ़ मुनीमों जैसा नहीं बल्कि कुछ और भी व्यवहार होना चाहिये। कि-

---

* सोवियत संघ में सबसे गहरी झील।

तने बड़े-बड़े वैज्ञानिक सदियों तक उसे बचाने के उपाय सोचते आये हैं, और आप . . . आप इस अनुपम सौंदर्य पर, एक बड़े प्रदेश के भाग्य पर नौकरशाही ढँग से हाथ डालनेवाले हैं। कुछ नौकरशाह अब संस्थानों में बैठकर इस बात का हिसाब लगा रहे हैं कि सुन्दर आराल की दुखद मृत्यु से कितने लाभ मिलेंगे। वे साहसी हैं, उनके दिल में कोई बेचैनी नहीं, क्योंकि वे आपकी "वैज्ञानिक भविष्यवाणी" के अनुसार काम कर रहे हैं। आराल सदियों, लाखों बरसों की अक्षय सम्पत्ति का ख़ज़ाना है: प्रति वर्ष पाँच लाख टन मछली, दस लाख ऊदबिलाव, रोएँदार खालों के निराले सरकारी फ़ार्म से दुनिया की मण्डियों में भेजी जानेवाली सत्तर प्रकार की अमूल्य रोएँदार खालें! इन सब को नहीं गिना जा सकता है। आप के लेख के बाद आराल बड़ी तेज़ी से सीमित होने लगा, उसमें पानी की सतह बीस हज़ार वर्ग किलोमीटर कम हो गया। नदी के मुहाने के दलदल को पार नहीं किया जा सकता, मुहाने की झीलें मृत हैं। पानी खारा होकर मौत की घड़ियाँ गिनने लगा है। अब जल व्यवस्थाओं की डिज़ाइनें बनानेवाली संस्था ने अमू और सिर-दरियाओं के उपयोग की आम योजना तैयार की है। इस योजना में आराल की नियति के बारे में एक भी शब्द नहीं। यह भी आप के लेख का परिणाम है, प्रोफ़ेसर!"

मत्नियाज़ के कई बार "प्रोफ़ेसर" कहकर संबोधित करने के बाद गूमन अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ। सब समझ गये, वह बोलनेवाला है।

"यही बात है, सहकर्मी," उन्होंने प्रति शब्द उछाल-उछालकर कहा, "आप मुझे छोड़िये। आप अपनी थीसिस की रक्षा कीजिये। हमारी सारी जनता कम्युनिज़्म की आर्थिक-तकनीकी नींव डालने के लिए जी जान से मेहनत कर रही है और आप विज्ञान अकादमी के भाषण मंच पर पदार्पण करके प्राकृतिक शोभा की बेसिर-पैर की बातें सुना रहे हैं। आप चाहते हैं, चालीस अरब घन मीटर पानी को आराल के दलदल में उबालकर भाप बनाकर आसमान में उड़ा दें। आप चाहते हैं जनतंत्र में सिंचाई और बंजर भूमि को खेती योग्य बनाने का काम रोका जाये . . ." उसकी यह गर्व, आडंबर भरी बातें मत्नियाज़ से आगे नहीं सुनी जा सकीं और हालांकि यह शिष्टाचार के ख़िलाफ़ था, वह बीच में टोककर बोल उठा:

"यही बाज़ारू नेतागिरी है, माननीय प्रोफ़ेसर! हमारी जनता किस

काम में व्यस्त है, यह मुझे भी मालूम है। मगर आपका रवैया प्रसिद्ध फ्रांसीसी बादशाह के दर्शन से मिलता-जुलता है: हमारे बाद आँधी आकर सारी दुनिया को उठा ले जाये तो भी कोई बात नहीं।"

हॉल फिर से सजीव हो उठा, हँसी भी छूटी।

"मैं विरोध प्रकट करता हूँ, आदरणीय वैज्ञानिक अधिवेशन के सदस्यो!" शूमन ने अपने स्थान से उठकर कहा। अब वह पहले की तरह शांतचित्त नहीं रहा था। मत्लियाज़ पर उसकी इस स्थिति का बड़ा प्रभाव पड़ा। एक क्षण ऐसा भी आया जब उसने माफ़ी माँगने की सोची मगर माँगी नहीं। फिर भी मन ने कुछ निराशा का अनुभव किया। उसने एक बार फिर हॉल पर नज़र डाली। क़तारों के बीच लम्बा-सा गलियारा है, दूर में स्थित द्वार के पास धुँधलापन है। वक़्त कितना हो गया? कामीला अभी तक नहीं आयी। क्यों नहीं आयी, कहाँ रह गयी? अगर अभी भी आ पहुँचे तो मत्लियाज़ का हौसला बढ़ जायेगा। वह मुँहतोड़ भाषण देगा। उस समय भी जब वह बीमार था, मछली के तेल से नहीं बल्कि कामीला के बारे में सोचते-सोचते ठीक हुआ था। जब वह बग़ल में संभालकर बोतल दबाये आती थी उसके निर्बल शरीर में बिजली-सी चमक उठती थी। पहले यह सिपाही मरने की सोचता था लेकिन अब जीने को कृत-संकल्प था।

"कहाँ से लाती हैं?"

"अरे, गोदाम से..."

मत्लियाज़ को विश्वास नहीं हुआ। लड़की की आँखें कुछ और कह रही थीं। बाद में उसे मालूम हुआ, हरेक तूफ़ान के दिन अपनी जान ख़तरे में डालकर वह अकेले समुद्र में जाती थी। यह मुहब्बत थी। मुहब्बत... और उसे... यह मुमकिन नहीं। उसे इसका अधिकार नहीं। मत्लियाज़ रो पड़ा। भाग जाना चाहिये। कामीला को बचाना चाहिये। वह जवान है। थोड़े दिनों में सब कुछ भूल जायेगी। बुढ़िया नौजवान की स्थिति के बारे में कुछ नहीं जानती थी।

इस तरह मत्लियाज़ उस समय ग़ायब हो गया था। उसे मोर्चे पर भी इतनी कठिन समस्या नहीं हल करनी पड़ी थी। यह फेफड़े के रोग से भी अधिक असाध्य था। कामीला कहाँ रह गयी? वही कामीला... वही कामीला अब उसकी है। मगर वह क्यों नहीं आयी? हॉल लहरा

रहा है। मत्नियाज़ को इन लहरों को, इन विरोधों को चीरकर उनकी ओर बढ़ना है। वह फिर से भाषण मंच पर आ खड़ा हुआ।

इस बीच कामीला भी अमू की लहरों को चीरकर उसकी ओर बढ़ रही थी। लहरों का पानी चेहरे पर पड़ रहा था, ऊपर काला दर्रा, नाव की मोटर कभी सख़्त ज़ुकामवाले आदमी की तरह खाँसती, तो कभी घबराये आदमी की तरह हाँफ़ती। सर्चलाइट का प्रकाश न जाने कहाँ भटकता था।

काफ़ी देर बाद वे किसी न किसी तरह खुले में निकल ही आये। कामीला नटों की छड़ी की तरह जल-मापक सम्भाले किश्ती की पूँछ में खड़ी थी। उसका सारा कपड़ा भीगा था, चेहरा व बाल भी भीगे थे। फिर भी वह ख़ुद पानी का निरीक्षण कर रही थी और हाथों से यह दिखा रही थी कि सर्चलाइट का प्रकाश कहाँ देना है।

इंजन चलानेवाला नौजवान जो अभी कुछ ही क्षण पहले कप्तान के डूब जाने की आशंका कर रहा था, अब कामीला पर ताकते हुए बराबर ख़ुशी से मुस्कुरा रहा था।

"लगता है कि आपने नहा लिया, साथी कप्तान?" उसका चेहरा बिलकुल पीला पड़ गया था, न जाने डर से या सर्चलाइट के प्रकाश से।

"बस अब वापस चलें!" कामीला ने अपने बाल ठीक करके झटककर टोपी पानी में फेंकते हुए कहा।

आराल पर लौट आने के बाद पहले वह कुछ क्षणों तक ख़ामोश रही फिर अपनी कोठरी में आहिस्ता से प्रवेश करके कपड़े बदलकर बाहर निकली। सब की आँखें उसी पर थीं।

"बात ऐसी है," उसने अधिक दृढ़ होने की कोशिश करते हुए कहा। वह जानती थी, अब उसके साथ तुयाचोकदी पर गये दो नौजवान भी उसका पक्ष नहीं लेंगे। "प्रवाह के ख़िलाफ़ चलते समय बायीं ओर आसानी से चला जा सकता है। दायीं ओर बेतकल्लुफ़ी से नीचे चला जा सकता है। बाजरों को एक-एक करके ले चलेंगे।"

लोगों ने एक-दूसरे की ओर देखते हुए कनपटियाँ खुजलायीं। उनकी नज़रें झुकी थीं।

"हम तो अभी-अभी मृत्यु से बाल-बाल बचकर आये हैं, साथी कप्तान," ज़र्द पड़े मोटर चालक ने कहा।

"तुफ़!" वृद्ध क़ाइपबेर्गेन कुछ नहीं बोला, बड़बड़ाते हुए वहाँ से हट गया। "बुद्धिमान आदमी दिन में भी ऐसा नहीं करेगा।"

"चट्टानें पानी के ऊपर हैं, डरने की कोई बात नहीं है," कामीला ने कहा।

"बजरे तिरछे हो जायेंगे और जहाज़ दर्रे से जा टकरायेगा, मेरी यह बात याद रखो, कप्तान।"

"बजरे को खींचनेवाली रस्सी छोटी कर दो! सब अपनी-अपनी जगह जायें!" कहकर आदेश दिया कामीला ने।

जब एक महिला ने ऐसा साहसी निर्णय लिया, मर्दों की हिचकिचाहट बुरी लगती, सब तितर-बितर होने लगे। दूसरे लोग धीरे-धीरे अपने-अपने स्थान पर चले गये, बस क़ाइपबेर्गेन ही एक कोने में पीठ करके खड़ा रहा।

"क्या मैं सच में ग़लती कर रही हूँ?" सोचकर कामीला ने दायीं ओर देखा। पर वह जानती थी, ऐसी हालत में हिचकिचाना पीछे हटने से भी अधिक ख़ौफ़नाक था। उसने वृद्ध के कंधे पर हाथ रखा मानो कह रही हो: "घबराये मत"। वह कुछ देर तक उसके पास खड़ी रही।

"मुझे जो कुछ कहना था, सो मैं ने कह दिया, कप्तान। आप का जो आदेश होगा, हम मानेंगे..." वृद्ध ने कंधे उचकाकर कहा।

फिर कामीला बड़ी जल्दी से अन्दर चली गयी। कोई बीस मिनट बाद "आराल" धीरे-धीरे चलते हुए एक बजरे के साथ तुयाचोकदी में गया। सर्चलाइट के प्रकाश में पानी के ऊपर का घना कोहरा दूध की तरह सफ़ेद लगता था।

लहरों का प्रतिरोध अधिक ज़ोरदार होने के साथ ही साथ मोटर विभाग की गड़गड़ाहट अधिक ज़ोरदार होती जा रही थी। लगता था, अभी बेयरिंग फटकर टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे। कुछ देर बाद पानी की खनखनाहट ने बाक़ी सारे शोर ख़त्म कर दिये, झाग के साथ दो धाराओं में बंटनेवाली नदी के केन्द्र में दो बड़े चट्टान सफ़ेद होकर दिखाई दिये।

"चट्टानों के निकट! चट्टानों के अधिक नज़दीक!" कामीला ने आदेश दिया।

"चट्टान, चट्टान है, साथी कप्तान!" जहाज़ चलानेवाले ने कहा।

"आप व्यंग्य छोड़िये। चट्टान के निकट! आप चट्टान के जितना निकट चलेंगे, ख़तरा उतना ही कम होगा।"

"डेढ़ मीटर दूर रह गया है, कप्तान!"

"और निकट! और!"

"बहुत नज़दीक आ गये हैं, कप्तान!"

"और! पानी में रात को ऐसा लगता है। निकट! बजरे का चिराग़ देखते हैं?"

वस्तुत: यदि जहाज़ को चट्टान के और निकट न पहुँचाया जाता तो बजरे को नदी के आर-पार चलाकर दर्रे की ओर ज़रूर खींचा जाता। और चट्टान के पास और कुछ जगह थी।

"चप्पे-चप्पे करके मापो! चप्पे-चप्पे बढ़ो!"

"चट्टान का नीचे का हिस्सा चौड़ा है।"

"पानी काफ़ी है, बस साहस चाहिए!"

जहाज़ शोर के साथ झाग उठाते हुए चट्टानों के बिलकुल नज़दीक चल रहा था, सब के सब दिल थामे इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि जहाज़ चट्टान से जा टकरायेगा। बाद में क्या होगा? दुर्घटना?

इस एक मिनट का भीषण सन्नाटा दस घंटे की तरह लगा। फिर डेक पर भी नीचे भी, बजरे पर भी ज़ोरदार "हुर्रा! हुर्रा!" सुनाई दिया। नाविक चिल्लाते हुए अपनी टोपियाँ आसमान की ओर फेंक रहे थे। जहाज़ नदी के चौड़े शांत धारावाले क्षेत्र पर निकल गया था। वृद्ध क़ाइपबेर्गेन अपने माथे का ठंडा पसीना पोंछकर दीवार का सहारा ले खड़ा हो गया।

"उफ़! .. बस, अब लौटकर नहीं जाऊँगा। यह एक चमत्कार है कि हम सही सलामत निकल गये हैं। लेकिन हर बार सफलता नहीं मिलती।"

"अच्छा, आप यहीं ठहरिये, दूसरे बजरों को मैं ख़ुद ले आऊँगी!" कामीला ने कलाई की घड़ी की ओर देखकर कहा।

जहाज़ मुड़कर प्रवाह के विपरीत कोहानों की दूसरी तरफ़ से चला। पीछे बजरा न होने के कारण ज़ोरदार धारा के ख़िलाफ़ चलना कठिन नहीं था।

कोई आधे घंटे के बाद कामीला अपने जवानों के साथ दूसरे बजरे को भी "जहन्नुम के छेद" से पार करा लायी। प्रभात तक तुयाचोकदी दूर छूट चुका था। अपने करिश्मे पर आप आश्चर्यचकित कामीला सोच में डूबी थी। उन तूफ़ानों के बाद और मनियाज़ से दुबारा मिलने तक उसने इतना जोखिमी साहस नहीं किया था।

सत्तार के साथ उसने जो दिन बिताये थे, बहुत शांत थे, इस प्रकार की हलचल, अतिरिक्त बेचैनी कभी नहीं हुई। ऐसी मुसीबत भरी रातों की तो कल्पना तक नहीं की थी उसने। सन् १९४५ की सर्दियों के वे अजीब, घबराहट, दर्द और तूफ़ानों से परिपूर्ण दिन जब वह मछली के तेल के बहाने मनियाज़ के यहाँ जाती थी, एक सपने की तरह गुज़र गये थे।

लेकिन सपना सपना था और ज़िन्दगी अपने रास्ते चल रही थी। उम्र ज्यादा होने के कारण कामीला ने भी शादी कर ली। न जाने कहीं से आ धमके और अचानक ग़ायब हो गये। किसी अजनबी के कारण अपनी घबराहटों को याद करके वह हँसती रही, अपने को पगली, छिछोरी कहती रही। फिर उसने अपने उस पुराने धीर पूजक सत्तार से शादी कर ली।

अमू-दरिया के बेड़े में तबादला होने के बाद खोजायली में जाकर बसे सत्तार को बाप से विरासत में मिला मकान वहीं था। अपना सुख पाकर सत्तार ने कामीला के लिए क्या-क्या नहीं किया! जैसा कि उसकी माँ अनज़िरत कहती है, दिन-रात एक करके मेहनत की, न शराब पी, न सिगरेट, जो पाया वह घर लाया।

सहकारिता को छोड़कर मछलियों को भुनने की संस्था में काम करने लगा, फिर कहीं अग्रप्रेषक एजेण्ट हो गया ("नहीं"—यह कामीला ऐसा कहती है पर वास्तव में सत्तार ने इलाक़ाई सहकारी समिति में काम किया था), सारांश में, बेचारा बराबर कोशिशें करता रहा। और दो-एक साल बाद पिता से विरासत में मिला मकान और आंगन पहले से दुगुना बड़ा हो गया। बाग़, सब्ज़ियों का खेत, पालतू पशु की संख्या बढ़ती गयी। सब कुछ कामीला के लिए।

मगर कामीला का जीवन यात्राओं में गुज़रता था। वह इस ओर ज़्यादा ध्यान ही नहीं देती थी। ख़ुद अपने आदमी के प्रति भी बेपरवाह थी,

इस लिए उस के काम में भी दिलचस्पी नहीं लेती थी। बाद में, जब तोलक़िन पैदा हुआ कामीला मानो अपने भाग्य के सामने हार मानकर ख़ुद को इस परिवार की सदस्या मानने लगी।

अनज़िरत जिसके कपड़ों से सदा मट्ठे की बू आती रहती थी, सरगर्म हो उठी थी। आस्तीन चढ़ाकर वह दिन भर गाय-बकरियों की बाड़ में या मुर्ग़-मुर्ग़ीख़ाने में किसी न किसी काम में व्यस्त रहती थी। कभी-कभी कामीला को हलकी झिड़की ज़रूर देती थी:

"ओय लाड़ली बहू! तुमने कभी मक्खन बिलोया है या नहीं? लाओ, मथनी मुझे दे दो। ख़ुद जाकर तोलक़िन को दूध पिलाओ।"

ऐसी हालत में सत्तार पत्नी की हिमायत करता:

"बिलोना नहीं जानती तो क्या हुआ। अमू-दरिया बेड़े की जानी-मानी कप्तान जो है। न गाँव में, न ही राजधानी में ऐसा कोई है जो कामीला का नाम न जानता हो: एक उज़्बेक लड़की ऐसी हो गयी तो और क्या चाहिये।"

सत्तार को कामीला पर गर्व था। जब किसी को परिचय देते समय या किसी संस्था में अपने "सत्तार" नाम का प्रभाव न पड़ता देख वह "अमुक का जीवन साथी हूँ" कह देता था। कई बार कामीला का नाम कहकर बड़ी मुसीबतों से भी बच गया था। एक सभा में किसी ने सत्तार की निजी "अर्थ व्यवस्था का बड़ा विस्तार हुआ है" कहकर उसकी आमदनी के स्रोतों पर संदेह प्रकट किया। तब सत्तार ने यह कहकर सब का मुँह बन्द कर दिया कि आप को मालूम है, अमू-दरिया के बेड़े की जानी-मानी कप्तान कितना कमाती है?

कामीला इन बातों से बेख़बर थी, उसे मालूम ही नहीं था, वह एक आवरण, बलि का बकरा बनायी जाती थी। वह बस यही जानती थी कि कई साल से उन में भावना, मुहब्बत या नफ़रत के बारे में कोई बात नहीं हुई थी। पति-पत्नी ऐसे जीवन के आदी हो चुके थे। जैसा कि आदमी किसी कपड़े या किसी दूसरी चीज़ का आदी हो जाता है। प्यार, मज़ाक, ईर्ष्या, वियोग में दुख, एक-दूसरे के लिए चिंता जैसी कोई बात उन के मन में नहीं थी। सत्तार के लिए यह एक आदर्श परिवार था: शांतिमय, सम्पन्न, न किसी चीज़ की कमी, न झगड़ा...

पर कामीला महसूस करती थी, वह बूढ़ी होती जा रही है, मुरझा रही है।

"यह क्या बात है, मैं कब से ऐसी हो गयी। आख़िर यह तो मैं नहीं हूँ। बस, मुझे कामीला ही बनना चाहिये।" बार-बार सोचा करती थी वह।

यह बातें वह अगर सत्तार को बताए तो निस्सन्देह उसकी समझ में कुछ भी नहीं आयेगा। वह सत्तार की कड़ी आलोचना करके उसे अपना जीवन बदलने पर मजबूर कर सकती थी। वह इस में समर्थ थी। लेकिन क्या सत्तार ऐसा आदमी बन सकेगा जो उसके दिल में घर कर सके? इस लिए वह अन्दर ही अन्दर घुटती रही। बकरियों के में-में और पाँस के बदबू से भरे आंगन में लौटने का उसका जी नहीं चाहता था। वह केवल तोलक़िन और उचकुन के कारण घर के लिए दौड़ती थी।

तभी एक दिन मल्लियाज़ आराल में अचानक आ टपका। उससे कामीला की मुलाक़ात नुकुस की एक सड़क पर हुई। वे ऐसे मिले मानो उनकी यह मुलाक़ात संयोगवश नहीं, स्वभाविक थी। कामीला ने घबराकर दोनों हाथ बढ़ा दिये थे और मल्लियाज़ तो न जाने क्यों इस मुलाक़ात से तनिक हैरान भी नहीं हुआ था।

"हाय धोखेबाज़!" उसने सलाम का जवाब देते हुए हलकी हँसी के साथ कहा। "गोदाम से न?!" और फिर दोनों ठहाका लगाकर हँस पड़े मानो वे रोज़ मिलते और ऐसे ही चहकते रहे हों...

"धोखेबाज़! धोखेबाज़!" मल्लियाज़ हॉल की ओर ताकते हुए बड़बड़ाया। किसी तरह उसने अपने आंसू रोक लिये! हॉल में शोर मचा था। मल्लियाज़ प्रोफ़ेसर शूमन के प्रश्नों की बौछार का जवाब नहीं शुरू कर पा रहा था, कामीला अभी तक नहीं आयी थी।

"आप की इजाज़त हो तो मैं हॉल में उपस्थित लोगों को संबोधित करता हूँ," मल्लियाज़ ने अपने विचार संभालकर कहा, "यहाँ देश भर में प्रसिद्ध रोएँदार खालवाले जानवरों के सरकारी फ़ार्म के पशुपालन विशेषज्ञ साथी ख़ुदायबेर्दीयेव बैठे हैं। मैं उन से अपने सरकारी फ़ार्म के भविष्य के बारे में चन्द शब्द सुनना चाहूँगा।"

"मुझ से क्या सुनना चाहते हैं, आप मर्कर्यान से पूछिये अपना सवाल!" ख़ुदायबेर्दीयेव ने हॉल के केन्द्र में उठकर कहा। भू-सुधार केन्द्र का डाइरेक्टर मर्कर्यान भी अपने स्थान से उठ खड़े हुए।

"मुहाने की दवलिबाय झील साफ़ करायी जाये। पानी के लिए रास्ता बनाया जाये। झीलों का पानी नमकहीन बनाया जाये, आक़-दरिया और क़िप्चाक़-दरियाओं की तहें चौड़ी बनायी जायें। इस के बारे में निर्णय लिया गया है। और इस के लिए न पैसे हैं, न मशीनें। मृत झील, दलदलों में क्या भविष्य हो सकता है?"

"अब चाहे कितना पैसा, कितनी मशीनें क्यों न हों, मुहाने का उद्धार असंभव है।" मर्कर्यान ने हाथ हिलाते हुए कहा। फिर पसीने से चमकते सिर को हिलाकर इंगित किया:

"प्रोफ़ेसर ने अपने लेख में यह सारी बातें बताई हैं।"

हॉल गूँज उठा। शूमन हाथ फेरते, कंधे उचकाते पास बैठे लोगों से ऊँची आवाज़ में कह रहा था:

"यह वैज्ञानिक अधिवेशन है या उत्पादन संबंधी सभा?"

"मैं वर्तमान काल के विज्ञान और अर्थव्यवस्था के मामलों को बनावटी रूप से एक-दूसरे से अलग नहीं कर सकता हूँ, प्रोफ़ेसर," मतनियाज़ ने कहा, "आइये, ज़रा ध्यान से देखें: समुद्र हट रहा है। उसकी जैविक सम्पदा नष्ट हो रही है। रोएँदार खालवाले जानवरों का सरकारी फ़ार्म अभी दो साल पहले छछूदर (ऊदबिलाव जाति का एक जानवर) की दस लाख खालें देता था और इस साल दो लाख ही देने का आयोजन है। मछली के कारख़ाने की आमदनी इस बीच नौ गुना कम हो गयी। छछूदर के मुफ़्त गोश्त से पालन की जानेवाली लोमड़ियों की खालें एक ही साल में छह गुना कम हो गयीं। उनतीस क़िस्म की निराली मछलियों ने मुहाने की झीलों में अंडे देने बन्द कर दिये। यह सब आप के लेख के बाद की घटनाएँ हैं, आदरणीय प्रोफ़ेसर! सामूहिक और सरकारी फ़ार्मों, कारख़ानों के नेता आपकी सनसनीखेज भविष्यवाणी के बाद साज़-सामान इकट्ठा करके हाथ पर-हाथ धरे बैठे हैं। पैसे-मशीनें ढूँढ़ लेने की जगह साल-ब-साल सरकारी योजना को कम करते जा रहे हैं। एक पूरे ज़िले की अर्थव्यवस्था का यही हाल हुआ। यह करोड़ों रूबल की क्षति है। आप के प्रसिद्ध लेख का हर एक अक्षर राज्य के लिए सोने की तरह महँगा पड़ा, साथी शूमन!"

"यह थीसिस में रखे सवालों के जवाब देने से भागना है।" प्रोफ़ेसर ने बैठे ही बैठे कहा। वह पहले की अपनी बुद्धिजीवियोंवाली औपचारिकता

भी भूल गया था। "सवाल रखना – वैज्ञानिक काम नहीं, सवाल को हल करना चाहिये, सहकर्मी।"

"और आपने बड़े साहस के साथ मसले को हल किया, प्रोफ़ेसर, आप साहसी हैं! सरकार के करोड़ों रूबल के ख़र्च पर!" कहकर मत्नियाज़ भाषण मँच से उतर गया।

हॉल में बड़ा शोर मच गया...

कामीला सामान तख़ियाताश में पहुँचाकर पहली ही बस से नुकुस के लिए रवाना हो गयी। इस समय वे विज्ञान अकादमी की शाखा के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम के छात्रावास के एक कमरे में रह रहे थे। सुबह-सवेरे दौड़कर जब कमरे में दाख़िल हुई, मत्नियाज़ कपड़े उतारे बिना पलंग पर पड़ा था। कमरा धुएँ से भरा था।

उसे सिगरेट पीते देखकर ही कामीला को कुछ-कुछ एहसास हो गया था, उसका दिल एकदम बैठ गया।

"मत्नियाज़!"

मत्नियाज़ उछलकर उठ खड़ा हुआ, सिगरेट झरोखे से बाहर फेंककर उसने पत्नी को बाँहों में भर लिया। कामीला ने अपनी थकी, रात भर जागने से लाल हुई आँखें उस पर गड़ा दीं। थीसिस के बारे में फ़ौरन नहीं पूछ पायी:

"क्यों सिगरेट पी तुमने?" उसने कहा, "यह तो अच्छा नहीं..." वह मत्नियाज़ को झिड़की दे रही थी और स्वयं उससे लिपटी जा रही थी।

"मैं मरते-मरते बच गयी, तुझे कुछ मालूम नहीं।"

"क्यों, क्या हुआ, कामीला?" मत्नियाज़ ने उसका कोट टाँगकर, बूट उतारने में मदद दी। मर्दों जैसे गरेबानवाली कमीज़ में नंगे पैर कामीला एक छोटी लड़की लगने लगी थी। मत्नियाज़ ने उसे फिर सीने से लगा लिया।

"दरिया की बू आ रही है तुझसे!"

"नमकीन हो गयी हूँ।"

"अँगीठी पर चाय तैयार है। क्यों नहीं पूछ रही हो? फेल हो गया हूँ..." उसके कानों में उसने फुसफुसाकर कहा।

कामीला धक् से रह गई। उसे इस बदख़बर की प्रतीक्षा थी। कमरे

में आते ही उसका माथा ठनका था। अब वह क्या करे? बेचारा मत्तियाज़। सात साल की मेहनत! आधी रात को जब वह आँखें लाल करके पुस्तकालय से घर लौटता या शिकारी बूटों में कीचड़ भरकर घर आता, उस समय कामीला घबराकर उसका स्वागत करती और सोचती, कहीं दोबारा बीमार न पड़ जाये। इतने कष्ट का यही परिणाम था! उसने अपनी पीड़ा छुपायी। जी चाहा, प्रेमी के कंधे पर सिर रखकर रो पड़े, मगर उसने अपने को रोक लिया।

"मुझे देर हो गयी, माफ़ करना," उसकी हालत समझते हुए कामीला बोली। अपना सारा प्यार उसे उँडेल देने के लिए कामीला ने उसे गले लगा लिया।

"इसके बारे में बाद में बातें करेंगे, कामीला, बाद में। पहले गर्म चाय पीओ, कुछ सो लो। मैं तेरे इंतिज़ार में रहा। हॉल में तुझे ढूँढ़ता रहा। प्रत्येक क्षण तू मेरी आँखों के सामने रही..."

कामीला मेज़ पर खाना परोसने लगी। वह यूँ लड़खड़ा रही थी मानो अँधेरे में चल रही हो। उन्होंने खड़े-खड़े प्याले पर फूँक मारते हुए चाय पी।

"लोग बहुत थे क्या?"

मत्तियाज़ ने "हाँ" में सिर हिलाया।

"चार घंटे तक संघर्ष किया।"

"शूमन से?"

"हाँ उसी से।"

कामीला ने पति के थके चेहरे पर नज़र डाली।

"तुम परेशान न हो?"

"मैं परेशान नहीं हूँ।" मत्तियाज़ ने ज़िन्दादिली ज़ाहिर करने की कोशिश करते हुए पलंग पर बैठकर अपने घुटने थपथपाये। "हालांकि मुझे कम वोट मिले फिर भी शूमन की स्थिति बिलकुल ढीली कर दी। यह पी० एच० की डिग्री से भी अधिक महत्वपूर्ण है।" वह उठ खड़ा हुआ। "कोई बात नहीं। अब छुटकारा पा गया। इस थीसिस को लेकर मैं बड़ा स्वार्थी बन गया था। तेरा भी कोई ध्यान नहीं रखता हूँ।" और उसने कामीला के कँधों पर दोनों हाथ रख दिये। "सफ़र कैसा रहा, शाग़ालाय? किसी ने परेशान तो नहीं किया?"

एक दिन कामीला ने उसे ज़ोसिम प्रोकाफ़्येविच के बारे में बताया था, कहा था, वह उसे "शाग़ालाय" कहा करता था। मल्लियाज़ को यह बहुत अच्छा लगा। तभी से वह भी उसे प्यार से "शाग़ालाय" कहने लगा।

"अब बाद में यह बातें करेंगे। चलो, बच्चों को देख आयें," कामीला बोली।

"क्या ?"

"हमने तो वचन दिया था कि ख़ुशी के दिनों भी और परेशानी के दिनों भी बच्चों को अवश्य देखने जायेंगे।"

"हाँ, हाँ। लेकिन तू थकी है..."

कामीला चुपचाप कपड़े बदलने चली गई। कमरे के एक कोने में पुस्तकों से भरी आलमारी, एक और कोना पर्दे से बन्द – वह सोने का कमरा है और खिड़की के सामने "मेहमानख़ाना" है – वहाँ खाना खाने की मेज़, टेलीविजन सेट, टेपरिकार्डर, शीशा और उसके ऊपर दीवार पर ऊराल तन्सिक़बायेव की "आराल का दृश्य" नामक तस्वीर लटकी है। जब तक मल्लियाज़ कुर्सियों के बीच टहलता रहा, कामीला अपने छोटे बाल पीछे संवारकर अतलस की फ्रॉक पर सुन्दर-सा ऊनी स्वेटर पहनकर आ गयी। अब वह कल की जान पर खेलनेवाली कप्तान नहीं बल्कि एक दिलकश हसीन युवा महिला, दुबली-पतली, कुछ घबराई-सी माँ थी।

"चलो!" उस ने कहा।

एक परिचित किश्तीवाला वृद्ध उन्हें अमू-दरिया पार पहुँचाकर उनके पीछे अर्थ भरी नजर डाले रहा। कामीला के परिवार में हुए परिवर्तनों के बारे में अभी बहुत से लोग बेख़बर थे। मल्लियाज़ को पहचाननेवाले कम थे। और उन पर वे यूँ दृष्टि डालते थे मानो पूछ रहे हों: "क्यों यह मसदार, ऊँचे क़द का नौजवान हमारे कप्तान की बाँहों में बाँह डाले चल रहा है?"

ख़ोजायली की सड़कें पहले की तरह धूलभरी थीं। नदी की हवा पेड़ों के पीले पत्तों को उड़ा रही थी। कामीला और मल्लियाज़ नदी के किनारे व्याप्त मछली की बूवाली गलियों से ऊपर गये। बड़ी दुकान में जाकर उसने "यह उचक़ुन के लिए," "यह तोलक़िन के लिए" कहकर नाना प्रकार की चीज़ें ख़रीदीं।

पत्नी जो कुछ कहती, मतियाज़ वह सब करता था, मगर मन ही मन, वह उस पर तरस भी खाता था। बच्चों को छोड़कर जानेवाली महिला का तो यही हाल होता है: खाली हाथ नहीं जा सकती, उपहार लेकर जाती तो भी झिड़कियाँ दी जातीं। दूसरों को वह कैसे समझाये कि उसका सारा प्यार, सारा स्नेह इन्हीं बच्चों से है। अगर कहीं अनज़िरत घर पर हुई तो . . . कब ख़त्म होगी यह परेशानियाँ? मतियाज़ कामीला को इन परेशानियों, इस तरह के अपमान से बचाना चाहता था, मगर वह लाचार है, वह क्या करे? क्या कम से कम एक बच्चे को हासिल करने के लिए वह फिर से मुक़दमा लड़े? मुक़दमों से तो वे तंग आ गये थे। न्यायाधीशों को क़ानून-संहिताएँ छोड़कर ज़रा लोगों के दिलों में झाँककर भी देखना चाहिये। काश, वे यह जानने की कोशिश करते, किसके दिल में खोट है।

वे सत्तार के बड़े से दरवाज़े में पहुँचे जो बड़ी-बड़ी ट्रकों के आने-जाने योग्य था।

बरामदे के पास दो बकरियाँ बँधी थीं। बरामदे की सीढ़ियों पर सत्तार और आचिल बाबा सिर झुकाये मौन बैठे थे।

दरवाज़ा खुलने पर वे उठ खड़े हुए। कामीला पहले उन्हें न पहचानकर आँखें झपकाती रही। फिर हाथों के सभी डिब्बे छोड़ आगे दौड़ पड़ी।

"बाबा! प्यारे बाबा!" उसने कहा।

मगर यह देखकर कि आचिल बाबा की सफ़ेद भौंहें चढ़ी हुई हैं, चेहरे पर कोई परिवर्तन नहीं, कामीला रुक गई। बाबा को बाँहों में भरने से वह ठिठक गयी। वह ऐसी लग रही थी मानो पँख टूट गये हों।

कुछ दूरी पर अनज़िरत दिखाई दी। चबूतरे पर अज़ीमजान बैठा था। द्वार के पीछे से तोलक़िन झाँक रहा था मानो सुअवसर मिलने पर वह दौड़कर निकलने को तैयार हो। मतियाज़ दर्जनों डिब्बों को संभाले दरवाज़े के पास खड़ा था। सब चुप।

"नमस्ते, बाबा! कैसे हैं? ठीक-ठाक पहुँचे, मुझे ख़ुशी है," काफ़ी देर बाद कामीला ने ज़मीन पर नज़र गड़ाते हुए कहा।

"मुझे ख़ुशी है। तेरा सब कुछ ठीक है। पर मैं यहाँ आकर कल से ख़ून के आँसू बहा रहा हूँ," आचिल बाबा ने कहा।

"क्यों, क्या हुआ, बाबा?"

"और पूछती है क्या हुआ?!"

"आइये, पहले कुछ बातें करें, बाबा, मैं समझाऊँ..."

"क्या बातें करनी हैं, ख़ुद सब कुछ तो देख रहा हूँ। इतनी उम्र तक जो सिर नहीं झुका था, वह झुकाना पड़ रहा है। यह क्या कर दिया तूने?" वृद्ध की आवाज़ काँप उठी थी। "मैं बूढ़ा हो गया, बेटी, बूढ़ा! मुझे मरने का डर नहीं था, अब डर लग रहा है, तुझे ऐसी हालत में छोड़कर कैसे जाऊँ। तू, तेरे बच्चों को..."

"बाबा..."

"चुप रहो, बेशर्म! आचिल के ख़ानदान में कभी ऐसा कोई पैदा नहीं हुआ था!"

"बाबा, एक बेगाने आदमी के सामने..." कामीला ने बेक़सम का चोग़ा पहने चबूतरे पर शांत बैठे अज़ीमजान की ओर कनखियों से देखते हुए कहा।

"वह बेगाना नहीं है। तेरा फुफेरा भाई है वह। अज़ीमजान है उसका नाम। तुझे दिखाने लाया था, अब परिचय कराने में भी शर्म आ रही है।"

"आख़िर, मैं ने कोई शर्म का काम नहीं किया, बाबा..."

"परिवार को तोड़कर, दो बच्चों को छोड़कर चले जाना यह किस अदब की बात है, नासमझ? क्या इन अनाथों को दुख पहुँचाने के गुनाह का डर नहीं लगा?"

"क्यों अनाथ हैं, क्या मैं मर गयी?"

मर जाती तो इससे बेहतर होता, आवारा! अभी शरमाये बिना आकर मेरे सामने खड़ी है, देखिये, कैसी है!"

"मैं अपने बच्चों को देखने आयी हूँ।"

"यहाँ तेरे बच्चे नहीं हैं!" आचिल बाबा अपने को संभाल नहीं पाये।

तभी अनज़िरत ने भी बतख़ की चाल से जाकर मत्नियाज़ के हाथों पर के उपहार ले लिये और दरवाज़े से बाहर फेंक दिये। मत्नियाज़ अवाक् रह गया।

"बच्चा आकर देखने की चीज़ नहीं. बच्चे की माँ बनना चाहिये।"

"बाबा, आप नहीं जानते, बेकार हस्तक्षेप कर रहे हैं..."

"क्या? आचिल बाबा सामूहिक फ़ार्म के काम में दख़ल देता है, कारख़ाने के काम में दख़ल देता है, सरकार के काम में दख़ल देता है तो क्या तेरे काम में दख़ल नहीं दे सकता? जा, जहाँ आवारा होकर भटकती रहती है, वहीं जा! इस आंगन में क़दम न रख, जा! आँखों के सामने से हट जा!"

कामीला रो पड़ी। मल्लियाज़ दौड़कर आया और उसे दरवाज़े की ओर ले गया। अज़ीमजान आचिल बाबा को शांत कराने की कोशिशें कर रहा था और सत्तार कुछ कहने में असमर्थ होकर एक ओर मुँह खोले खड़ा था। अन्दर से तोलक़िन के रोने की आवाज़ सुनाई दी।

"तोलक़िन, उचक़ुन..." कहकर चिल्लाते हुए कामीला रोने लगी लेकिन मल्लियाज़ उसे वहाँ से खिसक जाने के लिए कह रहा था। उधर अनज़िरत बड़बड़ा रही थी।

"अपने मुन्ने उचक़ुन को नहीं देखने दूँगी, नज़दीक भी आने नहीं दूँगी, यों भी उसे बुख़ार है..."

"बीमार है क्या?" कामीला और अधिक ज़ोर से रोने लगी।

"जाओ, मैंने कहा। जाओ! रोना जानती हो तो पहले से सोचना था," आचिल बाबा ने कहा, "दरवाज़ा बन्द करो, सत्तार, मेरी ऐसी कोई पोती नहीं।"

सत्तार हड़बड़ाकर गया और मेहमानों के जाते ही उसने दरवाज़ा बन्द कर दिया। नई मज़बूत कुण्डी लगा दी। आंगन में फिर सन्नाटा छा गया। आचिल बाबा फिर उसी सीढ़ी पर बैठ गये। सत्तार उनके पास आकर बैठ गया, आँखें ज़मीन पर गड़ी थीं।

इस तरह वे देर तक बैठे रहे।

घर के अन्दर से अनज़िरत की "तेरी क़ुर्बान हो जाऊँ" कहकर पोतों को प्यार-दुलार करने की आवाज़ सुनाई दे रही थी।

कुछ भी "खट" करता तो आचिल बाबा दरवाज़े की ओर देखने लगते। शाम तक वे ऐसे ही बैठे रहे। शायद उम्मीद थी, कामीला लौटकर आएगी।

"अच्छा नहीं हुआ, आचिल बाबा," सुबह से मौन बैठा सत्तार अचानक बोल उठा। "इतना सख़्त न होते तो बेहतर होता। शायद किसी

दिन मिलाप कर लेते। प्यार नहीं करती तो रहने दो, यूँ ही जीवन बिताते। लोग कहते हैं: पत्नी छोड़कर चली गयी, यही बात बुरी है..."

अब तक अपने को संभाले आविल बाबा सतार को यूँ ताकने लगे मानो उसे पहली बार देख रहे हों। वे अभी-अभी तूफ़ान की तरह घटी घटना के बारे में सोच रहे थे। क्या कुछ हुआ, वह ठीक से नहीं समझ पा रहे थे, इस लिए शांतचित्त होकर दोनों पक्षों की दलीलें तराज़ू के पलड़ों पर रखनेवाले थे कि सतार ने उनके सभी ख़्यालों को तितर-बितर कर दिया। यह फूहड़, मितभाषी शांत आदमी अब उसे एक ठूँठ की तरह भावहीन, एक बैल की तरह बेपरवाह लगने लगा।

"ख़ुद अपनी बिटिया को क्या कह गया मैं," जब वे यह कहते हुए पछता रहे थे, उसी क्षण इस आदमी की बात ने सब कुछ स्पष्ट कर दिया। सोचकर देखा तो समझ गये, ख़ुद उन्होंने कामीला को इसी आदमी की दलील दी थी: "प्यार नहीं करती, मुहब्बत नहीं, नफ़रत है तो भी साथ रहो। मवेशियों की तरह!"

बाबा एकाएक अपने आप से नफ़रत करके उठ खड़े हुए। उठे तो फिर न बैठे न लेटे। रह-रहकर उन्हें पोती से कही बातें याद आकर दिल को व्याकुल कर रही थीं। कई बार दरवाज़े तक जाकर लौट आये। ज़मीन पर पड़े खिलौनों, मोटर, गेंद, प्लास्टिक के सिपाही, पहिये और न जाने और क्या-क्या था उन में, वह सब उन्होंने इकट्ठा किया, अपने यकतक के आँचल से उनकी धूल पोंछी और सोते हुए पड़पोतों के पलंग पर रख दिये। छोटे उचकुन का माथा हाथ से देखनेवाले थे तो वह जागता मिला। उसने बातें शुरू कर दीं:

"बाबा जी, मेरी एक माँ है और दो बाप। एक पिता जी माँ का है, एक मेरा अपना। वह माँवाला जो पिता जी है, वह भी मेरा है, उसने मुझे बछेड़ा लाकर दिया था।"

"अच्छा, बेटा, अच्छा," वृद्ध की आँखों में आँसू आ गये, "अब सो जा, देख, चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा है।"

वस्तुत: चारों ओर अंधेरा था। आविल बाबा द्वार बन्द करके धीरे

से बाहर निकले, उस चबूतरे के पास पहुँचे जहाँ अज़ीमजान लेटा था। अज़ीमजान भी जाग रहा था।

"अब क्या होगा, बाबा?"

"ग़लती हुई, बेटे। बड़ी ग़लती हुई," आ़बिल बाबा ने कहा। फिर वह अपनी जगह पर लेट गये। करवट बदली, बदलते रहे, कुछ बोले नहीं।

सुबह-सुबह वह चलने की तैयारियों में लग गये। हड़बड़ाकर नाश्ता करने के बाद बाबा ने खर्राटे भरकर सोते पड़पोतों के माथे को चूमा। सत्तार और उसकी माँ उनके जाने से बेख़बर थे, वे हक्का-बक्का रह गये। अनज़िरत की मिन्नत भरी नज़रों पर कोई ध्यान न देकर अज़ीम-जान ने अपनी खुरजी कंधे पर डाल ली।

ख़िज़ाँ का मौसम ख़त्म होता जा रहा था। नदी के पास उन्हें सर्दी लगने लगी। नुकुस की सड़कों पर सर्द हवा धूल उड़ाते चल रही थी। जब तक अज़ीमजान आस्तीन से चेहरा-आँख पोंछकर खुरजी उठाये नाना के साथ-साथ चलने की कोशिश करता।

"अब अक्बरअली के पास जाएँगे क्या, बाबा?"

"हाँ, आज ही रवाना हो जायेंगे," आ़बिल बाबा ने कहा। "ज़रा इस दफ़्तर में हो आयें।"

अज़ीमजान ने सोचा, कामीला यहीं काम करती होगी, बाबा शायद उससे माफ़ी माँगेंगे। यह सोचकर उसने अपनी खुरजी ज़मीन पर र[illegible] दी।

"तुम भी आ जाओ, इतनी तेज़ हवा में बाहर क्या करोगे..." आ़बिल बाबा ने कहा।

सीढ़ियों से दूसरी मंज़िल पर चढ़कर वे एक कमरे में जा पहुँचे।

"पब्लिक प्रोसेक्यूटर तुम हो, बेटे?" आ़बिल बाबा ने सामने की मेज़ के पास बैठे जवान और ख़ूबसूरत से आदमी से कहा। नौजवान ने [illegible] से उनकी ओर देखा। उसकी चौड़ी भौंहों के बीच बड़ी-सी झुर्री पैदा हो गयी।

"मैं तुम्हारा आ़बिल बाबा हूँ, तुम्हारा थोड़ा-सा समय लूँगा, ठीक है?"

"हम आप की सेवा में हैं, बाबा, आप के बारे में सुना हैं। कैसे हैं? ठीक हैं न?"

"बात यह है," आचिल बाबा ने बड़े रूमाल से चेहरा पोंछकर नमदी कुर्सी पर बैठते हुए कहा। "कामीला मेरी पोती है, उसके मुक़दमा लड़ने के बारे में मालूम है तुम्हें?"

"जी हाँ, मालूम है।"

"यह केस दोबारा देखना है।"

नौजवान हैरानी से कंधे उचकाकर बाबा के सामने की आरामकुर्सी पर आ बैठा।

"कारण, आचिल बाबा? प्रांतीय न्यायालय निर्णय की पुष्टि कर चुका है। या तलाक़ ठीक नहीं रहा क्या?"

"तलाक़ तो ठीक है। बिलकुल ठीक। मगर बच्चों में से एक, विशेषकर छोटा माँ के साथ होना चाहिये।"

पब्लिक प्रोसेक्यूटर इस बात पर मुस्कुरा उठा। यह वृद्ध बड़ी सादगी से क़ानून में दख़ल दे रहा है। फिर बड़ी सावधानी से उन्हें समझाने लगा:

"हम सर्वप्रथम परिवार की रक्षा करते हैं। हम ने बहुत कोशिश की कि परिवार को टूटने न दें, कुछ नहीं हो पाया। आप की पोती अपनी ज़िद पर अड़ी रही। चूंकि परिवार को तोड़नेवाली वही है, बच्चे बाप के हाथों रहेंगे। क़ानून ऐसा ही है, आचिल बाबा।"

"परिवार की रक्षा करते हैं... देखो, बेटे, वहाँ कोई परिवार था ही नहीं, कभी नहीं था। प्यार-मुहब्बत के बिना परिवार परिवार हो सकता है क्या? हम पुराने आदमी अक्सर अपनी अज्ञानता के कारण ऐसे कभी के ख़त्म हो चुके परिवारों की डाँट-फटकार कर, बलपूर्वक रक्षा करते हैं। वे बेचारे भी हमारी बात मानने की कोशिश करते। पर वास्तव में यह सर्द खाना खाने जैसी बात है... क्या सोचते हो, ऐसे परिवार कम हैं? हम वृद्ध लोग परिवार न टूटे, इस के लिए जी-जान से प्रयत्न करते हैं। और तुम? तुम तो ख़ुद जवान हो। मुहब्बत का अर्थ भली-भांति जानते हो। तुम कहते हो, क़ानून ऐसा है। अच्छा, क़ानून में सब कुछ है, सब कुछ ध्यान में रखा गया है और मन? क्या मन के बारे में, दिल के बारे में वहाँ कोई बात है?"

नौजवान ने भौंहें सिकोड़कर कुछ सोचा, फिर हँस कर कहा:

"है ... इस के बारे में भी थोड़ा कुछ है, आचिल बाबा।"

"थोड़ा-कुछ ... क्या वहाँ यह कहा गया है कि अगर दिल दिल का प्यास नहीं बुझाता, तब भी मुस्तैदी से परिवार की रक्षा की जाये, कि प्यार मुहब्बत के जीवन का आदर करनेवाली महिला माँ के कर्तव्यों से महरूम कर दी जाए? क्या यही कहा गया है वहाँ?"

"नहीं, ऐसी बात नहीं ..." कुछ घबराकर नौजवान ने मेज़ पर कुछ ढूँढ़ते हुए कहा।

"ऐसी बात नहीं तो दोबारा जाँच करो केस की। उचक़ुनजान माँ की गोद में होना चाहिये। अब वह माँ की जुदाई के दुख से बीमार है, बुख़ार है उसे। माँ से मिलने नहीं दिया जा रहा है। कल भी ... गालियाँ देकर निकाल दिया गया उसे," आचिल बाबा ने दरवाज़े के पास बैठे अज़ीमजान पर न जाने क्यों मिन्नत भरी नज़र डाली। "इस मेहमान के सामने ..."

अज़ीमजान ने पुष्टि करते हुए सिर हिला दिया।

"अच्छा, देखेंगे, बाबा।"

"तुम नोट कर लो, कैलेन्डर डायरी में लिख लो; छोटे का नाम उचक़ुन है, माँ – कामीला। नाविक आलिमतायेव की बेटी है। हाँ।

पब्लिक प्रोसेक्यूटर ने मुस्कुराते हुए लिखा: "उचकुन, कामीला।"

"मैं पता लगाऊँगा।"

"अच्छा, आचिल बाबा, ठीक है। आख़िर, आप सोचे-समझे बिना कुछ कहेंगे नहीं।"

"हाँ, नहीं कहूँगा लेकिन कभी-कभी ऐसी पागल बातें बता देता हूँ कि कुछ न पूछो। अगर तुम कल की बातें सुन लेते!" आचिल बाबा ने मन ही मन उदासी के साथ सोचा। जिस पोती को देखने के लिए वह इतने उत्सुक थे, उसे सीने से लगाकर प्यार करने की जगह गालियाँ देकर निकाल दिया। उनकी आँखों के सामने रोती-रोती जानेवाली कामीला की शक्ल नाचने लगी। अच्छा उसके पास का नौजवान ... अभी पास आ गया। आचिल बाबा ने उसे ध्यान से देखा तक नहीं, उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं सुना। आत्माभिमानी होगा ...

जी चाहा, अभी जाकर उन्हें ढूँढ़ लें, परिचय करें और बैठकर बातें

ऊपर उठा दिया। लड़की न केवल अल्हड़ और चंचल स्वभाव की थी बल्कि अक़्लमन्द और शिक्षित भी थी। सो, पहली ही भेंट में उन्हें अपनी बातचीत रोचक लगी और दोनों को ऐसा लगने लगा जैसे उनकी बातें जीवन भर समाप्त नहीं हो पायेंगी।

शहर से लौटते समय स्तेपी में पहुँचने के बाद जब जमाल ने अपने बाप के क़ाफ़िले में आलिम को भी शामिल देखा तो पहले वह पीली, फिर लाल पड़ गयी।

"ओय, कैसे हो . . ." वह बोल उठी लेकिन फ़ौरन ही दिल थामे पलटकर उसने अपनी आँखों में आये आँसू छुपाये।

इस प्रकार थोड़े समय बाद आलिमजान एलेकबाय नामक पशुओं के सौदागर का इचकुयाव* बन गया और कोकचातोव में जा बसा। वहाँ उसे क़ज़ाख़ी ढँग से आलिमताय कहकर बुला जाने लगा।

हालांकि एलेकबाय ख़ुद अनपढ़ था, वह अपने बच्चों को शिक्षित बनाने के लिए पूरी कोशिश कर रहा था। उसने स्तेपी की आदत के अनुसार अपने बच्चों को उन्मुक्त छोड़ रखा था और बस यही प्रयास कर रहा था कि वे अपने माल का हिसाब आप करने में समर्थ हो जाएँ। आलिमताय को मदरसे में सीखी फ़ारसी और अरबी से अधिक रूसी भाषा काम आयी जिसे उसने बुख़ारा की गलियों और बाज़ारों में सीखी थी। थोड़े ही दिनों बाद वह नये शहर के प्राथमिक स्कूल में शिक्षक हो गया। शिक्षित रूसी, कज़ाख़ नौजवानों से उसने दोस्ती की। विशेषकर ओम्स्क के सैनिक स्कूल में पढ़नेवाले वलेरा नाम के दोस्त ने अपनी बुद्धि, ज्ञान के विस्तार और सहृदयता से उसका मन मोह लिया था। यहाँ तक कि जमाल भी उसके उस मित्र से ईर्ष्या करने लगी थी और जब वह उसके यहाँ से देर करके लौटता, वह बोले बिना नहीं रहती, "दिन-रात उसी के यहाँ पड़े रहते हैं। वहीं सो भी क्यों नहीं गये?"

वस्तुत: आलिमताय कभी-कभी आधी रात तक वलेरा के पास बैठा रहता था। हालांकि उसका बाप व्लादीमीर याकोवलेविच कुलीन ज़मीन्दारों में था और हाल ही में स्थानीय गैरिजन के निदेशक के पद पर नियुक्त

---

* इचकुयाव – घर दामाद। यदि शौहर ससुराल में आ बसे तो उसे यही नाम दिया जाता है। सं०

ज़ारशाही अफ़सर था, लेकिन उसकी माँ यूलिया निकोलायेवना आलिमताय की तरह ही एक सामान्य शिक्षिका थी। इस घर में शहर के बहुत से शिक्षित लोग, संगीत और साहित्यप्रेमी, कुलीन बुद्धिजीवी एकत्र होते थे। और जब वलेरा छुट्टियों पर आता तो नौजवान जमा हो जाते थे। यहाँ राजनीति के बारे में युद्धों, कवियों, बादशाहों, छात्रों की हलचल के बारे में बहसें हुआ करतीं। यहाँ पुस्तकें पढ़ी जातीं, मेहमानख़ाने में नाटक प्रस्तुत किये जाते। इन सब के केन्द्र में वलेरा था। यूलिया निकोलायेवना अपने बेटे से बहुत प्रेम करती थी और वह जो चाहता, वही उसे करने देती थी। बेटे से इस मुहब्बत को आलिमताय अपने प्रति उसके व्यवहार से भी महसूस करता था। शहर भर में अपनी ज्ञानवत्ता, विनयशीलता और स्वच्छ हृदय के लिए प्रसिद्ध यह महिला आलिमताय को बाल मनोविज्ञान के बारे में बताती और बड़े गर्व के साथ उसे अपना वह स्वर्ण पदक दिखाती जो उसे अध्यापन-कार्य के लिए मिला था। उस ज़माने में बहुत कम मिलनेवाला यह पदक वलेरा के कमरे में काली आलमारी पर दुहरी बिछी हरे रंग की मखमल की चादर पर चमकते पड़ा रहता था।

यह ख़ानदान, वहाँ के लोग, वलेरा और उसकी बातें आलिमताय को अपने-आप में दुनिया-सी लगती थीं और जब वह घर लौटता, उसे लगता, वह एक तंग गली में आ पहुँचा हो। आंगन में लगे तंबू में एलेकबाय के दोस्त एकत्र होते थे, ऐसे दोस्त जो एक-दूसरे को फूटी नज़र नहीं सुहाते थे। वहाँ अमीर कज़ाख़, रूसी सौदागर आते, क़िमिज़ पीते, शहर के बड़े-बड़े लोगों के बारे में गपशप और कुत्सा करते कभी-कभी शहर के अन्य अमीरों के अलावा व्लादीमीर याकोवलेविच के बारे में भी झूठी, गंदी बातें करते विशेषकर एलेकबाय का पड़ोसी, घोड़ों का सौदागर गव्रीला अफ़ानास्येविच की हर दूसरी बात गैरिज़न के नायक के बारे में होती और वह उसके सफ़ेद दस्तानों या गंदे सिपाहियों से उसकी दोस्ती की हँसी उड़ाते हुए क़हक़हा लगाते रहते थे। जब ये लोग मौज-मज़ा उड़ाकर चले जाते, आलिमताय बड़ा खिन्न और नाराज़ होता, ऐसा अनुभव करता मानो उसके चेहरे पर थूक दिया गया हो, उसे रात भर नीन्द नहीं आ पाती। इस ख़ानदान में बस जमाल को ही वह चाहता था।

अभी चारों ओर रात का सन्नाटा फैला हुआ है। केवल दूर से कपा-कोल के सरकंडों के बीच से प्रभात के हलके प्रकाश से जाग गई मादा तीतर की बेताबी से चीखने की आवाज़ सुनाई दे रही है। पहाड़ी नदी क़िलचिक़साय घने सफ़ेद कोहरे से ढकी है। अभी-अभी नया दिन आनेवा-ला है, रात अपना आँचल उठाके भाग रही है...

इसी वक़्त क़िलचिक़साय के इस किनारे पर दो साये नज़र आये। वे शहर की ओर से, न जाने किस शैतान की गली से निकलकर आये थे। ख़ूब बढ़े हुए जिनग़िलों* के बीच होकर पथरीली पगडंडी से नीचे उतरे। नदी के किनारे पर रुककर उन्हों ने झुककर एक-दूसरे को कुछ कहा और फिर नीचे उस स्थान की ओर वे जा पहुँचे जहाँ नदी अधिक गहरी थी। ये लोग अजनबियों से लग रहे थे और लड़खड़ाते हुए, एक-दूसरे का सहा-रा लेकर चल रहे थे। आगेवाले की बग़ल में कोई बड़ी-सी गठरी थी, पीछेवाला... अरे, वह तो कोई औरत थी... अजीब बात है, ये कौन हैं, क्या कर रहे हैं रात को, क्या राज़ है?..

प्रभात की रोशनी अभी नहीं फैली, शायद रात भी उनके इस रहस्य को छुपाना चाहती थी, इस लिए नहीं जा रही थी। मगर क्षितिज रोशन होकर रात को हटा रहा था। कोहरे का परदा और सफ़ेद होकर कुछ ऊपर उठा, नदी की खनखनाहट सुनाई देने लगी। दोनों साये किनारे की घासपात में कुछ बिछाकर थोड़ी देर तक खड़े रहे, फिर वे गले मिले या रोए—साफ़ नहीं नज़र आया। मर्द कुछ उठाकर लाया और बीच में रख दिया। नदी में पत्थर गिरने की आवाज़ सुनाई दी। पत्थर? यह क्या है? ये लोग प्रेमी हैं या चोर?

भोर के समय आंगन से निकला गब्रीला अफानास्येविच इन सायों को दूर से देखकर घबरा उठा और दौड़कर पड़ोसी के पास जा पहुँचा, उसे जगाया।

एलेकबाय तंबू से अपनी छोटी दाढ़ी पर हाथ फेरते, सफ़ेद पजामे, सफ़ेद कुर्ते में एक प्रेतात्मा की तरह बाहर निकला। वे नदी की ओर के बेंत के बाड़े में जाकर बिछुए के बीच छिप गये।

रहस्यपूर्ण साये अब भी कुछ कर रहे थे। उनकी गठरी और बड़ी हो

---

* जिनग़िल—झाऊ, टैमरिस्क।

गयी थी, अब उन्होंने उसे साथ मिलकर उठाया। उठाकर कगारे पर पहुँचे।

प्रभात का प्रकाश अधिक फैल गया था। कोहरा कुछ हलका सा हो गया था। नदी की ओर से हवा के झोंके आ रहे थे और जंगली घास की ख़ुशबू ला रहे थे। एलेकबाय और गव्रीला सर्दी से काँपते बाड़े से लिपटकर किनारे की ओर बराबर ताकते रहे। कुछ समय बाद नदी के शोर के बीच उन्हें कुछ गिरने की शपप... की आवाज़ सुनाई दी। डर के मारे एलेकबाय ने आँखें बन्द कर लीं। जब आँखें खोलीं तो देखा, वे दोनों कगारे पर खड़े हैं। अपनी गठरी उन्हों ने फेंक दी थी। एलेकबाय और गव्रीला ने एक-दूसरे पर दृष्टि डाली, कंधे उचकाए। इसी क्षण एलेकबाय ने जो आँखें फाड़-फ़ाड़कर देख रहा था, बाड़े को ज़ोर से पकड़ लिया।

"अरे ऽऽ रे! यह क्या व्लादीमीर याकोवलेविच नहीं है?"

"क्या? पागल हो गये हो?"

"वही तो है! अरे-अरे! उसके साथ तो उसकी औरत है!"

वस्तुत: ये वही थे। कगारे पर कुछ देर तक खड़े होकर वे पीछे लौटे। वे इस तरह उदास थे मानो किसी को दफ़ना कर लौट रहे हों। व्लादीमीर याकोवलेविच ने अपना कोट उतारकर यूलिया निकोलायेवना के कंधों पर डाल दिया था। ख़ूब उगे झाऊ की झाड़ियों में से निकलकर वे पगडंडी पर धीरे-धीरे आने लगे। गव्रीला और ऐलेकबाय के चेहरा पर भय की झलक की जगह अब संतोष की मुस्कुराहट आ गयी। वे अब भी बिछुए के बीच झुककर बराबर निरीक्षण कर रहे थे, आँखों में जासूसों जैसी दिलचस्पी, किसी को रंगे हाथ पकड़ने से संतोष का भाव था। यह तो कोई छोटी बात नहीं—शहर के सैनिक बुज़ुर्ग, बादशाह के नियुक्त अधिकारी, कुलीन अमीर के किसी रहस्य से अवगत होना...

मगर क्या रहस्य था? यह प्रतिष्ठित वयोवृद्ध लोग रात को इस सुनसान किनारे पर अकेले चोर की तरह चारों तरफ़ देखते हुए क्या कर रहे थे? पानी में क्या फेंका, कहाँ से लाये, क्यों? इस में कोई राज़ अवश्य है।

एलेकबाय और गव्रीला देर तक आपे से बाहर रहे मानो उन्हें कोई ख़ज़ाना मिल गया हो। मन ही मन में वे बहुत प्रसन्न थे।

"क्या फेंका होगा?" एलेकबाय ने लौटते हुए पूछा।

गव्रीला ने अपने आप में कोई शक्ति, बल का अनुभव करके अपनी सूखी हथेलियाँ रगड़ीं। "क्या फेंका?," गव्रीला के लिए यह कोई बड़े महत्व की बात नहीं थी। सब से बड़ी बात यही थी कि उसने देख और पहचान लिया था। माननीय अधिकारी का मुँह बन्द करने का रहस्य उसके हाथों में था। एक न एक दिन यह हथियार काम आयेगा...

आलिमताय ने उन्हें सवेरे के ठंड में भी पसीने से तर, गंभीरता से बातें करते, मुस्कुराते आते देखा। ध्यान से देखा, मगर कुछ समझ में नहीं आया। उसने कंधे उचका दिये।

उस रात शहर की सैनिक और प्रशासकीय संस्थाओं में बत्तियाँ देर तक जलती रहीं: तीसरे पहर के बाद सड़कों, मैदानों, आंगनों और यहाँ तक कि शहर के सैनिक दस्तों के बैरकों में भी परचों के पुलिन्दे कहीं से आ पहुँचे थे। परचों में कहा गया था कि कुछ सैनिक दस्ते और नाविकों के दल संघर्षरत जनता का समर्थन करते हैं। उनमें सिपाहियों से मज़दूर भाइयों पर गोली न चलाने की अपील भी की गई थी। उस में "निरंकुश सरकार मुर्दाबाद!" के नारे थे। यहाँ आज तक कभी ऐसी घटना नहीं घटी थी। शहर की सारी पुलिस खड़ी कर दी गई। रात भर आंगनों की तलाशी लेकर, छतों और खंभों पर चढ़कर परचों को छानबीन कर इकट्ठा किया गया।

उधेड़बुन में पड़े थानेदार का गला फँस गया था। आधे घंटे तक फ़ोन खटखटाकर उसने शहर के सैनिक दस्ते के निदेशक को घर से बुला लिया था। यह एक दुबला-पतला आदमी था और मीठी-मीठी बातों से अपनी कायरता व निर्दयता छुपाता था।

"लीजिये, माननीय व्लादीमीर याकोवलेविच, यह सब आपके सैनिक दस्ते के बैरकों से इकट्ठा करके लाया गया है। आप को कष्ट पहुँचाने के लिए माफ़ करेंगे..."

"मैं क्या करूँ?" व्लादीमीर याकोवलेविच ने बड़ी लापरवाही से पैर हिलाते हुए कहा। उन्हें इस मीठी बातोंवाले अनपढ़ से बड़ी नफ़रत थी जिस की मूँछें उत्तेजना से हमेशा हिलती रहती थीं। आज पूछ-ताछ के लिए पुलिस के दफ़्तर में बुलाये जाने के कारण वह और अधिक नाराज़ था।

"परचे ... यह आप का काम है, जनाब रोतमिस्टर!"

"नहीं, प्यारे व्लादीमीर याकोवलेविच, ये आप के बैरकों से लाये गये हैं। इसका अर्थ है, आप मुझे माफ़ करियेगा, अगर आपकी रेजिमेंटों में उत्तेजक कार्रवाइयाँ करनेवाले हैं तो इसका आप से भी संबंध है, भई। आप यह नहीं समझ पा रहे हैं, यह कितनी ख़ौफ़नाक बात है। ख़ुशक़िस्मती से इन्हें अभी बाँटा नहीं जा सका है। ऐसे ही पुलिन्दों में हाथ लग गये!" थानेदार परचों के पुलिन्दे मेज़ पर फेंकते हुए बोला। हालांकि उसकी मूँछें चिढ़ और घबराहट से हिल रही थीं। वह "माननीय", "आदरणीय", "प्यारे" आदि शब्दों का भी बराबर इस्तेमाल किये जा रहा था।

व्लादीमीर निकोलायेविच ने मेज़ पर रखे परचों के पुलिन्दों पर नज़र डाली और देखते ही रह गये! वे सब एक प्रकार के छोटे-छोटे सुनहरे रंग के रेशमी धागे से बाँधे गये थे। "कृपा करके ...", "बादशाह महाशय के सामने हम आप के कर्त्तव्य ...", "आप के सैनिक दस्ते में ...", "मैं इसका पता लगाकर ही रहूँगा ..." बात के ऐसे टुकड़े तो उनके कान में आ रहे थे, मगर वह यह क़रीब-क़रीब भूल चुके थे कि कहाँ बैठे हैं। सुनहरे रंग के रेशमी धागे ... आँखों को परिचित लगनेवाले इन धागों से वह हक्का-बक्का रह गया।

"मुझे यह सब दीजिये, रोतमिस्टर साहब," व्लादीमीर याकोवलेविच ने अपने को संभालकर कहा। "मुझे अफ़सरों में जाँच करनी है..," और उठकर उन्होंने पुलिन्दों की ओर हाथ बढ़ाया लेकिन रोतमिस्टर ने उन्हें बीच में ही रोक दिया।

"माफ़ कीजिये, माननीय व्लादीमीर याकोवलेविच, पुलिन्दे हमारे पास रहेंगे," आँखें ऊपर उठाकर वह बोला। "जाँच-पड़ताल हम करेंगे, सुनहरे रंग के ये धागे हमें षड्यंत्र के स्थान का पता लगाने में हमारी सहायता करेंगे!" अपने आप से बहुत संतुष्ट रोतमिस्टर यह नहीं देख पाया कि इस क्षण व्लादीमीर याकोवलेविच का चेहरा पीला पड़ गया था। वह अपने आप से मसरूफ़, अपनी योजनाओं से प्रसन्न था। अपनी बात जारी रखते हुए उसने कहा:

"हाँ, हम ख़ुद जाँच करेंगे, प्रिय व्लादीमीर याकोवलेविच। और आप अपने सैनिक दस्ते की स्थिति के बारे में रिपोर्ट लिखकर देंगे।"

"रिपोर्ट लिखकर देंगे? आप को? मैं आपका मातहत नहीं, रोतमिस्टर। आप यह न भूलिये, आप किस से बातें कर रहे हैं। मैं आप के विभाग का आदर करके यहाँ आया हूँ लेकिन मेरी जाँच करने के बारे में आप न सोचें!"

और वह अपने स्थान से उठ खड़े हुए, रोतमिस्टर अपनी मूँछें नचाते बैठे रहा।

"पर आप की स्थिति इतने आडंबर, ऐसे घमंड के योग्य नहीं है, प्यारे..."

"आप अपनी स्थिति का ख़याल कीजिये। ख़ुद तो डर के मारे काँपते बैठे हैं। मुझे डरने की कोई बात नहीं है। नमस्कार!" व्लादीमीर याकोवलेविच सैनिक ढँग से सलाम कहकर चले गये।

चले तो गये, मगर उनका सारा शरीर ठँडे पसीने से भीग गया था और वह लगातार अपना माथा पोंछे जा रहे थे। उनकी आँखों के सामने सुनहरे धागे नाच रहे थे। यह तो उसी चादर के गुच्छों के धागे हैं... यूलिया के दहेज के साथ आये मखमल की चादर के गुच्छों के धागे। शहर में और किसी के पास ऐसी चादर नहीं...

घर आकर तुरंत बच्चों के पढ़ने के कमरे में पहुँचकर यूलिया निकोलायेवना को बुला लिया। अलमारी के ऊपर की चादर के सुनहरे गुच्छों को हाथों में पकड़कर धागे काट लिए गए थे।

बात विस्तार से बताई। यूलिया निकोलायेवना के चेहरे का रंग भी एकदम उतर गया। घबराकर वह बस पति की ओर देखती खड़ी रह गयी।

"वलेरा?"

"बेशक..."

"अब क्या करें?"

व्लादीमीर याकोवलेविच कोई जवाब नहीं दे सके। वह भी बेचैनी से द्वार से खिड़की तक चहलक़दमी करने लगे। फ़ौजी वर्दी उतारकर पेटी एक ओर, कुर्ता दूसरी ओर फेंक दिया।

"आख़िर यह तो बड़ी मुसीबत है, कुछ बताओ; न, वोलोद्या," युलिया निकोलायेवना उन से याचनापूर्ण स्वर में बोली। "हमारे प्यारे बच्चे की शिक्षा भी, भविष्य भी..," और अचानक ही वह ज़ोरों से रो पड़ी।

"यूलिया, यूलिया..." व्लादीमीर याकोवलेविच दौड़कर उसके पास पहुँचे और उसका सिर अपने गोद में रख लिया। "शर्म की बात है, बच्चे देख सकते हैं, आँखें पोंछ लो।"

"हाँ, हाँ, ठीक कहते हो। हम अब क्या करेंगे, प्यारे वोलोद्या?"

"हम उसे इस ख़ौफ़नाक रास्ते से अवश्य हटायेंगे। वलेरा अक़्लमन्द लड़का है, लेकिन... लेकिन वह डरनेवालों में नहीं, यही बुरा है। फिर भी हम उसे रास्ते से हटायेंगे, यूलिया, यक़ीन करो। लेकिन यह बाद की बात है। और इस समय..." व्लादीमीर निकोलायेविच ने बूट भी उतार दिये। फिर जल्दी-जल्दी उन्होंने ग़रीबों जैसे कपड़े पहन लिये। अलमारी के ऊपर रखी चीज़ें हटाकर चादर उतारकर लपेट ली:

"अब इस को जल्दी ख़त्म कर देना है।"

"हाँ, हाँ," यूलिया निकोलायेवना यूँ बोली मानो उसे किसी दुर्घटना का पूर्वाभास हो गया हो," ख़त्म करना है... बिलकुल ख़त्म करना चाहिये।"

आधी रात के बाद जब उन्हें बच्चों के सो जाने का विश्वास हो गया, वे गठरी उठाकर धीरे से घर से बाहर निकल आये।

जब वे लौटे, सुबह हो चुकी थी। ठण्ड व नम हवा से यूलिया निकोलायेवना निढाल हो गयी थीं, उनका रंग कुछ नीला-भूरा हो गया था और वह एकदम बूढ़ी-सी लगने लगी थीं। नंगी अलमारी को देखकर वह फिर रो पड़ीं। घर सूना-सूना लगा।

"स्वर्गीय माँ की एकमात्र यादगार थी... सोचा था, भाभी को भेंट करूँगी," उसने फुसफुसाकर कहा।

"यूलिया!" नाराज़ होकर व्लादीमीर याकोवलेविच ने कहा। "अब भावुकता का समय नहीं। बेटा सही-सलामत रहे तो भाभी को कोई दूसरा उपहार भी मिल जायेगा। कब तक रोती रहोगी! मैं साफ़ बताता हूँ, कुछ हद तक मुझे गर्व है: इतना साहसी, दृढ़ हो गया है, शैतान।"

"हाँ, हाँ, वोलोद्या..." पत्नी ने उन पर यों नज़र डाली मानो माफ़ी माँग रही हो। "लेकिन उसे बचाना है, प्यारे वोलोद्या, हटाओ उसे इस खौफ़नाक रास्ते से!"

व्लादीमीर निकोलायेविच ने पत्नी का सिर गोद में रखकर उसके

बालों पर हाथ फेरा मानो किसी छोटे बच्चे को प्यार कर रहे हों। उन्होंने रोज़मर्रा के कामों में लग जाने की कोशिश की। बच्चे उठे, आंगन में, रसोई में नौकर-नौकरानी की दौड़-धूप शुरू हो गयी। रात-भर जागते रहने से, चिन्ताओं से निर्बल पड़ी यूलिया निकोलायेवना भी बेपरवाह रहने की कोशिश कर रही थी मानो कुछ भी नहीं हुआ हो।

कोहरा हटाकर सूरज निकलते ही प्रसन्न मन सीटी बजाते हुए बाहर गये वलेरियान को देखकर वह कुछ शांत हुई: वही वलेरा है, सभी नौजवानों की तरह प्रसन्न, हँसमुख, शोख़; उस में न बड़ी संजीदगी, न सोच में डूबे रहने की आदत है, न कट्टरता, न संप्रदायवाद। यूलिया निकोलायेवना को लगता था, क्रांतिकारी की यही विशेषताएँ होती हैं। और वलेरा ... नहीं, वलेरा अभी बच्चा है। बाप उसे अपने वश में कर लेगा, जरूर!

दोपहर से कुछ पहले वलेरा और आलिमताय दौड़ते हुए आये। सड़कों पर पुलिस के दस्तों का भागना-दौड़ना, शहर में तलाशी, गिरफ़्तारियाँ उन के लिए कोई अप्रत्याशित बात नहीं थी। लेकिन ... लेकिन फिर भी दौड़ने से लाल हो गये उनके चेहरों पर उधेड़बुन और घबराहट की झलक अवश्य थी। आंगन को पार करते समय उन्होंने लापरवाह दिखाई देने की कोशिश की, सीढ़ियों पर, बरामदे में, हॉल में सब का बड़ी अदब के साथ अभिवादन किया, पर वलेरा के पढ़ने के कमरे में घबराकर, दौड़कर प्रविष्ट हुए। अन्दर पहुँचकर नंगी आलमारी के सामने रुक गये। एक-दूसरे को उन्होंने घूर-घूरकर देखा। वलेरा दौड़कर नौकरों के कमरे में गया और पूछ लिया:

"आज हमारे यहाँ कोई आया था?"

"नहीं।"

"जी नहीं, कोई भी नहीं।"

वलेरा अपने कमरे में वापस लौट आया और आलिमताय के कंधे पर हाथ रखकर खिड़की की ओर चिन्तित दृष्टि से देखते हुए बोला:

"अब्बाजान!"

"व्लादीमीर याकोवलेविच! तुम्हें कहाँ से मालूम?"

"गैरिज़न। बैरकों में धागे से बँधे परचों के पुलिन्दे उनके हाथ पड़ गये हैं।"

"तो व्लादीमीर याकोवलेविच ..."

"चुप। अभी कुछ मालूम नहीं। लेकिन निशान छुपाया गया, बस यही स्पष्ट है।" वलेरा ने नंगी आलमारी की ओर संकेत करके कहा।

जब वे बाहर निकल रहे थे, मेहमानख़ाने की दहलीज़ पर व्लादीमीर याकोवलेविच से उनकी मुलाक़ात हो गयी।

"नमस्ते, नौजवानो!" वह बड़ी चुस्ती से बोले। उन्होंने आलिमताय की ओर देखा, मगर उनकी आँखों के सामने अपना बेटा था: काले बालोंवाला, थोड़ा लम्बोतरे चेहरेवाला, चौड़ी पेशानी व मज़बूत ठोड़ीवाला वलेरा। बड़े साहस और निर्भीकता से वह बाप की ओर देखते खड़ा था। सुनहरी पट्टियों और बटनोंवाली फ़ौजी वर्दी उनके सुडौल शरीर पर ख़ूब फ़ब रही थी।

"नमस्ते, व्लादीमीर याकोवलेविच!" आलिमताय ने अपने को साहसी दिखाते हुए जवाब दिया।

बोलने को बहुत कुछ था। व्लादीमीर याकोवलेविच ज़ारशाही अफ़सर, उनके बादशाह विरोधी षड्यंत्र का समर्थन करनेवाले नहीं थे, उल्टे ही वे बहुत नाराज़ थे। लेकिन वे उनका जीवन बरबाद नहीं करना चाहते थे। इसी कारण उनकी ग़लती ठीक कर दी थी।

मतलब यह कि कहने को बहुत कुछ था। मगर व्लादीमीर याकोवलेविच यह सब बताने की जगह दो-एक मज़ाक़ की बात कहकर चले गये। युवकों ने भी कुछ नहीं कहा। दोनों पक्ष सब कुछ समझ रहे थे मगर असली बात नहीं कर रहे थे। वह उनका राज़ भर बनकर रह गया था। और इस राज़ ने उन्हें एक-दूसरे का सहयोगी बना दिया।

पुलिस को शायद निराशा ही हाथ लगी थी। शहर में तलाशियाँ, गिरफ़्तारियाँ बन्द हो गयीं, अपने बच्चों के लिए माँ-बाप की आशंका भी कम होती गयी। वलेरा के क़मरे में पहले की तरह बहसें होती रहतीं।

एक दिन वलेरा यह कहकर आलिमताय को लाया कि "अब मैं तुझे एक अजीब पुस्तक दिखाता हूँ।"

"ग्राफ़ एल॰ एन॰ टोलस्टोय।" "निकोलाय लाठी," आलिमताय ने पीली पड़ गई पुरानी पुस्तक का नाम पढ़ा। "निकोलाय? कौन निकोलाय?"

"वही !" वलेरा ने उँगली छत पर टिकाकर कहा।

"अब का ?"

"नहीं, पहलेवाला। लेकिन सब एक खेत की मूली तो हैं ही।"

"लाठी ? !" आलिमताय व्यंग्यपूर्वक हँस दिया। "हाँ" एक ही चीज़, – लाठी ! कमाल !" आलिमताय ने फिर कहकहा लगाकर हँसना शुरू कर दिया। "लाठी ! वाह, शरारती ग्राफ़!"

"लाओ मुझे नहीं तो फाड़ दोगे," वलेरा ने पुस्तक लेते हुए कहा, "यह मुझे बहुत महँगी पड़ी है।"

"कितने में ख़रीदी ?"

"पागल, यह भी कोई बेची जानेवाली चीज़ है क्या ; सैनिक स्कूल की छठी क्लास में मुझे बारह नम्बर* से पदार्पण होना ज़रूरी था। जब मेरे तोशक में यह पायी गयी तो सात नम्बर कर दिया गया। अब समझा, क्या मूल्य है ?"

"तो दोबारा कैसे मिली तुमको ?"

"हेड मास्टर के कमरे से चुरा ली। आकर चिल्लाने लगा : 'तुम कौन हो जो पूछे बिना ले गये !' तो मैं ने कहा "आप ने जैसे मुझ से ली थी, वैसे ही मैं ने भी ले ली, हम बराबर हैं'।"

"तो तब से बराबर हैं ?"

"हाँ, अब तक ठीक हैं।" आलिमताय चाहे पुस्तक के पृष्ठ पलट रहा हो, कॉफ़ी पी रहा हो या वलेरा का प्यानो बजा रहा हो, वह सदा अपने दोस्त के बारे में सोचता रहता था।

"सुनो, वलेरा ! अगर तुम्हारा सहारा – द्वोर्यान (रूसियों का सब से कुलीन वर्ग) बाप न होता, क्या तब भी तुम यही काम करते या डर गये होते ? सच-सच बताओ !"

"और तुम ? तुम्हारा बाप तो द्वोर्यान नहीं है।"

"मैंने क्या किया ? मैं तो बस तुम्हारे पीछे-पीछे लगा रहता हूँ।"

"तो तुम मुझ से भी अधिक निर्भीक हो।"

"मैं अनपढ़ हूँ। कुछ समझता नहीं . . ." आलिमताय ने कहा।

"क्या नहीं समझता ?"

---

* ज़ार के ज़माने में शिक्षा-प्रणालय आज के से भिन्न था।

"उदाहरण के लिए, तुम्हीं को। कल के ख़तरनाक काम से तुम्हें कुछ हासिल तो हुआ नहीं। पर तुम्हें वैसा करके बड़ी ख़ुशी है। तुम्हारे साथ-साथ मुझे भी। क्यों? अगर पकड़े जाते, तब क्या होता? तुम ने अपने जीवन की बाजी क्यों लगा दी है? देखा, कितने सवाल है?"

"क्या तुम सोचते हो मेरे लिए सब कुछ स्पष्ट है? नहीं। पर मैं जानता हूँ। यदि ऐसा कोई काम नहीं होता जिस से तुम्हें अपनी जान से अधिक मुहब्बत है, अगर अपने से, अपने जीवन, अपनी ख़ुशी, परेशानियों से अधिक ऊँचा कोई उद्देश्य न हो तो जीना व्यर्थ है। ऐसे ध्येय के लिए लड़ते हुए हार जाने से भी दृढ़ता बढ़ती है, बस..."

ऐसी बातचीत बराबर होती रहती, साथ-साथ माँ-बाप के मन में चिन्ता भी बढ़ रही थी। लेकिन वे इस बात से प्रसन्न थे कि उन का बेटा घर से कम निकलने लगा था। जल्दी ही छुट्टियाँ ख़तम हो जाएँगी, ओम्स्क चला जाएगा, पढ़ने-लिखने में लग कर सब भूल जायेगा।

पर एक दिन वलेरा ने फिर अपने बाप से गैरिज़न के अफ़सरों के पुस्तकालय में जाने के लिए अपने व आलिमताय के वास्ते प्रवेश-पत्र माँगा।

"पुस्तकालय बन्द है," व्लादीमीर याकोवलेविच झूठ बोले। यों तो यह उतना झूठ भी नहीं था, हाल की घटनाओं के बाद सेंसर करनेवालों को पुस्तकों की फिर से सूची बनानी थी। लेकिन हाँ, पुस्तकालय ज़रूर खुला था।

"तो क्या यह पुस्तक सोरोकिन को दे सकेंगे, अब्बा जान?" वलेरा ने एक पुस्तक बढ़ाते हुए प्रार्थना की।

"सोरोकिन?"

"हाँ, सब-लेफ़्टिनेंट सोरोकिन को।"

"यह क्या है?"

"इंजील" है। वह "इंजील" के विविध संस्करण इकट्ठा करता है। मुझ से मांगी थी। मैं ओम्स्क से लाया हूँ बड़ी निराली प्रति है।"

पुस्तक वास्तव में "इंजील" थी।

"अच्छा," व्लादीमीर याकोवलेविच ने कहा। कहने को तो "अच्छा" कह दिया पर उन्हें इस की "निराली प्रति" होने में संदेह था। रात को उन्होंने अपने इस संदेह के बारे में पत्नी को बताया तो फिर झिड़की सुनी।

"वोलोद्या, तुम ने अभी तक उस से बातचीत नहीं की। कहा था कि "उसे इस मार्ग से लौटाऊँगा," पर कोशिश तक नहीं की। बचाओ उसे वोलोद्या, नहीं तो आजीवन पछताते रहेंगे..."

"बचाओ कहना आसान है," व्लादीमीर याकोवलेविच कबंल के भीतर बड़बड़ाये। "काश वह अकेला होता। मेरे विचार से वे सैकड़ों हैं या हज़ारों..."

जब बेटे की छुट्टियाँ ख़त्म हुई और वह ओम्स्क चला गया, तभी रात भर उन का जागना कुछ कम हुआ। माँ-बाप आपे में आने लगे थे कि गैरिज़न में वलेरियान से संबंध कामों का पता चला। सोरोकिन की रेजिमेंट में हलचल को छिपाने के लिए व्लादीमीर याकोवलेविच को सब-लेफ़्टिनेंट को अपने संरक्षण में लेना पड़ा। फिर किसी तरह उससे इस्तीफ़ा दिलाकर झंझरों से पीछा छुड़ाया।

वलेरा के कारण बाप की चिंताएँ काफ़ी बढ़ गयी थीं। व्लादीमीर याकोवलेविच इस बात पर नाराज़ थे कि ज़ार का अफ़सर होकर वह अपनी मर्ज़ी के बिना बादशाह के विरुद्ध संघर्ष में हाथ बटा रहे थे, बात गहरी होती जा रही थी और उन्हें दुमँही कार्रवाई करनी पड़ती थी। अपने बाप की गुस्से भरी चिट्ठियाँ पाते रहने के बाद, एक दिन अचानक वलेरा सुनहरे बालोंवाली एक लड़की के साथ आ पहुँचा।

"लीजिये, अब्बाजान, यह मेरी पत्नी है।"

"कतेरीना," लड़की ने घुटने के बल झुक कर अभिवादन किया।

"हाई स्कूल में पढ़ती है। हम ने शादी करने का फैसला किया है" वलेरा बराबर बोलता गया। "आप कोई झोंपड़ा बनवा देंगे तो हम सूअरों का पालन करेंगे, खेतमजदूर रखेंगे, मुर्गे-मुर्गियों का पालन करेंगे..."

इन अनपेक्षित अनाप-शनाप की बातों से व्लादीमीर याकोवलेविच दंग रह गए। बोलने को कुछ उन्हें सूझा ही नहीं। सिर हिलाकर बस "हाँ-हाँ," "अच्छा-अच्छा" कहते हुए और अपने कानों पर विश्वास न करते हुए बाहर निकल गए। फिर पत्नी को सारी बातें सुनाईं। यूलिया निकोलायेवना ने इन योजनाओं का समर्थन किया। "ख़ुदा का शुक्र है, बेटे को विवेक आया, ठीक हो गया," कहकर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करती गई। पर पति ने "बस करो! कब तक बकती रहोगी!" कहकर मेज़

पर हाथ पटका। वह पहली बार यूलिया निकोलायेवना से ऐसे भद्दे ढंग से बोले थे। ख़ुद भी परेशान हुए। क्या सचमुच उनका बेटा ऐसा है? पहले का वलेरा कहाँ और यह कहाँ! क्या उन की चिट्ठियों का ऐसा प्रभाव पड़ा। बस ऐसे बेटे के जन्म होने से न होना ठीक होता। उसी के लिए वह अपनी जान ख़तरे में डालकर परेशानियाँ सहता रहता क्या? नहीं, ज़रूर कोई राज़ है! वलेरियान इतना बदल नहीं सकता। पर कहीं इस लड़की का... प्रभाव तो नहीं पड़ा? उस हाई स्कूलवाली का...

व्लादीमीर याकोवलेविच रात भर अपने कमरे में चहलक़दमी करते रहे। उन्हें कोई ऐसा विचार न सूझा जो मन की परेशानियाँ दूर कर सके। भिनसरे जब सिर बहुत भारी हो गया और वह निढाल होकर आराम कुर्सी पर बैठ गये, अचानक द्वार कुछ खुला।

"व्लादीमीर याकोवलेविच..." आँखें उठा कर देखा तो वही हाई स्कूलवाली लड़की खड़ी थी। पैरों में चप्पल, वह वैसी नहीं लग रही थी जैसी परिचय के समय लगी थी। "उम्र में वलेरियान से बड़ी होगी," बाप ने मन ही मन सोचा।

"देख रही हूँ, आप रात भर सोये नहीं हैं," लड़की बोली। "वलेरियान की कल की बात के कारण शायद नहीं सो पा रहे हैं। मैंने जैसा सोचा था, आप वैसे ही हैं। वस्तुत: उस वलेरियान को खोना बड़ी मुसीबत होती जिसे हम-आप जानते हैं।"

"मैं समझा नहीं। आप को क्या चाहिये?"

"उस ने मुझे आप की चिट्ठियाँ दिखाईं, व्लादीमीर याकोवलेविच। मैं उस की साथी हूँ। आप को मालूम है, वलेरियान कौन है?"

व्लादीमीर याकोवलेविच उठ खड़े हुए। कुछ समझ में नहीं आ रहा था, प्रसन्न हों या ख़फ़ा। लेकिन यह जानकर कुछ हर्ष अवश्य हुआ कि कल की बात उन्हें परखने के लिए कही गयी थी।

"वह—क्रांतिकारी है, व्लादीमीर याकोवलेविच। लीजिये, यह पढ़िये," "बहू" ने किसी अख़बार का एक छोटा-सा टुकड़ा उनकी ओर बढ़ा दिया।

अख़बार में लिखा गया था कि क्रांति आश्चर्यजनक तेज़ी से आगे बढ़ रही है। उस में कहा गया था, "नौजवानों का सहारा लो!" फिर

मिसाल के तौर पर लिखा गया था कि ओम्स्क के पास के जंगल में रेलवे मज़दूरों की एक सभा में एक नौजवान ने "खूनी इतवार" के बारे में मर्मस्पर्शी भाषण दिया।

"वही नौजवान हमारा वलेरियान है!" हाई स्कूलवाली लड़की ने बताया।

"यह कौन-सा अख़बार है?"

"यह हमारा भूमिगत अख़बार है।"

"हमारे" से मतलब?"

"रूसी सोशल डेमोक्रेट। आप ने यह नहीं पूछा, वलेरियान के बारे में यह बात किस ने लिखी?"

"क्या यह भी महत्व की बात है?"

"ज़रूर! इसे लेनिन ने लिखा है!"

व्लादीमीर याकोवलेविच के हड़बड़ाकर उठने से मेज़ की मोमबत्ती बुझते-बुझते बची। रात बहुत शांत थी, घर में सन्नाटा छाया था।

"लेनिन?" व्लादीमीर याकोवलेविच ने धीमी आवाज़ से पूछा मानों ज़रा ज़ोर देने से यह शब्द बम की तरह विस्फोट हो जाएगा।

"हाँ।"

"लेनिन महान आदमी हैं। मैं ज़ार का अधिकारी हूँ, क्रांति से दूर... मगर लेनिन का आदर करता हूँ।"

"क्या आप इस बात से संतुष्ट हैं कि इसी महान आदमी ने आप के बेटे की चर्चा की है?"

"यह वलेरियान का अपना भाग्य है। बड़ा भाग्य... क्या आप सच में उस की होनेवाली पत्नी हैं?"

"नहीं, व्लादीमीर याकोवलेविच," लड़की शरमायी तक नहीं।

"वलेरियान को पेतेरबुर्ग जाना है।"

"कब?"

"कल।"

"येकातेरीना!" वह लड़की की ओर बढ़ आये। उस के कंधों पर हाथ रखकर आँखों में देखा। मोमबत्ती के प्रकाश में यह अज्ञेय साहसी लड़की उन्हें अपनी बेटी की तरह लगी।

"आप के पिता का क्या नाम है?"

"अनीसिमोव ।"

"येकातेरीना अनीसिमोवना, यह उस के लिए बहुत ख़तरनाक नहीं है ?"

"वह सैनिक चिकित्सा अकादमी में भरती किया गया है। पढ़ने जा रहा है, व्लादीमीर याकोवलेविच।"

"पढ़ने ... अब पेतेरबुर्ग में क्या है, वह मुझे मालूम है। क्या आप मुझ से इसी के लिए इजाज़त पाने आयी हैं ?"

हाई स्कूलवाली ने "हाँ" में सिर झुकाया और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना चली गई।

अगले दिन व्लादीमीर याकोवलेविच दम्पत्ति सज-सँवरकर बेटी के कमरे में आ पहुँचे। वलेरियान कतेरीना के साथ बातचीत करते बैठा था। वह उठ खड़ा हुआ। उसने "कल के तमाशे के लिए" माफ़ी मांगी। व्लादीमीर याकोवलेविच ने पहले से भी साहसी हो गए बेटे को यूँ सीने से लगाया, मानो कल आये बेटे से अभी-अभी मिले हों।]

"वलेरियान, तुम चाहे जैसा भी रास्ता चुनो, तुम हमारे बेटे हो, हम तुम्हें प्यार करते हैं," व्लादीमीर याकोवलेविच ने कहा। यूलिया निकोलायेवना फूट-फूट कर रो पड़ी।

मगर बेटे ने जब गले मिलकर उन्हें तसल्ली दी, तब वह कुछ शांत हुई। ऐसा लगा मानो अचानक वोलोद्या उन की आँखों में महान, सुप्रतिष्ठित आदमी बन गया था।

"सोरोकिन की रेजिमेंटों को क्या करूँ, वलेरियान ?" गंभीर स्वर में पिता ने पूछा। वलेरा बहुत प्रसन्न था। "रेजिमेंटें," अब एक नहीं, बहुत हैं ..."

"आप की आत्मा जो कहे, वही करिये, अब्बाजान," वलेरियान ने उत्तर में कहा।

यह दिन उन के परिवार में "सगाई का दिन" कहा जाने लगा। उसी दिन वलेरियान "सुनहरे बालोंवाली लड़की" के साथ पेतेरबुर्ग के लिये रवाना हो गया। आलिमताय उन्हें ओम्स्क तक पहुँचाने गया। रास्ते में दोनों बस माता-पिता के बारे में ही बातें करते रहे। वलेरियान ने हँसते-हँसते बताया कि उस के माँ-बाप ने कैसे चादर में पत्थर रखकर उसे क़िलचिक़सोय नदी में डाल दिया।

आलिमताय को तभी याद आया। कैसे उसी दिन सुबह ही सुबह गनी-

ला और एलेक्बाय घबराकर आये थे पर रेलगाड़ी में उस ने इस के बारे में उनसे कुछ नहीं कहा।

"अच्छी चादर थी," वलेरा ने मज़ाक़ में कहा।

"मेरे पास उस के कुछ झालर हैं," आलिमताय ने कहा, "परचों के एक पुलिन्दे के साथ यादगार के रूप में रख छोड़ा है।"

"यादगार, पागल हो क्या! उसे तुरंत जला देना। अब प्रतिक्रियावाद बावला हो उठेगा," वलेरियान ने उसे समझाया।

ओम्स्क में विदा लेते समय भी उसने आलिमताय से यही बात कही।

हुआ भी ऐसा ही। थोड़े दिनों बाद ही गिरिफ़्तारियों और तलाशियों का दौर शुरू हो गया। पुरानी बातों, पहले की संदेहजनक बातों और इस सन्दर्भ में "चादर के झालर" की समस्या को फिर से देखा जाने लगा।

अन्य घरों की तरह व्लादीमीर याकोवलेविच के यहाँ भी तलाशी ली गई। उस का "आदर करके" उस के घर की तलाशी ख़ुद रोतमिस्टर के नेतृत्व में ली गयी। पिछले कुछ महीनों में पुलिस के निदेशक को बहुत से अतिरिक्त अधिकार मिल चुके थे, फिर भी उस ने अपने मीठे शब्द नहीं छोड़े थे: अब उसके यही शब्द व्यंग्य से चुभते थे।

"यों ही दूसरों के साथ आप के घर की भी, बस औपचारिक रूप से, प्यारे व्लादीमीर याकोवलेविच," कहकर उस ने सभी कमरों को उलट-पलट कर रख दिया। उसे कुछ भी नहीं मिला – दो दिन पहले आलिमताय ने आकर यहाँ सब कुछ ठीक कर दिया था।

आलिमताय सब चीज़ों से ख़बरदार था, विशेषकर ओम्स्क से लौटने के बाद उसे पुलिस का रोज़ का कार्यक्रम पहले से मालूम होने लगा। उसे यह भी मालूम था कि परदे के झालर के धागों को ढूंढ़ कर रोतमिस्टर बादशाह का इनाम पाने के फेर में है। वह जानता था, व्लादीमीर याकोवलेविच के परिवार पर कोई धब्बा नहीं पड़ने देना चाहिए क्योंकि यह वलेरियान का परिवार है और वलेरियान केन्द्र से संबद्ध है। यही सब सोचकर आलिमताय सब से पहले अपने पड़ोसी गव्रीला अफ़ानास्येविच और अपने ससुर पर नज़र रखने लगा। यह लोग हमेशा एक-दूसरे को और व्लादीमिर याकोवलेविच जैसे नगरवासियों को गढ़े में धकेल देने का मौक़ा ढूंढ़ते रहते थे।

और वस्तुत: आलिमताय ने जो सोचा था, सो हुआ।

गब्रीला और एलेकबाय तंबू में किमिज़ पीते कई रात तक सलाह-मश-विरा करने के बाद एक दिन पुलिस के दफ़्तर में गये। उन्होंने ठाट के कपड़े पहन लिये थे मानो कहीं दावत पर जा रहे हों। गब्रीला ने ऊद-बिलाव के गरेबानवाला ओवरकोट और लोमड़ी की खाल से बनी टोपी पहनी थी।

"हम क्या कहेंगे, कुछ नमक-मिर्च भी मिलाएँगे या नहीं, बख़्शीश में क्या माँगेंगे, किस दरवाज़े से अन्दर जायेंगे," इस पर विचार करते-करते वे काफ़ी देर तक पुलिस दफ़्तर के गिर्द टहलते रहे। फिर अटकल-पच्चू से अन्दर घुस गये।

दहलीज़ पर टोपी उतारकर, सिर झुकाते हुए गब्रीला अफ़ानास्येविच ने: "जनता की सुख शांति के रक्षक जनाब रोतमिस्टर को हमारा हा-र्दिक अभिवादन और दुआएँ," कहकर सलाम किया। उस के उलझे बा-लों के बीच से चमकता उस का सिर देखकर रोतमिस्टर को वितृष्णा-सा हुई और उस ने नाक-भौंह सिकोड़ लिये। इतने में उसकी दृष्टि पास खड़े एलेकबाय पर पड़ी जो अपनी छोटी दाढ़ी पर हाथ फेरते, मुस्कुराते खड़ा था।

"वाह! तुम तो एलेकबाय हो न?" रोतमिस्टर ने प्रसन्न होकर कहा। "मैं किसी को भेजकर तुम्हें बुलानेवाला ही था कि तुम ख़ुद ही आ गए।" उसने मेज़ की घंटी बजायी, दो पुलिसवाले आ गये, रोत-मिस्टर ने उन्हें संकेत दिया। पुलिसवालों ने मुँह खोलकर अवाक् खड़े एले-कबाय को हथकड़ियाँ डाल दीं।

"मैं... हम... साहब..."

"उज़्बेक अध्यापक तेरा दामाद है, न?" रोतमिस्टर ने पूछा।

"जी हाँ, जी हाँ!"

"हमारे यहाँ आकर उस ने ख़ुद अपना क़ुसूर क़बूल किया है। लो!" थानेदार ने परदे के झालर के सुनहरे धागों से बंधे परचों का एक पुलि-न्दा दोनों हाथों से यों उठाया मानो सोना हो। "कहता है, सब ख़ुद किया। पर वह अकेला नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए तुम ने उसे बुख़ारा से लाकर अपने घर में छुपाया। यह भी तुम लोगों ने अपने तंबू के दीवार के अन्दर में छुपाया," रोतमिस्टर ने परचों का पुलिन्दा फिर

दिखाते हुए कहा। वह ख़ुशी से फूला नहीं समा रहा था। उस की कोशिशें व्यर्थ नहीं रहीं।

"ले जाओ इसे," उस ने आदेश दिया ।

एलेकबाय ने इधर-उधर नज़रें दौड़ाईं, मगर दोनों ओर सिर्फ़ दो पुलिसवालों को ही देखा। उस का पड़ोसी गब्रीला कब का ग़ायब हो चुका था। वह कब भाग गया, यह किसी ने नहीं देखा था।

आचिल बाबा और अज़ीमजान जब समरक़न्द पहुँचे, सूरज आकाश की चोटी पर पहुँच चुका था। आसमानी रंग के मीनारों के साये छोटे-से हो गये थे। सो, शहर की सैर किये बिना वे हवाई अड्डे से सीधे बस डिपो आकर शादासाय जानेवाली बस के बारे में पूछ-ताछ करने लगे।

पहाड़ों की ढलान पर स्थित यह छोटा-सा शहर जिस में खानें थीं, यहाँ से कितना किलोमीटर दूर है, यह कोई नहीं बता पाया। मगर इतना ज़रूर मालूम हो गया कि बस आज ही वहाँ तक पहुँच जाएगी। मेहमानों ने बड़ी जल्दबाज़ी से खाना खाया, चाय पी, और समरक़न्द का एक-एक ख़ास चमकदार नान साथ लेकर टिकट-घर में जाकर लाइन में खड़े हो गये।

बस में भीड़ नहीं थी, सीटें नमदी थीं। खिड़कियों से पहाड़ी नदियाँ, पुल, सामूहिक फ़ार्मों के नाम लिखे मेहराब दरवाज़े, पायोनीयर कैंप, रेवड़ें, लाल मिट्टीवाले टीले दिखाई देते।

"नाना जी, तो क्या मामा आलिमताय उस के बाद जेल में ही मर गए?"

"नहीं, पर तब उस के जीवन के दस-पन्द्रह साल कारावास – जलावतन में गुज़रे। बस क्रांति के बाद ख़ोराज़्म और चारजुय के बीच में जहाज़ चलाते रहने से आलिमताय कप्तान नाम से मशहूर हो गया। जब कामीला एक साल की थी तब ख़ोराज़्म* से पढ़ने जानेवाले कोई बीस नौजवानों के साथ उसे भी बस्माचियों ने मार डाला।

अज़ीमजान का दिल कुछ इस तरह दुखी हुआ मानो यह घटना अभी घटी हो। वह काफ़ी समय तक मौन रहा।

---

* ख़ोराज़्म – उज़्बेकिस्तान में एक प्रांत।

"और उस का दोस्त वलेरियान, वह क्या, ज़िन्दा है?"

"नहीं। तुम ने शायद कूयबिशेव का नाम सुना होगा?"

"जी हाँ," अज़ीमजान बोला, "युद्ध काल में रेडियो पर इस शहर का नाम बहुत आता था। शायद, कुछ समय तक मास्को की जगह राजधानी भी बना था।"

"हाँ, शाबाश। वोल्गा के किनारे है। यह शहर उसी वलेरियान के नाम पर रखा गया है। वलेरियान कूयबिशेव। लेनिन का साथी, सहकर्मी।"

अज़ीमजान ने खिड़की से बाहर झांका मानो सूरज को, विराट प्रदेश को देखने के लिए जल्दबाज़ी कर रहा हो।

बस पहाड़ी वादी में प्रवेश कर रही थी। गेहूँ काटने के बाद पीली रह गयी पहाड़ियाँ समाप्त हुईं और दूर से काले लगनेवाले आलीशान पहाड़ क़रीब महसूस होने लगे। पहाड़ों की चोटियों के ऊपर काले बादल छाये थे। सामने की पक्की सड़क टेढ़ी-मेढ़ी थी और पहाड़ के गड्ढों में जहाँ-तहाँ ग़ायब हो रही थी।

"किस सोच में डूबे हो, बेटे?"

"रूस में हरेक चीज़ अन्ततः लेनिन से संबद्ध होती है, यही सोच रहा हूँ, नाना जी," अज़ीमजान ने कहा। "यहाँ तक कि हमारा ख़ानदान भी।"

"लेनिन तो हमारे सौभाग्य हैं।"

अज़ीमजान ने कनखियों से नाना जी को देखा। खिड़की के सामने अस्त होते सूर्य की लाली में आविल बाबा का लम्बी दाढ़ीवाला, चौड़ी पेशानीवाला बूढ़ा चेहरा एक पुरानी मूर्ति-सा लग रहा था। "अगर नाना जी की मूर्ति बनायी जाये तो वह जाबाय की मूर्ति से भी अधिक शानदार होगी," अज़ीमजान ने सोचा।

पहाड़ों पर सर्दियाँ जल्दी आती हैं। यहाँ ख़िज़ाँ का मौसम आ चुका था। प्रकृति कुम्हला उठी थी। पहाड़ों की ढलानवाले चारागाह बारिश से काले पड़ गये थे और बीच-बीच में सरिताएँ सफ़ेद लकीरों जैसी लग रही थीं। कहीं-कहीं झाड़ियों पर थोड़े लाल-पीले हो गये पत्ते रह गये थे, वे भी हिलते और गिरते-गिरते बच रहे थे। बादल के उस ओर पहुँचे लाल सूर्य की दग्धता भी समाप्त हो रही थी।

"नाना जी, क्या कभी आप की आँखों के सामने मृत्यु आयी?" अज़ीमजान ने पूछा।

"हाँ।"

"डर नहीं लगा?"

"लगा क्यों नहीं! कभी-कभी बड़ा डर लगता है। जब मैं तेरी उम्र का था तब कभी-कभी इतना घबरा जाता था कि कुछ न पूछो। ज़िन्दगी का सच्चा सुख तभी मिलता है जब इस घबराहट पर विजय पायी जाये।"

"वह कैसे?"

बाबा ने अपनी लम्बी उम्र, अपने असंख्य रिश्तेदारों, अपने परिवार के बारे में सोचा।

"यदि बुढ़ापा एकदम अचानक आ पहुँचा तो इसे झेलना बड़ा कठिन होता, बेटे," वे गंभीरता से बोले। "ख़ुदा का शुक्र है जो यह बड़ी सावधानी से, धीरे-धीरे आता है। इस मेहरबानी के लिए हम उसके आभारी हैं। बुढ़ापा आ जाने तक मैंने बहुत कुछ सोचा-समझा। मृत्यु के बारे में भी सोचा, उसे भी समझा।"

"मृत्यु को भी?"

"हाँ। बात यह है कि मृत्यु की दहलीज़ पर आदमी की आत्मा अधिक सतर्क रहती है, नश्तर की तरह तेज़ हो जाती है। आत्मा की आवाज़ सारी दुनिया की आवाज़ से एकाकार हो जाती है।"

"किस प्रकार?" माथे पर बल डालकर अज़ीमजान ने पूछा।

"जब मैं तेरी उम्र का था, मृत्यु मुझ से दूर थी लेकिन मुझे उसका भय सताता रहता था। जब वृद्ध लोग कहते, कोई भी इस दुनिया में हमेशा नहीं रहेगा, तो मैं उनके आत्मसंवरण से घबरा उठता, काँपने लगता था: क्यों? क्या सब मर जाएँगे, मैं भी... मैं मर जाऊँगा और मेरे बिना फिर बहार आएगी, मेरे बिना बाग़ फूलेंगे! मैं मर जाऊँगा और मेरे बिना ये चारागाह, ये फूल ख़ुशबू फैलाते, हवा के झोंकों में झूलते हमेशा ऐसे ही फलते-फूलते रहेंगे! यह पहाड़ वैसे ही सदा आलीशान होकर खड़े रहेंगे! प्रभात होते रहेंगे, नदियाँ खनखनाती रहेंगी, लड़कियाँ ठहाके लगाकर हँसती रहेंगी—मेरे बिना, मेरे बिना! सब कुछ मेरे बिना! यह कैसा अन्याय है। कभी-कभी शैतान की बातों में आकर

सोचता, काश कोई ऐसी ग्राफ़त ग्राती कि मेरे बिना इस दुनिया में कुछ भी न रह जाये, तब शायद मौत इतनी दुखद नहीं रहती।"

"मरने के बाद कुछ नहीं रहेगा..." ग्रज़ीमजान ने खिड़की में देखते हुए कहा। "न जायदाद, न प्रकृति, न लोग, कुछ नहीं, कुछ भी नहीं... सोचना भी नहीं चाहिए, हँसना भी, जानना भी... ग्रतीत, भविष्य—सब कुछ ग्रर्थहीन हो जाएगा।"

"नहीं, बेटे, कुछ भी ग्रर्थहीन नहीं होगा। साल-दर-साल मेरे दिल का वह तहलका दूर होता गया। ग्राज मैं मौत के ग्रधिक क़रीब हूँ बल्कि मैं उसकी दहलीज़ पर खड़ा हूँ फिर भी मुझे मृत्यु से डर नहीं। जानते हो क्यों?"

"क्यों?"

"इस लिए कि ग्रब मैं एक खोखले घड़े जैसी कोई चीज़ हूँ। मुझ में जो भलाई थी, जो शक्ति थी, मेरी श्रेष्ठताएँ, मेरे विचार, मेरा प्यार मुहब्बत—सब कुछ ग्रास-पास के लोगों में चला गया है। मेरा सारा जीवन, बच्चों, पोतों-पड़पोतों के जीवन में घुल-मिल गया है, मेरे किये कामों में घुल-मिल गया है। मैं ग्रपने बच्चों में, कामों में पूर्णतः समा गया हूँ। मगर मैं ग्रभी भी दृढ़ता से नहीं कह सकता हूँ कि मेरा कोई ग्ररमान नहीं है।"

"बेग्ररमान ग्रादमी..."

"बुढ़ापे में ग्रादमी ज्यादातर संस्मरणों में जीता है। भविष्य नहीं होता ग्रौर यदि संस्मरण वृथा हो, यदि ग्रतीत की याद करने पर शर्म ग्राती हो तो यह बहुत बुरी बात है, बेटे, यह बुढ़ापा नहीं बल्कि काला ग्रंधेरा ही है! मेरे संस्मरण बहुत रोशन हैं लेकिन ग्रभी मैं पूर्णतया बेग्ररमान ग्रादमी नहीं हूँ। ग्रभी मेरे दिल में थोड़ी सम्पत्ति बाक़ी है जो बच्चों को सौंपनी है। वे बहुत हैं, मैं ग्रकेला! एक नज़दीक है, दूसरा दूर। एक के पाँच-दस बच्चे हैं, दूसरे को एक भी नहीं। ग्रकबरग्रली को लें, तेरी मौसी का बेटा है। उसे देखे सात साल हुए होंगे... बाप के बिना बड़ा हुग्रा।"

जब ग्राचिल बाबा सात साल पहले यहाँ ग्राये थे तब यहाँ घाटी के किनारे पुराने गाँव के नज़दीक कई लम्बे-लम्बे बैरक ही थे। ग्रब एक ग्रच्छा-खासा शहर बस गया था। पक्की ईंट की बनीं दो-तीन मंज़िली

सफ़ेद इमारतें दूर से दिखाई दे रही थीं। ये इमारतें ढलवान पहाड़ों को काटकर न जाने कहाँ जानेवाली चौड़ी-चौड़ी पक्की सड़कों के किनारे पर खड़ी थीं, छत पर टेलीविज़नों के एरियल . . .

जब मेहमान वहाँ पहुँचे, अंधेरा हो चुका था। सड़कों पर क्षीण प्रकाशवाले बल्ब जल रहे थे।

बस घूम-फिरकर शहर के एक अज्ञात स्थान पर आकर रुकी। मुसाफ़िर जल्दी ही तितर-बितर हो गये। आचिल बाबा कपड़े और टोपी से धूल झाड़, ख़ुरजी पीठ पर रख अक्बरअली की गली की ओर रवाना हो गये। मगर काफ़ी चलने के बाद मालूम हुआ, वे रास्ता भूल गये हैं।

"शहर बिलकुल बदल गया . . . पनबिजली-घर का मुहल्ला कहलाता था," कहकर आचिल बाबा ने अपनी सफ़ाई देने की कोशिश की।

सड़कों पर लोग कम थे। मज़दूरों का नगर जल्दी ही आराम की नीन्द लेने लगा था। एक आदमी को रोककर "पन-बिजलीघर का मुहल्ला" पूछा तो उस ने शहर के बिलकुल दूसरे कोने की ओर इशारा कर दिया। अज्ञात सड़कों पर चलकर, मैदानों को पार करके उन के वहाँ पहुँचने तक आधी रात हो आयी थी। खिड़कियों में प्रकाश नहीं था, कहीं-कहीं सड़क की बत्तियाँ झिलमिला रही थीं, कहीं कोई दिखाई नहीं दे रहा था।

आचिल बाबा अचानक तेज़ी से चलने लगे: समझ गए ज्ञात सड़क पर पहुँचे हैं।

"आँखें अभी तेज़ हैं, याद्दाश्त भी ठीक है," कहकर उन्होंने अपनी तारीफ़ की चुहल की। अपना सामान पीठ पर लादे अज़ीमजान बड़ी कठिनाई से उनके पीछे-पीछे चल रहा था।

अंततः आचिल बाबा अंधेरे में किसी नाली को छलाँग लगा कर पार करने के बाद दरवाज़ा खटखटाने लगे। "अच्छा, तो यही है," अज़ीमजान ने मन ही मन में प्रसन्न होकर सोचा, मकान के अग्रभाग पर प्लास्टर ख़ूब लगाया गया है, सड़क की ओर तीन बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ थीं, बारिश के पानी गिरने के लिए छत में लगी नालियाँ और दरवाज़ा लाल रंग में रंगे थे . . . अन्दर से कोई जवाब नहीं दे रहा था। आचिल बाबा और ज़ोर से दरवाज़ा खटखटाने लगे।

"घर तो यही है?"

"हाँ, यही। मैं बेगानों का दरवाज़ा खटखटानेवालों में से नहीं हूँ, बेटे।" फिर खटखटाया। "खनिक लोगों की नींद पक्की होती है।"

"होय, आप को कौन चाहिये?" सड़क पार पगडंडी पर से गुज़रनेवाले एक नौजवान ने पूछा। प्रेमिका को पहुँचाकर लौट रहा था शायद, बड़ी जल्दी-जल्दी चल रहा था।

"ग़ाज़ीयेव यहीं रहते हैं?" आचिल बाबा ने पूछा। अक्बरअली का कुलनाम ग़ाज़ीयेव था।

"नहीं, यह संग्रहालय है, संग्रहालय।" नौजवान ने रुके बिना कहा।

"संग्रहालय?!"

नौजवान जा चुका था। कैसा संग्रहालय? फिर दरवाज़ा खटखटाया। कोई आवाज़ नहीं आयी। वे अब कहाँ जायें, इसी उधेड़बुन में काफ़ी देर तक खड़े रहे। सड़क पर कोई नहीं था।

"देर हो चुकी है, रात का समय है, यही बात है," आचिल बाबा ने अपना थैला पीठ पर डालते हुए कहा। "देखो, यहाँ कोई होटल होगा, वहीं जाकर सो जाएँ, बहुत थक गया हूँ। कल सब ठीक-ठाक हो जायेगा।"

होटल जल्दी ही मिल गया: वे उस ओर गये जहाँ बहुत-सी बत्तियाँ जल रही थीं, बड़े चौराहे को पार किया तो पास ही एक सामान्य दो मंज़िले होटल की तख़्ती दिखाई दे गयी।

एक उनीन्दी शिष्ट मेहरबान बुढ़िया उन्हें एक बड़े से कमरे में ले गयी और यह भी बता गयी कि चाय बनाने के लिए उबला पानी कहाँ से ले सकते हैं। ख़ूब अच्छी सोने की जगह मिली। खिड़की से दूर की पहाड़ी नदी शादासाय की खनखनाहट सुनाई दे रही थी।

"ख़ूब," आचिल बाबा ने अपने-आप पर प्रसन्न होते हुए कहा, "ख़ुदा का शुक्र है, पहुँच गए हूँ। शांतचित्त हो आराम कर लें। अक्बरअली का मकान कल ढूँढ़ लेंगे, सब कुछ ठीक होगा।" उन्हों ने अपने बूट उतार डाले। फिर पलंग पर चढ़कर बैठ गये। अगर इस तरह बैठकर वह दाढ़ी पर हाथ न फेरते तो उन के जी को लगता, आराम ही नहीं किया।

"मगर यह बड़ी अजीब बात है। हम ने संग्रहालय का दरवाज़ा खटखटाया," उन्हों ने फिर कहा, "तो शहर बहुत बदल गया है।"

थके अजीमजान ने कंधे उचका दिये। हाथ-मुँह धोकर मेज़ पर एक बड़ा रूमाल बिछाकर उस ने नान तोड़कर रख दिये फिर खुरजी नज़दीक रखकर वह उस में कुछ ढूँढ़ने लगा। आचिल बाबा कुछ आराम करने के बाद धातु का चायदान उठाकर चाय बनाने चले गये।

एक द्वार पर लिखा था: "गर्म पानी का कमरा।" द्वार खोला तो अन्दर से वैसी ही गर्म हवा आ कर चेहरे से टकरायी जैसी हमाम में होती है। कोने में एक बड़ी-सी टंकी में पानी ज़ोर से उबल रहा था। आचिल बाबा ने खूब कड़वी चाय बनाकर जब पीछे देखा तो एक आदमी प्याला लेकर उस में उबला पानी डालनेवाला था।

"लाइये, चाय डाल दूँ," उन्होंने कहा।

"पानी भी चलेगा, मैं दवा लूँगा" उस आदमी ने कहा। आचिल बाबा ने उस के चेहरे की ओर नहीं देखा था। भाप में कुछ दिखायी भी नहीं दिया होता।

"फिर भी चाय बेहतर रहेगी, लाइये अपनी प्याली," उन्होंने प्याली में चाय भर दी, चाय की ख़ुशबू नाक में समा गयी।

"धन्यवाद," उस आदमी ने कहा।

आचिल बाबा चायदान उठाकर जब गलियारे में निकले तो उस आदमी की आवाज़ उन्हें परिचित-सी लगी, वे रुक गये। वह आदमी भी निकल आया। भरी प्याली पर नज़र गड़ाए वह पास से गुज़र गया। लेकिन कुछ दूर जाकर वह भी रुक गया। लेकिन पीछे मुड़कर उसने नहीं देखा। शायद बूढ़े के खड़े होने का उसे एहसास हो गया था।

"देखो, बेटे," आचिल बाबा ने उस की ओर बढ़ते हुए कहा।

वह आदमी भी मुड़ा। आचिल बाबा उस के सामने रुके। उन्होंने ध्यान से एक-दूसरे के चेहरे की ओर देखा। फिर देखते ही रह गये।

"तुम..." आचिल बाबा ने अपनी नज़र उस से उठाये बिना गर्म चायदान पास ही रख दिया। गलियारे के दूसरे सिरे की बत्ती उन के चेहरों को थोड़ा-थोड़ा आलोकित कर रही थी।

"नाना जी!" वह आदमी बुरी तरह चिल्ला उठा। प्याली उस के हाथ से गिरकर टूट गयी। वे गले मिले। यह अक्बरअली ही था। आचिल बाबा बड़ी कठिनाई से उसे पहचान पाये थे। बहुत समय गुज़रने के कारण नहीं। सात साल में आदमी इतना बदलता नहीं। तीस साल की

उम्र में इतना बूढ़ा भी नहीं हो जाता। ज़रूर, अक्बरअली के जीवन में कोई मुसीबत आई होगी। उस की बस हड्डियाँ ही रह गयी थीं। गाल की हड्डियाँ निकली हुई थीं। लम्बे बालों और दाढ़ी में सफ़ेदी, आँखों में चमक नहीं। वह बोल नहीं पा रहा था, आँखों के नीचे स्याह फुलाव हिल उठे और वह रो पड़ा।

"क्या बीमार हो, बेटे?"

आस्तीन से चेहरा पोंछकर अक्बरअली ने सिर हिलाया:

"नहीं।"

"क्या जेल में थे?" आचिल बाबा ने आँखें गड़ाकर देखते हुए फिर पूछा।

अक्बरअली ने सिर हिलाया:

"नहीं।"

"यहाँ क्या कर रहे हो? होटल में..."

अक्बरअली ने अपनी गहरी धँसी हुई आँखें नाना पर गड़ायीं:

"अभी आप को कुछ भी मालूम नहीं... सब कुछ बताऊँगा। आप को सब कुछ बताऊँगा, नाना जी..."

"बात लम्बी है?"

"लम्बी।"

"हम तुझे ढूँढ़ रहे थे... अज़ीमजान भी यहीं है।"

अक्बरअली समझा नहीं: "क्यों ढूँढ़ रहे हैं? अज़ीमजान कौन है?"

"अज़ीमजान तेरा मौसेरा भाई है। विदेश से... तुझे देखने आया है।"

अक्बरअली की समझ में कुछ भी नहीं आया। उस की आँखों और चेहरे से साफ़ मालूम हो रहा था कि वह कुछ और ही सोच रहा था।

"नाना जी, आप को बता दूँगा... केवल आप को," वह आचिल बाबा को अपने कमरे में ले गया। कमरे में पर्याप्त प्रकाश नहीं था। ठण्ड भी। एक मेज़, एक पलंग, कोई बदबू-सी आ रही थी। आचिल बाबा ने खिड़की खोल दी। कमरे में साफ़ हवा आने लगी। फिर उन्होंने अज़ीमजान को भी बुला लिया। अज़ीमजान थाली में नान-चाय ले आया। दोनों में परिचय हुआ। अक्बरअली ने उसे घूरकर देखा पर वह चुप ही रहा, शायद उससे अपनी रिश्तेदारी समझ नहीं पाया होगा। अज़ीमजान

ने भी अपने रिश्तेदार की दूसरी कल्पना की थी, इस लिए अब उसे देखकर उसे कुछ सूझा ही नहीं कि क्या कहे।

"बोलो," आचिल बाबा ने कहा। उन की थकावट भी, नीन्द भी दूर हो गयी थी। बूढ़े चेहरे पर अधीरता, घबराहट की झलक दिखाई देने लगी थी।

दोस्तो, इस प्रकार अक्बरअली के क़िस्से की बारी आती है। लेकिन इसी बीच मुझे एक रिवायत की याद हो आयी है। तो आप की इजाज़त से, पहले रिवायत ही पेश करता हूँ।

रिवायत

कछुआ घिसटते आगे बढ़ रहा है।

उसका रंग बिलकुल धूल जैसा है। गले में झुर्रियाँ हैं, आँखें मृत। ज़िन्दा है। हिल-डुल रहा है। न जाने, उसे अपना गन्तव्य मालूम है या नहीं?

इतना धीरे-धीरे क्यों चल रहा है? शायद रक्त ठंडा होगा। ऐसे जानवर से मृत भूमि बेहतर।

कहते हैं, एक ज़माने में कछुआ कछुआ नहीं था। वह एक चतुर, फुर्तीला और सुडौल जानवर था। अन्य जानवरों के साथ प्रसन्नता से गर्व-पूर्वक रहता था। जीवन का ख़ूब आनन्द लेता था। मज़ेदार खाने खाकर, पत्तों पर चमकते शबनम की बूँदों से प्यास बुझाकर नीले आसमान को निहारता ख़ुश रहता था। एक दिन जंगले माज़नदरान की ओर से असंख्य हिंसक जानवर आ पहुँचे और जानवरो में भयानक युद्ध छिड़ गया। एक दस्ते के बाद दूसरा, एक सेना के बाद दूसरी सेना आयी। जानवरों ने आक्रमणकारी दरिंदों को कभी पीछे खदेड़ दिया तो कभी ख़ुद उन्हें पीछे हटना पड़ा। कई जानवर खेत रहे। चालीस साल तक लड़ाई चलती रही। पहाड़ों की ढलानों पर के हरे-भरे चारागाह ख़ून से रंग गये। चींटी से ले हाथी तक, छोटे-बड़े सब लड़ाई में हिस्सा ले रहे थे। लड़ाई के एक निर्णयिक क्षण में अपने साथियों को शहीद होते देख कछुए के मन में एक दुष्ट विचार आया: "मेरी बारी आ रही है, क्या मैं भी मर जाऊँ?!"

आसमान बहुत साफ़ था। हरी-भरी घास, रंग-बिरंगे फूल हवा के मन्द-मन्द झकोरों में धीरे-धीरे झूलते हुए जीवन के सुख का प्रदर्शन कर रहे थे।

"नहीं, नहीं, मैं नहीं मरूँगा!" कछुए ने सोचा। फिर भी वह लड़ाई लड़ने गया। पर जब बिजली चमकी, धरती कांप उठी और दुश्मनों का पलड़ा भारी हो गया, उस का जी फिर डांवाडोल हो उठा। इसी क्षण तहलके से काँपते हुए कछुआ कुछ पीछे खिसककर मार्ग के पास के पत्थरों के बीच छुप गया। उस के दोस्तों ने यह नहीं देखा, वे दुश्मन से घमासान लड़ाई लड़ते रहे। कछुआ पत्थरों के बीच से सिर निकालकर लड़ाई का शोर सुनता रहा। दुख भरी चीख़, दरिन्दों का ख़ौफ़नाक ढंग से हुंकारना, मरते दोस्तों की प्रार्थनाएँ सुनाई देतीं रहीं। और वह "जो होना था सो हुआ" कहकर काँपते हुए छुपा रहा। उसने समझ लिया, अब उसके लड़ाई के मैदान में आने पर भी न दोस्तों को फ़ायदा होगा न दुश्मनों को नुक़सान। अगले चालीस साल तक और लड़ाई चलती रही, उस के बहुत से दोस्त उसी रणक्षेत्र पर वीरगति को प्राप्त हुए। अपनी भूमि के लिए लड़नेवालों को दुश्मन पराजित नहीं कर सके। शत्रु को अपनी बची सेनाओं के साथ पीछे हटना पड़ा। बादल छँटे गये, आसमान पर सूरज चमकने लगा। लड़ाई की चीखें थम गईं तो स्वच्छ हवावाले चारागाहों में फिर मेमने-बछेड़े दौड़ने-खेलने लगे, पक्षी गीत गाने लगे।

"अब ख़तरा टल गया, क्यों न निकलूँ मैं भी धीरे-धीरे," कछुए ने सोचा, मगर लाख कोशिश करने के बावजूद आगे नहीं बढ़ सका। हाथ-पाँव, सिर हरकतें तो करते थे पर वह आगे नहीं बढ़ पाता था। चालीस साल तक छुपकर लेटे रहने के कारण उस के नीचे और ऊपर के पत्थर एक दूसरे से मिल गये थे। बस उस का सिर और हाथ-पाँव ही बाहर निकल पाते थे।

अब वह करे तो क्या? ऊपर-नीचे के उन पत्थरों को लिये दो इंच का रास्ता उसने कई दिनों में बड़ी कठिनाई से तय किया। किसी तरह हाथपाँव के बल सरकते हुए वह सड़क पर जा पहुँचा। पर अब उसे कोई पहचान नहीं पा रहा था। सब के सब पत्थर समझकर उसे अनदेखा कर रहे थे। अगर कोई पहचाने भी तो वह क्या कहेगा, क्या कहकर समझाएगा?! उस से अच्छा यही होगा कि वह किसी से कुछ न कहे और

कोई भी उसे न पहचाने। सो, वह अकेले पत्थरों के बीच रहने लगा। मगर खाना तो ज़रूरी था। अगर वह वहाँ जाए जहाँ घास बहुत है तो उलटकर रह जाने की आशंका थी। इसी लिए, यह सोचकर वह रेगिस्तान चला गया कि कभी-कभार मिलनेवाले काँटेदार घास को खाया करूँगा। इसी से सन्तोष कर लूँगा।

तभी से उसका नाम कछुआ पड़ गया।

न आसमान को देखता है, न सूर्य को, आजीवन अकेला, पत्थरों को घिसटते हुए जीवन बिताता है। उन के बच्चे भी ढाल में पैदा होकर, पत्थर घिसटते पत्थर में ही बड़े कष्ट उठाकर मर जाते हैं। उस एक क्षण की कायरता के लिए वह अधिक से अधिक दुख भोगे, इस लिए ख़ुदा ने उस की उम्र भी सब से लम्बी बना दी। इसी पीड़ा से उस का चेहरा हरदम मुरझाया रहता है, आँखें बेजान-सी और रंग धूल के समान। एक हरे पत्ते के लिए रेगिस्तानों में चलता-फिरता, चार सौ वर्षों से कोशिशें करता...

आज भी कछुआ उसी तरह सरकते चल रहा है।

क़िस्सा

"सबसे भयानक जन्तु
ख़रगोश है।"
—नसिरुद्दीन अफ़न्दी

अक्बरअली अचानक और बेमौक़े, रात को आ गया। उसके सारे कपड़े भीगे, बूट कीचड़ से सने थे। उसके बाल और दाढ़ी से वर्षा की बून्दें टपक रही थीं। अंधेरे में उसका मुँह सफ़ेद-सा नज़र आया; मानो वह दहलीज़ पर बरसात की भीगी रात साथ लाया हो।

अकेली बैठी शराफ़त ख़ाला शादासाय की याद में दिन-रात तड़पती अपने बच्चे की ओर मुँह उठाकर देख भी नहीं पायीं —बुढ़ापे की यह चिर अभीप्सित आशा पूरी होने की ख़ुशी से वह रो पड़ीं। आख़िरकार! आख़िरकार अक्बरअली अपना वायदा पूरा करने, यानी उन्हें ले जाने के लिए आ ही पहुँचा था। अक्बरअली पूरे एक साल से उन्हें शादासाय ले

जाने का वायदा करता आ रहा था। तो आख़िरकार बेचारी माँ की आशा पूरी होनेवाली थी। शादासाय! तो अब वह मातृभूमि शादासाय जा पायेंगी।

शराफ़त ख़ाला को शादासाय छोड़कर आये अब पूरे चार साल हो चुके थे। परन्तु प्रिय पहाड़ों, दर्रों की छटा अब तक उनकी आँखों के सामने टिकी थी। दरअसल, अक्बरअली के पिता को छोड़कर जो दूसरी शादी उन्होंने की थी, वह और उनका शादासाय त्यागकर दूसरी जगह आना ज़बर्दस्त ग़लती थी।

पहले वह आचिल बुआ जैसे शरीफ़ बूढ़े की प्रिया वहू थी। विधवा होने के बावजूद अपने बेटे के साथ चैन से जीवन गुज़ार रही थी। पति (अब स्वर्गीय) के चक्कर में कहां से आ पहुंची थी! रिश्तेदारों में से किसी ने ताना तो नहीं दिया लेकिन कोई उससे मिलने-जुलने भी नहीं आया। विशेषकर दूसरे पति के मरने के बाद उसे बहुत-सी कठिनाइयां झेलनी पड़ीं। शादासाय का ख़्याल पल भर को उसके दिमाग़ से दूर नहीं होता। इस दूर-दराज़ शहर में चौथी मंज़िल पर दो कमरोंवाले सुनसान फ़्लैट में अकेली बैठी रहती। वह भी इस बुढ़ापे में। उसकी सारी उम्मीद खान में काम करनेवाले इकलौते बेटे अक्बरअली पर टिकी थी।

"आ गया, मेरा प्यारा बेटा?" स्वागत करते हुए शराफ़त ख़ाला ने कहा।

वह देर तक इधर-उधर चलती रहीं, बोलती रहीं, बेटे के बूट पोंछकर, बरसाती कसकर खूंटी में लटका दी, चाय बनायी।

अचानक उन्होंने देखा, अक्बरअली बैठे ही बैठे सो गया है। इसके बाद ही शराफ़त ख़ाला को याद आया, बेटा जब से आया है, कुछ नहीं बोला है। इसके बाद उसके चेहरे की ओर देखा तो पाया, उसका मुंह फीका पड़ा है। वह सहम उठीं।

"थक गया है बेचारा," यह कहकर शराफ़त ख़ाला ने यकन्दाज़* पर एक मोटा तकिया रखकर बेटे को लिटा दिया।

ख़ुद उन्हें रात भर नीन्द नहीं आयी। भोर होते ही बेटा उनके सिरहाने आकर बोलेगा: 'माँजी, तैयार होइये, गाँव जायेंगे।' वह इसकी

---

* यकन्दाज़—बिछावन, दरी।

प्रतीक्षा करती बेचैन थी। जब उन से नहीं रहा गया तो भिनसरे उठकर वह अपने बेटे की ख़बर लेने आ पहुँचीं, पर अक्बरअली अभी तक गहरी नीन्द में सो रहा था।

बेटा दोपहर के बाद ही उठा। बहुत सोने से उसकी आँखें लाल हो गयी थीं और भौंहों की खाल उतर आयी थी। अपनी माँ की ओर परा-यी-सी निगाह से देखकर उसने सिर झुका लिया। फिर अलसाये ढंग से दाढ़ी बनायी। खिड़की के पास आकर बाहर देखता रहा। दिन भर मौसम ख़राब रहा। शरद ऋतु का ठण्डा छोटा दिन शीघ्र ही ख़त्म होकर शहर के मकानों की छतों पर भीगी रात का अंधेरा छा गया।

शराफ़त ख़ाला को बेटे से बहुत कुछ सुनने की उम्मीद थी लेकिन अक्बर-अली तो एकदम चुप्पी साधे था। अब उसकी उम्मीदों पर पानी फिर चुका था। बेटे के प्रति मन में वहम पैदा हो गया था।

"क्या तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है, बेटे?" माँ ने बेटे के पास आकर पूछा।

"नहीं, माँ जी, मैं... मैं बिलकुल ठीक हूँ।" अक्बरअली माँ की ओर कोमल दृष्टि से देखकर बोला।

ख़ुदा का शुक्र है, यह तो वही अक्बरअली है जो अपनी माँ से जी-जान से प्यार करता था, जिसकी आवाज़ अपने पिता की भाँति ही सुरी-ली, नाज़ुक थी। शराफ़त ख़ाला को डर था, कहीं अपने बेटे की इस बुरी हालत का कारण वही तो नहीं पर बेटे की कोमल दृष्टि से उनका काफ़ी ढाढ़स बँधा।

"तुम्हारा काम-काज कैसा चल रहा है, बेटे," उसने धीमी आवाज में उससे पूछा।

"हाँ... आँ ऽऽ"

"क्या मुझे ले जाने के लिए आये हो?"

"नहीं, नहीं जायेंगे, माँ जी, मैं वहाँ से चला आया हूँ।"

शराफ़त ख़ाला का मन काँप उठा जैसे कोई बुरी ख़बर सुनी हो। इस लिए नहीं कि वह अब शादासाय नहीं जा पायेंगी, बल्कि बेटे की आवाज़ से।

"क्या, कभी नहीं जायेंगे?"

"..."

"क्या, अधकारियों से झगड़ा हो गया है?"

"...

"बेटे, बताओ तो, आखिर क्यों नहीं जा सकते?"

"...

"या तुमने कुछ ऐसी वैसी बात तो नहीं कर डाली?"

"नहीं! नहीं! नहीं!" सहसा चीख़ उठा अक्बरअली। फिर गला फाड़कर चिल्लाया। "क्या कहीं जाने-आने का अधिकार नहीं है मेरा? क्या मनपसन्द जगह मैं नहीं जा सकता हूँ? बार-बार पूछती क्यों हो माँ?" और बेहद गुस्से से उसने कॉलर के बटन तोड़ डाले, ज़ोर से खिड़की खोल दी। सर्द हवा के साथ कमरे में बारिश की बूँदें उड़ आयीं।

शराफ़त ख़ाला हाथ सीने पर रखकर सहम गयी। इस बार बेटे की आवाज़ उन्हें पहले से भी अधिक भद्दी, पहले से भी अधिक परायी-सी महसूस हुई।

वह चुप रहा। उसकी आँखों में बस एक हल्की-सी पीड़ा की झलक कौंध गयी।

"जब ख़ुद नहीं बताते तो मैं ही पूछ लेती हूँ, बेटे। तुम्हारी प्रतीक्षा करते-करते तो मैं थककर चूर ही हो गयी। पिछली बार तुम जो कुछ कह गये, उसके बाद तो मैं तुम्हारी राह ही तावती रही हूँ। मैं अकेली हूँ। बूढ़ी हो चुकी हूँ। तुम्हें अपनी गोद में लेने के लिए इतनी बेचैन हूँ कि ..."

अक्बरअली अपने फूहड़पन से लज्जित हो माँ के पास चला आया और उसका सिर अपनी गोद में रखकर उसने उसके कंधे थपथपाये।

"माँ..." बेटे की आवाज़ धीमी लेकिन अभी तक परायी, सुस्त-सी थी। "माँ, मैं आप के पास ही चला आया हूँ... आपके साथ रहूँगा। काम करूँगा। इस में कोई हर्ज तो नहीं, इतना बड़ा नगर है..."

"हर्ज की क्या बात है, बेटे! मैं तनिक भी बुरा नहीं मानूँगी। बस तू स्वस्थ रहे।"

माँ ने कहने को तो कह दिया लेकिन उसके दिल को किसी भय ने शिकंजे में जकड़ लिया था। अब वह शादाताय को भूल चुकी थी, अब केवल बेटे के बारे में सोच रही थी: उसे कुछ हो-हवा तो नहीं गया?

क्यों अपना काम बेकार छोड़कर यहाँ आ गया? उसने अगर अपनी इच्छा के अनुसार ऐसा किया है तो फिर पछता क्यों रहा है? बेचारे का चेहरा किसी से न देखा जा सकता था। वह शायद कोई चीज़ छुपा रहा था। कहीं किसी औरत ने तो उससे...

शराफ़त ख़ाला को अचानक महसूस हुआ मानो उनको सब कुछ पता चल गया हो। कुछ शांत हुईं, मन लगाकर चूल्हा-चौका करने लगीं, बेटे की ओर से ध्यान हटाये रहीं। "यदि किसी लड़की की वजह से यह हाल हुआ है तो किसी न किसी दिन वह दिल खोलकर सब कुछ बता ही देगा" यह सोचकर वह ख़ुद को ढाढ़स देने लगीं।

अभी तक अक्बरअली अविवाहित था, उसकी उम्र ज़्यादा होती जा रही थी। जब-जब वह लड़कियों के बारे में बातें करता था, शराफ़त ख़ाला खिल उठती थीं। अब भी इस विचार से वह अपने-आप को शान्त करने का प्रयत्न करने लगीं कि बेटे की शायद यह बुरी हालत किसी अच्छे काम का विह्न हो। इस तरह माँ अपने काम में व्यस्त हो गयी।

पर अक्बरअली अभी तक ख़ामोशी से कभी इस खिड़की के पास, कभी उस खिड़की के पास खड़ा हो विचारों में डूब जाता, कभी-कभी शेव करना भूल बढ़ी मुँछों-दाढ़ियों के साथ सड़क पर घूमने निकल जाता, लौटकर मानो तंग कमरे में न समाता हो, फिर खिड़की के पास जाकर खड़ा हो जाता।

"बोलो न, बेटे, क्यों अपने-आपको इतना सताते हो," शराफ़त ख़ाला शाम को पूछे बिना नहीं रह पातीं।

"क्या बोलूँ, माँ? काम की तलाश कर रहा हूँ। थोड़े ही दिनों में मिलनेवाला है।"

वह बोलता कुछ, सोचता कुछ—यह सब माँ समझ रही थी। एक ही सप्ताह के अन्दर कितना मुरझा गया था बेचारा। उसका दर्द एकदम अलग-सा मालूम होता।

"मुझसे अपना दर्द क्यों छुपाते हो, बेटे? दिल की पीड़ा कह डालोगे तो हलका महसूस करोगे।"

"मैं क्या बता दूँ, माँ जी?" अक्बरअली फिर बरस पड़ा। "मुझे छोड़ोगी या नहीं?" और कुरसी को ज़ोर से ठोकर मारकर वह बाहर

की ग्रोर दौड़ पड़ा। जब दरवाज़ा धड़ाम की ग्रावाज़ से बन्द हुग्रा तो बेचारी माँ को थप्पड़ खाने-सा महसूस हुग्रा। ग्राँखें मूंदकर वह सीना थामे रह गयीं। जब दम घुटता महसूस हुग्रा तो बाहर खुली हवा की ग्रोर जाने लगीं। खिड़की की लकड़ी थामकर ख़ुद को संभालती हुई जब उसने नीचे की ग्रोर देखा तो सहसा उसे ग्रपना सिर चकराता महसूस हुग्रा। वह सहमकर पीछे हट गयी। चौथी मंज़िल काफ़ी ऊँचाई पर थी ग्रौर सड़क बिलकुल गहराई में। ग्रब उसे ख्याल ग्राया कि ग्राज तक उसने कभी नीचे झाँककर नहीं देखा था। ग्रक्बरग्रली तो रोज़ देखता है। क्यों देखता है, कौन जाने।

माँ का दिल कुछ दूसरे भयानक भावों से भर गया। वह भयभीत हो उठी। दीवार से टिककर ग्रकेली रोती रही। उसका बेटा बदनसीब है। लेकिन यह दुर्भाग्य वह कहाँ से ले ग्राया? शायद ही उसके दिमाग़ से उल्टी-सीधी बातें निकाली जा सकें। कह रहा था जल्दी ही काम मिल जायेगा। तब शायद सब कुछ भूल जाये।

शराफ़त ख़ाला निर्बलता से चलकर ग्रपने खटिये पर लेट गयीं। बेटा के लौट ग्राने तक वह काफ़ी ठीक हो गयी थीं।

ग्रक्बरग्रली थोड़ी ही देर बाद ग्रा पहुँचा। वह प्रसन्न था, उसने जूतों की पालिश भी करवायी थी। खाने की मेज़ पर माँ की उदासीनता देखकर बोल उठा:

"मैंने ग्रापको नाराज़ कर दिया, माँ जी..."

"काम की तलाश की है?"

"कह रहे हैं थोड़े ही दिनों में ग्रच्छी जगह मिलेगी।"

"काम में लग जाते तो ग्रच्छा होता। तीन हफ़्ते से बेकार हो। ऊब गये होगे।"

"मेरे पास काफ़ी पैसे हैं, यह लीजिये," ग्रक्बरग्रली ने दस्तरख़ान पर पैसे रख दिये। "मेरा ख़्याल है, शायद ग्रच्छी जगह मिल जायेगी।"

"हाँ पहले जैसा ऊँचा पद मिल जाये तो कितना ग्रच्छा होगा।"

"पुराने की बात तो ग्रब छोड़ दीजिये, माँ जी।" ग्रक्बरग्रली की ग्रावाज़ में फिर ख़स्तगी महसूस हुई।

"नहीं, नहीं, वह मेरे बारे में तनिक भी नहीं सोच रहा है। शा-

यद कोई चीज़ मन में गहरे चुभ गयी है। या अल्लाह! क्या हो रहा है? यह कैसी बदनसीबी है मेरी।"

फिर भी आज रात अक्बरअली चैन से सोया, बिलकुल नहीं जगा। शराफ़त ख़ाला हर रात उसकी निगरानी करती थीं। न सिर्फ़ उसकी नीन्द की बल्कि ख़ुद उसकी और खिड़की की भी। पल भर के लिए भी नहीं सोती थीं। यह कितनी ख़ुशी की बात है कि आज अक्बरअली अच्छी तरह सोया, यहाँ तक कि उसने कुछ खर्राटे भी लिये।

और दूसरे दिन ख़ुशख़बरी भी लाया—उसे काम मिल गया था। बैठकर उसने नाश्ता भी किया। खाता वह बड़े चाव से था। कभी-कभी दिल खोलकर बातचीत भी करता था। शराफ़त ख़ाला को शान्ति मिलने लगी। "ख़ुदा का शुक्र है, मैं तो इतनी डर गयी थी कि जान ही निकलने वाली थी," जब घर में अकेली होतीं तो ख़ुद से कहतीं। वह अपने बेटे के इर्द-गिर्द चक्कर लगातीं, काम से आने पर उसका स्वागत करतीं, सवेरे उठकर काम पर भेजतीं, उसके कपड़े धोतीं, गोजा,* मस्तवा** को ठीक समय पर गरम कर देतीं, फिर इन सारे कामों से थक कर रातों को गहरी नीन्द सो जातीं।

इधर अक्बरअली के चेहरे पर भी निखार आने लगा था। थोड़ा बहुत तो परेशान वह अब भी रहता था, लेकिन पहले जैसी हालत उसकी न थी।

वह एक कारखाने में बिजली मिस्तरी बहाल हुआ था। जाड़े भर एक नयी परियोजना चालू करने के सिलसिले में प्रति दिन वह दूसरे लोगों की तरह सुबह से शाम तक काम पर रहता था। कभी-कभार अगर रात में भी उसे काम पर बुलाया जाता तो वह एतराज़ न करता, अपने मोमजामे की पतलून पहनकर, खनकती जंजीरोंवाले "लौह नाख़ुनों" को कँधे पर डाल चल पड़ता। सच पूछिये तो वह अब आदमी बन गया था। पहले दिनों की परेशानियाँ शायद ऊब जाने से ही होती थीं। जिस दिन से वह काम करने लगा, बिलकुल ही बदल गया था। शराफ़त ख़ाला का पहले भी यही ख़्याल था। काम में लग जाने से, मेहनत करने से सब कुछ हो सकता था।

---

* गोजा—मकईवाला खाना।

** मस्तवा—चावलवाला खाना।

वसंत क़रीब ग्रा गया था। जाड़े में बर्फ़ बहुत कम पड़ी, बारिश ही बारिश हुई। चौथी मंज़िल की खिड़की से सारा नगर सिर्फ़ छतों से बना मालूम होता था: नीले, लाल लौह पिंजड़े दूर के मुहेल्लों के घरों की पीले खपरोंवाली छतों को बारिश ने ग्रच्छी तरह धो डाली है। कहीं दूर में, क्षितिज की उस ग्रोर से नौबहार की ग्राँधियों की ग्रंतिम, बहरा देनेवाली गरज सुनाई पड़ती है।

खुली खिड़की के पास खड़े ग्रक्बरग्रली ने रसोई में ग्राकर गैस बुझा दी। तभी शराफ़त ख़ाला प्लेट में मलाई ले ग्रायीं।

"लो, नान के साथ खा लो, बेटे, ग्रभी चाय बनाकर लाती हूं।"

ग्रक्बरग्रली ग्रँगड़ाई लेते मेज़ के पास ग्राकर बैठ गया। हालांकि वह तीस वर्ष का ही था, उसके चेहरे पर ग्रसामयिक बुढ़ापे के चिह्न दिखाई देने लगे थे—बिना कंघी किये बालों में सफ़ेद रोएँ दिखते, शरीर से थका-हारा, मुरझाया। शराफ़त ख़ाला चाय बनाकर ले ग्रायीं ग्रौर नान के टुकड़े करके ख़ुद भी बैठकर उन्होंने ग्राह भरी।

"इस इमारत के ज़ीनों से चढ़ना मुझे काफ़ी मुश्किल लगता है, बेटे। दम घुटने का डर होता है।"

ग्रक्बरग्रली उनकी ग्रोर करुणा तथा प्रेम भरी दृष्टि से देखता रहा, पर कुछ बोला नहीं। उसकी माँ बूढ़ी हो गयी है, पिछले महीनों में उसकी क़द ग्रचानक कम हो गयी थी ग्रौर चेहरा कभी-कभार ही प्रफुल्लित होता था। ग्रक्बरग्रली ने ग्रपनी माँ की ग्रोर बार-बार देखा पर उसकी निगाहें ग्रब बेमानी बनती जा रही थीं। ऐसा मालूम होता जैसे उसकी ग्राँखें कुछ भी देख नहीं पाती थीं। शायद वह ग्रब किसी दूसरी चीज़ के बारे में सोच-विचार में रहने लगा था। जब माँ ने दुबारा बात शुरू की तभी वह होश में ग्राया।

"कहते हैं कि पहाड़ियों पर खिले लाले क़ालीन जैसे घने हैं। बच्चे उनके गुच्छे ही गुच्छे चुन ग्राये हैं, सबों के पत्तों पर गर्द है।"

"बारिश का भी कोई प्रभाव नहीं हुग्रा, क्या?" चाय की घूँट लेकर ग्रक्बरग्रली ने ग्रनिच्छा से पूछा।

"बारिश का भी प्रभाव नहीं हुग्रा, कालिख है न, तुम्हारे कारख़ानों से कोई धूल थोड़े ही उड़ती है भला?"

अक्बरअली चुप रहा। वह अनचाहे नान चबाता जा रहा था। माँ ने बात जारी रखी :

"हमारे शादासाय के लाले तुम्हें याद हैं, आग जैसे जलते थे। गुबार-धुआँ वहाँ कहाँ, उन पर पड़े ओसकण अनार के दाने जैसे झिलमिलाते थे।"

"विशेषकर पनचक्की के नीचे," सहसा कोमल स्वर में वह कह उठा। झुर्रियों के फैलने से उसके चेहरे पर बच्चों जैसी सादगी प्रतीत हुई। "चिमलिक़साय के किनारे पर जीदा के झुंड और पॉपलर भी अब तक मौजूद हैं या नहीं?"

"अब भी हवा में सरसरा रहे होंगे," माँ ने कहा। उसका सीधा-सादा चेहरा प्रफुल्लित हो उठा। "वह पगडंडियाँ जिन पर तुम बचपन में दौड़ते थे, सचमुच ही मेरी आँखों के सामने से नहीं हटतीं। जब तुम लोग मनज़ुरा के साथ शिविर में रहे थे, मैं सुबह तक घबड़ाकर काँपती रही थी। चाँदनी रात थी।"

"आप क्यों घबड़ायीं," अक्बरअली ने बचपन की मधुर स्मृतियों से प्रफुल्लित होकर कहा। "चाँदनी रात को हम नहर में नहाये थे। शादा-साय जैसा पानी संसार भर में नहीं।"

"वहाँ के लोग भी कितने शिष्ट हैं, बेटा।"

"मनज़ूरा को बार-बार सपने में देखता हूँ, वह वही पुराने चारगु-ज़र* में मिलती है। आप को याद है न वही क्लब के पास, जहाँ मी-टिंग होती थीं।"

"चारगुज़र को कैसे नहीं जानूँगी!.."

"ख़िदिरअली बुवा जब शाम को सेल के वृक्ष के नीचे पानी के हलके से छींटे मारते तो ताप मिश्रित काली तुलसी की ख़ुशबू से आस-पास की हवा भर जाती। वह ख़ुशबू अब तक मैं महसूस करता हूँ।"

शराफ़त ख़ाला ने जब अपने बेटे की आवाज़ में भी मचलती यादों व उसकी आँखों में उदास परेशानी का अनुभव किया तो उनके अपने पुराने दर्द भी उभर आये। अपनी गर्म हथेली बेटे के हाथ पर रखकर वह बोली :

"मेरी तुमसे प्रार्थना है, बेटे, चलो हम वहीं लौट चलें," उन्होंने

---

* चारगुज़र – चौक!

धीमी ग्रावाज़ में कहा। "मैं तो पकी फल-सी हूँ। ग्राज जीवित हूँ, कल न जाने क्या हो... ग्रपने गाँव चल पड़ें।"

ग्रक्बरग्रली ने ग्रपना हाथ झटक दिया। वह उछलकर उठ खड़ा हुग्रा। उसकी हालत उबलते दूध-सी थी। मधुर स्मृतियाँ, परेशानी—ये सब तत्क्षण ग़ायब हो गयीं।

"मैंने ग्राप से बार-बार कहा कि ग्राजकल वहाँ कोई गाँव नहीं है, वहाँ ग्रब नगर है, खानवालों का नगर वहाँ बस गया है।"

लेकिन यही बात ढँग से, धीमे स्वर में कही जा सकती थी। माँ को फिर नाराज़ कर दिया। शराफ़त ख़ाला ने मेज़ साफ़ करते हुए ग्रपने बेटे की ग्रोर भौंहों के नीचे से देखा। वह समझ गयीं, ग्रब उससे कोई बात नहीं कर पायेंगी, बोलीं:

"ग़ुस्से में न ग्राग्रो, बेटे..."

ग्रक्बरग्रली ग्रपनी भौंहें सिकोड़कर कारजामे को बग़ल में लिये काम पर चला गया।

माँ-बेटे के बीच इसी तरह की बातचीत प्राय: हुग्रा करती। बात ग्रपने ग्राप छिड़ती ग्रौर इसी तरह नाराज़गी से ख़त्म होती। बाद में बेचारी माँ ग्रपने बेटे की राह ताकती, उम्मीद करती रहती कि शायद ग्रक्बरग्रली प्रसन्नता से ग्राये।

लेकिन नहीं, ऐसा नहीं हुग्रा, काम में लगने के बाद की पहली ख़ुशियाँ थोड़े ही दिनों में बुझ गयीं। ग्रक्बरग्रली फिर पुराने दिनों की तरह हो गया था: लापरवाही, ग्रप्रसन्नता से चुपचाप ग्राता ग्रौर बिना कपड़े उतारे खटिये पर लेट जाता। कुछ देर बाद फिर खिड़की के सामने जाकर खड़ा होता, मेज़ पर रखी चाय ठंडी पड़ जाती, यहाँ तक कि उसकी माँ बैठे-बैठे सो गयी है, यह भी ग्रनुभव नहीं करता।

वही सर्द शरद की कुस्मृतियां उसकी ग्राँखों के सामने से पल भर के लिए भी दूर नहीं होती थीं। जब कभी वह ग्रकेला होता वही स्मृतियाँ ग्रा जातीं। ग्रकेलापन तो उसका सदैव के लिए साथी बन बैठा है। चाहे लोगों के बीच में हो या ग्रपनी माँ के साथ बैठा हो, वह ग्रपने को बिलकुल ग्रकेला महसूस करता है। उसके मन में उन स्मृतियों के ग्रतिरिक्त कुछ नहीं है। प्रति दिन वही घटनाएँ याद करके उनसे ग्राश्रय ढूँढ़ता रहता है। पर कहाँ है वह ग्राश्रय...

... शादासाय में भला कहाँ से ग्रा पहुँचा वह ग्रादमी? उस का नाम था बेक्तेमिर। ग्रक्बरग्रली तो उसका नाम जीभ में लाने से संकोच करता था, डरता था। सिर्फ़ सोते समय प्रलाप करता था।

उसने रात को ग्राकर खिड़की खटखटायी। उसने कहा:

"दरवाज़ा खोलो, मैं बेक्तेमिर हूँ, तुम्हारे बाप का दोस्त।"

ग्रक्बरग्रली इससे पहले उसको नहीं जानता था। "तुम्हारे बाप का दोस्त हूँ," यह सुनने के बाद ही उठकर उसने दरवाज़ा खोला। ग्रभी तक उसकी सूरत साफ़-साफ़ याद है: वह एक ग्रांख से ग्रन्धा था। भीतर ग्राते ही उसने मोमजामे की टोपी सिर से खींच कंधे पर कर ली ग्रौर ग्रक्बरग्रली को ग्रपने बेटे की तरह गोद में ले लिया। उसके कपड़ों से सड़ते कच्चे चमड़े की बू ग्रा रही थी?

"तुम्हारा नाम ग्रक्बरग्रली है न?"

"जी हां..."

उसने ग्रपनी पोटली एक कोने में रख, बरसाती उतारी। उसने सूट तक नहीं पहन रखा था, सिर्फ़ कुर्ता पहने था। देर तक ताकते रहने के बावजूद ग्रक्बरग्रली उसे पहचान न सका। पर वह बाप की उम्र का ग्रादमी था। शायद वह बहुत दूर से, तिस पर न जाने कितनी कठिनाइ-याँ झेलकर यहाँ ग्राया था। ग्राख़िरकार ग्राश्रय मिल जाने से प्रसन्न ग्रौर सबल होकर कमरे में सामग्रियों को ध्यान से देखने लगा, गर्म भट्टी को हाथ से छूकर हथेली पर हथेली फेरता था।

"एक प्याला चाय बना दो। क्या माँ घर पर नहीं?"

ग्रक्बरग्रली ग्रतिथि के लिए चाय बनाना भी भूल गया था। ग्रसमंजस में पड़ा था वह। फिर चाय बनाने में व्यस्त हो गया।

"माँ... माँ ने दूसरी शादी कर ली है।"

"हाँ..," बेक्तेमिर ने ग्रपनी ग्रावाज़ तानकर कहा। मेज़ के पास ग्राकर बैठ गया ग्रौर ग्रपना घर महसूस करते ग्रास्तीन ऊपर की। "तब... उसने शादी कर ली है?" उसने फिर परेशानी से कहा। वह ग्रक्बरग्रली जैसी ऊँची क़दवाला था, चेहरे पर गहरी झुर्रियाँ पड़ी थीं, एक ग्रांख की जगह सिर्फ़ भीतर को धँसा गड्ढा ही था। वह साँ-वला, चेचकरू ग्रादमी था। "हम तुम्हारे बाप के साथ युद्ध में गये

थे। एक ही ट्रेन में . . ." उसने इस तरह कहा जैसे कहने के लिए और कुछ नहीं। "मैं कप्सन का रहनेवाला हूँ, पहाड़ों का . . ."

तो बस इतनी ही बात थी। अक्बरअली ने तो सोचा था, पिता जी का कोई गहरा दोस्त होगा। अनिच्छापूर्वक उसने चाय बनायी।

"मेरे पिता जी युद्ध के पहले ही दिनों में खेत रहे थे।"

"जानता हूँ। कभी सुना था।"

"अब कहाँ से आ रहे हैं?"

"इसकी कहानी काफ़ी लम्बी है।" अतिथि ने कहा। उसने चाय की घूँट भरी, पर कुछ खाया नहीं। उसने काफ़ी कठिनाइयाँ झेली थीं– यह सच था। सचमुच उसकी कहानी बहुत लम्बी थी, रात भर दोनों के बीच बातचीत होती रही।

बेक्तेमिर मोज़्दोक के नज़दीक नाकेबंदी में पड़कर पूरे तीन महीने लड़ाई करने के बाद भूख से अधमरा होकर बिना गोली-बन्दूक सत्तरह घायल योद्धाओं के साथ शत्रुओं द्वारा गिरफ़्तार किया गया था। कुछ सबल होने, अपने को संभाल लेने की उम्मीद में कैंपों में चलते-फिरते एक-एक करके वह सब दोस्तों को खो बैठा। क़ैदियों को कभी एक जगह पर देर तक नहीं रहने दिया जाता, कभी किसी तहज़मीनी कारख़ाने में, कभी सुरंग के निर्माण में, कभी पत्थर की खान में काम करने भेजा जाता और रातों को अपरिचित रातों से उन्हें क़तार बनाकर कहीं भगा दिया जाता था। इन सालों के दौरान बेक्तेमिर ने क्या कुछ नहीं देखा, क्या कठिनाइयाँ ने झेलीं, कई भाषाएँ सीखीं, मरते-मरते बचा, कितनी बार बीमार भी पड़ा। अब तो सिर्फ़ मौत ही बाक़ी थी। नाउम्मीदी से वह बस मौत की प्रतीक्षा कर रहा था।

युद्ध के बाद अमरीकी सिपाहियों ने उन्हें आज़ाद किया। इसके बाद बेक्तेमिर मौत से तो बच गया, परन्तु वास्तव में अब आवारगी का नया दौर शुरू हो गया था। यूरोप में देश-देश रेंगते-रेंगते उसने किसी तरह गुज़ारा किया। वह सिर्फ़ अपने दोनों स्वस्थ हाथों पर ही विश्वास करता था। बाज़ लोगों के कहने के अनुसार मातृभूमि में लौट जाना आजकल ख़तरनाक है, वहाँ उस जैसे आदमियों के लिए क़ैदियों के कैंपों का इंतज़ाम किया गया था।

पर नहीं, घुमक्कड़ों की कठिनाइयाँ मौत से भी काफ़ी बढ़कर होती

हैं। तेरह साल की आवारगी के बाद वह डरते-डरते मातृभूमि लौट आ-या। जब वह लौट आया तो बड़ी ख़ुशी के साथ उसका स्वागत हुआ, अपने परिवार से मिलकर प्रसन्नता से जीवन गुज़ारने को भी कहा गया।

बेक्तेमिर ने अपने ललाट पर एक तमाचा मारा, फिर अफ़सोस करने के अन्दाज़ में वह उछलकर उठ खड़ा हुआ।

"जब से मैं आया हूँ, एक भी परिचित के दर्शन नहीं कर पाया हूँ। मैं तुम्हें ढूंढ़कर किसी तरह यहाँ तक पहुँचा हूँ, अक्बरअली। मुझे तुम्हारे पिता जी से बड़ा प्रेम था, यहाँ आते ही मुझे सहसा उनकी याद हो आयी।"

"खाना खाइये, बेक्तेमिर अका..."

बेक्तेमिर ने दस्तरख़ान को देखा-अनदेखा कर दिया। वह अत्यन्त पी-ड़ित था।

"सुनो, मुझे कोई न कोई काम करना है। कोई भी हो पर मुझे काम करना है, समझे?"

"क्या आपके बाल-बच्चे ठीक तो हैं?"

"हाँ, पत्नी, बेटी... लेकिन अभी तक घर नहीं गया, हिम्मत ही नहीं हो रही है मुझे।"

"क्यों?"

"वे नहीं जानते कि मैं जीवित हूँ। उन्हें कैसे मुँह दिखाऊँ? क्या कहूँगा?" बेक्तेमिर अपनी नंगी छाती पर हाथ मारते क्रोध से बोला,

"किसके साथ जाऊँगा? मुझे... कोई काम ढूंढ़ना चाहिए।"

"काम तलाश लीजिये।"

"हाँ, सबसे पहले काम। मैं इस लिए तुम्हारे पास आया था कि तुम किसी काम का प्रबंध कर दोगे। कोई ऐसा काम हो कि मैं सख़्ती से, दिन-रात कर सकूँ। ताकि लोग मुझे नहीं देख पायें, सिर्फ़ मेरा काम ही नज़र आये। श्रम! श्रम! श्रम! इस के अलावा मुझे कुछ नहीं चाहिए। तभी एक दिन पत्नी और बेटी के यहाँ जाकर पाँवों पर सिर रखूँ, वे मुझे माफ़ करें। अक्बरअली, मैंने तुम्हें अपना दर्द खोलकर बता डाला है, अब मेरी सहायता करो।"

"अक्बरअली, अरे, ओ अक्बरअली।"

ऊँघती शराफ़त ख़ाला की आँखें खुल गयीं। देखा, अक्बरअली अभी

तक खिड़की के पास खड़ा था लेकिन सड़क पर गुज़रनेवाले साथियों की आवाज़ नहीं सुन रहा था।

"बेटा, तुझे आवाज़ दे रहे हैं..."

अक्बरअली ने भारी विचारों को सिर झटककर दूर करते हुए, थकी पलकों को मिचमिचाकर नीचे की ओर देखा।

"अभी आ रहा हूँ, अब्दुसमद!"

वह कपड़े पहनने लगा।

"चाय तक नहीं पी तुमने।"

"इच्छा नहीं हो रही है। कैंण्टिन में पी लूंगा।"

कोई बात नहीं। यह ख़ुशी की बात है जो उसके लोगों से परिचय, उसके साथी होने लगे थे। उनके साथ हो, भले-भले आदमियों से उसकी दोस्ती हो जाये तो हृदयविदारक विचार उसके मस्तिष्क से स्वयं ही दूर हो जायेंगे।

पर वे कौन-से विचार थे–शराफ़त ख़ाला कहाँ से जानतीं। उन्होंने जानने के लिए बड़े यत्न किये पर नहीं, बेटे ने कुछ नहीं बताया। वह ऐसे विचार थे जो जीभ तक नहीं लिये जा सकते, वह ऐसा घाव था जो कभी ठीक नहीं हो सकता था। सिर्फ़ वह विचार, वह घाव फिर से पैदा न हों। माँ की सारी आशाएँ अपने बेटे के इन्हीं दोस्तों पर टिकी थीं।

कुछ ही महीनों में अक्बरअली के दोस्तों की संख्या काफ़ी बढ़ गयी। शराफ़त ख़ाला के आशानुसार अक्बरअली प्रफुल्लित होता जा रहा था, उसकी आवाज़ भी बुलन्द होती जाती। अपने साथियों के साथ हँसता-खिलखिलाता आता और उसी तरह चला जाता। वह इच्छानुसार कहीं आये-जाये–इसका माँ के लिए कोई महत्व नहीं था। सिर्फ़ इन्हीं भलेमानस दोस्तों के साथ खेले, हँसे।

कितने अजीब आदमी हैं उसके दोस्त। एक कुँवारा, एक बाल बच्चोंवाला, एक तकनीशियन, एक मज़दूर। पर जब वे एकत्र होते, इतना शोर मचाते, हँसते और बातें करते कि शराफ़त ख़ाला को सुखी माताओं पर रश्क आ जाता था। यह लो, अब्दुसमद नाम का एक ड्राइवर जो बड़ा हँसमुख, मोटा-झोटा है, इन सबों का मुखिया है। ख़ुद भी तो ऊबना क्या है नहीं जानता होगा। वह सब चीज़ों का बड़ा जानकार था: फ़ुटबाल के सारे भेदों से लेकर चाँद के अंतरिक्ष यान तक। कारख़ाने में

"दोस्ती अदालत"* तथा "सुख-प्रासाद" जैसे इन्तज़ाम भी उसके कहने के अनुसार कायम हुआ था। कंधे पर छोटा-सा रेडियो लटका लेना भी उसी की "कल्पना" थी। वह कहीं भी जाये, नौजवान उसके पीछे हो लेते। जब अब्दुसमद अपने साथी ले आता तो शराफ़त ख़ाला के जी में जी आता, हाथ जोड़े बैठकर उनकी हँसी-मज़ाक़वाली बातें सुनतीं और मुस्कुराती हुई उनकी ओर देखती रहतीं कि किस तरह अक्बरअली अपने दोस्तों के लिए चाय बनाता, किस तरह वे सब किसी चीज़ पर जमकर बहस करते।

युवकों को अक्बरअली के यहाँ एकत्र होना पसन्द था। शराफ़त ख़ाला बिलकुल शान्त औरत थीं, तिस पर बाल बच्चे भी नहीं, जगह ख़ाली। एक दिन किसी अनुभाग के मुखिया को पेंशन पर जाते विदा करके लौटे तो एक-एक प्याली चाय पी लेने के लिए इधर चले आये। सब को शराब की हल्की-सी मस्ती थी, अन्दर आते ही बिजली पर अस्किया* होने लगा। पेंशन पानेवाले का गणना-यंत्र ख़राब हो जाना, कारख़ाने के डाइ-रेक्टर का गंजा सिर तीन सौ बत्तियोंवाले लैंप की तरह दमकना, सेक्रेटरी लड़की का चिल्लाना —सब के बारे में अस्किया हुआ। इस तरह वे देर तक क़हक़हा लगाते बैठे रहे।

बाद में उन्होंने देखा, अक्बरअली एक गद्देदार कुर्सी पर बैठा है, भौंहें चढ़ी हुई हैं। बस इस तरह बैठा था मानो अकेला हो, मानो यहाँ कोई हंसी-ख़ुशी न हो, कोई दोस्त न हो। हँसमुख दोस्तों के क़हक़हे सहसा थम गये। पहले मेहमानों ने निगाहों का आदान-प्रदान किया फिर अपनी-अपनी घड़ियाँ देखने लगे। असुविधाजनक स्थिति में पड़कर उठने लगे। शराफ़त ख़ाला भी अपनी छाती पर हाथ रखकर बेचैन हो उठीं। अपने बेटे की ऐसी हालत से माँ का दिल परेशान हो उठता। अक्बरअली ने अपने दोस्तों को नमस्कार तक नहीं कहा। जब माँ उन्हें छोड़कर अन्दर आयीं तो देखा, बेटा कपड़े उतारे बिना खटिये पर पड़ा था।

---

* पारस्परिक, अनोपचारिक अदालत।

** अस्किया — दो हिस्सों में बंटे लोगों में परस्पर वाक्-चातुर्य प्रतियोगिता। हर वाक्य के अन्त में सभी लोग ठहाका लगाते हैं। उज्बेकों में यह बड़ा ही मशहूर रिवाज है।

"बेटा ..."

अक्बरअली ने कुछ नहीं सुना। वह वही एक आँखवाला बेक्तेमिर के बारे में सोच रहा था।

हर एक शब्द, हर एक घटना फिर से उसकी आँखों के सामने से गुज़र रही थी: "मैं आपकी सहायता करूँगा, आपकी सहायता मैं क्यों नहीं करूँगा। खान में ले जाऊँगा। ज़रा देखते रहिये। काम की व्यवस्था तो हो जाये। यदि श्रम करना चाहते हैं, तो सब से भारी श्रम यहीं पर है।"

तब उसने बाप के दोस्त को खान दिखाने का निश्चय किया। चमकती धूपवाली शरद की सुबह बड़ी ख़ुशगवार थी। रास्ते के किनारे सेल के लाल पत्ते पैरों के नीचे खड़खड़ाते थे। गतिशून्य पानी में झिलमिलाहट थी। पहाड़ी हवा शादासाय का ठंडा शोर दर्रों में ले जाती है, दूरियों पर बर्फ़ीले शिखर इस तरह दमकते थे मानो सूरज से मुक़ाबला कर रहे हों। सूरज के प्रकाश में नहा रहे चरागाहों पर देवदारों की क़तारें मुश्किल से दिखाई देती थीं। पगडंडी क़दम-क़दम पर ऊपर ले जाती, नीचे पुराना शादासाय गाँव पीले पड़े वृक्षों से ढँका था। थोड़ी ही दूर खान के नगर की छतें... खान के मज़दूरों को काम के बाद घर ले जानेवाले रास्ते का निर्माण कितनी अच्छी जगह पर हुआ था। शायद घर पहुँचने तक मज़दूर काफ़ी विश्राम पा लेते हों।

रास्ते पर जो भी आदमी मिले, अक्बरअली को पहचानकर उसका हार्दिक अभिवादन करते थे। ये दोनों भी जवाब में नमस्कार कहते, आहिस्ता क़दमों से बातचीत करते चले जा रहे थे और आस-पास के दृश्यों को देखकर उन्हें राहत मिल रही थी। बेक्तेमिर इतना प्रफुल्लित था मानो हमेशा की तरह अपने काम पर जा रहा हो। अगर खान में काम की व्यवस्था हो जाये तो वह प्रति दिन इसी पगडंडी से आया-जाया करेगा। कितने सालों के बाद, आख़िरकार पहली बार वह अपने आदमियों के बीच था, वह अपने लिए आस्तीन चढ़ाकर, पसीने बहाते, ख़ुशी से मेहनत करेगा। कितने सुख की बात होगी अगर थोड़े समय बाद अपनी बीवी और बेटी को इधर ले आये। यहीं आशाएँ थीं जिन के बारे में पहले बेक्तेमिर को सोचने की भी हिम्मत नहीं होती थी। अक्बरअली

इसका अर्थ भला कहाँ से जाने, उसके लिए तो यह एक साधारण काम का दिन था। वह तो बस यूँ ही रास्ते पर अपने एक परिचित के साथ काम पर जा रहा था। उसने बटन के छेदोंवाला अपना कोट बाँहों पर डाल रखा था।

बेक्तेमिर की निगाहें सूरज के प्रकाश में चमकती पसीने की बूँदोंवाले अक्बरअली के चेहरे पर टिकी थीं।

अक्बरअली अपने पिता पर नहीं गया था, वह ऊँची क़दवाला, पतला-सा, बहुत कम बोलनेवाला आदमी था। पर रात की कहानियों के बाद शिष्ट बेक्तेमिर उसे एकदम रास आ गया था, ऐसे लगा था मानो पिता की जगह आ गया हो।

"तुमने शादी नहीं की, अच्छा नहीं किया," बेक्तेमिर अका ने कहा।

अक्बरअली ज़मीन की ओर देखते हुए हँसा।

"इसमें कोई हर्ज नहीं। अभी देर नहीं हुई है। मेरी बेटी भी बड़ी हो चुकी है। यदि वह अपनी माँ पर गयी तो ज़रूर सुन्दर निकलेगी। यहाँ लाऊँगा, तब देखोगे। अगर तुम्हें पसन्द आयी तो उससे शादी कर लेना, भगवान करे..."

अक्बरअली फिर हँसा। वे खान के क़रीब आ गये थे। पहाड़ियों, गहरी घाटियों के ऊपर से उछलकर लटकते हुए ठेले इधर-उधर दौड़ रहे थे। खान के नज़दीक वे पानी छिड़के हुए चौड़े अस्फ़ाल्ट रास्ते पर निकल पड़े।

"क्या मुझे अन्दर जाने देंगे?" बेक्तेमिर ने पूछा।

रास्ते पर कच्ची धातु से भरे "माज़" ट्रक जा रहे थे। अक्बरअली ने नहीं सुना।

"मेरे पास कोई दस्तावेज़ नहीं, वे इजाज़त देंगे कि नहीं?"

"मैं तो हूँ न।" अक्बरअली ने हँसकर ज़ोरदार आवाज़ में जवाब दिया। यह सोचकर कि उसकी बातें बेक्तेमिर ने नहीं सुनीं, अपनी छाती पर मारकर दिखाया: "मैं! मैं! यह लीजिये, पहन लीजिये, इसे देखकर कोई आपको नहीं रोकेगा," कहकर अक्बरअली ने अपना कोट उसे दे दिया। बेक्तेमिर अका ने पहन लिया।

"ख़ूब फब रहा है आप पर," अक्बरअली ज़ोरों से बोला। दोनों

ठहाका लगाकर हँस पड़े। अब "माज़" गुज़र चुके थे, खान के सामने उनके हँसने की आवाज़ गूँजती रही, पहाड़ों से एक क्षण के लिए उनकी प्रतिध्वनि सुनाई दी।

"अब तुम्हें नहीं जाने देंगे?" बेक्तेमिर ने कुरते में और अधिक दुबले-पतले दिखाई देते अक्बरअली से कहा।

"मुझे पहचानते हैं," हाथ हिलाया अक्बरअली ने। "इजाज़तनामा ले लेते तो अच्छा होता पर ऑफ़िस काफ़ी दूर है। एक चालबाज़ी करने की कोशिश करेंगे, देखें, सफल होते हैं या नहीं," दोनों फिर से प्रसन्नता से हँस पड़े। बेक्तेमिर अका अपने पहने कोट को बार-बार देखकर प्रफुल्लित हो उठते थे।

"अगर भगवान ने चाहा तो कल-परसों तक अपने हाथ में भी आ जायेगा।"

पहरेदारख़ाने में उन्हें किसी ने कुछ नहीं कहा, बरामदे में एक-एक लालटेन हाथ में लेकर, सिर पर लोहे की टोपियाँ पहन, वे खान में उतर गये।

पहाड़ के अन्दर की नम ठंड सहसा उनकी छातियों पर अपना प्रभाव डालने लगी। पैदल चलने का लकड़ीवाला फुटपाथ भीगी दीवार के साथ-साथ बना हुआ था, सिर्फ़ रेलपथों के चौराहों पर सुरंग थोड़ा-सा चौड़ा होता, रोशन मैदानों में जा निकलता था। बेक्तेमिर अका सिर के ऊपर मोटे-मोटे केबुलों, ठंडे-गर्म पानी तथा हवा के नलों, बिजली तथा फोन के तारों को छूता, यूरोप की खानों जहाँ उसने काम किया था, के बारे में सुनाता चल रहा था। वहाँ न चिराग़, न ताज़ा हवा होती थी, चूहों की तरह खनक ज़मीन खोदते थे। वहाँ आदमी की कौड़ी भर क़ीमत नहीं होती थी। वे काफ़ी दूर चले आये। ऊपर से टपकती बूँदों से देह में झुरझुरी हो आती थी। कच्चे धातु से लदे ठैलों के गुज़रते समय वे उँगलियों को कान में लगा लेते और दीवार से चिपककर रुक जाते थे। कितनी ही "तंग राहों" में उनका प्रवेश हुआ, दूर के श्ट्रेकों में जाकर वापस आये, खोदे हुए स्थानों पर खानवालों से भेंट हुई, डेढ़ घंटे चलने के बाद उन्होंने पीछे लौटने का निश्चय किया।

"तो हाँ," बेक्तेमिर अका ने कहा, "पहले शागिर्द बनकर किसी

काम में जी लगाने और कुछ सीखने की जरूरत है। खान के काम अब दिन-ब-दिन जटिल होते जा रहे हैं।"

"चाहे जो भी हो, अब आप खान के मज़दूर बन चुके हैं," अक्बरअली ने कहा।

पहाड़ की कोख में सन्नाटा छा गया। लकड़ीवाले फुटपाथ के नीचे से कलकल करता पानी बह रहा था। चिराग़ हिलाते आगे चलते बेक्तेमिर अका सोच में डूबकर मुस्कुरा उठते: क्या वह वास्तव में खान के मज़दूर से लगते हैं?

तुरन्त एक मोड़ पर कहीं बिजली जैसी हल्की रोशनी हुई, दोनों की आँखें चकाचौंध हो गयीं। क्षण भर के लिए उन्हें कुछ भी दिखाई नहीं दिया। फिर जब अंधेरा ग़ायब हुआ दोनों ने एक-दूसरे को सवाली नज़रों से देखा। बेक्तेमिर अका रेल से छलाँग लगाकर, आगे दौड़ने लगे। कुछ आगे चले तो किसी चीज़ की आवाज़ आयी और फिर बिजली चमक उठी।

"इधर आना," आगे दौड़कर बेक्तेमिर अका ने कहा। वे दोनों नरम लकड़ियों पर से आगे-पीछे, लुढ़क-लुढ़ककर कहीं आ पहुँचे। रास्ते के किनारे पर कंकरीट दीवारोंवाली एक कोठरी की छत गिर गयी थी, वहाँ से मोटे मोटे लौह शहतीरों के नोक लटक रहे थे। सिर्फ़ लौह शहतीरों से बनी भारी छत हवा में लटकती हुई हिलती थी और जब वह हिलती कहीं पर चिर्स-चिर्स की आवाज़ निकलती बिजली चमक उठती थी। इस चमक से सारी खान कभी रोशनी से भर जाती, कभी गहरा अंधेरा छा जाता था।

अक्बरअली अपने होश खो बैठा था, इसका कारण या तो भारी लोहे की छत का हिलना, या तो उसकी आँखें अंधी हो जाना था। वह चिल्लाने लगा:

"होशियार! होशियार! भाग जाइये, बेक्तेमिर अका!"

बिजली के निरन्तर चमक से आँखें खोलना बिलकुल मुश्किल था। वे दोनों एक दूसरे को आवाज़ तथा साँस से ही पता लगा पाते थे कि वे कहाँ हैं।

"ट्रांसफ़ार्मर!" बेक्तेमिर ने आवाज़ दी। "अगर अब शहतीरें गिर पड़ें तो ट्रांसफ़ार्मर का विस्फोट हो जायेगा। खोदे स्थानों में मज़दूर हैं। इधर चलना चाहिए।"

"भाग चलिये! आप क्या कर रहे हैं?"

"ट्रांसफ़ार्मर को बन्द करना चाहिए, नहीं तो विस्फोट हो जायेगा।"

"हट जाइये! नहीं तो छत आप पर गिर पड़ेगी!"

"बन्द करना चाहिए, भाई! दुर्घटना रोकनी चाहिए। कहाँ हो तुम, अक्बरअली?"

चिर्स-चिर्स की आवाज़ के साथ लोहे की छत भयानक ढंग से हिल रही थी। बेक्तेमिर क्षण भर के लिए उसके नीचे पहुँचकर बाहर निकल आया।

"बेंट तक इस ओर से नहीं जाया जा सकता है, ठीक आँखों पर मारता है। कहाँ हो तुम, उठाओ इसे!" वह दीवार के नीचे पड़े किसी डिब्बे पर लिपटे।

"हट जाइये, मैं कह रहा हूँ, बेक्तेमिर अका। देखिये, वह गिर रहा है!" अक्बरअली चिल्लाया। पर बेक्तेमिर गले की नसें खिलाते डिब्बे को घसीटता ले जा रहा था, डिब्बा काफ़ी भारी, पानी से भीगा, कोने-कोने पर कंकरीट से लिपट था . . .

"उठाने में सहायता दो! एक क्षण में खाई पार करके ट्रांसफार्मर को बन्द कर आऊँगा, कहाँ हो तुम?"

चिर्स-चिर्स कर रही क्षीग रोशनी में अक्बरअली की दृष्टि उसके रक्तहीन मुँह पर भारी बोझ के मारे गोले जैसी अकेली आँख पर अंतिम बार पड़ी।

"कहाँ हो तुम?"

"हट जाइये, बेक्तेमिर अका। हट जाइये – विस्फोट!"

अक्बरअली को भी अपनी आवाज़ कहीं दूर से आती महसूस हुई। वह लुढ़कता, गिरता भागा जा रहा था पर कहाँ, उसको पता नहीं था। तुरंत ही उसे अपनी ताक़त जवाब देती महसूस हुई, उसका गला घरघराने लगा, आवाज़ बन्द हो गयी। कनपटी पर हाथ रखा तो ख़ून का दाग़ देखकर वह और भी भयभीत हो उठा। जब दूर से सूरज की रोशनी की एक लकीर-सी नज़र आयी तो सारी बिजलियाँ बुझ गयीं। आस-पास गहरा अंधेरा छा गया। इसी क्षण पीछे की ओर से किसी भारी चीज़ के गिरने की आवाज़ आयी, दूर से भयानक चीख़ सुनायी दी। मानो उस कटु फरियाद ने उसके पैर को थाम लिये हों, अक्बरअली अंधेरे में भीगी

दीवार पर मुँह से टेक लगाके खड़ा हो गया। पर उसे ऐसे लगा जैसे खान के अंदर से कोई चीज़ उसे भगा रही हो। वही आवाज़ की प्रतिध्वनि पहाड़ों में से सुनाई दी। वह ज़मीन की दीवार पर रेंगते, चिपकते आगे बढ़ा, दम घुटने लगा, दूर से आती सूरज की रोशनी उसे अपनी ओर खींचती महसूस हुई। वह आवाज़ ... बेक्तेमिर की थी। वह लोहे की शहतीरों के नीचे पड़ा था। हट जाने का मौक़ा नहीं मिला। ट्रांसफ़ार्मर तो उसने बन्द कर दिया था, लेकिन वह वहाँ से निकल नहीं पाया। अब भाग जाना चाहिए।

एक आदमी नहीं डरा, पर वह डर गया, क्षण भर के लिए डरा। क्षण भर के लिए ... इसी एक क्षण ने सब कुछ हल कर दिया। वह तो लौटने को भी हुआ, पर नहीं लौटा। डिब्बा ... भारी, सीमंटवाला डिब्बा ... नहीं लौटा। वह डरा। क्षण भर के लिए ... अब भाग चलना चाहिए। भागना चाहिए।

"अब भागना चाहिए!!!"

"बेटे अक्बरअली, सुनो, बेटे, करवट बदलकर लेटो, बेटे। तुम नीन्द में अंटशंट बक रहे हो?"

अक्बरअली उछलकर उठ बैठा। फिर उसने अपनी कनपटी हाथ से छूकर देखा – ख़ून नहीं था। उसके सामने माँ खड़ी थी, भय से वह पीला पड़ गया था।

"नीन्द नहीं आयी, बेटे? किससे डरे, क्या कोई भयानक सपना देख रहे थे?"

अक्बरअली की आँखों के सामने से बेक्तेमिर का चेहरा हट नहीं रहा था। पर बेक्तेमिर नहीं था। बेक्तेमिर लोहों के नीचे कुचल गया था। अक्बरअली ने आँखें मूँदकर ज़ोरों से सिर हिलाया, मानो भयानक सपने जैसे इन विचारों को मस्तिष्क से हटा देना चाहता हो। उसका सिर पत्थर-सरीखा भारी महसूस हो रहा था ...

वह भागकर यहाँ आया था। सोचा था, यही उसके लिए सब से अच्छा उपाय है। पर अपने से भागकर जाना नामुमकिन है। सिर भी, छाती भी हवा से भरी मालूम हो रही थी।

अपने दोस्तों को देखते ही वह अब आड़ में जाने लगा था। शराफ़त

ख़ाला ने ध्यान से देखकर भाँप लिया था, जवानों के बीच में सब से शांत, चुप्पी साधे उसका बेटा ही रहता था। बाद में तो दोस्तों के बुलाने पर भी नहीं जाता। बाद में उसके दोस्तों ने भी यहाँ आना-जाना बन्द कर दिया। अक्बरअली उनके सामने अपना भेद खोल न सका, उनका दोस्त न बन सका। ठीक ही कहा गया है, जब तक अपना दर्द किसी के सामने बता न पाओगे, तब तक किसी का दोस्त बनने का ख़्याल तक न करो।

वह फिर अपने पुराने ढंग में आ गया था। कंधे पर पड़े अदृश्य भारी बोझ से वह काफ़ी झुक चुका था, दिल का दर्द किसी के सामने खोलने की हिम्मत न होने के कारण अनिच्छा से काम करता, नीन्द में भी चैन नहीं, खाने का भी मज़ा महसूस नहीं करता। इस तरह कितने ही महीने उसने सोच में डूबकर काटे ...

माँ यह अनुभव करती थी कि बेटे को भी अपनी मातृभूमि की याद सताती है। अगर शादासाय लौट जायें तो शायद वह खिल उठे। वहाँ उसे सब जानते हैं, दर्द खोलने की कोई ज़रूरत नहीं पड़ेगी, अगर दोषी हो तो क्षमा करेंगे। अगर सारे दर्द इस तरह दिल में छिपाकर रहे तो ज़िन्दगी भर चैन नहीं पा सकेगा। इस लिए सबसे पहले उसे शादासाय जाना चाहिए।

शराफ़त ख़ाला की सख़्त इच्छा यही थी कि शादासाय लौटकर उसकी ख़ाक आँखों पर लगायें, इस लिए यह विचार उसके मन में फिर से आ चिपका।

"शायद मंज़ूरा भी बाल-बच्चोंवाली गृहिणी बन गयी हों," उसने एक दिन शाम को बेटे से कहा।

"ज़रूर," अक्बरअली ने कहा, "अब तक ..." पर उसके कानों में बेक्तेमिर की रूँधी आवाज़ गूँज पड़ी: "मेरी बेटी भी बड़ी हो गयी होगी। ले आऊँगा, देखोगे। अगर पसन्द आ जाये, तो उससे शादी कर लेना, अगर भगवान चाहेगा ..." अक्बरअली झुँझला उठा, इस आवाज़ से भागने के अन्दाज़ में उसने सिर को कंबल से लपेट लिया।

जाड़े का दिन था। तेज़ ठंडी हवा में टेलीवीजन सेट के एरियल की आवाज़ खिड़की से सुनाई देती थी। माँ भी चुप रही। उसको भय था, उनकी बातचीत अन्त में अच्छी तरह ख़त्म नहीं होती है। काफ़ी देर तक

बाहर से चलती ठंडी हवा की साँय-साँय की आवाज़ के अलावा कुछ नहीं सुनाई दिया।

यह जाड़ा भी कितना बुरा था! जब देखो, बस ठंडी हवा—यह किसी को ख़ुशगवार नहीं लगती थी। नंगे वृक्ष भी, धरती भी काला रंग धारण करके मानो फ़रियाद कर रही थी। सब आस लगाये थे, ताज़ा बर्फ़ पड़कर इस हवा का सारा ग़ुबार ज़मीन के नीचे डुबो देती। इन दिनों शराफ़त ख़ाला का दमा फिर से पीड़ा देने लगा था। जब बेटा काम पर चला जाता तो अकेली खिड़की के पास जाने की हिम्मत नहीं कर पाती थीं। उन्हें सारी दुनिया सूनी-सूनी लगती। हर आह में मुँह से मानो आग निकलती थी। कौन जाने यदि वह अहाते पर पानी छिड़ककर झाड़ू देती, बहू से कुछ गपशप करके दिल हलका कर लेती। दही खट्टा करके उसे पड़ोसिन को सौंप देती तो शायद उसकी साँस ठीक हो जाती। यह कितने आश्चर्य की बात थी कि एक जवान, तगड़े बेटे के बावजूद वह इतनी आजिज़ रहती थीं।

एक दिन दोपहर के बाद बड़ी-बड़ी सारस की बर्फ़* पड़ने लगी, शहर का चेहरा प्रफुल्लित हो उठा, यह देखकर छोटे-छोटे बच्चों ने सड़क पर "सूरज निकल आया जहाँ में" गीत गानी शुरू कर दिया। सूरज था ही कहाँ—आसमान सफ़ेद था, मानो पंख बिखरे हों। वाह रे, क्या यह सारे पंख ज़मीन पर उतरेंगे।

शराफ़त ख़ाला शाम तक खिड़की में देखती रहीं। एक बार ख़मीर जाकर देखा और फिर अपनी जगह पर आ बैठीं। सारस की बर्फ़! ठीक ही कहा है लोगों ने। पैरों को हिलाये बिना आहिस्तगी से उड़ते ज़मीन पर आ बैठते।

शराफ़त ख़ाला अचानक उठकर खिड़की से सिर टिकाकर खड़ी हो गयी।

"सुब्हान अल्लाह, सुब्हान अल्लाह।" ज़र्द पड़ते हुए वह बोल उठीं। फुटपाथ पर, सफ़ेद हिमशंकुओंवाले बबूल के पेड़ के नीचे एक सुन्दर लड़की अक्बरअली के साथ खड़ी थी।

---

* सारस की बर्फ़—मार्च महीने में पड़नेवाली गीली बर्फ़, वसन्त की अग्र-सूचक। सं०

"वसंपन हुआ था, यह देख रही हूँ?" कहकर शराफ़त ख़ाला ने मुँह और आँखों पर हाथ फेरे, कुछ शब्द बुदबुदाकर दोनों कंधों के पीछे फूंक मारी।

दोनो में कोई ख़ास बात नहीं हो रही थी, लेकिन वे साथ खड़े थे और एक-दूसरे से जुदा होना नहीं चाहते थे। सारस की बर्फ़ अपनी हथेलियों पर लेकर उसका पिघल जाना देखते, हंसते थे। जब अक्बरअली हँसता तो शराफ़त ख़ाला का हृदय ज़ोरों से धड़क उठता। हाँ, कितने समय हुए, उन्होंने बेटे को हंसते नहीं देखा था। यह लड़की कौन है? शराफ़त ख़ाला ने पहले उसे कभी नहीं देखा था। अगर देखा होता तो दूर से भी पहचान लेतीं। चौथी मंज़िल से दोनों छोटे-छोटे दिखाई देते थे, उनके सिर, कंधे बर्फ़ के कारण बिलकुल सफ़ेद थे। लड़की की क़द काफ़ी ऊँची थी, ऊँची एड़ियोंवाले जूतों से सफ़ेद धरती को निरन्तर ठोक-ठोक कर उसने बर्फ़ तितर-बितर कर दी थी। छोटा-सा बस्ता हाथ में हिलाते कभी बच्चों जैसी शैतानी करती और क़हक़हा लगाकर हँस पड़ती थी, अपनी आँखें अक्बरअली से हटा नहीं पा रही थी। वह शराफ़त ख़ाला को बहुत प्रिय महसूस होने लगी: "उसका दिल बहलाओ, बेटी, मेरे बेटे का दिल बहलाओ। इंतज़ार करते-करते मैं..." ख़ाला ललाट खिड़की पर टेकते रो पड़ीं। "ख़ुदा का शुक्र। जो कुछ मैं देख रही हूँ, वह सच हो। जवान आदमी का दिल क्या कुछ नहीं चाहता। अगर दोस्तों का प्रेम अच्छा न लगा तो धर्मपत्नी का प्रेम उसे ढाढ़स देगा। दुनिया में दिल का मामला सब से अहम होता है। वह बाक़ी सारा दुख, परेशानी हृदय से निकाल बाहर कर देता है। यह सच हो जाये। हे अल्लाह, तुमसे मेरी प्रार्थना है, यह सच हो जाये।" अब शराफ़त ख़ाला के दिल में एक यही इच्छा बाक़ी थी।

वास्तव में अक्बरअली इस बार थोड़ा बदला था। अच्छी तरह शेव करता, ख़ुद भी थोड़ा जवान बना मालूम होता। अनजान बनी माँ ने भी उसे गुपचुप निगाहों से देखते हुए मेज़ लगा दी। अक्बरअली ने भी मनपसन्द लपसी बड़ी चाह से खाकर, झरोखे खोल दिये, फिर मुँह से सीटी बजाते चहलक़दमी करने लगा।

"माँ जी, बहार आने पर बरामदे में शीशे लगवाकर मरम्मत कराऊँगा," उसकी आवाज़ बेहद साफ़ थी।

ख़ुशी के मारे शराफ़त ख़ाला से जवाब नहीं दिया गया। "ओ मेरे लाड़ले, मेरे मन में आज कितनी ख़ुशी हो रही है, तू नहीं जानता। क्या सचमुच यह मेरा बेटा अक्बरअली ही है? फिर से वह कैसे मिल गया?"

इधर अक्बरअली ने साँय-साँय करते, तीन महीने से ख़राब पड़े रेडियो की मरम्मत कर डाली। फिर कमरे के एक ख़ाली कोने की तरफ़ संकेत करके बोला:

"माँ जी, इस जगह रखने के लिए एक सोफ़ा ख़रीद लूँ? यह जगह बिलकुल ख़ाली पड़ी है।"

"ज़रूर ख़रीद लो, बेटे।"

"आपका दमा कैसा है?"

"एकदम ठीक है, बेटा। आज बर्फ़ पड़ने से हवा बड़ी ख़ुशगवार हो गयी है।"

"अब आप ज़्यादा चला-फिरा न कीजिये। सिर्फ़ चाय बनाइये, यही काफ़ी है। मैं ख़ुद बाज़ार जाकर चीज़ें ख़रीद लाऊँगा। इस्तरी भी मैं ख़ुद..." और मानो अचानक कुछ याद करके वह इस्तरी लाकर टाइयों को चुनने लगा। उन में से दो-चार इस्तरी करके उसने खूँटी पर लटका दी।

माँ को आज नीन्द नहीं आयी। दम घुटने के बावजूद उधर से ध्यान हटाकर सास बनने के मीठे सपने देखती रही, सुबह तक ख़ुदा से विनती करती रही। दूसरे दिन उसकी नज़र खाने-पीने के सामानवाली दूकान के सामने खड़े अब्दुसमद पर पड़ी और न जाने क्यों, वह शीघ्र ही उसके पास दौड़कर पहुँची।

"क्यों बेटे, अपने दोस्त के पास तुम क्यों नहीं आते हो?"

"मेरे दोस्त को अब बड़ा काम रहता है, वह व्यस्त है, इस लिए हमें डर है कि कहीं उसके पास जाकर उसका काम बिगाड़ न दें। आजकल वह हमारा मुँह तक नहीं देखेगा। शहर की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी को उसने लुभा लिया है, अब हम उन दोनों की शादी की प्रतीक्षा कर रहे हैं।" हृष्ट-पुष्ट अब्दुसमद ने घोड़े के अयाल पर हाथ फेरने जैसे अन्दाज़ में मशीन के आच्छादन पर हाथ फेरते हुए कहा:

"उसको नमस्ते कहियेगा।"

"अच्छा, बेटे, ज़रूर कहूँगी।" शराफ़त ख़ाला को ट्रक के घने धुएँ ने घेर लिया। उनकी बातें ख़ुद उनके अलावा कोई नहीं सुन रहा था। "शहर की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी . . . शादी . . . या अल्लाह, मुझ जैसी अभागिन को ऐसा भाग्य कहाँ से मिल गया। या अल्लाह . . ."

"अरी, ख़ाला, यहाँ क्यों खड़ी हैं? क्या बात है?"

यह एक अपरिचित लड़का था। वह बिलकुल थकी और शक्तिहीन ख़ाला के हाथों से बोझ लेकिर उनके घर तक पहुंचा आया।

अरे, शहर की वह सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी कौन है? यह विचार शराफ़त ख़ाला के मन में बार-बार आता, इससे वह घबड़ाती, थक जाती थीं। अक्बरअली तो लापरवाही से आता और सीटी बजाते फिर चला जाता मानो कुछ नहीं हो रहा हो। पर शराफ़त ख़ाला को सब कुछ स्पष्ट था – सारा कुसूर इसी सीटी और लापरवाही में था। ख़ाला ने मन की सहज प्रवृत्ति से और थोड़ा कुछ जान लिया: उस भाग्यदाता का नाम हदिया था। कॉलज में पढ़ाई ख़त्म करके अब कारख़ाने की अनुसन्धानशाला में काम कर रही थी।

छुट्टी का दिन था। सुबह के साथ ही चमकता सूरज निकल आया। ज़मीन पर जमी बर्फ़ तो पिघल गयी लेकिन पहाड़ों के बीच में, जहां स्केटिंग की जा सकती थी, रुपहली बर्फ़ ज़ोर से दमक रही थी। अक्बर-अली भोर होते-होते उठकर दहलीज़ में बैठे किसी न किसी काम में व्यस्त था। तभी नीचे की ओर से अब्दुसमद की ट्रक की सन्नाटा भंग करती सीटी ज़ोरों से गूँज उठी। शराफ़त ख़ाला ने खिड़की से झांककर देखा, जवान लड़कों और लड़कियों से भरी एक ट्रक नीचे खड़ी थी। सब के कंधों पर पोटलियाँ थीं। ट्रक पर स्केटिंगों के ग़िलाफ़दार जोड़े पड़े थे। सब लोग शोर मचाते खिड़की की ओर हाथ हिला रहे थे।

"माँ जी, यह लेकर ज़रा नीचे जाइये," अक्बरअली ने दहलीज़ पर खड़े-खड़े कहा, "कह दीजिये, मैं अभी आ रहा हूँ, सुबह-सुबह मुहल्ले में शोर न मचायें।" यह कहकर उसने माँ के हाथ में एक पोटली थमा दी और ख़ुद एक बक्स कंधे पर उठाने की कोशिश करने लगा। उसके चेहरे पर पसीने की बूँदें चुहचुहा आयीं थीं, जल्दी मचाते नीचे से आ रहे शोर से आजिज़ होकर वह चिल्लाया:

"अभी आ रहा हूँ। सब कुछ तैयार है।"

शराफ़त ख़ाला का हृदय धक्-धक् करने लगा।] जब वह ज़ीने के नीचे उतर रही थीं, ऊपर से दौड़ी आ रही एक लड़की से उनकी मुलाक़ात हो गयी। यह वही हदिया थी। पहले उनकी कभी मुलाक़ात नहीं हुई थी, पर उन्हों ने एक-दूसरे को किसी भीतरी अहसास से पहचान लिया।

"शराफ़त ख़ाला . . ." लड़की सिर झुकाती रुक गई। उसने बुढ़िया को आकर्षित किया था। "अक्बरअली भाई नीचे भी उतरेंगे या नहीं?"

शराफ़त ख़ाला ने कोई जवाब दिये बिना मुस्कुराते हुए पोटली उसकी ओर बढ़ा दी। लड़की सच ही सुन्दर थी। नाज़ुक सफ़ेद चेहरा कितना साफ़, ओंठ उभरे-से, रंगने के कारण घनी भौंहें थोड़ी सिकुड़ गयी थीं मानो किसी अपरिचित पुरुष की नज़र से झेंपते हुए देख रही ही। भरपूर घने बालों पर उसने रूमाल बांध रखा था। ख़ुद काफ़ी दुबली-पतली होने के बावजूद, उरोज भरे-भरे थे; रोएँदार सफेद ऊनी कोट उसके संगमर-मरी चेहरे को और भी चमकदार बना रहा था, फीके रंगवाली तंग पतलून उसकी क़द में चार चाँद लगा रही थी।

लड़की को देखने के बाद शराफ़त ख़ाला अपने-आप को खो बैठी थीं, इस लिए विदाई के समय न अपने बेटे से, न लड़की से कुछ बोल पायीं। अक्बरअली और हदिया एक-दूसरे को देखकर रक्ताभ हो उठे थे। अक्बर-अली ने लड़की को कमर से थामकर उठाया और गाड़ी के ऊपर बैठा दिया। फिर नौजवानों ने उसे भी हाथों से खींचकर गाड़ी पर चढ़ा लि-या।

लड़के-लड़कियाँ शोर मचाते हँस रहे थे। कहीं पर अकार्डियन की आवाज़ गूँजी, किसी के स्केट्स या छड़ी टूटी तो ट्रक चलते-चलते कोई चीख़ पड़ा।

जब ट्रक चली गयी तो आस-पास सन्नाटा छा गया, इस तरह विदाई के समय भी शराफ़त ख़ाला कुछ नहीं बोल पायीं। पर हदिया को जी भर देख ज़रूर लिया। दृष्टि से ओझल होने तक वह उधर ही देखती रहीं। कहाँ तो सुन्दर बहू से उसको डर होता था और लो सुन्दर बहू ही मिल गयी! लोग कहते हैं, सुन्दर बहू चिंता का कारण होती है, दूसरे, ईश्वर आदमी को सुन्दरता और बुद्धि दोनों बराबर नहीं प्रदान करता है। होता भी है तो बहुत कम। और तीसरे यह कि सुन्दर बहू कभी सास-ससुर की सेवा नहीं करती है।

"और यह क्या सोच रही हूँ मैं? नी कित मूर्ख हूँ मैं। ख़ुदा का शुक्र न करनेवाली! यह सारी बातें तुच्छ हैं, पुरानी हैं। अगर कोई कमी भी हो उसमें तो कोई हर्ज नहीं। इस दुनिया में बिना कमियोंवाला कौन है? मुझे अपने बेटे का खुला-खिला चेहरा चाहिए। आजकल उसका चेहरा खुला है, एक महीने से वह इतना ख़ुश है मानो दूसरा जन्म हुआ हो। लाहौल विला क़ुव्वत! यह प्रेम है, मेरी जान, प्रेम। काश उसे पुरानी परेशानी फिर से न दिखाई दे। हे अल्लाह, वह परेशानी मिटा दो।

आज दिन भर हलके नीले रंगवाले फ्रॉक पहने हदिया की सूरत उनकी आँखों के सामने से दूर नहीं हुई। शराफ़त ख़ाला ने पहली नज़र में ही उसे पसन्द कर लिया था, लड़की उनके मन में बैठ गयी थी। अब उसे गोद में ले लेने की इच्छा हो रही थी। अपने भाग्य पर अविश्वास करते हुए सिर्फ़ मन ही मन में बराबर "मेरी बहू" कहकर पुकारती थी। पहले तो इस के बारे में सोचा भी नहीं था, अब तो जैसे आसमान से उतरी हो, एक सुन्दर, शर्मीली, बुद्धिमान लड़की हाथ में आयी। उसकी आवाज़ भी कितनी लुभावनी है: "अक्बरअली अका नीचे भी उतरेंगे या नहीं?" तुम्हारी ज़िह्वा पर जिसने अक्बरअली कहा, मेरी जान अर्पित हो। तुम नहीं जानती होगी कि तुमने मुझे और अक्बरअली को कितना सुखी कर दिया है।

शराफ़त ख़ाला अकेली बैठी-बैठी रोने लगीं। उन्हें रोने से कभी इस तरह राहत नहीं मिली थी जैसी अब मिल रही थी।

उन्हें ऐसा लगा मानो खिड़की से शाम को जो कुछ देखा, वह उनके मीठे सपनों से मिल गये।

ट्रक आकर रुक गयी। अक्बरअली छलाँग लगाकर नीचे उतर पड़ा और हाथ फैलाये, बाक़ी नौजवान लोगों ने हदिया को उसकी गोद में फेंक दिया। ज़मीन पर गिरने के डर से लड़की ने भी अक्बरअली के गले में बाँहें डाल दीं। अब्दुसमद ने तेज़ी से ट्रक आगे बढ़ा दी। बाक़ी सब शोर मचाते, क़हक़हा मारते, हाथ हिलाते चले गये। अक्बरअली ने देर तक हदिया को नहीं छोड़ा।

शराफ़त ख़ाला अत्यन्त भावाभिभूत हो उठी थीं।

"भीतर ले आओ, बेटे, भीतर ले आओ," वह बड़बड़ायीं।

"अरे यह मैं क्या कर रही हूँ। अल्लाह, मेरी तौबा।" यह कहकर शराफ़त ख़ाला खिड़की के सामने से हट गयीं। क्या करना है, कुछ समझ नहीं पाती वह फिर उसी जगह लौट आयीं। बाहर शाम हो रही थी, फुटपाथ के किनारों पर बर्फ़ के ढेर दमक रहे थे। अक्बरअली अभी तक लड़की को ख़ुद से चिपकाये ठिठोली कर रहा था। लड़की छूट जाने की कोशिश करती, पर वह उसे कभी नर्म बर्फ़ के ढेर पर धकेलने, कभी उसके गले को चूम लेने की कोशिश कर रहा था।

"कैसा भद्दा लड़का है, वह तो लड़की को नाराज़ ही कर बैठेगा," शराफ़त ख़ाला ऊपर में स्नेहसिक्त आशंकाओं में पड़ी खड़ी थीं। आख़िरकार अक्बरअली ने लड़की को ज़मीन पर उतार दिया। उसने तो उतार दिया पर लड़की अपने हाथ उसके गले से नहीं छुड़ाना चाहती थी। या तो शाम का अंधेरा छा गया था या शराफ़त ख़ाला की आँखें कमज़ोर हो गयी थीं; वे दोनों उन्हें एक-दूसरे से चिपके, एक ही छाया बने दिखाई दिये। वृक्ष के नीचे सफ़ेद बर्फ़, बर्फ़ पर दो साये; उनमें लम्बा उन दोनों का और नीचेवाला पोटली का था। इसके अलावा आस-पास में कुछ नहीं दिखाई दे रहा था।

लगभग एक घंटे बाद अक्बरअली हड़बड़ाया-सा घर लौटा। वह आज बहुत बोल रहा था और उसकी बातें भी काफ़ी चतुराई भरी थीं। वह पहाड़ों की सैर तथा स्केटिंग के बारे में बड़े उत्साह से सुनाने लगा।

"क्या हदियाखाँ को उसके घर तक छोड़ा?"

"हदिया को?" अक्बरअली की आँखें चमक उठीं और उसने अपनी माँ की ओर देखा। "उसे आप कहाँ से जानती हैं?"

माँ कुछ-कुछ माफ़ी माँगने के अन्दाज़ में ज़मीन देखती हुई मुस्कुरायी। इस मुस्कान में मोह और कृतज्ञता के साथ भलाई की कामना भी थी।

अक्बरअली ने आहिस्ता से आकर माँ को गले लगा लिया।

"क्या, खाना लाऊँ, बेटे?"

"लाइये, माँ जी, लाइये," बड़ी प्रसन्नता से चहककर अक्बरअली बोला।

वह कपड़े उतारकर नहाने के लिए गया।

"क्या चाय भी पियोगे?"

"ज़रूर, माँ जी," बेटे की आवाज़ बुलन्द थी।

परन्तु जब वह नहाकर आया और सोफ़े पर लेटा तो मेज़ यूँ ही सजा-यी पड़ी रही। पहाड़ की सैर के बाद अक्बरअली एकदम बदल गया था, वह और भी जवान मालूम हो रहा था। वह किसी सोच में डूबा था। पर पहले की तरह नहीं, आज उसकी आँखें चमक रही थीं, चेहरा खु-ला। वह ज़रूर हदिया के बारे में सोच रहा होगा, माँ ने महसूस कि-या। इस समय बेटे के चिन्तन में वह बाधा नहीं डालना चाहती थी, इस लिए चुपके से रसोई घर में खिसक गयी। उसे सोचने दो, इस समय न जाने कितने मीठे ख़्यालों में डूबा होगा। शायद लड़की की आँखों या होंठों के बारे में सोच रहा होगा। उसके कानों में लड़की के बुदबुदाने व हँसने की आवाज़ गूँज रही होगी . . .

शांत रात्रि। बाहर में काले-से आसमान और बर्फ़ से ढँकी ज़मीन के सफ़ेद रंग के बीच मौन संघर्ष हो रहा था, कमरे उजाले, गर्म और आरामदेह थे, मानो सभी खिड़कियों से रोशनी आ रही हो। रुचिकर थकान के बाद शांतिदायक नीन्द आने लगती है। जब घर में प्रेम की छाया हो तो कितना सुखमय होता है।

इस तरह कितने ही दिन, कितने ही सप्ताह बीत गये। शराफ़त ख़ा-ला को साँस लेना कठिन होने लगा, थोड़ी-थोड़ी देर बाद हाँफ़ने लगतीं परन्तु उनका सारा ख़्याल बेटे पर था। अक्बरअली कभी-कभार काम से काफ़ी परेशान लौटा करता था, पर प्राय: यह सुनाकर कि कारखाने के दीवारी समाचार पत्र में उसकी तारीफ़ की गयी है, बड़ी ख़ुशी से बात-चीत करता, इसके साथ-साथ अपनी माँ का जी बहलाने, ख़ुद भी मश-गूल होने की चेष्टा करता था। उस के इन व्यवहारों में छुपी कृत्रिमता, माँ को कभी महसूस नहीं हुई।

एक दिन जब अक्बरअली काम पर गया था, अकस्मात् हदिया दरवाज़े से दौड़कर अन्दर आयी और शराफ़त ख़ाला के चेहरे की ओर घूरती रुक गयी। वह और भी जवान-सी, आग-सी दिखाई दे रही थी। उसकी पतली कमर में सुनहरे रंगोंवाली चौड़ी बेल्ट लगी थी। उसका चूड़ीदार ब्लाऊज़ थोड़ा उभर आया था। पर काँपते पीले होंठों और चेहरे पर भय प्रकट हो रहा था। भावी बहू की सुन्दरता से आकृष्ट शराफ़त ख़ाला को उसका इस तरह अचानक आना आश्चर्यजनक महसूस हुआ। उसकी हालत भी कुछ बिगड़ी मालूम हो रही थी।

"शराफ़त ख़ाला!" कहकर लड़की उनसे लिपट गयी। वे इस तरह एक-दूसरे से गले मिलीं मानो पहले से उनके बीच घनिष्ठ संबंध हों। सारा शरीर कँपकँपाते लड़की रो रही थी।

"ओ मेरी जान, यह क्या हुआ है तुझे?" शराफ़त ख़ाला परेशानी से बोलीं। लड़की फफक-फफककर ऊँची आवाज़ में रोने लगी।

"अरे मेरी लाड़ली, सिर तो उठाओ, क्या हुआ?" घबड़ाकर उन्होंने लड़की का सिर गोद से हटाते हुए कहा। "क्या, अक्बरअली से कहासुनी हो गयी? बताओ तो!"

"नहीं, उसके साथ कुछ नहीं हुआ है," यह कहकर लड़की ने सिर हिला दिया। हदिया के आँसुओं से उनका कंधा तर हो गया था। लड़की का चेहरा सूजा हुआ था, पलकें लाल हो गयी थीं।

"अब बताओ भी, आख़िर हुआ क्या, मेरी जान। फिर क्या शामत आयी तुम्हारे सिर पर?" लड़की के कंधों व सिर पर हाथ फेरते हुए माँ ने पूछा।

"वह··· वह मुझसे प्यार नहीं करता है, ख़ाला, बताइये, अब मुझे क्या करना चाहिए?" हदिया फिर से रो पड़ी।

शराफ़त ख़ाला प्रसन्न हुईं और मुस्करायीं। लड़की को अपनी गोद में लेकर उन्होंने दुलारा।

"अरे, तुम बस इसी लिए रो रही थी? मेरी जान!" माँ हँसी। इस तरुणी को उसके बेटे से कितना प्यार था–यह माँ के अलावा और कौन जान सकता था? लड़की का यह रोना उसे हास्यास्पद भी, मीठा भी महसूस हुआ।

"तुम्हें ऐसा लगा होगा," माँ आवाज़ कुछ धीमी करके ख़ुशी के साथ बोली। "वह तुम से प्यार करता है, लाड़ली, और इतना कि वह मजनूँ बन गया है।"

"नहीं, यह झूठ है।" लड़की ने गंभीरता से कहा और सिर उठाये बिना आँसू पोंछे।

"अरे, तुम्हें यह कैसे मालूम, मैं तो अच्छी तरह जानती हूँ, लाड़ली। वह इतना बदल गया है कि एकदम दूसरा आदमी बन गया है। और यह सब तुम्हारी ही शराफ़त से, मेरी बच्ची।"

माँ को अपने लिए "तू" कहते देख हदिया प्रभावित हो गयी। उसकी आँखें सजल हो उठीं। लेकिन बुदबुदाकर फिर बोली:

"नहीं, यह झूठ है।"

"लेकिन तुम ऐसा क्यों कहती हो? ज़रा समझा दो मुझे। या तो उसने तुम्हें कुछ कहा है? तुम्हें नाराज़ कर दिया है?"

"नहीं।"

"तुम दोनों दो बूँद जैसे हो। बाहर के सब लोग तुम दोनों से स्पृहा करते हैं कि तुम्हें ख़ुदा ने ऐसे ही बना दिया है। और क्या चाहिए?"

"अक्बरअली भाई कुछ अजीब-से मालूम होते हैं।" अपना चेहरा, आँखें पोंछ लड़की उठकर बैठ गयी। फिर कुछ न समझने के अन्दाज़ में कन्धे उचकाकर बोली।

"हाँ अक्बरअली कुछ बदल गये हैं। आख़िर के दिनों में तो बिलकुल... वह लोगों के बीच में प्रसन्न रहते हैं, ज़रूरत पड़ते-न-पड़ते हँसते हैं, मुझे दुलारते हैं, बनावटी आदर भी करते हैं। पर वह सब बनावटी है, जान-बूझकर करते मालूम होते हैं।"

"क्यों ऐसी बातें कहती है, मेरी बच्ची," रुखाई के साथ माँ ने कहा।

"और यह सब वह अपना मन बहलाने के लिए करते हैं। मेरे ख़्याल में वह मेरे साथ इस लिए रहते हैं कि उनका मन बहल जाये... किन्हीं बुरी स्मृतियों को भूलने के लिए... क्यों कि जब हम अकेले होते हैं, वह कुछ नहीं कहते, बस सोच में डूब जाते हैं, यह भी भूल जाते हैं कि उनके पास मैं हूँ।"

"मत रो, यह सारी बातें व्यर्थ हैं, बस तुझे यूँ ही महसूस हुआ है।" अब ख़ाला के चेहरे पर भी दुख की परछाइयाँ दिखने लगी थीं पर अपनी भावनाओं को छुपाते हुए वह लड़की को ढाढ़स देने की कोशिश करने लगीं।

"नहीं, बेटी, वह तुमसे प्यार करता है! मुझे देखो ज़रा, तुम कितनी प्यारी हो।"

लेकिन लड़की पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

"जब हम अकेले होते हैं, वह कहीं खो जाते हैं। कुछ पूछती हूँ तो सर्द निगाहों से तरेरते हैं। प्यार करने वाले कभी ऐसा करते हैं, माँ?"

"तो तुम दुलार-प्यार करो, हाथ फेरो, गोद में लो . . . "

"मैं उन लड़कियों में नहीं हूँ, शराफ़त ख़ाला," दिल में पीड़ा महसूस करते हुए लड़की ने आँखें झुका लीं। "वह मुझसे कुछ छुपाते हैं।"

"और मुझसे भी," माँ कह बैठी। और यह कहने के बाद ख़ुद हदिया से भी ज्यादा दुखी हो गयीं। आँसुओं से गला रुँध गया, आँखों के सामने अंधेरा-सा हो गया। उनकी निगाहों के सामने वही पुराना ख़स्ताहाल अक्बरअली दिखाई दिया। अपना सिर मेज़ पर टिकाकर वह रो पड़ीं।

"तुम्हारे गले में लानत का बोझ लदा है, बेटे! . . . क्यों हम से कहता नहीं, छुपाता क्यों है?"

हदिया माँ के इस तरह बोल-बोलकर रोने का मतलब तो नहीं समझी, पर घबरा बहुत गयी। शराफ़त ख़ाला का रोना उसे भयभीत कर रहा था। उनका रोना मिर्गी के दौरे-सा था। दम घुटने से उनके चेहरे का रंग पीला पड़ गया। हदिया ने चौकसी के साथ बिस्तर बिछा दिया। अपने साथ ले जाकर लिटा दिया। बड़ी कोमलता से उसने अपने रूमाल से उनका चेहरा पोंछ दिया, उन्हें पानी पिलाया।

"ख़ालाजान, शान्त हो जाइये। कोई बात नहीं हुई, माँ! मैं . . . मैं . . . अब आप को बोलना नहीं चाहिए, आराम कीजिये।"

उसने खिड़की खोल दी।

माँ की हालत जब कुछ ठीक हो गयी तो घड़ी की ओर देखकर जाने को तैयार हो गयी। अक्बरअली के काम से लौट आने का समय हो गया था। हदिया ने विदा ली। ड्योढ़ी तक जाते-जाते वह फिर वापस लौट आयी और बोली:

"मेरे यहाँ आने के बारे में उसे मत बताइयेगा, प्यारी माँ।" यह कहते हुए वह रो पड़ी और चली गयी।

शराफ़त ख़ाला को मालूम नहीं कि वह अचेत लेटी रहीं या कुछ और हुआ, परन्तु शाम होते-होते वह अपनी आवाज़ से जाग पड़ीं: "ऐसी लड़की को कैसे? ऐसी लड़की को कैसे?" कहते उनके होंठ अभी तक बुदबुदा रहे थे। बेटा घर आकर उनसे कुछ दूर बैठा था। अक्बरअली सब कुछ जानता था। हदिया का यहाँ आना और माँ की हालत की भी उसे जानकारी थी। उसे यह भी मालूम हो गया होगा कि इन सारी बा-

तों का अपराधी वह ख़ुद ही था। इस लिए वह अपनी माँ से कुछ पूछे बिना वज्राहात-सा अवाक् बैठा था। शराफ़त ख़ाला को वह कहीं दूर से छाया की तरह दीख पड़ा। वह दुबला हो गया था। पहली बार माँ के दिल में बेटे के प्रति दुश्चिन्ता पैदा हुई।

माँ की आँखें बुझी-बुझी थीं। बेटे की मुहब्बत के साथ आये पहले सुख भी मिट गये थे। अब शायद उनके जीवन की लौ के बुझने का समय क़रीब आ पहुँचा था। शराफ़त ख़ाला के रोगशय्या पर पड़ते ही हदिया और अब्दुसमद ने भी यहाँ आना बन्द कर दिया था। ऐसा प्रतीत होता जैसे अक्बरअली ने उन सबों को घबरा दिया था। आजकल वह घर के एक अंधेरे कोने में देर तक अकेला बैठा रहता था। कभी-कभी अपने-आप से बातें करने लगता: "एक क्षण, सिर्फ़ एक क्षण... काश उस लमहे मैं अपने को क़ाबू में ला पाता। कहते हैं जब आदमी आत्महत्या करने की सोचता है तो उसे आख़िरी क्षण में ऐसा करने का साहस नहीं होता..." और न जाने क्या-क्या कहता रहता फिर घबड़ाकर उठ खड़ा होता।

जाकर कहीं से पीकर लौटता फिर रात भर जागता करवटें बदलता रहता।

अब अपनी माँ और उसके रोग पर कुछ ध्यान दिये बिना वह न जाने किस चीज़ की तलाश में अकेला भटकता फिरता। घर देर से लौटता। आज भी सूर्यास्त तक भटकने के बाद वह गाँव में एकान्त जगह पर बनी सुनसान रसोई में जा घुसा। यहाँ काम करनेवाली एक औरत ने उसे पहचान लिया और बिना कुछ पूछे दो सौ ग्राम शराब उसे दे दी। छुट्टी के दिन अक्बरअली यहाँ पहले भी दो-चार बार आ चुका था। काम के दिन शाम को...

घर पर शराफ़त ख़ाला बीमार पड़ी थीं। सेवा-सुश्रुषा के अभाव में उनकी स्थिति बिगड़ती जा रही थी लेकिन बेटे के सीटी बजाते, सिगरेट सुलगाते आने पर कभी-कभार प्रसन्न हो सिर उठातीं। विशेष रूप से बेटे के उन से छिपाकर पीने की बात मालूम होने पर तो उनकी आख़िरी उम्मीद भी धूल में मिल गयी।

"माँ!" एक दिन अक्बरअली ने अपनी माँ के पास बैठकर कहा। वह एकदम नशे में धुत्त था। "मैंने सारे भेद खोल दिये हैं। सोनिया को बता दिये हैं। वहीं जो रसाई में काम करती है न, उसको!"

"कौन-से भेद, बेटे?"

"वही... जो वहाँ मैंने एक ग्रादमी की क़त्ल की थी न... उसके मरने का कारण मैं बना था," वह बोला।

शराफ़त ख़ाला की ग्राँखों के सामने ग्रंधेरा छा गया, उन्होंने ख़ुद को किसी ग्रथाह, ग्रंधेरे गर्त में गिरते महसूस किया, पर चेतना थी। बस बोलना नहीं ग्रा रहा था। "ऐ ख़ुदा, मेरी जान लेने में थोड़ा ग्रौर सब्र करो। ग्रौर थोड़ा-सा बल प्रदान करो मुझे," यही विचार ग्राया उनके दिमाग़ में। कुछ देर बाद उनकी ज़बान खुली।

"उसने क्या कहा, बेटे?"

"शराब पियो। बोली, शराब पीने से ग्रादमी सब कुछ भूल जा-ता है।"

ग्रक्बरग्रली ग्रच्छी तरह नहीं बैठ पाने के कारण भहराकर गिरते-गिरते बचा। शराफ़त ख़ाला ने ग्रशक्त हाथों से उसे थामने की कोशिश करते हुए कुछ कहा। ग्रब उन्हें किसी चीज़ की परवाह न रही थी। "मुझे ग्रब उस दुनिया की बातों का विचार करना है," उन्होंने मन में सोचा। इस लिए कोई पूछ-ताछ भी उन्होंने नहीं की।

"तुम्हें, मेरे बेटे, कीचनवाली ग्रौरत के पास नहीं, किसी के पास नहीं, सिर्फ़ शादासायवालों के पास ही जाकर ग्रपने पाप के लिए क्षमा माँगनी चाहिए। सिर्फ़ वहीं लोग तुम्हें क्षमा कर सकते हैं। ख़ुद को उसके सामने पेश करो, सिर झुकाग्रो। ग्रौरों के पास ग्रपने भेद हज़ार बार खोलने से भी कोई फ़ायदा नहीं, पाप तुम्हारी गर्दन पर सवार रहेगा। जब तक मैं जीवित हूँ, वहाँ लौट चलो, हाथ जोड़ती हूँ, बेटे..."

शराबी ग्रक्बरग्रली खाट से रेंगकर नीचे गिर पड़ा ग्रौर ऊँची ग्रावाज़ में रोने लगा...

उसी रात के बाद से ग्रक्बरग्रली चाहे पीना भले ही नहीं छोड़ सका लेकिन दाढ़ी बढ़ाये, मुँह बनाये नशे में धुत्त ग्रपनी माँ के लिए दही-दूध, दवा-दारू लाने लगा। पर शराफ़त ख़ाला ग्रब न तो खाना खा पातीं, न तो उनसे दवा ही पी जाती।

एक दिन बेटे को पास बुलाकर ग्रपनी ग्राख़िरी बातें कहने लगीं:

"मुझसे ख़ुश रहो, बेटे, मेरी लाश शादासाय ले जाकर मेरे पुरखों के पासवाली ज़मीन पर ही दफ़न करना, ताकि मैं भी ख़ुशी-ख़ुशी मर

सकूँ। मेरी जान, जीवित रहते तो तू ने मेरी बात नहीं ही मानी।"

अक्बरअली का नशा अचानक काफ़ूर हो गया। उसका निर्बल शरीर काँपने लगा, चेहरा पीला पड़ गया। काफ़ी देर बाद आपे में आकर वह बोला :

"माँ!" और खाट पर टूट पड़ा। पर शराफ़त खाला मर चुकी थी।

"मैं ने आपकी हत्या की है, ओह, मेरी मां मैं ने। मैंने! मैंने! मैंने!!!" दोनों हाथों से अपने मुरझाये चेहरे को जकड़कर अक्बर-अली लगातार बोलता रहा।

रोते-रोते थक जाने के बाद उसने सिर उठाकर माँ के कोरे काग़ज़-से सफ़ेद चेहरे की ओर देखा। माँ का चेहरा उम्र भर के लिए अक्बरअली के दिल में नक़्श हो गया। बिखेर-बिखेर, अघने थोड़े-थोड़े सफ़ेद बाल, नुकीली ठुड्डी, नाक पतली-सी, आँखें बन्द करने पर माँ का चेहरा सामने आ जाता। पहले ही वह बेक्तेमिर अका के रेल पटरियों से कुचले चेहरे को आँखों के सामने से नहीं हटा पा रहा था। अब दो आदमियों—बेक्तेमिर अका और माँ के चेहरे बारी-बारी से उसे दिखाई देते रहते।

न जाने क्यों अचानक भयानक सन्नाटा छा गया। यह सन्नाटा कब तक छाया रहा —अक्बरअली नहीं जान सका। आँखें खोलकर देखा तो वह अभी तक वहीं पर था, अपनी माँ की लाश के पास। गर्मी की धूप आग उगल रही थी, खिड़की-दरवाज़े सब खुले, घर में लोगों की जमघट थी, फिर भी सन्नाटा। शायद वह रात ढलने तक इसी तरह बैठा रहा था। यह लोग कारख़ानेवाले, मुहल्लेवाले, पड़ोसवाले थे। अक्बरअली के लिए इन में बहुत से लोग अपरिचित थे। शायद शराफ़त ख़ाला के नाते-रिश्तेदार, परिचित लोग होंगे। स्वर्गीय माँ के परिचित बहुत थे। अक्बरअली के एक भी नहीं। कारख़ाने से आया कोई अपना शोक प्रकट कर रहा था। कोई ढाढ़स दे रहा था। मुहल्लेवालों में से एक मुखिया बना था। उससे अक्बरअली की कभी बातचीत नहीं हुई थी। कुछ दूर पर अब्दुसमद अपने साथियों के साथ खड़ा था। वे सब गहरे शोक में थे। शराफ़त ख़ाला की आख़िरी ख़्वाहिश से वाक़िफ़ होकर कोई कार लाने तेज़ी से अड्डे की ओर चला गया। कोई जनाज़े की दस्तावेज़ ठीक

करने में व्यस्त था। कोई कहीं फोन कर रहा था। इन सारी चीज़ों को अक्बरअली लापरवाही से, ज़मीन की ओर ताकते अवाक्-सा हाथ जोड़े निश्चल खड़ा था। मानो माँ की मृत्यु उसके जीवन में कोई ख़ास मायने नहीं रखती हो। शोक की गहरी परछाई भी नहीं मानो आगे इससे भी महत्वपूर्ण, इससे भी भारी मुसीबत उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। सचमुच, लेकिन कौनसी मुसीबत, उसे मालूम नहीं था।

जब जनाज़ा नीचे लाया गया, अक्बरअली ने एक कोने में खड़ी हदिया को देखा। उसका ख़्याल था, चाहे क्षण भर के लिए ही, उसे अक्बर-अली के दुख में ज़रूर शरीक होना चाहिए, क्योंकि शराफ़त ख़ाला के रोगशय्या पर पड़ने का सब से पहला कारण वही थी? अब वह इस तरह खड़ी थी मानो मन का यह भेद खोलने की उसकी हिम्मत नहीं हो पा रही हो।

लड़की को देखकर अक्बरअली स्तब्ध रह गया। वह उसकी ओर बढ़ा भी लेकिन पाँव टस से मस नहीं हो रहे थे। क्या करे, उसके पास जा-कर सारी बातें बता दे? पर अब इस से क्या फ़ायदा? अब वे कभी साथ नहीं हो सकेंगे।

हाँ, यही ठीक होगा, वह कुछ न जान पाये। अगर सचाई जान गयी तो यह जुदाई उसके लिए एक मामूली-सी मुसीबत से छुटकारा मिलने का साधन बन जायेगी। रहने दो, वह भी तो जुदाई का ग़म महसूस करे।

अक्बरअली लड़की के पास नहीं गया। मुड़कर कार के पास चला आया। कार के पायदान पर पाँव रखकर वह ऊपर, अपनी माँ के पास जा बैठा। उसके पीछे-पीछे कुछ और लोग भी ऊपर चढ़ आये। जान-पह-चान, नाते-रिश्तेदार शराफ़त ख़ाला को अंतिम रास्ते छोड़ने, उनकी अंतिम ख़्वाहिश पूरी करने को कटिबद्ध थे।

धूप तेज़ हो रही थी। कार के बहुत धीमे से चलने के कारण चलती हवा भी धूप की गर्मी कम नहीं कर पा रही थी। पीछे से दौड़ती कारें शोर मचाती आगे गुज़र जातीं, उनके पीछे से हलकी-सी धूल उठती, रास्ते के किनारे उगती घास हिल पड़ती। जौ और गेहूँ कट चुके थे, पहाड़ियाँ पीली-पीली दिखाई दे रही थीं। आगे कभी काला, कभी भूरा रंग धारण करती पवर्तमालाएँ नज़र आती थीं। वहाँ किसी दर्रे में शादा-साय है।

अक्बरअली ने कभी सोचा भी नहीं था कि वह कभी जीते-जी वहाँ लौटेगा। अब भी वहाँ जाने की उसकी इच्छा नहीं हो रही थी, जबरन चाहता तो नहीं भी जा सकता था, लेकिन एक इच्छा वहाँ जाने की भी हो रही थी। यह सब उसे तक़दीर का खेल मालूम पड़ रहा था। बदक़िस्मती उसे वहाँ खींच रही थी। "माँ के आख़िरी शब्द! माँ के आख़िरी शब्द..." वह मन ही मन दुहराता रहा जैसे किसी अपराध को क़बूल कर रहा हो।

अभी तक सब चुप थे।

अक्बरअली अपनी माँ के बारे में सोचने की कोशिश कर रहा था पर शराफ़त ख़ाला का मृत शरीर उसकी आँखों के सामने से नहीं हट पा रहा था। अक्बरअली कार के अन्दर किनारे पर लगे तख़्ते पर अपना सिर रखकर दूसरी चीज़ों के बारे में सोचने लगा। "...काश हम कर पाते। दोनों मिलकर साथ-साथ कोशिश करते तो ज़रूर सफल होते। उसी कंक्रीट से चिपके डिब्बे को अगर हम दोनों मिलकर खींचते..." अचानक उत्तेजनावश उसकी नीली नसें उभर आयीं। बेक्तेमिर अका की निकली आँखें नज़र आयीं। फिर उनका कुचला, रक्त से सना चेहरा भी सामने आया। अक्बरअली तख़्ते पर सिर टिकाकर धीमी-धीमी आवाज़ में क्रन्दन करने लगा। साथ के आदमी उसके प्रति सहानुभूति से भरकर एक-दूसरे की ओर देखने लगे। हर एक ढाढ़स देने की कोशिश करता।

पाँच बजे वे शादासाय पहुँचे। अक्बरअली ने अपना बचपन यहीं बिताया था लेकिन इसके बावजूद यह नहीं जानता था कि गाँव का क़ब्रिस्तान कहाँ है। अब्दुसमद जो यहाँ पहली बार आया था, बिना भूले-भटके उसने सबको ठीक जगह पर पहुँचा दिया।

क़ब्रिस्तान पुल के नज़दीक बायीं ओर शादासाय के ठीक ऊपर था। यहाँ के पॉपलर व सेल के पेड़ अभी से पीले पड़ गये थे। शीघ्र शरदागमन के कारण नहीं बल्कि पानी की कमी से। पैरों के नीचे की ज़मीन पत्तों से ढँकी थी, काफ़ी दूरी पर बनी नहर से आ रहे हवा के झोंकों से पीले पत्ते झड़-झड़ कर गिर रहे थे। शाम के शान्त अंधेरे में पैरों के नीचे पीले पत्तों की खड़खड़ाहट दूर तक सुनायी देती थी। पॉपलरों का वन क़ब्रिस्तान के इस दमघोंट सन्नाटे में और भी भयानक, और भी रहस्यमय मालूम होता था।

अक्बरअली को याद आया: जब वह बच्चा था, यहाँ कोई पेड़-पौधा नहीं था। शादासायवाले कोपकरि* आयोजित करते थे। ये दरख़्त बाद में लगाये गये थे, तब नहर के इस किनारे सिर्फ़ कूबदार शहतूत ही थे। अक्बरअली को दोस्तों के साथ कपड़ा बिछाकर तूत के फल गिराने का दृश्य याद आया। नहर के किनारे से पुदीने की ख़ुशबू आ रही थी, इस से मस्त होकर कोयलें गा रही थीं। नहर की उस ओर गहरा कन्दरा था। लोग कहते थे, इस कन्दरे पर पिशाचिनें रहती हैं। बच्चों को वहाँ खेलने की इजाज़त नहीं दी जाती थी। अक्बरअली को भी उसके बाप ने कई बार डाँट कर बुला लिया था।

उसके पिता शादासाय में गाड़ियों की मरम्मत करते थे। उनका अहाता गाड़ीसाज़ के औज़ारों और गाड़ियों से सदा ठसाठस भरा रहता था। उसका बाप सेल के पेड़ की नरम लकड़ी को अधबुझी राख में डालकर ख़ूब तपाता, चिकना करने के लिए तराशता। अक्बरअली उनके पास बैठा रस्सी बुनता, सरेस तैयार करता और माँ के ओखली में मक्का पीसकर लकड़ी के प्याले में गुड़ के साथ डाल देने की बेताबी से प्रतीक्षा करता था। गिरानी के समय थे न। अक्बरअली पिसे मक्के को बहुत पसन्द करता था।

फिर पहाड़ में खान की खुदाई शुरू हुई, नहर के दूसरे किनारे पर मुसाफ़िरख़ाना और न जाने कौन-कौन-सी इमारतें बनायी गयीं। उसके पिता ने गाड़ीसाज़ी छोड़ दी और खान में काम करना शुरू कर दिया। लड़ाई में जब उनकी मृत्यु हो गयी तो अक्बरअली भी खान में ही काम करने लगा।

अब यह सारी बातें उसे अतीत की परछाइयों-सी महसूस हो रही थीं। शादासाय का पानी आज भी शोर मचाते बह रहा है पर उसका बचपन नहीं रहा था। पहाड़ियों के ऊपर एक अनजाने शहर की बिजलियाँ जल रही हैं पर यहाँ क़ब्रिस्तान में सन्नाटा ही सन्नाटा...

अक्बरअली इस तरह सोच में डूबा था कि उसने कुछ महसूस तक नहीं

---

* कोपकरि – अधिकांश मध्य एशियाई इलाक़ों में सुन्नत के मौक़े पर कोपकरि यानी घुड़दौड़ का आयोजन होता है। विजेता घुड़सवार क़ीमती पुरस्कार पाता है। – सं.

किया कि कब उसने तेज़ी से झुककर हाथ में मिट्टी ली और नयी क़ब्र पर डाल दी। तभी उसे अचानक महसूस हुआ कि वह अपनी माँ से जुदा हो गया है। उसका सारा शरीर काँप उठा और घुटनों के बल बैठकर वह सुबकने लगा।

अब्दुसमद, केंजा और दूसरे लोग उसके पास कुछ देर तक खड़े रहे। फिर अब्दुसमद यह महसूस करके कि अक्बरअली अभी अपनी माँ को छोड़कर कहीं नहीं जाएगा, उससे बोला:

"अन्धेरा छा गया, अक्बरअली अका। अब हमें इजाज़त दीजिये, हमें लौटना है। आप शायद दो-चार दिन यहाँ रहेंगे। हम दुआ करते हैं, आप ठीक से रहें।"

वे चले गये। कार की आवाज़ शादासाय के शोर में डूब गयी लेकिन अक्बरअली वैसे ही सिर झुकाये बैठा रहा।

अक्बरअली जीवन से निराश हो चुका था। उसका हृदय भावशून्य था। वह मना रहा था, फौरन उसकी भी जान निकल जाये और वह अपनी माँ के पास जा पहुँचे। काश, ऐसा होता तो वह अपने को ख़ुशक़िस्मत मानता। सच में अब ज़िन्दा रहने से क्या फ़ायदा? कहाँ जायेगा? किसी से सलाह मशविरा करने की उसमें हिम्मत नहीं थी। उसका जन्मस्थान भी आज उसके लिए बेगाना हो चुका था। यहाँ के लोग भी... सब, सब लोग उसके लिए पराये हो चुके थे। दुनिया में अकेली माँ ही तो उसकी अपनी थी और आज वह भी मिट्टी में पड़ी है।

जब अक्बरअली ने क़ब्र पर टिका अपना सिर ऊपर उठाया, चारों ओर काफ़ी अंधेरा छा चुका था। पैरों के नीचे सूखे पत्तों की जब खड़खड़ाहट होती, वृक्षों की शाखों पर बैठे पक्षी घबड़ाकर बेचैन हो उठते। अक्बरअली पॉपलर के पेड़ों, क़ब्रों पर रखे पत्थरों से ठोकर खाते आगे बढ़ रहा था। उसे कोई पगडंडी मिल जाने की उम्मीद थी। किसी भय से वह पसीने-पसीने हो गया था। किसी चीज़ में फँसकर उसकी आस्तीन फट गयी। सूखी घास से ढँकी ढूहें तथा चट्टानें हर किसी के दिल को घबड़ा देती थीं। आख़िरकार पगडंडी मिल गयी, दूर से फाटक दिखाई दिया। एक मोड़ पर किसी आदमी की छाया देखकर उसे ठंडा पसीना आ गया। आदमी बहुत बड़ा था, ऐसा मालूम हो रहा था मानो वह वृक्षों के आड़ में, अंधेरे में छुप रहा हो। बेतरह भयभीत होने के बाव-

ज़ूद कोई अजनबी शक्ति उसे ठीक उसी ओर खींचे ले जा रही थी।

"किस लिए डरूँ? अब मुझे डरने की क्या ज़रूरत है," बड़बड़ाते हुए वह उसी ओर चलने लगा। आदमी की छाया दरख़्त के पीछे कुछ देर के लिए ग़ायब हो गयी। उससे अक्बरअली को शक्ति मिली। दरख़्त के पीछे से सफ़ेद-सा क्षितिज दिखाई दिया। इसी क्षण पाँच क़दम आगे वही छाया फिर नज़र आयी। अब वह बग़ल की ओर से दिखाई दे रहा था। अक्बरअली उसकी ओर देखते रुक गया और पीछे हटा। एकाएक... मानो सारा आसमान हिल उठा! या तो वह चीख़ पड़ा – उसे मालूम न था, पर उसका मुँह खुला का खुला रह गया। वह स्तब्ध खड़ा रहा। फिर हाथों से उसने अपनी आँखें बन्द कीं, खोलीं – उसके सामने उसका प्रतिरूप, "स्वयं वह" खड़ा था।

वहाँ से वह किस तरह भाग निकला, उसे कुछ नहीं पता चला। एक बार वह किसी फाटक से भी जा टकराया था। अच्छा हुआ, कहीं गिरा नहीं। या क्या पता, गिरकर उठ खड़ा हुआ हो? कितनी देर नीचे पड़ा रहा? क्या वह बोल पाता है? बोलकर देखने के लिए उसके पास कोई नहीं। हाँ, यूँ बोलकर देखे तो क्या होता? उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो जीभ सूजकर मुँह में समा नहीं पा रही हो, पर, नहीं, वह तो चल रही है।

"झूठ! झूठ! बस अब मुझे किसी से डरने का कोई कारण नहीं है!" अचानक वह चिल्लाया।

अंधेरे में क़ब्रिस्तान गूँज उठा, नहर की उस तरफ़ से "हे, हे" की प्रतिध्वनि आयी। अक्बरअली ख़ुद अपनी आवाज़ सुनकर और भी डर गया। "मैं क्यों चीख़ रहा हूँ?" उसने सोचा। "क्या यह मेरे पागल होने की पहचान नहीं? जो मुझे दिखाई दिया, क्या वह सचमुच का आदमी था? वह तो मैं ख़ुद था? या कहीं ऐसा तो नहीं कि जब आदमी पागल होता है, इसी तरह उसे अपनी छाया आप दिखाई देती है? मैं ख़ुद..."

जी हाँ, सच में वह ख़ुद था। वही नुकीली नाक, गाल उभरे, पतला मुँह... पर काला! और पीछे मुड़कर देखने को अक्बरअली की हिम्मत नहीं हुई। लड़खड़ा-लड़खड़ाकर वह मुख्य मार्ग पर पहुँचा। वह अपनी

हथेली माथे पर रखे शहर की ओर चल पड़ा जहाँ बिजलियाँ चमक रही थीं। उसकी पेशानी सर्द थी। पर उसने इस पर विश्वास नहीं किया। "बुख़ार! नहीं, मैं पागल नहीं हूँ। पर बुख़ार है। सर्द बुख़ार!" वह लगातार बड़बड़ाये जा रहा था, काफ़ी देर बाद उसने पीछे मुड़कर देखा। अस्फाल्टवाली सड़क कहीं से पड़ती बिजली की रोशनी से चमक रही थी। वह पुल से बहुत दूर जा चुका था। "अरे आदमी अपने को आप भी देख सकता है, क्यों? नहीं! मुझसे कोई गड़बड़ हो रहा होगा। मुझे कहीं जाकर आराम करना चाहिए। मैं ज़रूरत से ज़्यादा सोचता रहा हूँ। मेरा भेजा थक गया होगा। अब कुछ नहीं सोचूँगा। जाकर लेटूँगा। चाहे कहीं भी हो। तौबा, सारे दुख, सारी पीड़ाएँ मुझे ही भुगतनी थी। बस मुझे पागल होकर गली-कूचों में भटकने की कमी थी। नहीं, अब नहीं सोचूँगा। बेक्तेमिर को भी, माँ को भी। हृदिया को भी, ख़ुद को भी। ख़ुद को भी? वह "ख़ुद" जो मुझे क़ब्रिस्तान में मिला था? हाँ, हाँ, अब कभी नहीं सोचूँगा। किसी को नहीं; बहुत हुआ!" सचमुच वह सब कुछ भूल गया। सीधा मुसाफ़िरख़ाना में जा पहुँचा। गलियारे में ऊँघती बड़तोंदी औरत ने हाथ बढ़ाकर उसका पासपोर्ट लिया। उसे कमरे की चाबी थमाकर वह फिर ऊँघने लगी।

अक्बरअली कमरे में आया और बिना कपड़े उतारे खाट पर बैठ गया। खिड़कियाँ बिलकुल ख़ुली थीं, बाहर से शादासाय का शोरग़ुल आ रहा था।

तन-मन से थके-हारे अक्बरअली को उसके उलझे विचार कहीं दूर ले गये, उसे पता ही न चला, वह कब सो गया। सुबह थोड़ी ठण्ड महसूस होने पर उसकी नीन्द खुल गयी।

अब वह काफ़ी स्वस्थ महसूस कर रहा था। रात के हादसे को याद करके वह होंठों के कोने से मुस्करा उठा पर कुछ उदासी के साथ। जब आदमी अधिक थक जाता है, पागल हो उठता है। अब क्या करना है? किससे मिलना है? मिलना? क्यों? अक्बरअली अब किसी से मिलने या बातचीत करने को तत्पर नहीं। उसका ऐसा कोई कार्यक्रम भी नहीं था। खाट पर बैठे-बैठे उसने बढ़ी दाढ़ियों पर हाथ फेरा। भूखा होने के बावजूद उसने सिगरेट सुलगा ली। जब किसी ने दरवाज़ा खटखटाया, वह चौंककर उठ खड़ा हुआ। आदमी की आवाज़ सुनते ही उसे दुबारा

कल जैसी थकान हो आयी। मन सूना-सूना लगने लगा। शरीर निढाल हो गया।

दरवाज़ा कलवाली औरत ने खटखटाया था। अक्बरअली को देखकर वह कुछ घबड़ा-सी गयी और बनावटी ढँग से उसका अभिवादन किया। उसने मेज़ पर मुसाफ़िरख़ाना का बिल रख दिया और उसे चुकता करने के लिए कहकर चली गयी। अक्बरअली ने बिल हाथ में लिया। वे दो थे। औरत ने दो काग़ज़ छोड़े थे। क्यों? एहतियात के तौर पर? अगर एक की खानापूरी में गड़बड़ी हो जाये तो दूसरे को काम में लाने के लिए?

अब वह क्या सोचने लगा? यह भी कोई गंभीरता से सोचने की बात है? यही तो मुसीबत थी। भेजे में सोचने लायक़ कोई बात ही नहीं आ रही थी। बात क्या है? क्या करना है? यहाँ वह बैठा किस लिए है? बिल... तो चलो, बिल की ही खानापूरी कर दें...

उसने असमंजस में ही मुड़े बिल को मेज़ पर रखकर हथेली से चौरस किया और हांथ में पेंसिल उठा ली। काग़ज़ पर आँखें टिका दीं। बिल के ऊपर लिखा था: "अक्बराबाद गाँव का मुसाफ़िरख़ाना।" अक्बरअली पढ़कर मुस्कुराया, फिर ध्यान से पढ़ने के अन्दाज़ में देर तक काग़ज़ को घूरता रहा। उसने आँखें मिचमिचायीं। मुड़े काग़ज़ को हथेली से ठीक करके फिर से पढ़ा। दूसरे बिल से मिलाकर पढ़ा। अब उसे विश्वास हो गया, यह कोई सपना नहीं। ज़र्द पड़कर वह बैठ गया। काग़ज़ों के ऊपर स्पष्ट लिखा था: "अक्बराबाद गाँव का मुसाफ़िरख़ाना।" अक्बर... अक्बराबाद... अक्बराबाद क्यों? शादासाय था न? नाम बदल गया है। बदल गया... इसी क्षण सामने रखे आइने में अपनी सूरत देखकर वह उठ खड़ा हुआ। आइने के पास चला आया। अचानक ही वह पसीने से तर हो उठा, घुटने काँपने लगे। शीशे में से बढ़ी दाढ़ी, उभरे गाल, बेरंग, एक जंगली आदमी आँखें फाड़े उसकी ओर ताक रहा था।

"यह दूसरा, यह दूसरा!" चीख़ पड़ा अक्बरअली। उसे कल क़ब्रिस्तान में मिले आदमी की छाया याद हो आयी। वह अक्बरअली से एकदम मिलता-जुलता था, प्रतिरूप।

उसने महसूस किया, अभी उसका कपाल फट जायेगा, इस भय से वह गलियारे में निकल पड़ा। बड़तोंदी औरत अच्छी क़िस्म की हुसैनी अंगूर के साथ चाय पी रही थी। वह चौंककर उठ खड़ी हुई।

"ठहरिये, ठहरिये . . ." अक्बरअली ने कहा। पर उसकी जीभ ही नहीं हिली। उसे हाथ से अजीबो-ग़रीब हरकतें करते देख औरत डर गयी। वह बिना कुछ बोले तेज़ी से बाहर की ओर भाग चला।

इस तरह वह भागता ही चला गया।

उसे लग रहा था मानो कोई भयानक-सी चीज़ उसका पीछा कर रही थी, अस्पष्ट ख़्याल आगे खींचे ले जा रहे थे। उतरे रंग, काँपते शरीर के साथ वह क़ब्रिस्तान के फाटक के पास पहुँच गया। कुछ देर तक फाटक के सर्द लोहे से चिपका वह खड़ा रहा। फिर दुबारा दौड़कर लुढ़कते-लुढ़कते वह उस जगह जा पहुँचा, जहाँ कल रात उसे एक काली छाया दिखी थी। उसके पाँव काँप रहे थे, आँखें मलते-मलते वह मूर्त्ति को घूरता रहा, लेकिन कुछ दिखाई नहीं दिया।

थोड़े पीले पड़ते सेल के पेड़ की छाया में, एक क़ब्र के ऊपर छोटी-सी टिन की मूर्त्ति थी। कल शाम इसी की परछाँई उसे काली-काली, विशाल-सी दिखाई दी थी।

अक्बरअली की निगाह सब से पहले तैरते बादलों पर पड़ी। फिर सेल की उस शाखा पर जो मूर्त्ति पर छाया डाल रही थी। इसके बाद उसकी निगाह खान के एक जवान मज़दूर की मूर्त्ति पर पड़ी जो उसके बचपन के चेहरे से मिलता-जुलता था।

"अक्बरअली . . ." वह इस तरह बुदबुदाया मानो वह कोई और आदमी हो।

इसी क्षण छः पायोनियर आकर मूर्त्ति के पास क़तारों में खड़े हो गये।

क़तार के एकदम सिरे पर खड़ी एक लड़की अपना लाल स्कार्फ़ ठीक करके आगे निकल आयी और क़ब्र का एक चक्कर लगाकर उसने अपने हाथों में थामे फूलों को मूर्त्ति के नीचे आहिस्ते से रख दिया। सभी पायोनियरों ने मौन खड़े होकर मूर्त्ति को सलाम किया।

इसके बाद वे तितर-बितर हो गये पर उनकी नज़र एक छोर पर खड़े आदमी पर पड़ी। उन्होंने उसकी ओर मुँह बनाकर देखा, जैसे वह कोई शत्रु हो। अक्बरअली की हालत बहुत ख़राब थी, उसकी आँखें शान्त नहीं थीं, उसका चेहरा भी, कुरता थी मैले, जूते पर कल की क़ब्र की मिट्टी चिपकी थी। एक छोटी-सी लड़की ने उसकी तरफ़ भयानक ढँग से देखकर कहा :

"यहाँ से चलते बनो!" फिर मूर्त्ति की ओर गर्व से दुबारा नज़र डालकर वह अपनी सखियों के पीछे दौड़ पड़ी।

अक्बरअली चौंक पड़ा, न जाने उस लड़की की आवाज़ से या उसके तुरन्त ही यहाँ से दौड़कर चले जाने से। उसने चाहा, लड़की के पीछे से "मैं अक्बरअली हूँ" कहकर चिल्लाये, पर मुँह से आवाज़ ही नहीं निकली। इसके बजाय वह बुदबुदाया: "मैं ज़िन्दा हूँ, मैं ज़िन्दा हूँ।"

जब आदमी ख़ुद अपने आपको घूरे तो बड़ा अजीब-सा लगेगा जैसे वह दूसरी दुनिया से आया हो। उसी तरह अकबरअली भी अपने होश में नहीं था, पर उसने अपनी मूर्त्ति को हाथों से छूना चाहा। सूखी घास रौंदकर आया और अपनी टिन की मूर्त्ति की ओर हाथ बढ़ाया। वह आगे एक डग भरने को ही था कि क़ब्र की ढूह पर लुढ़क पड़ा। क़ब्र... अक्बरअली की क़ब्र... थोड़ी धँस भी गयी थी।

"मैं ज़िन्दा हूँ, मैं ज़िन्दा हूँ," उसके दिमाग़ में यही ख़्याल बार-बार आकर उसे उत्तेजित कर रहे थे।

पर ख़ुद अपनी मूर्त्ति पर हाथ फेरते हुए उसने बुदबुदाना जारी रखा:

"अक्बरअली ग़ाज़ियेफ़..."

पत्थर गढ़कर उस पर सोने से लिखा गया था।

अक्बरअली ग़ाज़ियेफ़
(१९३१ – १९६०)
दुर्घटना में अपने खान के
मज़दूरों की रक्षा करते समय
दिग्गजों की मौत मरा।

अक्बरअली अब किसी भी चीज़ पर हैरान न होने का आदी हो चुका था। उसकी हैरान होने, फ़िक्र करने की शक्ति विलीन हो चुकी थी। अगर उसके माँ-बाप भी ज़िन्दा होकर सामने आ जायें तो उसे तनिक भी आश्चर्य नहीं होगा। वह अपना एक हाथ प्रस्तर मूर्त्ति पर टिकाये स्तब्ध रह गया, आँखों के सामने धुआँ-सा हो गया। काफ़ी देर बाद सोने के अक्षर फिर से उसकी आँखों के सामने दिखाई दिये: "अक्बरअली ग़ाज़ियेफ़... मर गया।"

उसने फिर अपनी आँखें बन्द कर लीं। उसके दिमाग़ के किसी छोर

में एक हल्की-सी उम्मीद की किरण मौजूद थी, "मुझे दिखाई दे रहा है, महसूस हो रहा है, अभी मैं अपनी आँखें खोलूं तो मेरी मूर्त्ति की जगह बेक्तेमिर अका की तस्वीर दिखायी देगी।"

नहीं, उसकी मूर्त्ति अपनी जगह पर ही थी। उसने अक्षरों पर अपना हाथ फेरा, उनको काँपती उँगलियों से खरोंचकर मिटा देने की चेष्टा की। सोने के अक्षर दमक रहे थे। फिर अक्बरअली ने अपनी कनपटी थाम ली। इसी क्षण उसकी नज़र अपनी उँगलियों पर पड़ी – ख़ून, उसके नाख़ून टूट गये थे।

ख़ून का धब्बा देखकर वह होश में आया, ख़ून ने उसे बहुत कुछ याद दिलाया। ख़ून, नमी ... अंधेरी खान। भयानक शोर, एक चुभती जंगली आवाज़ ... कराहना ...

अक्बरअली ख़ूनवाली उँगली देखकर भाग जाने को हुआ, कुछ आगे बढ़ा, फिर रुक गया। "अरे यह तो बेक्तेमिर अका हैं, न। बेक्तेमिर अका की मृत्यु हो चुकी है। लोगों की भलाई के लिए ... कुचल गये!"

वह सूखी घास पर बैठकर रोने लगा। देर तक रोया, जब थोड़े होश में आता, दुर्घटना फिर से उसे याद आने लगती, स्पष्ट रूप से।

यह लो, खान की बिजलियाँ बुझ गयीं, सारे इंजन, मशीनें रुक गयीं, अपने-अपने हाथों में लालटेनें थामे मज़दूर खान के अन्दर से निकलने लगे। दस, तीस, सत्तर, सौ आदमी ... उन्हें ट्रांसफ़ॉर्मर के पास पड़ा एक मुर्दा मिल जाता है। वे उसे घेर लेते हैं, लोहे की टोपियाँ उतारते है। अंधेरे में दीर्घकालीन सन्नाटा। इस आदमी का, जिसने सैकड़ों मजदूरों के जीवन की रक्षा की थी, नाम कोई नहीं जानता। उसका चेहरा इस तरह कुचला हुआ था कि पहचाना नहीं जा सकता था। फिर क़मीज़, क़मीज़ की जेब से कार्ड और पासपोर्ट मिलते हैं।

अक्बरअली को बेक्तेमिर अका का सुखमय चेहरा याद आया, जब उन्होंने खान के मज़दूरों का कपड़ा पहना था। अक्बरअली भी प्रफुल्लित हो उठा था।

पासपोर्ट में लिखा था: अक्बरअली ग़ाज़ियेफ़। सभी जगह आश्चर्यजनक दुखपूर्ण मीटिंगें होने लगीं। सभी लोगों के मुँह पर बस अक्बरअली का ही नाम था। बूढ़े उसको आशीर्वाद दे रहे थे, बच्चे – मज़दूरों के बच्चे उसके बलिदान की प्रशंसा में मीटिंगें करते। फिर मूर्त्ति बनी, संग्रहालय

खोला गया ... खान-मज़दूरों का गाँव "अक्बराबाद" कहलाने लगा। "अक्बर" नाम सुनते ही माताओं की आँखें सजल हो उठतीं। अक्बरअली का नाम पवित्र था।

पर यह अक्बरअली कौन है? वह एक डरपोक है, वह एक कीड़ा है जो आड़ों में छुपता, चलता-फिरता है। अपना गंदा, शाप-ग्रस्त शरीर और जान की फ़िक्र करते, दोस्ती, मुहब्बत, ममता जैसे पवित्र भावों की तिलांजलि दे अब क़ब्रिस्तान में बैठा है। ज़िन्दा आदमियों की तो क्या बात, बग़ल की क़ब्रों को भी मुड़कर देखने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा है।

"लोग कितने सीधे-सादे, कितने साफ़दिल होते हैं; उनके अरमान कितने पवित्र होते हैं। नहीं, उनके बीच रहने का मुझे कोई हक़ नहीं। अब मुझे कहाँ जाना है? बेक्तेमिर अका! एक अपरिचित आदमी ... आपकी जगह मुझे होना चाहिए था। अक्बरअली ने क़ब्र के पत्थर से अपना सिर उठाया—अब फिर से वह अपने बारे में सोचने लगा था। क्या सचमुच इसके अलावा मैं कुछ नहीं कर पाऊँगा? कर पाता, वही एक क्षण पार करता, ज़रूर कर पाता। पर अब ... अब देर हो चुकी है। क्षणिक भूल का यही फल है। एक क्षण का पतन ... उसकी क़ीमत सारी उम्र में भी नहीं चुकायी जा सकेगी। अक्बरअली ने अपनी मूर्त्ति की ओर देखा, "अलविदा, बेक्तेमिर अका!"

अक्बरअली लड़खड़ाता, आँखें ज़मीन पर गड़ाये, क़ब्रिस्तान के दरवाज़े से बाहर निकल आया। मुसाफ़िरख़ाने तक उसका सिर उसी तरह झुका रहा।

और एक दिन खाट पर यूँ ही लेटा रहा। वह सोया नहीं, सपना भी नहीं देखा, कोई चिन्ता भी नहीं थी। उसके लिए अंधेरा और उजाला, सन्नाटा और शोरगुल सब कुछ बराबर था। लेटते हुए उसने कोई चीज़ खायी, सुराही से पानी पिया! फिर कहीं चल पड़ा।

वह सीधा अपने घर गया। यहाँ न जाने क्यों पायोनियरों की भीड़ थी, बहुत से लोग आ-जा रहे थे। अक्बरअली फुटपाथ तक भी नहीं गया बल्कि तेज़ी से मुड़कर कहीं चल पड़ा।

रास्ते में कोई परिचित नहीं मिला। औरत और बच्चे न जाने क्यों उससे कुछ दूर से ही कतराकर निकल जाते। सिर्फ़ यहाँ के दरख़्त, नाले, पुल ही परिचित थे।

यहीं, इसी रास्ते से वह वर्षों पाठशाला जाया करता था और बाद में काम पर भी। पर आज, सब कुछ, यहाँ तक कि नाले के किनारे उगे पुदीने भी बेगाने हो गये थे। सारा संसार बेगाना था।

न जाने क्यों वह खान के दफ़्तर में आ धमका, फिर गाँव परिषद में। सभी जगहों पर, बोर्डों पर उसे अपना नाम मिला। वह पीछे लौटा, ठीक उसी तरह जैसे कोई आवारा कुत्ता पिट कर दुम दबाये भाग खड़ा होता है।

वह लोगों से डरने लगा था।

आज शाम को पेयजलवाले कमरे में उबलते पानी से उठ रही भाप के बीच "मैं आप को चाय की प्याली दूँ ?" कहती स्नेहपूर्ण आवाज़ सुनाई दी। ऐसी आवाज सुनने को वह न जाने कितने ही दिनों से तरस रहा था। यह आवाज किसी दयालु इनसान की थी...

"मुझे कोई नहीं पहचान रहा है, बाबा। कोई नहीं पहचान रहा है," कहते-कहते अक्बरअली रो पड़ा।

आँखें फाड़-फाड़कर देखते बैठा अज़ीमजान को भी ऐसा महसूस हो रहा था जैसे अक्बरअली इस दुनिया का आदमी नहीं। उसका चेहरा फीका था, दुबला, बहुत अन्दर तक धँसी आँखों में कोई रोशनी नहीं थी। ताकता सबको था लेकिन दिखाई कोई नहीं देता। इतनी बड़ी कहानी के बाद भी वह अज़ीमजान के लिए बेगाना ही बेगाना था।

गहरा सन्नाटा छा गया। कब की आधी रात बीत चुकी थी। हवा शीतल थी। खुली खिड़की से शादासाय की शीतलता के साथ-साथ कहीं से पकी बिही की सुगंध भी अन्दर आ रही थी। बिजली के क्षीण प्रकाश में आचिल बाबा के झुर्रीदार माथे पर पसीने की बूँदें चुहचुहा आयी थीं।

बीचवाली मेज़ पर मुसाफ़िरख़ाने के भरे काग़ज़ात पड़े थे। इस सन्नाटे में क्या करें, अज़ीमजान के दिमाग़ में कुछ भी नहीं सूझ रहा था। इस लिए वह मेज़ पर पड़ी क़लम लेकर काग़ज़ पर लकीरें खींचने लगा। रूसी अक्षरों में उसने दो-तीन बार "अक्बराबाद" शब्द लिखा। कितनी अजीब बात थी, वह इस समय अक्बराबाद में ही था। अपनी मौसी के बेटे अक्बरअली का शहर... काफ़ी ख़ूबसूरत शहर... ख़ूबसूरत फ़साना भी है उसका... भेदपूर्ण अनंतता है... (इसी पल अज़ीमजान की

ग्राँखें ग्रक्बरग्रली पर पड़ीं) सिर्फ़ यही ग्रादमी . . . कमरे में ग्रभी भी सन्नाटा था। रात भी गहरी सोच में डूबी थी मानो उसने इन तीन ग्रादमियों के बीच का भेद न खोलने की ठान ली हो। परन्तु ग्राचिल बाबा इस सन्नाटे को भंग करते हुए बोल उठे:

"समझ लो, मेरे बेटो, जो ग्रादमी इनसानों के लिए ग्रपनी जान क़ुर्बान देगा वही चिरकाल तक ग्रमर रहेगा।"

उन्होंने शायद ग्रपने मन की बात पूरी तरह खोलकर कह दी थी पर ग्रज़ीमजान की समझ में कुछ नहीं ग्राया। ग्राख़िर घटनाचक्र ने तो इसका एकदम उल्टा ही ग्रर्थ सिद्ध किया था: इनसानों के लिए ग्रपनी जान बेक्तेमिर ने दी है। वह मर चुका है, उसका नामोनिशान तक नहीं रहा। जो जीवित हैं—वह दूसरे हैं . . .

इसके बावजूद ग्राचिल बाबा की यही बात ग्रज़ीमजान को पसन्द ग्रायी: "जो इनसानों के लिए ग्रपनी जान क़ुर्बान देगा, वही चिरकाल तक ग्रमर रहेगा।" यही वाक्य उसने काग़ज़ के एक छोर पर भी लिख दिया ग्रौर फिर से पढ़ा।

ग्रक्करग्रली ग्रपनी ग्राँखें शून्य में टिकाये बैठा था। जब ग्राचिल बाबा "ग्रब सोना चाहिए" कहकर उठ खड़े हुए तो वह उनकी ग्रोर निहारता रहा। उसकी भयभीत दृष्टि मानो कहती प्रतीत हो रही थी: "यही सब ग्राप मुझे बतानेवाले थे? ग्रब मुझे क्या करना है?"

"सुबह में दिमाग़ साफ़ रहता है। इसका कोई न कोई उपाय हम ढूँढ़ निकालेंगे। ग्रब देर हो चुकी है; तुम्हें सोना चाहिए।"

जब वह ग्रपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते उठ खड़े हुए तो उनकी विशाल काठी से कमरा भर गया-सा मालूम हुग्रा। उन्होंने कोई सलाह नहीं दी तो ग्रक्बरग्रली को यह बात घाव पर न छिड़कने-सी लगी। उस का रंग पीला पड़ गया। उसके साथ कमरे में ले रहने से घबड़ाकर ग्रज़ीमजान भी नाना के पीछे हो लिया।

दोनों कमरे में जाकर सो गये। कहीं को मुर्ग़ा रुँधी ग्रावाज़ में चिल्ला उठा।

"वह भूल से चिल्ला रहा है। ग्रभी रात ही है, सो जाग्रो," ग्राचिल बाबा ने चिराग़ बुझाते हुए कहा।

पर ग्रज़ीमजान महसूस कर रहा था, नाना जी को नीन्द नहीं ग्रा

रही। वह करवटें बदल रहे थे। अकबरअली की मनहूस क़िस्मत से अब वह पूरी तरह प्रभावित हो चुके थे। कभी उनकी साँस रुक जाती और कभी वे गहरी साँस लेकर आह भर उठते थे।

एक बार अज़ीमजान ने जब सिर उठाया तो उसकी नज़र खाट पर बैठे आचिल बाबा पर जा पड़ी: वह सिर से पाँव तक सफ़ेद थे, दाढ़ी भी, कुरता भी, पाजामा भी। अब वह समझ गया था, आचिल बाबा अक्बरअली के पास से सोने के लिए उठकर नहीं आये थे।

"नाना जी, आपने उन्हें कोई सलाह तक नहीं दी?" अज़ीमजान ने उनके पास जाकर बैठते हुए कहा।

"मैं अपनी इस लम्बी उम्र में कभी इतनी भयानक स्थिति में नहीं पड़ा था," उन्होंने उत्तर दिया।

इसके बाद दोनों चुप हो गये। वे पौ फटने तक इसी तरह बैठे रहे। कभी-कभी आचिल बाबा के मुँह से बस यही शब्द फूट पड़ते थे:

"आराम ले, ख़ुद पर क़ाबू पाये।"

"आप कभी ऐसी बुरी स्थिति में नहीं पड़ेंगे, बाबा जी?" उनकी बग़ल में बैठा अज़ीमजान धीमे स्वर में बोलता। "आप... आप सब कुछ कर सकते हैं, आप मालिक हैं। मेरे ख़्याल मे तो क़िस्मत भी आपके हाथों में है। हमारी सहकारिता के मुख्य डायरेक्टर एक वृद्ध हैं। उन्होंने एक अत्यन्त सम्मानित पीर का मुरीद बनने का निश्चय किया। "मेरे पीर के छः हज़ार मुरीद हैं" कहते वह गौरव महसूस करते थे। उसी पीर को मैं ने भी देखा था। बड़ा कंजूस था वह। चरस भी पीता था। कार के नीचे दबकर मर गया।"

अज़ीमजान को खेद हो रहा था, वह यह सब बेकार की बातें क्यों बता रहा है। लेकिन उसकी बातें सुनकर आचिल बाबा ठहाका लगाकर हँस पड़े।

"पीर कार के नीचे दब गया?"

इस से उनमें जान आ गयी और वह उठ खड़े हुए। बाहर सुबह की लाली छा गयी थी। जब तक वे नहा-धोकर आये गलियारे में क़दमों की आहट भी सुनायी देने लगी थी। अपनी बाल्टियों से आवाज़ निकालते सफ़ाई करनेवाली औरत भी अपने काम में लग गयी।

नाना-नाती एक साथ अक्बरअली के दरवाज़े के पास पहुँचकर उसे

खटखटाने लगे। अधखुला दरवाज़ा भड़ाक से पूरी तरह खुल गया। अक्बरअली वहाँ नहीं था। कमरा जहाँ का तहाँ था: बेतरतीब, खिड़कियाँ खुली, बिस्तर तितर-बितर।

अन्दर आते ही आचिल बाबा का दिल बैठने लगा। वह चुपचाप बैठ गये। उन्होंने थोड़ी प्रतीक्षा करने का निश्चय किया। अज़ीमजान गलियारे में और इधर-उधर भी जाकर देख आया लेकिन कमरे का मालिक कहीं नहीं मिला। पाँच मिनट बीते, बीस मिनट... आचिल बाबा का सब्र ख़त्म हुआ, वह उठने ही वाले थे कि उनकी निगाह मेज़ पर रखे काग़ज़ पर पड़ी। "जो इनसान के लिए अपनी जान क़ुर्बान देगा, वह चिरकाल तक अमर रहेगा।" यह अज़ीमजान का लिखा था। उसने यह कल लिखा था। हाँ कुछ ग़लतियाँ थीं, पर हाथ काफ़ी बैठ चुका था। उसके ज़ेहन पर भरोसा किया जा सकता था। और यह क्या चीज़ बनी? उसकी तह में और एक चिट्ठी दिखाई दे रही थी। वह काँपते हाथ से टेढ़े-मेढ़े पर बिलकुल सही अक्षरों में लिखी गयी थी: "अपने ही लिए जीनेवाले आदमी का मृतक से कोई अन्तर नहीं है।" वाह क्या उपदेश है! दो मिसरोंवाला शेर बन गया है!

आचिल बाबा मुस्कुराते हुए कुछ देर तक काग़ज़ पर देखते रहे। सहसा उनके चेहरे पर मानो वज्रपात-सा हो गया और वह उठ खड़े हुए। एक बार खिड़की की ओर देखकर उन्होंने काग़ज़ अपनी जेब में डाल लिया। फिर दरवाज़े की ओर लपके। गलियारे में आते-जाते लोग सरपट दौड़ते एक बूढ़े और एक जवान को देखकर हैरान हो गये।

अज़ीमजान को अभी मालूम नहीं था, वे कहाँ जा रहे हैं। वह तो बस अपने नाना के पीछे दौड़ता जा रहा था। नाना जी मुसाफ़िरखाने का चक्कर काटकर घनी घासोंवाले खेत से आगे चल दिये। उन्होंने मिट्टी की दीवार को एक टूटी जगह से पार किया तो गोबर पर खड़ी मुर्ग़ियों का एक झुँड डर से क़ुग़-क़ुग़ आवाज़ निकालते तितर-बितर हो गया। बिखरे पंखों के बीच से निकले तो एक कुत्ते से जा टकराये। अच्छा हुआ जो वह ज़ंजीर में था। फिर वे खेत पार करके एक सपाट मैदान में पहुँच गये।

मैदान में पहुँचने के बाद आचिल बाबा अपनी चाल धीमी करके ख़ुद पर क़ाबू पाने की चेष्टा करने लगे। पर अभी भी उनका रंग पीला पड़ा

था, सीधी ताकती ग्राँखों में पहले जैसी पूरी शान्ति नहीं थी। मैदान हरी घास से ग्राच्छादित था, ग्रभी किसी ने भी यहाँ क़दम नहीं रखा था। घासों पर ग्रोस मोतियों-से चमक रहे थे। दो क़दमों के बाद ही मैदान ख़त्म हो गया ग्रौर सामने ही, बहुत नीचे लबालब बहती शादा-साय नदी नज़र ग्रायी।

"नाना जी! ग्रागे न बढ़िये!" ग्रज़ीमजान चिल्ला उठा। कुछ सुने बिना ग्राचिल बाबा एक डग पीछे खिसक ग्राये। शादासाय के लगा-तार शोर से या बहुत दौड़ने से या किसी ग्रज्ञात घबड़ाहट से—ग्रज़ीमजान को चक्कर ग्रा गया। ग्राचिल बाबा ने उसके चेहरे पर नज़र डालकर हालत भाँप ली ग्रौर कुछ बोलने के ग्रन्दाज़ में उनके होंठ हिले। शायद उन्होंने कहा था, "यहाँ पर किसी भी ग्रादमी को ऐसा ही महसूस होता है, घबड़ाग्रो मत!" उनके पूरे बूट भीगे, उनके चेहरे पर ग्राजिज़ी, मुसीबत की झलक थी उनकी दाढ़ी काँप रही थी। वह पहले नीचे श्वेत झाग छोड़कर बहती शादासाय को घूरते रहे, फिर उकड़ूँ बैठकर ग्रोसों में पड़े कुछ चिह्नों पर हाथ फेरने लगे। फिर ग्रपनी हथेली दाढ़ी पर फेर-कर उठ खड़े हुए ग्रौर वापस लौट पड़े।

उनके पीछे डग भरते ग्रज़ीमजान को भी कुछ ग्राभास हो गया था। इसी शादासाय के बारे में ग्रक्बरग्रली के शब्द उसे याद ग्रा गये: "शादा-साय के नीचे ग्रादमी को निगलनेवाला एक गढ़ा है। इस लिए कोई भी बच्चा वहाँ नहीं जा सकता था। मुझे भी मेरे पिता जी ने कई बार वहाँ से डाँट कर भगा दिया था।"

शादासाय का शोर जब कानों से दूर हो गया, ग्रज़ीमजान ने काँपते हुए पूछा:

"क्या ग्राप इस पर विश्वास करते हैं, नाना जी?"

"हाँ," ग्राचिल बाबा ने नाती पर उदासीन निगाह डालते हुए जवाब दिया। ग्रपनी जेब से एक काग़ज़ निकालकर उन्होंने उसे थमा दिया। ग्रज़ीमजान कभी रुककर, कभी चलकर देर तक उसे पढ़ता रहा। उसे ग्रक्बरग्रली का कल का पीला चेहरा, उदास निगाहें याद ग्रा गयीं।

"शाम को ग्रापकी बातों का उस पर लगता है, काफ़ी ग्रसर पड़ा," उसने उपने नाना से कहा। "कामीला को घर से बाहर निकालकर ग्रापने पहले भी एक बार भूल की थी। ग्रौर इस बार भी..."

"इस बार मैंने कोई भूल नहीं की है। वह ख़ुद ... इसी क़ाबिल था।"

"ग्राप काफ़ी बेरहम साबित हुए हैं ..."

"मैं नहीं, स्वयं जीवन बेरहम है ..." बाबा की ग्राँखों के झुर्रियों भरे किनारे ग्रश्रुसिक्त हो गये। "बुज़दिलों पर चौगुना बेरहम है जीवन। बेचारे ने ग्रपनी भूल किसी न किसी तरह सीधी करने की कोशिश की। पर वह यहाँ पर भी बुज़दिल रहा। नहीं, भूल को सीधा करने, सच्चाई से साबित करने के लिए ग्रादमी को शक्तिमान होना ज़रूरी है, यही याद रखो!"

कुछ पहले उदय हुए सूरज की किरणें ग्राँखों को चौंधिया रही थीं, फिर भी शरद के क़रीब ग्राने की ख़बर लाती सर्द हवाएँ गिरे पत्तों को इधर-उधर उड़ा रही थीं। यही हवा घासों पर ग्रोसों को भी, ग्रोसों के नामोनिशान तक को शीघ्र ही ग्रपने साथ ले गयी। इसी पल मुसाफ़िरखाने के सामने एक गाड़ी ग्रा पहुँची। उसमें से बड़े शोर-शराबे के साथ हाथों में फूल लिए, कंधों पर पोटलियाँ लटकाये यात्रियों या पर्वतारोहियों की टोली उतर ग्रायी। सामनेवाली मैदान में तो पूरी भीड़ जमा हो गयी थी। "इनके लिए जगह चाहिए," ग्राचिल बाबा ने मन में सोचा। वह जल्दी से सीढ़ियों पर से ऊपर जा निकले। पर दरवाज़े के पास पहुँचकर यूँ स्तब्ध हो गये मानो वह किसी चीज़ से जा टकराये हों। उनकी नज़र मुसाफ़िरखाने के बोर्ड पर पड़ी थी: "ग्रक्बरबाद शहर का मुसाफ़िरख़ाना।"

ग्रासिल बाबा बोर्ड के क़रीब ग्राये, उन्हें दिल में एक टीस-सी महसुस हुई। बोर्ड से निगाह उठाकर लोगों की ग्रोर देखा। थोड़ा ग्रागे चलकर पीछे मुड़े। वह इस तरह चल रहे थे मानो किंकर्त्तव्य विमूढ़ हों। यह देख ग्रज़ीमजान ने सोचा: "मेरे नाना जी कहीं ग्रपनी मुट्ठी से बोर्ड के टुकड़े-टुकड़े न कर डालें!"

"नाना जी ..." धीमे से उसने ग्रावाज़ दी। ग्राचिल बाबा परेशानहाल ग्रन्दर ग्राये। दोनों कमरे में बैठकर ख़ुद पर क़ाबू पाने की कोशिश करने लगे।

"ग्रब क्या करना है हम को, नाना जी?"

"कर भी क्या सकते हैं ... उठा, गठरी बाँधो।"

अज़ीमजान चकित हो गया।

"बस ऐसे ही चले जायेंगे?"

"लोगों के लिए जगह ख़ाली कर देनी चाहिए।"

अज़ीमजान ने सोचा था इस घटना से वाक़िफ़ होने के बाद उसकी पूछताछ, जाँच-पड़ताल ज़रूर होनी चाहिए। इसका महत्व कोई और नहीं मेरे नाना अवश्य जानते हैं। पर मेरे नाना भी विमूढ़-से हैं।

"क्या तुम सोचते हो, आचिल बाबा सब कुछ जानते हैं?" चीज़ों को समेटने में हाथ बँटाते हुए आचिल बाबा बोले।

अज़ीमजान चुप था। वे गलियारे में अक्बरअली के भी पैसे चुकाकर बस स्टाप की ओर चल पड़े।

उनकी गतिविधियाँ कुछ अप्राकृतिक मालूम पड़ रही थीं। उनके सिर लटके थे, भेजे में सिर्फ़ उसी भयानक घटना की स्मृतियाँ समायी थीं।

"असल में कुछ नहीं बदलाना ही ठीक होगा," अज़ीमजान ने खुर्जी को कंधे पर रखकर चलते हुए कहा, "वह तो मर ही चुका है। नगर का नामकरण उस पर किया गया है। अब इसे छेड़ने में क्या तुक होगा। बेक्तेमिर नाम के आदमी के प्रति ... जो अन्याय किसी को भी मालूम नहीं है, उससे क्या हानि होगी?"

"यह तब हो सकता था जब मैं न होता, तुम न होते, हम दोनों का ईमान न होता। पर ईमान से बचकर कहाँ जा सकते हैं? वह हम दोनों का सर्वनाश कर डालेगा।"

"आप ठीक तो कह रहे हैं पर नगर कितना सुन्दर सिद्ध हुआ है, देखिये न, संग्रहालय, प्रतिमा, फून, पायोनियर, बोर्ड, मुहर ..."

"इससे भी बढ़कर कोई चीज़ है—आदमियों के दिल की सचाई, इनसान की शक्ति का सम्मान और उस पर विश्वास! मुझे भी रास नहीं आयेगा कि लोगों के सपने टूट जायें, भलाई के फसाने चकनाचूर हो जायें। परन्तु वास्तविकता से इस तरह मुँह भी नहीं फेरा जा सकेगा। जो सुन्दर है, उसे पाक-साफ़ भी होना चाहिए। लोगों के एहसास न मानना ग़लत है, अपराध है। और मैं क्या जानूँ, बेटे, यह तो बड़े सोचने की चीज़ है। तुम भी सोचो। अभी नहीं, पहले भेजे को थोड़ा आराम दे लें, सलाह-मशविरा करनेवाले लोग भी हैं।"

विमूढ़ से इन दोनों यात्रियों को बस पहाड़ों के बीच से लिये जा रही

थी। जब वे रेलवे स्टेशन पर पहुँचे, मूसलाधार बारिश होने लगी। शरद की सर्द बारिश ट्रेन में भी काफ़ी देर तक उनकी निगरानी करती रही। बारिश, सर्दी, कीचड़, स्टेशन की भाग-दौड़ खचाखच भीड़, खिड़की में हर क्षण बदल जानेवाले दृश्य, विभिन्न सहयात्री, अनजाने लोगों से परिचय, मिलना-बिछुड़ना, सहसा छिड़ी बातें, सोना, उठना, खाने की चिन्ताएँ—इन सब चीज़ों ने उन दोनों के दिल में से कलवाली भयावह स्मृतियाँ निकाल दीं। पर अज़ीमजान अभी भी कमसुखन था। वह गिलास में चाय डालता पर पीना भूल जाता, कभी खिड़की के सामने बाहर ताकते घंटों बैठा रहता। अपने एक स्वजन की असामान्य मृत्यु उसके ख़्यालों से पल भर को भी दूर नहीं होती। बाहर शरद की बारिश से भीगी अंगूरों की लताओं, पीले-पीले मुरझाये बिही के पौधों के बीच बचे अनपके ख़रबूज़ चमक-चमककर दिखाई दे जाते।

"कितनी अजीब बात है," अज़ीमजान ने दूरियों से नज़र उठाये बिना सोचा, "यह सब कुछ छोड़कर इतनी आसानी से चला गया . . . "

शायद आचिल बाबा का ध्यान भी अज़ीमजान की ओर ही था, चुनांचे उन्होंने नाती की बड़बड़ाहट सुन ली।

"किसको ?" उन्होंने पूछा।

असीम खेतों, दूर में सुनहरे बाग़ों की गोद में बसे गाँवों, नीमकले पहाड़ों, नीले आसमान—इन सबों को आलिंगन करने के अन्दाज़ में हाथों को दोनों ओर बढ़ाते हुए अज़ीमजान ने खिड़की की ओर इशारा किया।

"इन सब को . . . "

इस बात से आचिल बाबा बहुत प्रभावित हो उठे।

"तुम शायद नहीं जानते। हमारा भतीजा "इन सब को" अपनाने में सफल नहीं हो पाया था। "यह सब" छोटी-मोटी चीज़ नहीं हैं। इनसान इसी महानता का एक ज़र्रा है। उसे इस महानता में तन-मन से एक हो जाना चाहिए। नहीं तो वह तुम्हारे कहे के मुताबिक़ "आसानी" से चला जायेगा। "चलना" हम लोगों के लिए सोचने की बात है। हमने इस मिट्टी की सिंचाई अपने ख़ून से की है। हर पौधे, हर क़दम की मिट्टी को, यूँ समझ लो कि हमने अपने हाथों से बनाया है।"

"क्या यह सब बंजर ज़मीन थीं पहले ?"

"बात इस में नहीं। तुम्हें कैसे समझाऊँ, हाँ, यह घृणित, बंजर ज़मीन थी। उसे बदलना, बर्फ़ीले शिखरोंवाले पहाड़ के परे . . . "

हिकायत

यह तब की बात है जब ग्राचिल बाबा ग्राचिल फ़िर्क़ा कहलाते थे। १६२६ में चिनार गाँव के लोगों ने उन्हें मध्य एशिया पार्टी कॉंफ्रेंस में ग्रपना प्रतिनिधि चुनकर भेजा।

मार्च महीना बीत चुका था ग्रौर ग्रप्रैल शुरू हुग्रा था। कहावत है, बहार ग्रायी, खेती का मौसम लायी। लोहारों के खाते फावड़ों, पुराने कुदालों, टूटे हलों जैसे ग्रौज़ारों से भर जाते। मतलब ऐन काम के दिन थे। पर ग्राचिल फ़िर्क़ा को इन्हीं दिनों ग्रपना लोहारख़ाना छोड़कर ताश्क़न्द जाना पड़ा। किन्तु ऐन काँफ्रेंस के दिन सुबह में उनके हाथों में लाल बही की जगह ट्रेन का टिकट थमा दिया गया: जनूबी इलाक़ों पर टिड्डों के हमले की ख़बर मिली थी। काँफ्रेंस के सभी प्रतिनिधियों को टिड्डों के विरुद्ध संघर्ष के लिए पंक्तिबद्ध किया गया था।

"टिड्डा?" ग्राचिल फ़िर्क़ा ने थोड़ा मुस्कुराते हुए ग्रपने कंधों को उचकाया। वह हाल ही में बस्माचियों से लड़ाई में जीतकर लौटे थे। पचास साल की उम्र होने के बावजूद लम्बी-लम्बी मूँछोंवाले ग्राचिल एकदम नौजवान लगते थे। क्या ग्रब लड़ने को टिड्डे ही बच रहे थे? यह उन्हें एक बड़ा ही छोटा-सा काम महसूस हुग्रा। वह बिना किसी हड़बड़ी के बाहर जाकर राजधानी के एक सैलून में शेव करा ग्राये। मोड़ पर एक बूढ़े मोची से बूटों की पालिश करवा ली। जब वह लौटे, काँफ्रेंस हॉल में एक दूसरी ख़बर फैल चुकी थी: फिर तार मिले थे – पीले टिड्डे सारे तुर्कमानिया में फैल गये हैं। बीस दिनों के ग्रन्दर-ग्रन्दर काराक़ुम से होकर वे ग्रामू के तटों पर पहुँच जायेंगे – सारे लेबाब* को ख़राब कर देने का भय था। ताशावुज़, बुख़ारा भी ख़तरे में हैं।

ग्राचिल के गिरोह में नियुक्त जवान कृमिशास्त्रवेत्ता काफ़ी भय फैलानेवाला था। उसने ग्रफ़वाहें फैला दीं: मानो यह पीली ग्राफ़त कास्पी से

---

* लेबाब – जगह का नाम। – सं०

त्याँ-शाँ पर्वतमाला तक की हज़ारों किलोमीटर की मैदान पर फैल चुकी है, लगभग दस करोड़ टन के टिड्डों का झुंड पाँच-छ: हज़ार किलोमीटर चौड़ाई के मैदान पर फैलकर बाग़, खेत, पौधे – सब का नाश कर रहा है।

ऐसी अफ़वाहों पर विश्वास किये बिना आचिल फ़िर्क़ा चकित थे। दूसरे लोग घबड़ाकर हतप्रभ हो गये थे पर उसके भेजे में बस एक ही सवाल घर किये था: पीले टिड्डे यहाँ कहाँ से आ सकते हैं? पहले इस क़िस्म की भयानक ख़बरें माज़न्दरान की तरफ़ से आती थीं। हमारे किसान यह आफ़त नहीं जानते हैं; कभी देखा भी नहीं है। यह ख़बरें क्या सचमुच ठीक हैं?

आख़िरकार छ: आदमियों का एक ग्रुप निश्चित जगह – चुचुकसाय की ओर रवाना हो गया।

चारों ओर हरियाली ही हरियाली थी। आंधियों, बिजलियों और शोर-शराबेवाली बहार ने सारी दुनिया को जगा दिया था। स्टेशनों पर भीड़ लगा रहती, बच्चों के हाथों में लाली पॉप होते, सब के सब बड़े शौक़ से रवाच* चबाते। मशकवाले इधर-उधर दौड़ते पानी बेचते थे। शोरग़ुल...

"आइये, इस्मलाक़वाला समोसा, एकदम बढ़िया!" कहकर चिल-लाती जवान लड़कियाँ दौड़तीं।

आचिल के लिए प्रकृति का यही समय रहस्यमय महसूस होता है। सारी दुनिया में नवबहार है, कड़ाहों में सुमालक** उबलता है, हाल ही में जन्मे मेमने का पहला मिमियाना, किसी मीठी चिन्ता, स्वच्छता और विस्तृति की तरस... ऐसे मौक़ों में लोगों को आफ़त से कोई भी चिन्ता नहीं होती। मानो दुनिया में कोई भी बुराई नहीं है। सिर्फ़ संजीवन, पुनर्परिवर्तन, कायापलट, आगे बढ़ना, डैने प्राप्त करना...

डैने प्राप्त करना?

---

* रवाच – एक पहाड़ी पौधा, जिसके हरे-हरे डँठल को लोग वसंत के शुरू-शुरू में गनने की तरह चबाकर चूसते हैं।

** सुमालक – वसंत के समय थोड़ा अँकुराये गेहूँ को उबालकर तैयार किया जानेवाला गुड़।

सचमुच एक मामूली टिड्डा इतना भयावह है?

कोगोन में इनके आने की ख़बर पहले से ही पहुँच चुकी थी। स्टेशन के चीफ़ तथा कई दूसरे लोगों ने इनका स्वागत स्टेशन पर किया। गहरी रात हो चुकी थी। आर्चिल इनका भय देखकर हैरान थे। इंजन नहीं। तिस पर डिब्बों की कमी। सब डिब्बों पर मिट्टी का तेल, मोम, दवाएँ लादकर लगातार जनूब में गया था। यहाँ यातायात की कमी थी। पर आदेश था, किसी न किसी तरह इन्हें अभी भिजवा दिया जाए। अब सिर्फ़ रेल-कार में ही जाना पड़ेगा।

"रेल-कार में? इतनी दूर और वह भी रात में?"

"जी हाँ, कामरेडो," स्टेशन के चीफ़ ने कहा। उसने नीले रंगवाला रूईदार कोट पहन रखा था, उसकी आँखें लाल थीं, स्वभाव से औपचारिक किन्तु बड़ा ग़ैरतमन्द आदमी मालूम हो रहा था।

"अपने साथ पानी भी ले लीजियेगा, अभी जाना पड़ेगा।"

आर्चिल फ़िक्रा को बात की गंभीरता का अब पूरी तरह अनुमान होने लगा था।

साढ़े चार अश्वशक्तिवाली ड्रेज़िना* की तीन आदमियोंवाली जगह पर पाँच आदमी कस-कसाकर किसी तरह बैठकर भिनसरे रवाना हो गये। पहले इस ड्रेज़िना ने बच्चों के खिलौनों-सा सब का दिल खुश कर दिया। भीगी घासों जैसी सोंधी खुशबू मन में समा गयी।

"चूऽ, मेरा प्यारा घोड़ा," कोई शरारत से बोल उठा। यात्रियों में जान आ गयी, आपस में बातचीत, हँसी-मज़ाक़ शुरू हो गया। पर धीरे-धीरे रात की भीगी ठण्ड अपना प्रभाव डालने लगी। असीम अंधकारमय शून्य में दौड़ती चली जा रही इस यंत्र को कभी रोका नहीं जा सकता—ऐसा मालूम हो रहा था। उसकी एकमात्र बत्ती के प्रकाश में रास्ते की दोनों ओर दिखाई देनेवाली छोटी-मोटी ढूहें विशाल दर्रे की तरह नज़र आती थीं।

तीन घंटों के दौरान एक भी दीपक कहीं जलता नहीं दिखाई दिया। भयानक तौर पर आवाज़ देनेवाले गीदड़ों के अलावा एक भी जीवित प्राणी नहीं मिला। मामाजान नाम के कृमिशास्त्री से ठण्ड सही न गयी, वह

---

* छोटी रेल-कार।—सं०

आविल के बग़ल में आ घुसा। आविल भी इस छोटे झुके शरीर को अपने शरीर की आड़ में लिये गर्म करने की चेष्टा करता, उसे बातचीत में खींचता। लेकिन इस भद्दे, बूढ़े सिपाही द्वारा आनेवाली आफ़त की कुछ परवाह न करके, अपने साथियों का मज़ाक़ उड़ाना, विशेषकर इस जवान विशेषज्ञ को "श्री टिड्डा-दिग्गज" कहकर औरों को हँसाना कृमिशास्त्रवेत्ता को अच्छा न लगा। यहाँ पीली आफ़त का मतलब समझनेवाला एकमात्र इनसान यही कृमिशास्त्रवेत्ता था।

न जाने क्यों शीघ्र ही सूर्योदय होने लगा। सूर्योदय के साथ-साथ चेहरों पर भी रंग आ गया। लोग पहले की ग़ुस्सेवाली बातें भी भूल गये। क्षितिज दिखाई दिया, क्षितिज में हरे-हरे पॉपलरों से आच्छादित गाँव, शहर, क़िला दिखाई देने लगे। अभी-अभी अंधकार के आग़ोश में सिमटी दिशाएँ, चौरस खेत, स्वच्छ हरित रूप धारण करके चमकदार ओसों से सुसज्जित चरागाह बहती नदी की तरह दमकने लगे। बहार की सारी सुन्दरता शीतल हवा से अश्रुसिक्त आँखों में, नाच उठी, दिलों में प्रेरणा की एक प्रवाह-सी आ गयी।

यात्री झुक्कर राह के किनारे उगे ख़सख़स को तोड़ने का प्रयास करते, अपने आप किसी गीत की धुन गुनगुना उठते, इस भारी और बढ़िया लौह गाड़ी पर धीरे-धीरे झूलते, आनन्द से चीख़ते, शोर मचाते, अपने को कुछ गर्म करने की कोशिश करते।

काली रात में सफ़र पर निकले पाँचों यात्री, सुन्दर सुबह की स्वच्छ विस्तृतियों के सौंदर्य से आकर्षित कुछ पल के लिए सब कुछ भूल गये। किन्तु अगले ही पल, अचानक वे किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो उठे। दुघर्टना तो नहीं हुई थी लेकिन ऐसा प्रतीत हुआ मानो आसमान फट पड़ा हो। न जाने क्यों सब के सिर चकरा गये, उल्टी महसूस होने लगी, सब के सब घबड़ा उठे। सुबह के उजाले की जगह चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा छा गया। ड्रेज़िना की आवाज़ सुनाई नहीं दे रही थी। सिर के ऊपर या कानों के अन्दर कोई चीज़ रेंगती-सी, आवाज़ देती-सी महसूस होती, उसकी आवाज़ बहुत धीमी होने के बावजूद ऐसा प्रतीत होती मानो सारी दुनिया को वह सुनाई दे रही हो।

यह दर्रा भी नहीं था, आसमान भी नहीं फटा था— शायद बादल था। एक बहुत विशाल, बोझिल और गंदे पीले रंग का बादल जो यात्रि-

यों को ज़मीन में धँसाते नीचे ही नीचे उड़ा चला आ रहा था। अचानक उन्हें एहसास हुआ, अरे, यह तो पीले टिड्डों का बादल है। पर टिड्डे नज़र नहीं आये। उनका लिजलिजा वज़न यात्रियों के सिर पर बोझ डाल रहा था। टिड्डों के चलने की आवाज़ एकदम भयानक थी। एक दुर्गंध से मन उलट-पलट हो उठता। सब के सब अशक्त पड़ गये। बड़े अनुभवी आचिल फ़िर्का भी अपने शरीर पर चिपकी इस लिजलिजी चीज़ को जीवन में पहली बार महसूस कर रहे थे। रेल-कार ४ कि॰ घंटे की रफ़्तार से चल रही थी। अपरिचित शत्रु से पहली मुठभेड़ में ही पूरा का पूरा जत्था अपना सिर समेटते सर्द बेंच पर लोट गया था।

इस हालत में वे कुछ पल रहे या घंटा भर—आचिल बाबा को याद नहीं—लेकिन अचानक उन्हें असीम, नीला आसमान दिखायी दिया। उन्होंने राहत की साँस ली मानो डूबते-डूबते बचे हों। दुर्गंध हटी, भारी, हरा बादल नज़रों से ओझल हुआ। पर दिलों में उसकी घबड़ाहट ज्यों की त्यों बरक़रार रही। इसी क्षण से उनके दिल में हैरानी भरी दिलचस्पी की जगह भयावह घबड़ाहट ने घर कर लिया।

"यह टिड्डे हैं, नीचे उड़ रहे हैं," काँपते होंठों से मामाजान ने कहा। उसके सिर पर चुस्त की टोपी थी, उसकी आवाज़ पतली-सी थी। "कुछ आगे जाकर ज़मीन पर उतरेंगे। पौधों, बाग़ों, चरागाहों पर उतरकर जड़ तक चट कर डालेंगे! फिर वे मिट्टी में अपने अण्डे भी छोड़ते हैं। कोई पन्द्रह दिन बाद इससे सौ गुना बड़ा झुण्ड . . . " भय से मामाजान के दाँत बज उठे। उसकी बातें सुनने में भी भयावह लगती थीं, आदमी के शरीर पर चींटियाँ रेंग जातीं।

"नवजात टिड्डे उड़ नहीं सकते, ज़मीन पर रेंगते हैं, हज़ार किलोमीटर के मैदान पर फैलकर। उनमें से हर एक का मुँह चलता रहता है।"

"बहुत हुआ!" आचिल बाबा चिल्ला उठे। वही दुर्गंध फिर उनकी नाक में आयी थी। शायद मामाजान की कहानी सुनकर। फिर देखा, दुर्गंध हर पल बढ़ती जा रही है, मन को उलट-पलट कर रही है। कुछ समय बाद रेल-कार ने भी टस से मस होने से इनकार कर दिया।

"टिड्डे!" उनमें से कोई चिल्ला उठा। उन्हों ने ज़मीन पर देखा, चारों ओर—खेत, रास्ता, रेलवे—सब कुछ पीले रंग के थे। पाँव रखने

को भी जगह नहीं थी। पहिये घूमते लेकिन रेल की पटरी पर हरे-हरे लिजलिजे टिड्डों के कारण आगे बढ़ने के बजाय एक ही जगह पर घूमते ही रह जाते।

नीचे उतरकर उसे घसीटकर आगे बढ़ाना पड़ा। नीचे उतरते ही यह गंदे कीड़े पाँवों के नीचे से उछल-उछलकर सीधे मुँह पर आ टकराने लगे। कंधे, बग़लें, बूट, बाल – सब कुछ टिड्डों से भर गये। पर दूसरा कोई उपाय भी नहीं था, किसी तरह इस जगह से आगे बढ़ना था। वे रेल-कार को आगे खींचने लगे। पत्थरों पर, घासों पर, मिट्टी पर, लोहे पर भी पाँव फिसल जाते। आचिल का सारा दिग्गजपन छूमन्तर हो गया था। ऐन बहार की गोद में यह ज़िल्लत कहाँ से आ पहुँची – उसकी समझ में नहीं आ रहा था। काँपते घुटनों से कोई आधा किलोमीटर चलने के बाद ही उनके चेहरों पर साफ़ हवा महसूस हुई, उनके पाँव अब ज़मीन पर थे। उन्होंने अपने कपड़ों को धूल झाड़ डाली। जब रेल-कार फिर अपनी रफ़्तार से चलने लगी, शीतल हवा में वे कुछ होश में आये। सब के दिल में इस गंदे कीड़े के प्रति ज़बर्दस्त नफ़रत पैदा हो गयी थी।

इलाक़े के केन्द्र में उन्हें अलग-अलग गाँव में भेज दिया गया। आचिल अका और मामाजान इकट्ठे एक ही जगह भेजे गये। चुचुकसाय गाँव से एक और आदमी – मतकरीमोफ़ नाम का मिलिशियामैन साथ कर दिया गया। मतकरीमोफ़ ऊँचे क़द-काठीवाला, अपनी मूँछों की रंगाई करते रहनेवाला ख़ूबसूरत आदमी था। जब आचिल अका ने कहा कि अपनी ख़ास चीज़ें यहीं छोड़कर चलिये, तो उसने अपनी पिस्तौल, बेल्ट, शरीर पर चिपके रहनेवाले कपड़े उतारकर साधारण कपड़े ले लिये। आचिल अका ने महसूस किया, यह बात मतकरीमोफ़ को पसन्द नहीं आयी थी पर क्या करें, उन्हें लोगों के साथ काम करने, समझाने, लोगों को आपदा के विरुद्ध पंक्तिबद्ध करने का कर्तव्य सौंपा गया था। यहाँ तनिक भी धमकी नहीं चल सकती थी। मिलिशियामैन की पोशाक काम में बाधा ही डालती। मतकरीमोफ़ बड़बड़ाकर रह गया।

"स्थानीय परिस्थितियों को आप नहीं जानते . . ."

"हम सोवियत शासन के नाम से जा रहे हैं, भैया," आचिल अका ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया।

शाम होते-होते तीन घुड़सवार किसी अपरिचित गाँव में आ पहुँचे।

ख़ुद गाँव तो इतना सुन्दर नहीं था पर चारों ओर का दृश्य, पहाड़ों के नीचे हरी-हरी तलहटियाँ, दूर-दूर तक फैले समतल खेत, दोनों किनारों पर पॉपलर वृक्षों से आच्छादित राहें सफ़ेद-सफ़ेद फूलवाले आड़ुओं के पेड़ झुटपुटे में रहस्यमय दिखायी देते थे। सड़कें सुनसान थीं, अहातों में भी सन्नाटा छाया था मानो यहाँवाले टिड्डों से ही नहीं, सारी दुनिया से ग़ाफ़िल थे।

गाँव की पंचायत के सामने वे घोड़ों से उतरे। एक बूढ़ा जिसके पैर लकड़ी के थे और जिसकी दाढ़ी बढ़ी थी, कंधे पर बन्दूक लटकाये अन्दर से दौड़कर बाहर निकला। उसने उनकी लगामें थाम लीं। मेहमानों को कभी "हुज़ूर," कभी "कॉमरेड" कहते वह उन्हें अन्दर ले गया। मेज़ के ऊपर लटके चालीस वाटवाला बल्ब उसने बड़ी धीमी आवाज़ से जला दिया।

"आप का परिचय?"

"मैं रखवाली करता हूँ, हुज़ूर... कामरेड..."

"हमें रईस से मिलना ज़रूरी है।"

"रईस? अरे... यह क्या बात हुई? अच्छी बात... रईस नहीं हैं... कामरेड... हुज़ूर..."

इस अजीब आदमी से आचिल अका की भी नानी मर गयी।

"बन्दूक को एक ओर रखकर बात कीजिये, भाई। आपका नाम क्या है? कुर्बानअली? बात यह है, जनाब कुर्बानअली कि आप ज़रा' गाँव के रईस को बुलवा दीजिये।"

"रईस नहीं हैं।"

"वे कहाँ हैं?"

"नहीं, पहले से नहीं हैं।"

"यह कैसे हो सकता है?.."

"..."

पहरेदार को अपने बारे में संदेह होते देखकर मेहमानों ने अपने परिचय दिये। तब कहीं जाकर कुर्बानअली ने अपनी बन्दूक एक कोने में टेककर रख दी और बिना किसी हड़बड़ी के नसवार मुँह में रखकर बताया कि पिछले दो साल में चार रईसों की जब हत्या हो गयी तो इस पद पर काम करने के लिए अब कोई राज़ी नहीं होता है। फिर कोने में थूक कर बोला:

"अभी सारे काम की निगरानी मैं कर रहा हूँ।"

मेहमानों ने एक-दूसरे की ओर देखा।

"हमें क्या करना है?"

"आप को..." यह कहते हुए कुर्बानअली ठूँठ जैसे भद्दे पाँव को ठक-ठक करते जाकर दरवाज़ा में ताला लगा आया। तभी बन्दूक की ओर हाथ बढ़ा रहे मतकरीमोफ़ को शांत करके उसने कहा:

"बिना गोलीवाली है।" फिर आचिल से मुख़ातिब होते हुए बोला। "मेरा कर्त्तव्य यह है कि आप जैसे लोगों को यहाँ से सीधे वापस भेज देता हूँ। बेकार में मर जाने की क्या ज़रूरत है?"

"क्या आपने टिड्डे देखे?" आचिल ने पूछा।

"नहीं। अब टिड्डे की बात छोड़िये, अन्धेरा हो रहा है, चले जाइये। रोशनी बुझानी है।"

"हमें किससे डर हो सकता है?"

"मरदानक़ुल क़ुर्बाशि के बचे-खुचे यिगितों* से। आजकल उनका मुखिया देश निर्वासित शरीफ़ आक़साक़ाल का छोटा बेटा संगीन बायवच्चा है।"

"अब वे कहाँ हैं?"

"मैं कहाँ से जानूँ? कभी-कभार आ जाते हैं। मान लीजिये, अब उन्हें आपके यहाँ आने की ख़बर मिल चुकी है। यह कहाँ और कैसे होता है, मुझे मालूम नहीं है।"

"क्या आप ख़ुद उनके सन्देशवाहक नहीं हैं?" मतकरीमोफ़ उछलकर उठ खड़ा हुआ।

आचिल अका ने उसे आँखों से इशारा करके शान्त कर दिया। क्रोधित कुर्बानअली अब बत्ती बुझाने की ज़िद पर उतर आया था। वह बार-बार उनसे सिर्फ़ वापस लौट जाने को ही कह रहा था। आचिल अका ने उसका हाथ थामकर उसे बैठाया फिर कल या परसों तक यहाँ पहुँचनेवाले टिड्डों के बारे में बताना शुरू कर दिया।

"अब हमारे लिए जगह का प्रबन्ध कीजिये। कल यहाँ के निवासियों के साथ सलाह-मशविरा करेंगे।"

---

* यिगित — प्रतिक्रांतिकारी बसमाचियों के साथ काम करनेवाला नौजवान।

"आपको जगह कहाँ से दूँगा?" पहरेदार ने कहा।

"संगीन बायवच्चा आकर कहाँ ठहरता है?"

"ताशख़्वाज़ा के यहाँ..."

"हमें वहीं ले चलिये।"

यह सुनकर मतकरीमोफ़ की आँखें चढ़ गयीं, उसका सुन्दर चेहरा पीला पड़ गया।

"हमें वहीं ले चलिये," आचिल फ़िर्क़ा ने फिर दुहराया। "दूसरी जगह रात बितायें तो शायद ग़फ़लत में पड़ जायेंगे।"

"मैंने एक बार आप लोगों को चेता दिया। अब आप जो चाहें, करते रहिये," कहने के अन्दाज़ में कुर्बानअली ने अपने कंधे उचका दिये। और उन्हें ले चला।

चिराग़ बुझने पर जब घना अन्धेरा छा गया, मतकरीमोफ़ और भी घबड़ा उठा। लकड़ीवाले पाँवों की ठक-ठक आवाज़ के पीछे चलते आचिल फ़िर्क़ा से नाराज़ होकर वह बार-बार बड़बड़ाये जा रहा था: बिना हथियार डाकुओं के घोंसले में घुसना बड़ी मूर्खता है... सचमुच मूर्खता है... जिसको जान की परवाह न हो वह जाये पर वह अभी जीना चाहता है।

आचिल अका उसकी बड़बड़ाहट सुनी-अनसुनी करके जल्दी-जल्दी आगे बढ़ते रहे। वह ताश्ख़्वाजा तो क्या, अगर संभव हो तो ख़ुद संगीन बायवच्चा को भी अच्छी तरह देख लेना चाहते थे। वह यहाँ किसी से भागकर बचने नहीं आये थे। वह हुकूमत के नाम पर जनता की मदद करने, आफ़त के विरुद्ध संघर्ष करने आये थे।

"यहाँ की जनता ताश्ख़्वाजा के कहने के अनुसार चलती है," कुर्बानअली ने कहा। "चाहे आप जितना कुछ कहें, वह उसी का मुँह ताकेगी।"

"क्या वह कुलक है?"

"क्या?"

"क्या उसके पास बहुत ज़मीन है?"

"काफ़ी है।"

"क्या नौकर-चाकरवाला है?"

"उसको इसकी क्या ज़रूरत है? सात बलवान पुत्र, कई लड़कियाँ, बहुएँ, पोते हैं... आधा गाँव उसी के सगा-संबंधी हैं।"

"पूरा कोलखोज़ ही है?"

"... हमारे यहाँ अभी कोलखोज़ नहीं है।"

मामाजान भी विमूढ़-सा सब के पीछे आ रहा था। सुबह टिड्डों के कारण और अब इस दूसरी आफ़त से उसका छोटा हृदय बड़ा व्याकुल हो उठा था। ख़ुदा न करे, कहीं टिड्डों से भी ज्यादा भयानक आफ़त का सामना न करना पड़े।

ताश्ख़्वाजा का मकान दो हिस्सों में बँटा था – भीतरी और बाहरी। सामने काफ़ी बड़े बग़ीचे की पगडँडियाँ ख़ानदान के अन्य अहातों से मिल गयी थी – वहाँ शायद सिर्फ़ बच्चे ही रहते थे। वहीं बड़े चबूतरे से एक लंबे क़दवाला आदमी ने उठकर कहा: "सुस्वागतम्!" उन्होंने अन्दाज़ लगाया, शायद ताश्ख़्वाजा यही है। वह किर्गिज़ों जैसी पलकोंवाला था, भौंहें कम घनी थीं, चेहरे पर चेचक के दाग़ थे।

क़ुर्बानअली के नेतृत्व में आ रहे आदमियों को देखकर उसने अन्दाज़ लगा लिया, यह सरकार के लोग हैं। उसके चेहरे का रंग नहीं बदला, उसका पीला चेहरा भावशून्य बना रहा। उसके दिल की बातें महसूस नहीं की जा सकती थीं। उसने आगन्तुकों को मेहमानखाने में आने का निमंत्रण दिया।

"इसकी कोई ज़रूरत नहीं, हम यहीं सो जायेंगे," आविल फ़िक्री ने शहतूत के नीचे बने पुराने चबूतरे की ओर इशारा करते हुए कहा। कपड़े उतारकर सबने नाली के पानी में हाथ-मुँह धोया। क़ुर्बानअली भीतर से चाय बनाकर एक थाली में किशमिश व नान-रोटी रखकर ले आया।

चाँदनी में यह अनजानी जगह बड़ी रहस्यमय मालूम हो रही थी। बातचीत भी नहीं हो पा रही थी। मामाजान एक कोने में बैठा घर के मालिक की ओर आँखें टिकाये सोच रहा था: सचमुच डाकुओं का नेता यही है? हो भी सकता है। कितना बदतमीज़ दिख रहा है, चेहरा मुर्दों जैसा सर्द, कमसुख़ुन...

"मेरे ख़्याल में महमानों के आने से आप चिन्तित हो उठे हैं? अरे ताशख़्वाजा भाई, क्या सोच रहे हैं?"

क़ुर्बानअली चकित हो उठा: अभी तक गाँव में एक भी एसा आदमी नहीं मिला था जो ताशख़्वाजा को भाई कहकर संबोधित करे। ताशख़्वाजा ने भी मेहमान की ओर तीव्र दृष्टि से देखा – हाँ, सचमुच आविल अका उस से काफ़ी बड़े थे।

"क्यों, हमारा दरवाज़ा सब के लिए खुला है," उसने कंधों पर लटके बेक़सम चापान को ठीक करते हुए कहा।

"सब के लिए? ..." आचिल अका ने चाय की घूँट ली। "सुना है, आपके यहाँ गाँव के रईसों की हत्या करनेवाले मेहमान भी आते-जाते हैं?"

उनका ख़्याल था, इस बात से ताशख़्वाजा उछल पड़ेगा पर वह पहले की तरह चुप था।

"घर आये मोमिन-मुसलमान मेहमानों का स्वागत करना मेरा कर्त्तव्य है। पर बाहर कोई कुछ भी गुनाह करे, वह उसके ज़िम्मे होगा।"

"आदमी को क़त्ल करना ही नहीं बल्कि क़ातिल की सहायता करना भी गुनाह है..."

"क्या आप कहना चाहते हैं, आपने कभी किसी आदमी को क़त्ल नहीं किया?" इससे मालूम हुआ कि ताशख़्वाजा कमसुख़न नहीं है, उसकी अपनी राह, अपना जीवन-दर्शन भी है। "बच्चों को भी विश्वास नहीं दिलाया जा सकता कि बोलशेविक गोली नहीं चलाते हैं।"

"क्रांति ..."

"किसान को क्रांति की क्या ज़रूरत पड़ी? मैं नीति में हस्तक्षेप करनेवाला आदमी नहीं। नीति ने किसान को क्या दिया? यह लीजिये, आप टिड्डों से पीड़ित हैं, किसान नीति से पीड़ित है। एक ओर से बस्माची आकर सारे गाँव को तितर-बितर कर देते हैं, फिर दूसरी, तीसरी आफ़त ... इसके सामने टिड्डों का क्या बस!"

ताशख़्वाजा अपने चोग़े का आँचल झाड़ते उठ खड़ा हुआ, उसका ऊँचा क़द बरामदे के अन्धेरे दरवाज़े में नज़रों से ओझल हो गया।

"यह कट्टर कोन्त्र* सिद्ध हुआ!" मतकरीमोफ़ अपनी आँखें नचाते हुए बोला।

"बहुत हुआ, अब लेट जाइये, कुछ आराम करना चाहिए," आचिल फ़िर्क़ा ने सोरि** पर लेटते हुए कहा। "आपको भी जाने की इजाज़त है, क़ुर्बानअली, धन्यवाद!"

---

* कोन्त्र (रूसी में) – प्रतिक्रियावादी।

** सोरि – चबूतरा।

"नहीं, मैं कहीं नहीं जाऊँगा, मैं यहीं पर बैठूँगा," पहरेदार ने बिना गोलियोंवाली बन्दूक गोद में रखकर जवाब दिया।

"हाँ ठीक है, ग्राप यहीं बैठ जाइये," मतकरीमोफ़ बोल उठा।

लेटे-लेटे तारों की ग्रोर देखते हुए ग्राचिल ग्रका ताशख़्वाजा के बारे में सोचने लगे। उन्होंने क्रांति के कट्टर से कट्टर दुश्मन देखे थे पर इस जैसा तो पहली बार दिखाई दिया था।

सोचते-सोचते वह ग्रभी ऊंघे ही थे कि मतकरीमोफ़ ने उन्हें जगा दिया:

"क्या यहीं पर लेटे रहेंगे?"

घबड़ाहट के मारे उसे ग्रभी तक नीन्द नहीं ग्रायी थी। एकाध घंटे के बाद उसने ग्राचिल ग्रका को फिर जगा दिया:

"क्या ग्रापको कुछ सुनाई दे रहा है?"

ग्राचिल ग्रका ने कोई ध्यान नहीं दिया। पर सच में ही कहीं से कड़कड़ाहट ग्रौर सड़क से घोड़े की टापों की ग्रावाज़ भी सुनाई दीं। मतकरीमोफ़ उछलकर उठ खड़ा हुग्रा, ग्रपने लम्बे क़द को छुपाने में ग्रसमर्थ वह इधर-उधर देखता, बड़बड़ाने लगा:

"मैं पहले ही कह ही चुका था कि हम फँसे हैं; यह चेचक के दाग़ोंवाला ग्रादमी देखने से ही डाकू लगता है। मैंने चेतावनी दी थी। ग्रब बचने का कोई उपाय तो ढूँढ़ो, दिग्गज भाई। ग्राप ही हमें जान-बूझकर डाकुग्रों के घोंसले में लाये थे। तीन बोलशेविकों की जान ग्रापने ख़तरे में डाल दी। या तो जान-बूझकर..."

ग्राचिल ने जलती ग्राँखों से उसकी ग्रोर देखा। सब उठ खड़े हुए थे। ग्राचिल ग्रका प्रवेशद्वार की ग्रोर चलने लगे।

"बन्दूक ले लीजिये..." काँपने हुए कुर्बानग्रली ने कहा।

सड़क पर दो-चार ग्रादमियों की बातचीत सुनाई पड़ी, ग्रास-पास में कुत्ते भोंके। ग्राचिल ग्रका वापस ग्रा गये।

"घोड़ों पर सवार हो जाइये," यह कहते हुए वह बूट उतारकर जल्दी से तलेबन्द फिर से लपेटने लगे।

इलाक़े के केन्द्र से संदेशवाहक ग्राये थे। यहाँ से सोलह किलोमीटर की दूरी पर टिड्डों का समूह मरुभूमि पार करके खेतों में फैल गया था। किसी ने ऐसा सोचा भी नहीं था। इलाक़े के केन्द्रवालों का विश्वास था,

टिड्डे यहाँ तक कम से कम चार दिन में पहुँच पायेंगे। अगर समूह बड़ा हुआ तो यह कष्टदायक है। जलाने के काम में आनेवाले तेल ईंधन अभी पहुँचा नहीं, सैनिक वायुयान तैयार नहीं हैं, रसायन वस्तुएँ नहीं हैं, गाँव के निवासियों को कुछ नहीं मालूम।

आचिल अका के आदेशानुसार संदेशवाहक शीघ्र ही केन्द्र वापस लौट गये। आचिल अका ने मतकरीमोफ़ से गाँव में सारे मिट्टी के तेल का भण्डार समेटने को कहा। मामाजान और क़ुर्बानअली को कहा कि सभी निवासियों को जगाकर उन्हें परिस्थिति की गंभीरता समझायें और वहाँ ले जायें। ख़ुद अपने घोड़े का सिर खेत की ओर मोड़कर एड़ लगा दीं।

सोलह किलोमीटर का फ़ासला तय करते-करते झुटपुटा होने लगा था। आचिल अका ने परिचित दृश्य दूर से देखा। टिड्डों का लाल-सा समूह अभी कपास के बाग़ों तक नहीं पहुँचा था। उसने तलहटी के गेहूँ के खेत को आच्छादित कर लिया था। आचिल अका ने परिस्थिति की जाँच करने के लिए घोड़े को एड़ लगायी। उसकी इच्छा थी "संघर्ष का मैदान" देखकर आये। पर आधे रास्ते में ही उन्हें रुकना पड़ा। झाग-झाग हुआ घोड़ा भी कुछ ख़तरा महसूस करने के ढँग में काँप रहा था। वह लौट आये।

थोड़ी देर बाद गाँव के लोग भी दिखायी दिये। पर उन में से बहुतरे लोग आफ़त के विरुद्ध संघर्ष करनेवाले नहीं थे, सिर्फ़ टिड्डों को देखने को उत्सुक जिज्ञासु लोग थे। मामाजान एक टोली से दूसरी टीली के पास दौड़ता, आफ़त का ख़तरा, टिड्डों का स्वभाव, उसे किस तरह मारा जा सकता है—यह सब कुछ समझाता जा रहा था। इधर-उधर भूसे, पेड़ों की सूखी शाख़ें जलने लगीं। बच्चे, औरत जो कुछ हाथ में लगा उसे उठाकर बाग़ों की ओर चल दी। जब मतकरीमोफ़ की गाड़ी में मिट्टी का तेल लाया गया तो सब लोग पुराने कपड़े, भूसे और कीचड़ मिलाकर क़ाराबूरा* बनाने लगे।

कुछ ही दिन पहले बयार से लहरा रही हरियाली से ढँकी पहाड़ियों पर कयामत बरपा थी, आग दोज़ख़-सी भयानक थी, धुआँ आसमान की ओर चढ़ता, शोर-शराबा, खड़खड़ाहट, भय, रोना-सुबकना... बूढ़ियाँ बर्तनों को खनकाकर शोर मचातीं, दीवानी-सी चिल्लातीं, पुरुष अपने

---

* क़ाराबूरा—टिड्डों को हटाने के लिए लुआठा जैसा साधन।—सं०

बूटों से ज़मीन पर टिड्डों को रौंदते, मलते, बच्चे लाठियों से घासों पर मारते जा रहे थे। लेकिन जैसे करोड़ों अंडेवाले टिड्डों पर शोर-शराबों, आग, पानी का कोई असर ही नहीं हो पा रहा था। गेहूँ के मीठे अंकुरों, जंगली फूलों की लताओं को उनकी जड़ों तक खाते, जो कुछ रास्ते पर मिलता उसे सफाचट करते, बुहारते किसी बाढ़ की तरह आगे बढ़ते आ रहे थे। लोग उन्हें मसलते, जलाते, मिट्टी में मिला देते पर एक के बाद दूसरा हाज़िर हो जाता। गुस्से के मारे लोग ज़मीन पर मारते, आगवाले क़ाराबूरों को इधर-उधर घुमाते, घुड़सवार अपने घोड़ों को इधर-उधर हाँकते, अपनी असमर्थता से उनकी आँखों में आँसू भर आये थे। औरतें निराशा से शोर मचा रही थीं।

दोपहर के समय आसमान में तीन सैनिक यान दिखाई दिये। आचिल फ़िर्क़ा का आदेश, खेतों, टीलों से होकर फैल गया। नुक़सान पहुँचाये गये खेत यानों के लिए ख़ाली कर दिये गये। उपले जलाकर उन्हें संकेत दिया गया।

बहुत थके लोग कुछ चैन की साँस लेने लगे और एक ओर हटकर वायुयानों को दिलचस्पी के साथ देखने लगे: देखें, अब क्या बन पायेगा। यान भी हरे, बड़े-बड़े टिड्डों से बहुत मिलते-जुलते थे। लोगों के एकदम क़रीब से शोर मचाते नीचे हवा में गुज़र जाते, दूर क्षितिज तक उड़कर फिर वापस लौटते थे। वे पूरे तीन घंटे उड़ते रहे।

आख़िरकार यान ज़मीन पर उतरे। पौ फटने से अब तक कुछ खाये-पिये बिना घर से निकले और शोर से कान बहरे हुए लोग अचानक जीवन्त हो उठे, विस्तृत खेतों के ऊपर उल्लासपूर्ण चीख़ें गूँज उठीं, गंदे-मैले लोग एक-दूसरे को बाँहों में भरते, टोपियों को ऊपर उछाल रहे थे।

यानों से छिड़के ज़हरीले तरल पदार्थों से लहरों जैसे आये टिड्डों के झुण्ड एक-दूसरे पर गिरकर ज़मीन से लिपटे जा रहे थे।

लोग प्रसन्न भी हो रहे थे, हैरान भी: इतने सारे टिड्डे कहाँ से आये?

"मैं ख़ुदा का क़ायल नहीं: आख़िर इतनी अनावश्यक चीज़ें उसने किस लिए बनायीं..."

"अरे, ख़ुदा के नाम कुछ कहने से ज़बान संभालो!"

"अब इन पर हेंगा चलाकर इनको ज़मीन में धँसा देना चाहिए।"

"सूरज के ताप से सूखकर ख़ुद ज़मीन में मिल जायेंगे।"

खेतों पर इस तरह गप-शप, हो-हल्ला दो घंटों तक चलता रहा।

पर शाम होते-होते ... अच्छा हुआ जो अभी तक कोई घर नहीं लौटा था ...

शाम होते-होते ज़मीन पर पड़ी वही आफ़त धीरे-धीरे हरकत में आकर आगे बढ़ने लगी। या ख़ुदा! अभी वह मरी नहीं थी, सिर्फ़ गैस से मदहोश हो आराम से लेट गयी थी, चुड़ैल कहीं की! जो गैस आदमी को मार सकती थी, इन बलाओं पर उसका कोई असर न हुआ था। अब क्या किया जाये! आजिज़ी से क्रोधित लोग अपने कॉलर थामे कुछ देर यूँ ही ताकते रहे। फिर बहुत बोलने से बैठी आवाज़ में आचिल अका के आदेशानुसार लोगों ने फिर से अपने पहले हथियार हाथ में ले लिये। आग जलायी गयी, मिट्टी के तेल से भीगे नमदे, लाठियाँ काम में आने लगे। बूढ़े किसान लकड़ियों, ठूँठों, कीलोंवाले हेंगों में घोड़े जोतकर गेहूँ के खेतों में घुस गये।

अब रात भर काम करने की योजना बनानी थी। आचिल अका को किसी ख़ास कठिनाई का सामना न करना पड़ा, क्योंकि लोग हठपूर्वक रात-दिन एक करके दुश्मन से लड़ने को ठने थे। "अगर सुबह तक इलाक़े के केन्द्र से वायदे के मुताबिक़ मिट्टी का तेल आ जाये तो टिड्डों को ज़मीन में अंडे नहीं डालने देंगे," आचिल अका ने मन में सोचा। अगर टिड्डियों ने ज़मीन में अण्डे दिये तो उनकी संख्या सौ गुनी हो जायेगी।

आचिल अका और उनके साथी कुछ आराम कर लेने की इच्छा से भिनसरे अपनी जगहों पर लौट आये। उनका स्वागत ख़ुद ताशख़्वाजा ने किया। दरवाज़ा खुलते ही आचिल अका सामनेवाले चबूतरे पर ढेर हो गये। यह देखकर ताशख़्वाजा विमूढ़ हो गया: वह कल का मेहमान नहीं बल्कि अचानक प्रौढ़ बना, दुबला-पतला-सा कोई बूढ़ा था। मुँह कालिख से काला, मैली दाढ़ी पसीने से सिक्त, भौंहें जलीं, फटे चोग़े की रूई लटकी ,खरोंच लगे हाथ कीचड़ से सने थे और उन पर ख़ून जमा था। उसके काँपते जोड़ों से बूट खींचते समय ताशख़्वाजा ने देखा, एड़ी से घुटने तक कोई हरे रंग की लिजलिजी-सी चीज़ लिपटी थी। अब आचिल अका को इसका अहसास हुआ था। मोरी की ओर चलते वक़्त वह लुढ़क पड़े। ख़ुद ताशख़्वाजा वहाँ जाकर बाल्टी से उनके सिर पर पानी उँडेलने लगा।

"बताओ तो ज़रा, वहाँ क्या हुआ?" बड़ी होशियारी से धीमी आवाज़ में उसने पूछा।

आचिल अका ने कमर तक स्नान किया। तब कहीं उन्हें अपनी सुध-बुध आयी और उन्हों ने घर के मालिक की ओर देखा। ताश्ख़्वाजा के चेचकरू चेहरे पर कुछ जिज्ञासा, सहानुभूति और दया जैसी अनुभूति के चिह्न उन्हें दिखाई दिये।

"काम बिगड़ गया है। कोई उपाय किया नहीं जा सकता है।" आचिल अका ने जवाब दिया।

वे लालटेन के प्रकाश में बैठे चाय पीते रहे। खाया कुछ नहीं। पर ताशख़्वाजा कल की तरह एक कोने में बैठा अपनी हैरान निगाहें उन पर टिकाये था।

पौ फटते ही उनको छोड़कर घर बैठे-बैठे वह भी तड़प उठा था: वाह रे, ये कौन लोग हैं। इतनी जान किस लिए दे रहे हैं? क्या काम इतना गंभीर है?

सभी सड़कें, चौराहे, सुनसान थे। ताशख़्वाजा कुछ क्षण के लिए सोचता रहा। फिर मवेशीख़ाने से अपनी घोड़ी निकालकर वह खेतों की ओर दौड़ पड़ा। गाँव से बाहर निकलते ही बाग़ों के पीछे से सूरज के गोले ने उसकी आँखें चौंधिया दी। अभी ज़मीन तपी भी नहीं थी, अभी शुरू हो रहे दिन से बहार की गँध आ रही थी। कहाँ जाना है, यह भूलकर ताशख़्वाजा ने किसी बच्चे की तरह दीवार पार करके लटक रही आड़ुओं की शाख़ाओं से मुट्ठी भर अनपके फल तोड़कर मुँह में डाल लिये। चेचकरू चेहरे को सिकोड़ते हुए वह बड़े मज़े के साथ उन्हें चबाने लगा।

कोई घण्टा-भर चलने के बाद उसे ऐन दोज़ख़ के दर्शन हो गये। अच्छी तरह उगे कपास के पौधों और बाग़ों के बीच में काला-सा धुआँ आसमान में उठ रहा था, इधर-उधर आग जल रही थी, जवान शहतूतों के तने जिनकी शाख़ाएँ शायद काटी ली गयी थीं, काली पड़ गयी थीं। चारों ओर खड़खड़ाहट, टनटनाहट की आवाज़ें सुनाई दे रही थीं। वह अपने खेत की ओर जानेवाला था पर घोड़ी आग से डरकर टीले की ओर दौड़ पड़ी। ताशख़्वाजा ज़ोर से लगाम खींचकर जानवर के मुँह पर कोड़े बरसाकर नीचे कूदकर उतर गया। यहाँ थोड़ी शांति थी, वह भयावह शोर दूर से आता सुनायी दे रहा था। उसने देखा, वह जोती गयी ज़मीन

के बीच में खड़ा है। जोती गयी ज़मीन? नहीं, यहाँ कल तक तो किसी लहराते समुद्र की तरह पौधे उगे थे। इस समय खेत ऐसे लग रहे थे मानो पशुओं के झुण्ड ने उन्हें रौंद डाला हो, वे किसी दलदल की तरह दिखाई दे रहे थे। पहाड़ियों की ढलानों की भी यही हालत थी। एक भी हरी घास, अंकुर, पत्ता नज़र नहीं आता था। बस काला ही काला। ताशख़्वाजा घोड़ी छोड़कर दीवानों-सा लड़खड़ाता आगे बढ़ा। वह कभी एड़ी से ज़मीन की ढूहें खोदने लगता, कभी कालिखवाली मिट्टी हथेली पर लेकर उसे घूरता। काश, जीवन का कोई चिह्न उसे मिल जाये। यह क्या आफ़त हुई? यह कैसा ग़ज़ब हुआ है? किसानों ने क्या गुनाह किया था? ताशख़्वाजा की आँखों से आँसू फूट पड़े।

फिर वह उन लोगों के पास से गुज़रा जो एक-दूसरे की ओर देखे बिना एड़ी-चोटी का पसीना एक करके दरख़्तों की शाख़ाएँ काटकर आग जलाते जा रहे थे और उनके सारे शरीर से धुआँ, तेल की गँध आ रही थी। उन में अपने गाँवालों में से उसे कोई भी दिखाई नहीं दिया। कुछ आगे चलकर आग जलती क्यारियों के बीच में रुक गया, तेलवाली क्यारियों पर अभी आग बुझ न पायी थी। टिड्डों के जलने से बड़ी दुर्गंध उठ रही थी। ताशख़्वाजा सह न सका, वह पीपों की ओर दौड़ पड़ा। उसे तेल और धुएँ की गँध न जाने क्यों पसन्द-सी आयी और वह यहीं पर रुका रहा। सब लोग, जिनके मुख, सारा शरीर, फटे कपड़े कीचड़ तथा कालिख से सने थे, बहुत जल्दी में होने के कारण एक भी शब्द बोल नहीं पा रहे थे। वह किंकर्त्तव्य विमूढ़-सा स्तब्ध खड़ा रहा। कोई खींचकर, कोई तेलवाली बाल्टी अपने चोग़े से लटकाकर इधर-उधर दौड़ रहा था। मानो वे किसी को नहीं देख रहे हों।

भय से काँपता ताशख़्वाजा घर लौट आया। इस हालत में जनता की सफलता भला कैसी होगी। आचिल फ़िर्क़ा कहाँ हैं? उसने उनको खेत पर भी नहीं देखा। उन से खुली बात करनी ज़रूरी थी। कैसी बातें, यह ताशख़्वाजा भी नहीं जानता था।

आचिल अका और उनके साथी आधी रात को लौट आये। ताशख़्वाजा ने उनका स्वागत करते हुए कुछ पूछ-ताछ करने की कोशिश की, पर उन में से कोई कुछ भी बोलना नहीं चाह रहा था। सब के सब ने आते ही जी भरके पानी पिया और लेटकर सो गये।

आगन्तुकों के कपड़ों से आ रही दुर्गंध से सारा द्वार भर उठा था। ताशख़्वाजा सो नहीं पाया। उसने सोचा था, शायद वही अकेला नहीं सोया है, पर मालूम हुआ, सब लोग जाग रहे थे। भिनसरे उस छोटे मामाजान की आवाज़ सुनाई दी:

"क्या आचिल चाचा, आप को नीन्द नहीं आयी?"

"बोलो," तन्द्रालु आचिल अका ने कहा।

कुछ देर बाद मामाजान बोलने लगा:

"मेरे ख़्याल से टिड्डों के पेट भर गये हैं। कल वे अण्डे देना शुरू करेंगे। इसका क्या मतलब होता है? एक टिड्डा ज़मीन में अपने आठ-आठ अण्डे छोड़ेगा और ख़ुद मर जायेगा।"

"क्या?" आचिल अका अकचकाकर उठ खड़े हुए। "क्यों यह बात तुम अभी बोल रहे हो?"

"शांत रहिये। मेरी एक योजना है। समझे..." कुछ सोचने के बाद मामाजान फिर बोलने लगा। "हर एकड़ ज़मीन में मनों अण्डे। चौदह दिनों के अन्दर अन्दर हर एक अण्डे से एक-एक नया कीड़ा पैदा होगा।"

"ठहरो, तुम कौन-सा विशेषज्ञ बन गये?..."

"पहले सुनिये, यह एक नयी नस्ल... जो उड़ नहीं सकती... पैदा होते ही ज़मीन पर रेंगने लगेगी। आजवाले झुण्ड से नौ-दस गुना बड़ा झुण्ड... ज़मीन की सारी हरियाली का नाश कर देगा। उन की प्रकृति ऐसी है कि जो कुछ रास्ते पर उन्हें मिले–घास, या पानी, या दर्रा–इसका फ़र्क़ नहीं है, सीधे चलते रहेंगे। वे मरने से भी नहीं डरते। जैसे उनको अपने ख़ुदा से बस आगे ही चलते रहने का हुक्म मिला हो..."

"क्या तुम कीड़ों की सलीक़ेदारी से प्रसन्न हो रहे हो? हमें अपनी योजना तो बताओ," चबूतरे पर लेटे मतकरीमोफ़ ने कहा।

"मेरी योजना का मतलब यह है कि टिड्डों की इस सलीक़ेदारी से हमें फ़ायदा उठाना चाहिए। कुल मिलाकर हमारे पास चौदह दिनों का वक्त है। इन्हीं चौदह दिनों के अन्दर हमें सारी "फौज" के इर्द-गिर्द गड्ढे खोदने चाहिए। फिर इन गड्ढों को तेल से भरकर आग लगा देनी चाहिए। अगर मुमकिन हो तो गड्ढों की दो, तीन क़तारें खोदना ठीक

होगा। मेरा पूरा विश्वास है, दुश्मन को दफ़ा करने का सब से अच्छा तरीक़ा यही होगा।"

द्वार में सन्नाटा छा गया। मानो यहाँ से दस ही किलोमीटर की दूरी पर कुछ नहीं हो रहा है, मानो गाँव मीठी नीन्द में हो, बहार की बयार बाग़ों में चल रही हो। असल में आस-पास के घरों के लोग कई दिनों से सो नहीं पा रहे थे। सभी किसानों की आँखों से ख़ून के आँसू बह रहे थे। राख जैसी ज़मीन को देखकर न सिर्फ़ आदमियों को बल्कि जान-वरों को भी कंपन हो रहा था।

आचिल अका जल्दी से बूट पहनकर मामाजान के पास आ पहुँचे।

"उठो, भाई, इलाक़े के केन्द्र दौड़ो। अपनी योजना समझाओ। तेरी यह योजना दूसरे केन्द्रों के भी काम आ सकती है।" उसने बच्चों से छोटे शरीरवाले मामाजान को अपनी बाँहों में भर लिया। "शाबाश, तुम बड़े क़ाबिल हो। जल्दी करो। मैं यहाँ काम शुरू कर दूँगा।"

इसके बाद के पूरे बीस दिन की फुटकर यादें ही आज रह गयी हैं। सबसे पहले सभा ही सभा हुई, कभी केन्द्र में, कभी गाँव में, कभी रेलवे जंकशन में। आचिल फ़िक़ी आधी रात को थके-हारे लौटते। इन्हीं दिनों उन्हें पूरी तरह ज्ञात हुआ। भाषण, विचार-विमर्श आदि, उतने ही मुश्किल थे जितने कुदाल से ज़मीन खोदना। मामाजान की शोहरत फैल गयी। "मामाजान की योजना", "मामाजान का तरीक़ा", "मा-माजान की मोरियाँ" —हर सभा में बार-बार कहा जाता। ख़ुद मामा-जान आज यहाँ नहीं था, इलाके केन्द्र में बुलवाया गया था। आजकल वह वहाँ दसों गाँवों में काम चलाने में मदद दे रहा था। फटेहाल-सा दिखाई देनेवाला यह जवान मुख्य सलाहकार का काम करता था।

"सबसे ज़्यादा मुश्किल काम, जनता को समझाकर उसे पाँवों पर खड़ा करना है," आचिल अका सोच रहे थे। क्यों कि इसी इलाक़े में तक़रीबन अगर एक क़तार हो तो दो सौ अस्सी किलोमीटर, अगर दो क़तारें हों तो पाँच सौ साठ किलोमीटर की मोरी बनानी थी। पर मोह-लत तो सिर्फ़ दस बारह दिनों की थी।

लेकिन जिसे सबसे मुश्किल माना जा रहा था, वह सबसे आसान साबित हुआ क्योंकि लोगों ने इस आफ़त की भयावकता एक बार परख ली थी। टिड्डों से हुए दो दिन के संघर्ष ने लोगों पर इस तरह प्रभाव डाला

था कि सब के सब हर तरह का भेद-भाव, अंधविश्वास, बैर छोड़कर संघर्ष में आ जुटे थे। स्टेशन से मज़दूर, नगरों से सहायक आ पहुँचे। लोगों की टोलियाँ कुदाल, बेलचे कंधों पर रखे दूर गाँवों से पैदल, घोड़े पर या गाड़ियों पर आते रहे। गाड़ियों के अगल-बगल उन्होंने लाल कपड़े लटका दिये थे जिन पर यह आह्वान लिखा था: "सब गड्ढे खोदने में मदद दें!" "टिड्डों के विरुद्ध संघर्ष में आ जुटें!" खेतों, बाग़ों, हरियालियों, ख़ुद वसन्त की रक्षा करनी थी। कोई भी अपनी रोटी, मातृभूमि की मिट्टी का ख़राब होना सहन नहीं कर सकता था। पहले कभी इन खेतों में इतने लोग इकट्ठे नहीं हुए थे। चींटियों की तरह लोगों का सिलसिला बहुत दूर तक फैल गया। लोग लहरों की तरह दिखाई दे रहे थे। हज़ारों कुदाल सुबह से शाम तक कभी ऊपर उठते, कभी निचे गिरते, सूरज के प्रकाश में चमकते...

फिर... फिर सिर्फ़ आग की लपटें ही उठती रहीं। यह आग आचिल बाबा को आज भी याद है। सैकड़ों किलोमीटर के फ़ासले तक बने गड्ढों में तेल जलता रहा और आग उड़कर आये टिड्डों के बादल को निगलती रही। आग की इस ओर थके और पसीने-पसीने हुए लोग धूम-धाम से जश्न मना रहे थे। सदियों में पहली बार किसानों को अपनी सामूहिक शक्ति इस क़दर एकबद्ध महसूस हुई होगी।

"टिड्डों का सफ़ाया कर दिया गया," यह ख़बर फैलते ही शाम को गाँवों, मुहल्लों, चौराहों—सब कहीं जश्न मनाया जाने लगा। लेकिन यह जितनी तेज़ी से मनाया जा रहा था, उतना ही अचानक रुक भी गया। आचिल बाबा की याददाश्त में यह शाम उम्र भर के लिए रहेगी। उन्नीस दिनों की ज़हमत एक ओर और यह शाम एक ओर थी।

अन्धेरा होते-होते गाँव की समिति के पीछे लँगड़े क़ुर्बानअली की लाश पायी गयी। आचिल बाबा के ख़्याल में यह टिड्डों से संघर्ष की ही एक कड़ी थी। कोलाहल में अचानक संगीनबायवच्चा उन्हें याद हो आया जिसे वह कब के भूल चुके थे। उसने मतकरीमोफ़ को देखा। उसने कल ही अपनी पोशाक धारण कर ली थी, बग़ल में पिस्तौल लगा ली थी। अब उसकी आँखें चमक उठीं।

रात को लोगों को शान्त करके, उन्हें अपने-अपने घरों में भेज देने के बाद मतकरीमोफ़ आचिल फ़िर्क़ा को एक ओर ले जाकर सलाह करने लगा:

"गाँव में संगीन के डाकुओं में से कोई न कोई ज़रूर मौजूद है। वह कैसे चैन से रह सकता है जब कि दो-तीन कम्युनिस्ट यहाँ आकर लोगों को प्रेरणा दे रहे हैं। गाँव में पाँव रखकर क़ातिल कहाँ छुप सकता है, आप कुछ अन्दाज़ लगा सकते हैं?"

हाँ, आखिल फ़िक़्री को मालूम था, आज ताश्ख़्वाजा के यहाँ जाना बड़ी भूल होगी। पर उससे मिले बिना जाना भी ठीक नहीं होगा। वे कम्युनिस्टों को कायर समझेंगे। दूसरी ओर, काम को भी बीच में छोड़ा नहीं जा सकता था।

आधी रात को वे ताशख़्वाजा के अहाते के पीछे से घूमकर आये। मवेशीख़ाने की दीवार नीची थी, सहन हथेली जैसी बिलकुल साफ़-साफ़ दिखाई देती थी। तालाब में मेढकों की आवाज़ के सिवा कोई दूसरी आवाज़ सुनाई न देती थी। आखिल बाबा को चोरों की तरह छुपकर चलना पसन्द न था पर मतकरीमोफ़ ने आगाह किया:

"मेहमानख़ाने का चिराग़ जल रहा है, देखा? बस, मेरे पीछे हो लीजिये।"

वे दीवार पार करके पहले से परिचित मोरी के किनारे से बरामदे की ओर बढ़े। बरामदे में क़ालीन बिछा होने के कारण पदचाप नहीं सुनाई देते थे। उन्हों ने भीतर से आती आवाज़ सुनने की कोशिश की। सिर्फ़ ताशख़्वाजा के बोलने की आवाज सुनाई दे रही थी। उसके पास कौन है, कितने आदमी हैं, वे चुप क्यों हैं—मालूम नहीं हो सकता था। अपने आप से तो बातचीत करेगा नहीं, कोई न कोई ज़रूर होगा। पर चिराग़ के क्षीण प्रकाश में कुछ दिखाई देना मुश्किल था, ऐन खिड़की तक भी नहीं जाया जा सकता था। सबने साँस रोक कर कान लगा दिये।

"नहीं, उन्होंने मुझे कुछ नहीं दिया," ताशख़्वाजा बोल रहा था। "मुझे किस चीज़ की कमी है! ख़ुदा की मेहरबानी से ज़मीन-जायदाद है। पर मैंने देखा, वे किस क़दर ज़मीन से प्यार करते हैं। हर इंच ज़मीन के लिए वे अपनी जान देने को तैयार हैं। इसका मतलब यह है कि ये किसान के मन की बात समझते हैं। अगर वे ज़मीन से मुहब्बत करते हैं तो इसका मतलब है वे किसानों के दोस्त हैं..."

यह बात किससे कर रहा है? उसका श्रोता चुप क्यों है?

"मैंने अपनी आँखों से देखा, टिड्डा क्या बला है? मैं सपने में भी

नहीं सोच सकता था, खेतों व बाग़ों के लिए वे इतने भयानक भी हो सकते हैं। मैं किसी भी मुसाफ़िर को आश्रय देने को तत्पर हूँ पर बुरों को नहीं। लोगों के सिर आयी आपदा से फ़ायदा उठाने की सोचना, क्या कमीनापन नहीं है, बायवच्चा?'''

आख़िरी शब्दों से मतकरीमोफ़ की आँखें चमक उठीं।

कुछ क्षणों के बाद दरवाज़ा और खिड़की भड़ाक से खोलकर वे भीतर आ घुसे। चिराग़ के क्षीण प्रकाश में सब कुछ दिखाई दे गया: मेहमान-ख़ाने में दस्तरख़ान सजा था। दरवाज़े के नज़दीक बैठा घर का मालिक अपनी जगह से हिला तक नहीं। प्रतिष्ठित जगह पर बिछे यकन्दाज़ों पर दो आदमी लेटे थे। उनके हाथ-पाँव रस्सी से बँधे थे, उनके मुँह में तौलिये ठुँसे थे।

"हाथ उठाओ!" मतकरीमोफ़ पिस्तौल दिखाकर धमकी देते हुए चिल्लाया। लेटे आदमी हाथ उठा नहीं सके, पर ताशख़्वाजा ने धीरे से हाथ ऊपर उठा दिये। आचिल अका ने क़रीब पहुँचकर सवाली नज़र से उसे देखा। ताशख़्वाजा बँधे आदमियों की ओर इशारा करते समझाने लगा। यह संगीन बायवच्चा और उसके गुर्गे के जवान थे। उन्होंने आचिल और उनके साथियों को गिरफ़्तार करने का ताशख़्वाजा से अनुरोध किया था। ताशख़्वाजा ने दिखावे के लिए उनकी बात मान ली थी लेकिन जब वे सो गये, उसने उन्हीं लोगों के हाथ बाँध दिये थे।

अपनी कहानी से आचिल अका को मुस्कुराते देख ताशख़्वाजा ने अपने हाथ नीचे कर लिये।

"हाथ उठाओ।" मतकरीमोफ़ चीख़ा।

आचिल अका ने उसकी ओर एक बार आँखें चढ़ाकर देखा और हाथ से उसकी पिस्तौल एक ओर हटा दी।

"इनको छोड़िये, उनको देखिये।"

पर मतकरीमोफ़ ने हठपूर्वक ताशख़्वाजा को धकेलकर कोने में लाकर खड़ा कर दिया। उसे हाथ नीचे करने न दिया।

"मैं तो नहीं छोड़नेवाला। बुरी हालत में पड़कर अपने साथियों को फँसाकर अपनी जान बचाना चाहता है। और ऊपर उठाओ हाथ!.."

आचिल अका ताशख़्वाजा के सामने बहुत शर्मिन्दा हो गये। उसीने उन्हें एक बार मौत से बचा लिया था न!

"मतकरीमोफ़, आपका दिमाग़ कुछ ख़राब हो गया है, क्या? उसे छोड़िये, मैं कह रहा हूँ न। वह तो... अब अपनी शूरता पेश करने की कोई ज़रूरत नहीं है।"

"मैं अभी उसकी अच्छी तरह ख़बर लूँगा कि शूरता क्या है।" उसने सन्देह भरी दृष्टि से आचिल को घूरा। "अच्छा तो आप इसकी तरफ़दारी कर रहे हैं?"

आचिल अका से यह सहन न हो सका। उनका ख़ून उबल उठा। उन्होंने एक झटके से पिस्तौल नीचे गिरा दी। जब मतकरीमोफ़ ने ज़मीन पर पड़ी पिस्तौल की ओर हाथ बढ़ाया तो आचिल अका ने उसे अपनी एड़ी से दबा लिया। फिर ज़मीन से उठाकर उसमें से गोलियाँ निकाल लीं और उनको खिड़की से बाहर फेंक दिया। पिस्तौल उन्हों ने अपनी जेब में रख ली।

"अब आइये, हम ज़रा सलाह-मशविरा करें!"

अज़ीमजान डिब्बे की खिड़की से आँखें नहीं हटा पा रहा था मानो टिड्डों से हुआ संघर्ष उसे खिड़की से दिखाई दे रहा हो।

"फिर क्या हुआ, नाना जी?" उसने पूछा।

"किसके बारे में पूछना चाहते हो?"

"मतकरीमोफ़ से क्या हुआ?"

"कुछ नहीं, सिर्फ़ सैंतीसवें साल में उसने थोड़ी गड़बड़ी की। उसने मुझपर बसमाचियों को समर्थन देने का आरोप लगाया।"

"और ताशख़्वाजा?"

"ताशख़्वाजा कई साल तक ग्राम-सोवियत का रईस बना। आजकल उसे पेंशन मिलता है। वह भी बूढ़ा हो गया बेचारा।"

अज़ीमजान ने अपने नाना की लम्बी उम्र में से और एक कहानी सुन ली। ज्यों-ज्यों इस उम्र से उसका अच्छी तरह परिचय होता जा रहा था त्यों-त्यों उसे महसूस हो रहा था कि वह भी आचिल बाबा का एक अभिन्न हिस्सा है। अपनी आँखें उन से उठा नहीं पा रहा था, उनके मुँह से निकले हर शब्द को वह दिल में संजो लेने की कोशिश करता।

जब वे एक कोलाहलपूर्ण स्टेशन पर पहुँचे, उसके विचार भंग गये। वह उठ खड़ा हुआ। वे गार्चाकोवो स्टेशन पर पहुँच आये थे।

फ़र्ग़ाना में उन्हें एक छोटे क़दवाले आदमी अपनी कार में ले गया। कार दोनों किनारों पर पॉपलर सरसरा रहे रास्ते पर रुकी, ड्राइवर ने पैसा नहीं लिया।

"हम लोग भलाई चाहनेवाले हैं, आचिल बाबा। शायद आप हमें नहीं जानते होंगे पर हम आप को अच्छी तरह जानते हैं।" यह कहकर वह अपने हाथ सीने पर रखे चला गया।

उमीदा अपने बच्चों को नहला रही थी। बहुत से बच्चों के कारण बॉथ-रूम और दहलीज़ में क़दम नहीं रखा जा सकता था। सभी जगह झाग ही झाग, पानी ही पानी था। हाय रे, ये कितने हो गये?.. पाँच, छः, सात... तीन एकदम नंगे, दो जाँघिये पहने, एक और बाथ-टब में झाग में लेटा... मेहमानों को देखकर सब उठ खड़े हुए। एक से एक छोटा...

"वाह पिता जी!" कहकर उमीदा आचिल बाबा की गर्दन में लिपट गयी। वह एक भद्र स्त्री थी। उसने एक ढीला कुरता पहन रखा था, आस्तीनें ऊपर चढ़ी थीं। हाथों व गर्दन पर साबून के झाग लगे थे। पहली ही नज़र में मालूम पड़ जाता था कि वह एक अच्छी गृहिणी है। उसकी क़द-काठी प्रशंसा के लायक़ तो न थी पर देखने में बड़ी कोमल थी। लाज से उसका साँवला मुख लाल-लाल हो उठा। अपने को खो बैठने के कारण वह यह भी भूल गयी थी कि कुरता का दामन कमर में कसा था। वह झेंप गयी। उसने शीघ्र ही अपने बालों को जूड़े में बाँधकर ऊपर से रूमाल डाल लिया। शोर मचाते बच्चों को अपनी-अपनी जगह पर भगा दिया—एक बाथ-टब में भागा, दूसरा इस कमरे में, तीसरा उस कमरे में। पल भर में सन्नाटा छा गया।

"उनमें मुझे कोई अपरिचित भी मिलेगा?" पिता ने हँसते हुए पूछा।

"वाह, बच्चों के नाना जी, आप हर तीन-चार साल में एक बार आते हैं तो क्यों न हो," उमीदा ने जवाब दिया। वह शर्मीली होने के बावजूद बड़ी सीधी सादी औरत थी। क्षण भर में उसने अपने को ठीक कर लिया। वह अपने पति के सरकारी काम से किसी जगह जाने की बात सुनाने लगी। फिर उसने सब स्वजनों के हाल पूछे। आचिल बाबा ने संक्षेप में सब के बारे में बताते हुए उसके रिश्तेदारों का सलाम उसे दिया। इसके बाद उन्होंने अज़ीमजान से उसका परिचय कराया।

"अरे, क्या सचमुच यह अज़ीमजान है? अच्छा है कि पिता जी हैं, नहीं तो हमारी मुलाक़ात भी कभी नहीं हो पाती।" उमीदा "र" का ठीक तौर से उच्चारण नहीं कर पाती थी। नाक के पासवाला तिल उभर आने से वह और भी तरुणी दिखने लगी थी।

"अगर आपको मंजूर हो तो मैं आप को ख़ाला कहकर नहीं पुकारूँगा," अज़ीमजान ने कहा।

"क्यों?" हँसते हुए उमीदा ने पूछा।

"उमीदा आपा (बड़ी बहन) कहूँ तो कैसा रहेगा?"

उमीदा हँसकर राज़ी हो गयी। फिर वह दस्तरख़ान लगाने में व्यस्त हो गयी। उसकी हँसमुख आवाज़ कभी इस कमरे से, कभी उस कमरे से सुनाई दे रही थी।

"आकर आपने बहुत ख़ूब किया, अज़ीमजान। हमने बार-बार सुना था, मरहूम बहन से एक बेटा बचा है लेकिन कभी देखने का मौक़ा नहीं मिला था। यह लीजिये, अब तो हमारा परिचय भी हो चुका है। स्वजनों को देखने आते समय काफ़ी तकलीफ़ उठानी होगी आपको?"

"नहा-धोकर आचिल बाबा घर पर पहनने के लिए हलके कपड़े निकालने ख़ुर्जी को टटोल रहे थे, अज़ीमजान ने किसी चीज़ का इशारा करते हुए अपनी ललाट पर मारा, आचिल बाबा ने भी अफ़सोस करते अपना सिर हिलाया, कंधे उचकाये: हाँ, बाल-बच्चोंवाले परिवार में बिना तोहफ़े आने से दोनों को खेद हो रहा था।

पर तोहफ़े के बारे में सोचने का समय कहाँ था? अब इस घर में आकर वे थोड़ी चैन की साँस ले रहे थे। इस बच्चोंवाले, कई कमरोंवाले, शोर-शराबेवाले घर में दिल को आकृष्ट करनेवाला कोई अनोखा जादू-सा था। उमीदा की मनोरंजक कहानी ने सभी परेशानियाँ भूल बैठे इन दोनों को मुग्ध कर लिया था। खौलता समोवर लाया गया। आचिल बाबा भी दस्तरख़ान के पास आकर बैठ गये। एक के बाद दूसरे बच्चे भी निकल-निकलकर नाना का आलिंगन करने लगे। सबों से साबुन की सुगँध आ रही थी। सबसे बड़े की उम्र तेरह साल की थी और बाक़ी के बीच दो-तीन साल का फ़र्क़ था। सब के सब मोटे व स्वस्थ थे। बाबा काफ़ी देर तक उनकी पूछ-ताछ करते रहे। "तुम में से कौन बेटा है और कौन बेटी है? तुम में से कौन मुझे जानते हो, कौन नहीं?" फिर बारी-बा-

री से सब के नाम पूछते, याद करने की कोशिश करते और भूल जाते। इस पर सब हँस पड़ते।

आखिल बाबा अपनी सब से छोटी बेटी उमीदा से बहुत प्यार करते थे। इस परिवार में हमेशा सफ़ाई और संजीदगी बनी रहती है, सब कुशल रहते हैं, खाने-पीने की कभी कमी नहीं होती। चार-पाँच कमरों की खिड़कियाँ शहर के पार्क की ओर खुलती थीं। विशेषकर वसंत के दि-नों में जब सुबह-सुबह खिड़की खोली जाती तो मैनों और बुलबुलों की चहचहाहट से दिल प्रफुल्लित हो उठता। शायद बात सिर्फ़ प्रकृति और पक्षियों में नहीं हो। ख़ुद उमीदा, उसकी बातें, उसका मुखड़ा, उसका सारा परिवार बाबा का मन मोह लेता था। जब आचिल बाबा यहाँ आते तो साल भर की थकान उनके शरीर से निकल जाती।

जब सुबह हुई तो बच्चों में से एक पाठशाला, एक बालोद्यान, एक नर्सरी में रवाना हो गये। नाश्ता के समय आचिल बाबा ने उमीदा को सारी कहानी सुनाई—आरिफ़जान की, कामिला की और अक्बरअली की भी। एक-दो साल के अन्दर-अन्दर इतनी बातें...

"जो कुछ हमने देखा-सुना, उसने हम पर इस क़दर प्रभाव डाला मानो यह सब ख़ुद हम ने झेला हो। सिर्फ़ तुम्हारे यहाँ आकर ही जी में जी आया है।" आचिल बाबा बोले।

पर इसी क्षण एक ओर नज़र किये बैठी उमीदा की आँखों में उन्हें कोई परेशानी, चिन्ता, कोई दुख दिखाई दे गया। उमीदा सिर झुकाये आँखें चुरा रही थी।

"अंगूर लीजिये, अज़ीमजान," विषय बदलने के लिए उसने कहा। पर आचिल बाबा को महसूस हो चुका था, यहाँ भी चैन मिलने की उम्मीद नहीं की जा सकती।

"बोलना तो शुरू करो, उमीदा, मेरे ख़्याल में कोई न कोई बात ज़रूर है। क्या तुम्हारा पति ठीक-ठाक है?"

"हाँ, ठीक हैं, कुशल से हैं।"

"पर तुम इतनी उदास क्यों हो?"

"कोई बात नहीं है, बस यूँ ही... सब गुज़र चुके हैं," उमीदा ने दुख के साथ मुस्कराते हुए जवाब दिया।

अक़्लमन्द, मेहरबान, काली-काली आँखोंवाली बेटी इस क्षण बाबा

को और भी भोली-भाली नज़र आने लगी। नहीं, उसकी ज़िन्दगी में कोई भी दुर्घटना नहीं होनी चाहिये, वह बुराई नहीं जानती।

"अच्छा है, बात गुज़र चुकी है... पर क्या हुआ था?" आचिल बाबा ने पूछा।

"मैं... मेरे कारण एक आदमी की मौत हुई, पिता जी..."

शांत निगाहोंवाली, बच्चों से इतना प्यार करनेवाली एक माँ के मुँह से यह शब्द सुनकर आचिल बाबा को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। वह धीरे से सोफ़े से उतर पड़े। बिना किसी हड़बड़ी अपने जूते पहनते उन्होंने त्योरी चढ़ाकार पूछा:

"क्या?"

उमीदा विनती भरी दृष्टि से उनकी ओर देखे जा रही थी। आचिल बाबा ने अज़ीमजान से भी निगाहों का आदान-प्रदान किया। फिर अपने हाथ पीठ पर रखकर कमरे का चक्कर लगाया।

"तुम्हारे काम में ऐसी घटना की तो सदा संभावना रहती ही है।"

"नहीं, इस घटना का मेरी डॉक्टरी से कोई संबंध नहीं, वैसे..."

"वैसे कैसे?"

उमीदा ने गुनहगारों-सा सिर हिलाया।

"क्या वह बुरा आदमी था?"

"आपका मतलब किस से है?" उमीदा ने जल्दी-जल्दी पलकें झपकाते हुए पूछा।

आचिल बाबा और अज़ीमजान आश्चर्य से एक-दूसरे को देखते खड़े हो गये।

ज़ाहिर है, अब उमीदा की कहानी भी एक सिरे से शुरू करनी पड़ेगी।

क़िस्सा

"कोमॉडोर के क़दमों
की आहट..."
अलेक्सान्द्र ब्लॉक

होटल में सब से पहले उमीदा जागती थी। आज भी भिनसरे ही उसकी नीन्द खुल गयी। इस समय फ़र्गाना में बारह बज रहे होंगे, नीन्द आये तो कैसे!

जब से यहाँ आयी थी, उसका यही हाल था। यहाँ के समय की वह अभी तक आदी नहीं हो पायी थी। गलियारे में ड्यूटी देती पीलेबालों और चित्तीवाली औरत से उसने जान-पहचान कर ली थी। दरवाज़े के ऊपरवाली बिजली जलते ही वह एक प्याली कॉफ़ी ले आती थी।

— Bitte, frau doctor!

— O, danke schön!

दोनों मुस्कुरा पड़तीं, वे एक-दूसरे को भा गयी थीं। पहले ही दिन उन्होंने एक दूसरे को अपने-अपने बच्चों की तस्वीरें दिखायीं।

«O, ein, zwei, drei... सात! इन के साथ आप कैसे डॉक्टर बन पायीं?" आँखें फाड़कर ड्यूटीवाली ने पूछा। उसका नाम बेर्ता था। फ़ाऊ बेर्ता। फिर उसने अपने दो बच्चे पेश किये। "मैं भी ड्राइवर बनना चाहती थी, पर इनके पालन-पोषण में ही लगी रह गयी," उसने कहा।

वे एक-दूसरे को देखते-देखते हँस पड़ीं।

उमीदा ने कॉफ़ी खड़े-खड़े पीकर अपना भाषण फिर से देख लिया। फिर नहायी-धोयी। कुल मिलाकर सिर्फ़ बीस मिनट की रिपोर्ट थी लेकिन इसी के लिए इतनी तकलीफ़ उठानी पड़ी थी। प्रोग्राम के अनुसार ख़ुदा का शुक्र है, उसकी भी आज नौबत आयी। "इस बोझ से बचने के बाद अच्छी तरह सो लूँगी," उमीदा ने मन ही मन निश्चय कर लिया।

यूँ कहने में तो बीस मिनट बहुत मामूली लगते थे पर यह पूरे बीस साल के कार्यों, सन्देहों, अध्ययनों, सुख-दुख, ज़हमतों का परिणाम था। क्या यह आसान रहा? उस समय जब वह सेना से लौटी थी, पाँवों में भारी-भरकम बूट पहने, बाल कटाये, दुबली-पतली, छोटे शरीरवाली एक लड़की थी। पर आज...

आइने में देखकर उसने अंधेरी रात से काले अपने बालों के जूड़े बनाये। सफ़ेद कॉलरवाली, मोटी-सी, साँवले मुखवाली जवान औरत गंभीरता से देख रही थी।

"डॉक्टर क़ारीयेवा!"

उमीदा मुस्कुरायी। कल किसी समाचार-पत्र में उसकी तस्वीर भी छपी थी जिसके नीचे लिखा था: "अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस में हिस्सा ले रही सबसे जवान डॉक्टर।" सबसे जवान! शायद उनकी निगाह उसके केश

में दमकते इन सफ़ेद बालों पर नहीं पड़ी होगी। इसके बावजूद आज अच्छी तरह शृंगार करना ज़रूरी था। मंच पर जाना होगा। समाचार चित्र व टेलीविजन से आदमी आयेंगे, फ़ोटो खींचेंगे, संवाददाता होंगे।

उमीदा ने अपने तिलों के जोड़ पर, पलकों पर काजल लगाया। इत्र की ज़रूरत नहीं। काला जाकिट पहने, स्त्रियों के जालीदार बटुए की जगह एक चमड़े का पॉकेट थामे, बस। डॉक्टर क़ारीयेवा तैयार है!

पर अभी सुबह होने तक कुछ समय है। या सुबह हो चुकी है और काले बादलों के कारण अंधेरा महसूस हो रहा हो। पूरे हफ़्ते से यही हाल है। न तो बारिश होती, न तो हवा खुलकर चलती। उमीदा को यहाँ सिर्फ़ समय या जल-वायु से ही नहीं बल्कि ख़ुद शहर से भी काफ़ी तकलीफ़ हो रही थी। वह लाल ईंटोंवाली गोथिक अन्दाज़ की ऊँची-ऊँची इमारतों के बीच में जिनकी शिखरें किसी पर्वतमाला की तरह आसमान चूम रही थीं, वह ख़ुद को चींटी जैसी महसूस करती थी। उमीदा प्रतिनिधियों के लिए होटल के पास आनेवाली कार पर सवार न होकर दो-तीन बार पैदल आती-जाती रही। उसे ऐसा महसूस हुआ मानो वह समाज से अलग रहनेवाले किसी कमज़ोर लोगों के बीच में फँस गयी हो। सड़क के बीचों-बीच चलती कारों में तो एक अलग दुनिया मौजूद थी। शहर ख़ास तौर से विशाल था। उमीदा की इच्छा है बाद में इस शहर की पुरानी यूनिवर्सटियाँ वैज्ञानिक अनुसन्धानशालाएँ, चिकित्सालयों को जाकर देखेगी। यह सारी योजनाएँ आज की रिपोर्ट से संबंध रखती थीं। अगर सफल हो... क्या बात है? घबड़ा रही है? अभी से? यह कोई छोटी-मोटी बात नहीं। अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस में सोवियत चिकित्सा की एक मात्र प्रतिनिधि। पर उमीदा के उस आविष्कार के पीछे जिसकी वह घोषणा करनेवाली है, कितने ही शागिर्दों, उस्तादों, पूरे एक वैज्ञानिक समूह का दस-पन्द्रह वर्षों में की गयी मेहनत छुपी थी। उमीदा अडिग थी। उसके दिल में हो रही यह घबड़ाहट... वैसे ठीक भी था।

...काली कार कंकरीट मैदान पर आ पहुँची और ड्राइवर ने दरवाज़ा खोला।

"मैडम..."

धन्यवाद कहकर उमीदा पतली एड़ियोंवाले अपने जूते कंकरीट मैदान पर ठक-ठक करती नीचे उतरी। मैदान काफ़ी बड़ा था। उसके कोहरेवाले

उस छोर से आधुनिक अन्दाज़ में शीशे और स्टील से बनायी गयी मेडिकल अकादमी की इमारत सफ़ेद-सफ़ेद दिखायी दे रही थी। तपेदिक रोगों की अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस इसी इमारत में हो रही थी। मैदान में एक के बाद दूसरी पहुँच रही कारों से दुनिया के विभिन्न देशों के प्रतिनिधि उतर-उतरकर आ रहे थे। लंबे चोगे पहने, गलों पर प्रतिष्ठित पदक के फीते लटकाये, बैज लगाये प्रौढ़ विशेषज्ञ। धारीदार पतलूनोंवाले, दाढ़ी बढ़ाये, बड़ी-बड़ी आँखोंवाले संवाददाताओं से शीशे की दीवारोंवाली इमारत भर गयी। विभिन्न रंगों के कपड़ोंवाले इन लोगों से कोहरे से गीली यह इमारत किसी मछलीघर की याद दिला रही थी।

उमीदा भी इसी प्रवाह में शामिल हो बिना शोर चलती एस्केलैटर से ऊपर चढ़ने लगी। तीसरी मंज़िल के विशाल हॉल में, जहाँ हिपोक्रत, कोख़, मेनिकोफ़, हमालेया की बड़ी-बड़ी तस्वीरें लगायी गयी थीं, उमीदा श्रीलंका के विशेषज्ञों से मिली। उनका परिचय मास्को में हुआ था। लॉबी में ऊँचे क़दवाला, हँसमुख डॉक्टर बेर्गेर दिखायी दिया। वह जल्दी में था, उसका भी आज ही भाषण था। वह नमस्कार करनेवालों से हाथ नहीं मिला रहा था, बस मुस्कुराते हुए सिर हिलाते जा रहा था। वह कोई साठ साल का था पर वह क़द-काठी से अभी मज़बूत था, कपोल लाल-लाल थे, गंजा सिर चमक रहा था। इस्पाती रंग का सूट उसके ऊँचे, दुबले-पतले क़द से काफ़ी बड़ा-सा लग रहा था। या तो उसने उमीदा को पहचान लिया था या बस यूँ ही उससे हाथ मिलाकर नमस्कार कर लिया था। गर्व से उमीदा प्रफुल्लित हो उठी। डॉक्टर बेर्गेर! यह नाम उसके यहाँ आने के पहले दिन से वह बराबर सुनती आ रही थी। उसकी रिपोर्ट की सब बेताबी से इन्तज़ार कर रहे थे। गलियारे में, मंच पर, रेडियो पर बस नित्य इसी की चर्चा होती थी। समाचार-पत्र डॉक्टर बेर्गेर को "कांफ़्रेंस का शूर" कह चुके थे।

उमीदा हर्षित हो उठी थी। दूसरे क्षेत्र भी अहमियत रखते हैं पर ज्ञान में जिस चीज़ की तुमने खोज की वह अवश्य सफल रहेगी। सच्चा सुख इसी में है। अब डॉक्टर बेर्गेर कितने ख़ुशक़िस्मत हैं। उनकी ख़ुशक़िस्मती में सब श्रोता, उमीदा भी शरीक थी। वह नये आविष्कार के बारे में उसके रचनाकर्त्ता के ही मुँह से सुनेगी! और सब से पहले सुननेवालों में से एक होगी! न जाने उसी आविष्कार के साथ-साथ ज्ञान में

नये-नये क्षितिज पैदा हों! नयी दुनिया में प्रवेश करना कितना उल्लासमय है। इस तरह का उल्लास उमीदा ने पहले भी एक-दो बार झेला था। उस समय से वह ख़ुद को ज्ञान के मैदान में दिलेर अनुभव करती। उसकी आज की रिपोर्ट भी चाहे सनसनीखेज आविष्कार के बारे में न हो, फिर भी फेफड़ों की शल्यक्रिया के क्षेत्र में बड़ी बात है। ज्ञान के क्षेत्र में एक बड़ा डग भरने का उसे पूरा विश्वास था।

सभा शुरू होने से पहले उसने अपनी पोलैंड की ही सहेलियों के साथ कीवन में जाकर हल्का-सा जल-पान कर लिया। फिर समाचार-पत्र की दूकान के सामने से गुज़रते समय उसकी निगाह एक पत्रिका पर पड़ी जिस पर कुर्त बेर्गेर की तस्वीर थी। डॉक्टर ने अपने हाथ आगे रखकर सीधे देखते हुए फ़ोटो खिंचवायी थी। कलाइयों के पीछे रोएँ तक दिखाई देते थे। शल्यचिकित्सक के हाथ... मानो बिना हड्डियोंवाले पर शक्तिशाली, उँगलियाँ पियानो बजानेवालों जैसी लंबी-लंबी।

सभा भवन के दरवाज़ों पर बिजलियाँ जलीं। भाषण देनेवालों में से एक होने के कारण उमीदा प्रेसीडियम में बैठी थी। वहाँ जाने के लिए गोल हॉल के ऐन बीच से गुज़रने की ज़रूरत पड़ती थी। ऊँचे हॉल के पिछवाड़े की क़तारें भी बहुत ऊँची थीं। अर्द्धवृत्त की शक्ल में यह सीढ़ी-ब-सीढ़ी ऊपर जाती थीं। इस लिए आगे बैठनेवालों को भी, पीछे बैठनेवालों को भी मँच अच्छी तरह दिखाई देता था।

उमीदा प्रेसीडियम में अपनी जगह पर जा बैठी। हर दिन वह यहीं दूसरी क़तार में बैठती थी। आज का सभापति एक झुके क़द का, दाढ़ीवाला, हॉलैंड का विद्वान था। सबसे आख़िर में आकर उसने सबसे हाथ मिलाये। आँख से पेंसने (एक आँख में लगाया जानेवाला चश्मा) उतारकर ऊपर की ओर जहाँ प्रेसवाले खड़े थे, उसने कुछ व्यंग्य भरी निगाह से देखा। नित्य ऐसा होता है, जब सारे हॉल में शांति छा जाती, तब भी ऊपर में संवाददाताओं का समूह देर तक शोर मचाता समय बरबाद करता रहता।

टेलीविज़न कैमरों की छोटी-छोटी लाल बत्तियाँ जल उठीं। नुमाइशी पर्दों पर प्रकाश पड़ा। बड़ी-बड़ी बिजलियाँ जल उठीं और सिनेमाकैमरे काम करने लगे। एक के बाद दूसरा वक्ता मंच पर जाने लगे, जब वे अपना भाषण शुरू करते तो पहले अनुवाद करनेवाले इयरफ़ोनों की बटनें

आवाज़ निकालते रहते। सूचनाओं में अधिकांश मामूली बातें थीं, उपस्थित लोग पहले से उनसे परिचित थे। पर इसके बावजूद विज्ञान के क्षेत्र में उन्हें दर्ज करना ज़रूरी था।

पाँच दिन से हो रहे ऐसे भाषणों से सब ऊब गये थे। इसलिए उमीदा की तरह इयरफ़ोन लगाये बिना बहुत-से लोग बैठे थे। पूरा हॉल कभी-कभी उत्तेजित हो उठता लेकिन ज्यादा समय शांत ही रहता, मानो सब किसी तूफ़ान के इंतजार में हों, अपनी सारी हैरत, सारा शौक़ किसी के लिए संभाले बैठे हों। यह और "कोई" नहीं, वहीं कुर्त बेर्गेर था – यह सब जानते थे। यह डॉक्टर बेर्गेर भी जानता था। इस लिए वह अपने पतले होंठ समेटे, इस यश से कुछ सकुचाता, कंधे सिकोड़े मौन बैठा था।

दोपहर के क़रीब-क़रीब उसे भाषण देना पड़ा। जब उसकी खिलाड़ि-यों-सी क़द-काठी मँच पर दिखायी दी ऊपर और नीचे की सभी दीर्घाएँ सहसा जगमगा उठीं। हॉल मानो पाँवों पर खड़ा होने को हुआ। पर खड़ा नहीं हुआ, सिर्फ़ शोर की एक लहर-सी फल गयी। फिर एक गहरा सन्ना-टा छा गया, सिर्फ़ फोटो और सिनेमा कैमरों की आवाज़ ही सुनाई दे रही थी। संवाददाता हड़बड़ा गये। वे अपने लंबे-लंबे माइक्रोफ़ोन मंच की ओर बढ़ाने की कोशिश कर रहे थे। कोई जल्दी-जल्दी नोटबुक खोलने लगा। ऊँघनेवाले भी सावधान होकर बैठ लिये। पीछे बैठी औरतें और चिकित्सा जगत के "सितारे" देखने आये मामूली डॉक्टर भी अपनी दूर-बीन आँखों पर लगाने लगे।

डॉक्टर बेर्गेर इस आश्चर्यजनक परिस्थिति पर यथासंभव लापरवाही दिखाने की कोशिश करते, कुछ क्षण के लिए चुपचाप खड़ा रहा। गहरा सन्नाटा छा जाने के बाद ही उसने भारी-भरकम आवाज़ में बोलना शुरू किया। इस प्रतिष्ठित मँच पर भाषण करना कितने गर्व और ज़िम्मेवारी की बात थी। कई देशों से आये अपने सहकर्मियों के बहुमूल्य सुझाव सुन-ना, नये आविष्कारों से परिचित होना डॉक्टर बेर्गेर के लिए कितना सुखमय है। विज्ञान के क्षेत्र में प्रत्येक आविष्कार के लिए पूरा जीवन अर्पित कर दिया जाता है और ऐसा ही चाहिये भी। क्योंकि मानव . . .

उमीदा एक अच्छी जगह पर बैठी थी। दीर्वाओं के तेज़ प्रकाश में

डॉक्टर की आकृति बग़लवाली ओर से ख़ूब दीख रही थी और देखते-देखते उमीदा मोहित हो गयी थी। मुँह की झुर्रियाँ, कपोलों की हड्डियाँ मर्दों जैसी मोटी-मोटी थी, मुँह बड़ा था, नासिका भी भद्दी-सी पर होंठ पतले, सिर गंजा। बरौनियाँ भी पीली-सी, नहीं, पीली नहीं, सफ़ेद-सी दीख रही थीं... चाहे जो हो उसकी बरौनियाँ उमीदा को दिखायी नहीं दे रही थीं पर वह महसूस कर रही थी। महसूस कर रही थी? क्यों?

डॉक्टर बड़ी दिलचस्पी से भाषण दे रहा था। अगर विज्ञान के क्षेत्र में उसके विनीत सुझाव जिन्हें वह आज प्रकट करनेवाला है, यहाँ उपस्थित आदरणीय अतिथियों को मंज़ूर हों तो वह मान लेंगे कि अपनी सारी खोजें तथा वैज्ञानिक परिणाम सफल रहे हैं जिन के लिए उसने कितनी ही रातें बेदार बितायी थीं, बड़े साहस के साथ इस भयानक काम पर हाथ लगाया था। उमीदा ने इयरफ़ोन नहीं लगाया था। वह जर्मन भाषा अभी भूली नहीं थी और यहाँ आते ही यह क्वणित भाषा उसे पूरी तरह समझ में आने लगी थी पर उसने महसूस किया, वह अब तक वक्ता के शब्द नहीं, उसकी आवाज़ सुनती जा रही थी। यह एक भद्दी, सुनने में बिलकुल भारी आवाज़ कभी-कभी अकस्मात निर्दयता के साथ गूँज उठने को तत्पर होती। उसके पतले होंठ रक्तहीन थे।

उमीदा की कुर्सी चरमरा उठी। वक्ता के शब्द ध्यान से सुन रहे लोगों ने उसकी ओर देखा। उमीदा कुछ अनुचित स्थिति में पड़ गयी। पर लोग यह बात उसी पल भूल गये: वक्ता ने अभी अपना प्रशंसनीय आविष्कार तो प्रकट ही नहीं किया था और ऐसे बेताबी के लमहों में क्या कुछ नहीं होता।

पर अभी भी उमीदा के कानों में एक भी शब्द घुस नहीं पाया था। उसकी आँखें ख़ुद वक्ता पर टिकी थीं। बेर्गेर मँच पर इस तरह खड़ा था मानो वह ऑपरेशन की मेज़ के पास खड़ा हो। उमीदा की इच्छा हुई, जाकर वह डॉक्टर के ललाट का पसीना पोंछ दे। कुर्सी फिर चरमरा उठी। उसने महसूस किया, वह बेमतलब उस की ओर बुरी तरह खिंची जा रही थी। इस पर लोग ध्यान दे रहे हैं या नहीं – उमीदा को अब इसका ख़्याल भी नहीं रहा था, न जाने क्यों उसका शरीर जल रहा था। उसने कुछ ऐसी गन्ध महसूस की जो ऑपरेशन के समय दवाओं से आती थी। उसके ख़्याल में डॉक्टर बेर्गेर ने यह भाँप लिया था लेकिन

इससे सकुचाने की जगह वह उसे और भी ध्यान से देखने लगी थी। अगर कहीं वह अपना भाषण बीच में ही छोड़कर उमीदा की ओर देखने लगे तो . . .

तो क्या होगा? और भला वह उसकी ओर क्यों देखने लगी? सारा शरीर जल रहा था। वह सामने के कुछ काग़ज़ इधर-उधर समेटकर उठ खड़ी हुई, उसे अपनी आँखों के सामने डॉक्टर की आकृति के अलावा कुछ नहीं दिखाई दे रहा था। कुर्सी के नीचे का एक तख़्ता कड़ककर गिर पड़ा और सारे हॉल ने वक्ता से आँखें हटाकर ग़ुस्से के साथ उमीदा की ओर देखा। उमीदा हक्का-बक्का ही थी कि तभी हॉल में तालियाँ बजने लगीं। वक्ता ने क्या कहा, आविष्कार की बात छेड़ी या नहीं, तालियाँ किस लिए बजीं – उमीदा नहीं समझ पायी। उसने तालियाँ तक नहीं बजायीं। तत्क्षण वह सूई जैसी एड़ीवाले जूते खड़खड़ाती पहली क़तार की एक जगह पर, ऐन डॉक्टर बेर्गेर के सामने बैठ गयी। हॉल कुछ बेचैन-सा हो एक बार हिल उठा पर वक्ता ने अपना भाषण जारी रखा।

"जीने के लिए आदमी के फेफड़े का कितना हिस्सा ज़रूरी है? दो तिहाई हिस्सा? आधा? पौना? फेफड़े का ऑपरेशन, उसका क्षतिग्रस्त हिस्सा काट कर अलग कर देना विज्ञान के क्षेत्र में एक मामूली काम माना जाता है। पर उसकी महत्तम सीमा हमें मालूम है या नहीं? मैं अब अपने कई रोगियों के नाम गिनाऊँगा जो आजकल सकुशल हैं जिनकी ज़िन्दगी फेफड़े के कार्यक्रम की सब से आख़िरी संभावनाओं पर, वैज्ञानिक परिणामों से जाँची स्पष्ट और न्यूनतम सीमाओं पर निर्भर है: हांस काफेल्ड – जन्म १९३७, हाम्बुर्ग का निवासी, ऑपरेशन १९५४ में किया गया; डेविड ग्युन्टेर – जन्म १९२८, गोइज़ेर गाँव का निवासी . . ."

डॉक्टर बेर्गेर ने और भी बहुत-से नाम बताये।

अब उमीदा ठीक उसके सामने बैठी, सुध-बुध गँवाये, एकटक उन्हें देखे जा रही थी। पर वक्ता सिर झुकाये अपनी रिपोर्ट पढ़ता जा रहा था। पढ़ते समय उसकी आवाज़ में कुछ शिकन-सी महसूस होने लगी, कभी-कभी उसकी आवाज़ किसी लोहे की तरह गूँज उठती थी। उमीदा को तब ऐसा महसूस होता मानो कहीं कोई कुत्ता केकिया रहा हो। उसने देखा, वक्ता के मुँह से थूक के छींटे निकल रहे हैं, उसकी हलकी सफ़ेद बरौनियाँ भी नज़र आ रही थीं। अब यह वह शिष्ट डॉक्टर बेर्गेर नहीं

था जिसने सुबह के समय उससे मुस्कुराते हुए हाथ मिलाया था। हाँ, सच में यह कोई दूसरा ही था और इस सचाई ने न सिर्फ़ उसकी स्मृतियों को बल्कि उसका शरीर तक एक आग-सी घेर लिया।

वह फिर से उठ खड़ी हुई। उसके ख़्याल में हॉल सुनसान था। गुस्से के साथ खड़ी हो उसने एक पुर्जे पर लिखा, वह इस मँच से वैज्ञानिक रिपोर्ट देने से इनकार करती है और उसने पुर्जे को प्रेसीडियम में बढ़ाकर, फाइल बग़ल में दबाये हॉल के ठीक बीच से तेज़ क़दमों से चलती बाहर निकल गयी। हॉल के आधे लोग उठ खड़े हुए और उसे जाते देखते रहे। कहीं सिनेमा कैमरों की आवाज़ गूँज उठी। वक्ता की आवाज़ अब कोई नहीं सुन रहा था। कूबड़-से अध्यक्ष शोर बन्द करने के लिए घंटी बजाने लगे, उमीदा के कानों में घंटी की आवाज़ सुनायी दी।

होटल में वह पैदल या कार से पहुँची—उसे याद नहीं। मुलायम कुर्सी पर बैठकर थोड़ा आराम करने के बाद ही वह ख़ुद पर क़ाबू पा सकी। उसके आस-पास कोई नहीं था। दरवाज़े पर बेर्ता दिखाई दी।

"डॉक्टर, यह आपको क्या हुआ है? ज़रा आईने में देखिये।" उसने कहा।

"नहीं, नहीं," सिर हिलाते उमीदा ने जवाब दिया मानो कोई उसका सिर जबरन आईने की ओर मोड़ रहा हो। अपनी स्थिति आप अच्छी तरह जानती थी। ड्यूटीवाली औरत द्वारा लायी कॉफ़ी पी लेने के बाद वह सोच में डूब गयी: "मैं ने क्या कर डाला? क्या यह उचित हुआ? घबड़ा गयी, असल में मुझे कोई दूसरा उपाय ढूँढ़ना चाहिये था। हॉल में उपस्थित लोग क्या सोच रहे होंगे? अध्यक्ष ने मेरा पत्र पढ़ दिया या बीमार हो जाने का बहाना किया। अब क्या होगा? शोर मच जाये तो वह क्या करेगी? संवाददाताओं का पूरा समूह... क्या कुछ नहीं करते। मुझे क्या करना था तब? अपने पर क़ाबू नहीं रख पायी, बैठ नहीं पायी, जलने को हो रही थी... तो भी, ख़ुदा का शुक्र, अपने को क़ाबू में कर ही लिया। आहिस्ता से उठकर निकल गयी। अगर कहीं मंच पर दौड़कर उसका मुँह अपने पंजों से दबोच लेती तो क्या होता?

तभी किसी ने दरवाज़ा खटखटाया। दरवाज़े से फ़्राऊ बेर्ता ने अन्दर झाँककर देखा:

"आप से मिलने संवाददाता आये हैं।"

"उनको अन्दर मत आने देना!"

बाहर थोड़ी देर तक शोरगुल होता रहा लेकिन फिर शीघ्र ही थम भी गया। कुछ ही क्षणों के बाद फिर बेर्ता की आवाज़ आयी।

"डॉक्टर, संवाददाता! आपको देखना चाहते हैं।"

"कह दो, फ़ुरसत नहीं है।"

"मैं 'फ़ांकफ़ुर्तेर आलहेमाइने' से हूँ, मैं बस एक सवाल चाहूँगा," किसी की बग़ल से सिर निकालकर एक चश्मेवाले, छोटे क़द के आदमी ने कहा।

"नहीं," कहकर उमीदा ने संवाददाताओं के पूरे समूह के मुँह पर दरवाज़ा झटके से बन्द कर दिया लेकिन दरवाज़ा बन्द हो, इस से पहले ही टोली के पीछे से किसी ने उसकी तस्वीर खींच ही ली। उमीदा की आँख फ्लैशगन की रोशनी से चकाचौंध हो गयीं और वह आँखें मलती अपनी जगह पर जा बैठी।

"शुरू हुआ," आह भरकर उसने कहा।

वह फिर से उठ खड़ी हुई। कमरा अंधेरा था। उसने पर्दे सरका दिये, फिर भी कोई रोशनी नहीं आयी! एक घनघोर काले बादल ने पूरे शहर को ढँक रखा था। उमीदा ने जाकिट और जूते उतार दिये और फर्श के क़ालीन पर कभी इस खिड़की, कभी उस खिड़की तक चहलक़दमी करने लगी। फिर पर्दों को थामकर दीवार पर पीठ के बल टिक गयी। तभी किसी आवाज़ को सुनकर वह चौंक पड़ी। डॉक्टर बेर्गेर... कुर्त बेर्गेर की आवाज़।

अब अन्धेरे कमरे की तनहाई में उसका दिल किसी घबड़ाहट से भर उठा। पर एक हद तक उसे ऐसी ही घबड़ाहट जीवित कर सकती थी।

दोपहर होते-होते सड़कों पर इस तरह कोहरा छा जाता कि गाड़ियों की बिजलियाँ जलानी पड़तीं। खिड़कियों में बिजलियाँ प्रतिबिंबित होकर उछलतीं, नाचतीं।

...पुरानी कार घर्र-घर्र आवाज़ निकालती दरवाज़े के सामने आकर रुक गयी। शायद फिर रोगी आये थे। जैसा कि नियम था, उनको लॉरियों में पहरेदारों की निगरानी में लाया जाता था। खान से। खान काफ़ी दूर थी। उसका अस्पताल यहाँ, शांत जंगल के छोर पर था। यह ज़रूरी भी था, क्योंकि रोगियों में अधिकांश तपेदिक से पीड़ित होते

थे। खान ख़ुद ऐसी जगह थी जहाँ सिक्का या जस्ता जैसी धातु निकाली जाती थी। उनका असर सीधे फेफड़ों पर होता था। वहाँ काम करनेवाले क़ैदियों में बहुत-से मर जाते थे।

इस खान की भयावह कहानी उमीदा ने कैंप में ही सुनी थी। अच्छा हुआ, उसे खान में नहीं, उसके अस्पताल में भेजा गया था। यहाँ उसकी नर्स और जर्मन भाषा की शिक्षा ने काम दिया। अपनी क़िस्मत पर उसे ख़ुश होना चाहिये था। कम से कम आदमियों की देखभाल तो करेगी। उनको दवा पिलायेगी। खान से आये बदनसीबों की नितांत हसरतों का भागीदार बनेगी। यहाँ जितने भी बीमार आये, उन में से कोई भी ठीक नहीं हुआ पर कम से कम उन्हें मृत्यु से पहले ताज़ा बिस्तरा, गर्म पानी, उमीदा की मुलायम, दर्द भरी आँखें तो मिलेंगी। इन आँखों से, दवाओं की बू से उनको आशा की किरणें दिखाई देतीं। खान में काम करनेवालों को यह भी नसीब नहीं। वे कुत्ते की मौत मर जाते हैं, ख़ुद भी नहीं जान पाते कि वे भी इनसान हैं।

खान में परिस्थिति बुरी होने के बावजूद, न जाने क्यों, अस्पताल में बहुत लोग नहीं थे। यहाँ सिर्फ़ उन आदमियों को लाया जाता होगा, जिनके ठीक हो जाने की उम्मीद हो और जिनके पास हुनर हो, उन्हें किसी काम में लाया जा सकता हो। आज भी उमीदा ने कई स्वस्थ आदमियों का स्वागत किया। वे गाड़ी से नीचे कूदे, उन्होंने एक जवान नर्स को पहले कुछ चौंककर, उसकी सफ़ाई पर खेद करते देखा। पर बाद में उसकी शांत आँखों में कोई अच्छी चीज़ महसूस करके या शायद काफ़ी लम्बे अर्से के बाद पहली बार ऐसा मौक़ा मिला हो, घबड़ाहट से वे मुस्कुराये। वे कई जातियों के थे और अधिकांश जवान थे। अस्पताल में आने की बात, उन्हें यहाँ पहुँचकर ही मालूम हुई थी। वे बदबूदार फटे चिथड़े कपड़े उतारकर धारीदार चोग़ा पहनते समय कुछ प्रसन्न सा होकर हँसी के साथ कह उठे: "अच्छा, हमारा इलाज आप करेंगी, फ्रोइलैन।" पर उन में से कई आपस में नज़रें मिलाकर सोच में डूब गये।

भले आदमी थे वे सब। विशेषकर इन हँसमुख, विनोदी जवानों के साथ काम अच्छा चल सकता है। वे सब स्वस्थ थे, रोग को आसानी से हरा सकते थे। उमीदा को यही चाहिये था और क्या। क्योंकि यहाँ

से कोई ठीक होकर घर जाये तो नर्स को तसल्ली मिलती। अपने को काफ़ी शक्तिशाली महसूस करती। शक्ति की अभी ज़रूरत हो रही थी। कँटीले तारों से घिरे इस हरे-हरे जंगल के दामन में, इन श्वेत ख़ेमों में क़ानूनी मृत्यु। मृत्यु, वेदना, मृत्यु... इस लिए यहाँ बीमार जितने कम हों, उतना ही अच्छा। उसके ख्याल में यह अस्पताल किसी अन्तर्राष्ट्रीय आयोग के दिखावे के लिए बनाया गया मालूम होता था। नन्हा-सा, सुन्दर-सा, साफ़-सुथरा, आधुनिक मेडिकल यंत्रों और दवाओं से सुसज्जित। यहाँ कभी-कभार भारी, जटिल ऑपरेशन भी किये जाते थे। महान विशेषज्ञ भी हैं। मिसाल के तौर पर मुख्य शल्य चिकित्सक डॉक्टर बेर्गेर...

परन्तु नये बीमार उमीदा को नहीं सौंपे गये। उसके अपने ख़ास मरीज़ थे। छः शय्या वाले कमरे के छः बीमार। उन से उमीदा का अच्छी तरह परिचय हो चुका था, पारस्परिक मेल-जोल भी। उन में से एक से वह रूसी में और दूसरे से जर्मनी में बात-चीत करती थी। रात देर गये तक वह उनके साथ बैठी रहती। दवा पिलाती, बिस्तरों को ठीक करती, बुख़ार देखती, दिन-रात की सारी सूचियाँ दर्ज करके, डॉक्टर के हवाले कर देती।

उन में से एक वत्स्लाव —पोलैंड का था। बड़ा विनोदी, हँसमुख आदमी। बड़ा माहिर, सब कुछ जानता था। वह उमीदा के चेहरे पर एक नज़र डालकर, उसके दिल की बात भाँप लेता था। कभी ऐसा भी होता कि जब तन्द्रालु उमीदा की कोई चीज़ गिर जाती, बिना सोचे वत्स्लाव कह देता:

"नर्स, आपका कंघा गिर गया।"

उमीदा को उस पर पूरा भरोसा था—वह ठीक हो जायेगा। उसके ऑपरेशन के अभी दो दिन भी नहीं हो पाये थे पर वह सबसे हँसने-बोलने लग गया था। ऑपरेशन शायद बहुत सफल रहा था। जल्दी ही उसके पूर्ण स्वस्थ हो जाने की पूरी उम्मीद की जा सकती थी।

खिड़की के सामने लेटा रोगी जर्मन है। शुरू में उमीदा उससे डरती थी। वह इतना बड़ा, सशक्त, चौड़े कंधोंवाला था, पाँव भी इतने लम्बे थे कि कोई भी उसे बीमार नहीं कह सकता था। वह उमीदा की ओर आँखें तरेरकर देखता और पीठ फेरकर लेट जाता। थर्मामीटर अंगुलियों से दबाकर तोड़ डालता। उमीदा बस उसे अनुनय भरी दृष्टि से देखती रह जाती।

"मैं बीमार नहीं हूँ," जर्मनी बोल उठता।

"झूठ है, अगर आप बीमार नहीं तो यहाँ किस लिए आये हैं? मैं आपसे कह रही हूँ, जनाब हमनाम..."

जर्मनी का नाम उमायदर था। जब उमीदा ने उसको "हमनाम" कहकर पुकारा तो जैसे जर्मनी के निष्ठुर, क्रोधपूर्ण चेहरे पर गरिमा छा गयी। उसने नया थर्मामीटर हाथ मे ले लिया।

इससे भी किसी न किसी तरह कुछ बातें हो जाती थीं पर दरवाज़े के पासवाला फ्रांसीसी मरीज़ लाइलाज था। उससे बात करना एकदम मुश्किल था। वह छोटे क़द का आदमी था, वह जन्म से ऐसा था या बीमारी से ऐसा हो गया था—यह उमीदा नहीं जानती थी। उसके कई बार ऑपरेशन हो चुके थे। लेकिन उसके फेफड़ों में कोई सुधार नज़र नहीं आ रहा था, क्योंकि वह लगातार सूखता ही चला जाता। रातों को जब वह अपने घुटनों को हाथों में लिये खाँसने लगता तो उमीदा की सारी ताक़त जवाब देने लगती और वह पेशानी दीवार पर टिका कर गहरे सोच में डूब जाती। बिना देखे वह जानती थी, बीमार की गर्दन की नसें उभर आयी हैं। खाँसते समय उसकी हथेली पर ख़ून के थूक के छींटे आ चिपकते। वह उसके पास जा नहीं सकती थी, क्योंकि उसे रोगी पर बुरा असर पड़ने का खौफ़ था। लम्बी रातें इस तरह काटने से कहीं मर जाना बेहतर था।

पर यह बेचारा अभी जीवित है। जब कुछ क्षणों के लिए उसकी खाँसी थम जाती तो फेफड़ों में ज़्यादा से ज़्यादा हवा भर लेने के लिए तेज़-तेज साँस लेने लगता, उसके अशक्त शरीर को थोड़ा चैन मिलता। उमीदा को लगता, वह ऐसे ही क्षणिक चैन के लिए जीना चाहता हो। इन्हीं क्षणों में उसे दो-चार अच्छे शब्द सुनाकर दिलासा देने की ज़रूरत होती पर उमीदा उसकी भाषा नहीं जानती थी। वह भी न रूसी, न जर्मन भाषा जानता था। यूँ भी उसे बोलने की ज़रूरत नहीं थी क्योंकि ऐसे क्षणिक चैन की क़ीमत वह बड़ी मुश्किल से अदा कर रहा था।

चैन। पर उमीदा कब चैन ले सकती थी? बाज़ वक़्त ऐसा प्रतीत होता जैसे उसकी हालत स्वयं फ्रांसीसी से भी ख़राब है। उसका सिर्फ़ अस्तित्व ही नहीं, उसका सारा जीवन, संपूर्ण आत्मा पीड़ित थी। दुनिया में क्या-क्या घटनाएँ घट रही थीं? पीले रंग के परदेवाला यह "सोने का

पिंजरा" और सारी दुनिया से अलग था, इस जंगल तक कोई भी ख़बर नहीं पहुँच सकती थी। इन निराश, दुखियारों के लिए चैन लेना भी कोई मायने नहीं रखता था। उनमें से सबसे स्वस्थ यह उमायदेर तो बड़ा ही जंगली जाहिल साबित हुआ था, उसे हज़ार बार समझाओ, सब बेकार। वत्स्लाव भी देखने में काफ़ी स्वस्थ था, पर उसके फेफड़ों का भी आधा हिस्सा काट लिया गया था। वह अपने को ख़ुश दिखाने की कोशिश करता पर असल में...

उमीदा जंगल की सुबह देखते-देखते खिड़की के नीचेवाले तख़्ते पर अपना सिर टिकाकर ऊँघने लगी थी कि फ्रांसीसी की आवाज़ से वह जाग पड़ी। रोगी उसी को बुला रहा था। उमीदा उसके पास चली आयी। फ्रांसीसी ने खाट के किनारे उसे बैठने का इशारा किया। वह किसी चीज़ से प्रसन्न मालूम हो रहा था। नर्स को कोई अच्छी ख़बर सुनाने के अन्दाज़ में वह ज़ोरों से मुस्कुराने की कोशिश कर रहा था। उसकी याचनापूर्ण आँखें अश्रुसिक्त थीं और राख की चिनगारी-सी चमक रही थीं। उमीदा ने उसके याचनापूर्ण चेहरे की ओर नहीं देखने की कोशिश की। फ्रांसीसी ने अपनी ज़बान में कुछ पूछा, हाथों से कुछ समझाया। शायद उसने पूछा था, आपके कोई बच्चा है या नहीं? उमीदा ने हँसकर ना में सिर हिलाया। फ्रांसीसी ने समझाया कि उसके तीन बच्चे हैं, उनकी बारी-बारी से तारीफ़ें कीं, हाथ से उनके क़द को ऊँचा-नीचा करके भी दिखाया।

"माक, डेनी, ल्यूल्यू..." उसने कहा।

"ल्यूल्यू," उमीदा ने दुहराया। बहुत ख़ूबसूरत नाम। शायद वह लड़की का नाम था। फिर फ्रांसीसी ने बड़े इत्मीनान से तीनों नामों को फिर दुहराया और कहा, वे बहुत मीठे हैं। बोलते-बोलते वह थक गया था। पर उमीदा इस लिए ख़ुश थी कि आख़िरकार उनमें बातचीत हो ही गयी। शायद यह मामूली-सी बात कहने के लिए फ्रांसीसी का दिल बहुत उकता रहा था। शायद यह उसके दिल की इकलौती, सब से श्रेष्ठ बात थी। उमीदा ने चैन की साँस ली, मानो उसने एक बड़ा काम कर डाला हो।

तभी उसे जर्मनी ने भी बुलाया।

"अरे मेरी हमनाम..."

उमीदा हँसी। रोगी के पास चली आयी।

"आप फ़्रांसीसी की देखभाल करने लगीं, पर मेरी क्यों नहीं करतीं?"

"फ़रमाइये।"

"यह जगह मुझे बड़ी पसन्द आ गयी है। साफ़-सुथरी, शांत। सभा-हरण-शिविर से हूँ। मैं रोगी नहीं हूँ। फिर यहां किस लिए। बताइये।"

"क्या आप खान में काम कर रहे थे?"

"जी हाँ।"

"तब आपका फेफड़ा ख़राब है। आप ने कहा न यह जगह आपको पसन्द आ गयी है। पर ऐसा नहीं। यह अस्पताल है, समझे? यहाँ कोई भी मर सकता है।"

"मैं तो रोगी नहीं हूँ।"

"शांत हो जाइये। अब डॉक्टर जाँच के लिए आयेंगे। मुझे तैयार होना चाहिये।"

"यह लीजिये, आप फिर मेरी बातें नहीं सुनना चाहतीं।" यह कहकर जर्मनी ने अपना हृष्ट-पुष्ट शरीर दीवार की ओर फेर लिया।

"मेरी बातें नहीं सुनना चाहती।" और किस लिए सुनें? शायद वह उमीदा से कोई शिकायत करना चाहता था। लेकिन उमीदा क्या जवाब दे पाती? वह तो डॉक्टर नहीं है। नर्स का कर्त्तव्य डॉक्टर के आदेश का पालन करना है, बस। वह रोगी नहीं है—अजीब बात है। फेफड़ों का रोग ऐसा रोग है कि रोगी स्वस्थ लोगों की तरह घूम-फिर सकता है, खा-पी सकता है। यहाँ ऐसे रोगी भी आये थे जो उमायदेर से भी शक्तिशाली थे पर उनमें से थोड़े-बहुत ही बच पाये। नियमानुसार, प्रातःकाल उमीदा रोगियों का कमरा डॉक्टर के निरीक्षण के लिए तैयार करने लगी। सारे थूकदान धोये, रोगियों को मुँह साफ़ कर लेने के लिए भीगे तौलिये बाँटे, उनकी जगहें ठीक कर दीं, डिब्बों पर पड़ी धूल पोंछी, बेकार बर्तनों को, दवाओं की शीशियों को वहाँ से हटा दिया। फिर साबुन से हाथ धोये और झरोखे खोलकर अपनी मेज़ के सामने साफ़ सफ़ेद कपड़ा पहन लिया और रोगियों के काग़ज़ ठीक करने लगी।

कुछ समय बाद गलियारे में क़दमों की आहट सुनाई दी। अभी निरीक्षण शुरू नहीं हुआ था। उमीदा ने रास्ते में अपने पेशबन्द की रस्सी

बाँधते आगन्तुक का सामना किया। गलियारे में डॉक्टर बेर्गेर के अगुवाई में डॉक्टरों की एक टोली चली आ रही थी।

बेर्गेर निरीक्षण में बहुत कम आया करता था। सो, जब वह कमरों में आता, यह कोई असाधारण घटना होती। उसकी ऐसी आदतें भी थीं जो अस्पताल के लिए नियम बन चुकी थीं जैसे रोगियों की ओर से किसी की शिकायत सुनना, आदि। वह रोगी को ख़ुद देखता और फ़ैसला भी ख़ुद करता था। नर्सों को भी हस्तक्षेप करने की कोई ज़रूरत नहीं पड़ती थी। हर रोगी के रोग का इतिहास और उसकी पिछली हालत वह अच्छी तरह जानता था।

बेर्गेर पर नज़र पड़ते ही वह हड़बड़ा गयी। उसने झपटकर दरवाज़ा खोला। फ़्रांसीसी की हालत के बारे में वह बताना चाहती थी पर बता न पायी। बेर्गेर उसके पास से बिना रुके चलता बना, उसकी ओर सिर्फ़ कनपटी से देखा। बेचारा फ़्रांसीसी उदास लेटा रह गया।

डॉक्टरों ने वत्स्लाव को घेर लिया था। वह अपने को स्वस्थ दिखाने की कोशिश में मुस्कुराता झटके से सीना और पीठ खोलकर दिखाता, नब्ज़ देखने के लिए हाथ बढ़ा रहा था। डॉक्टर काफ़ी देर तक कान में आला लगाये उसे देखता रहा फिर उसने ख़ुशी से मुस्कुराते हुए वत्स्लाव की ओर देखा। प्रसन्नता के मारे रोगी उछल-सा पड़ा। वह सचमुच स्वस्थ आदमियों की तरह ताज़ा हवा लेने को लालायित था।

उमीदा हाथ में काग़ज़-क़लम लिए आदेश की प्रतीक्षा करने लगी।

"ऑपरेशन को तैयार हो जाना!" डॉक्टर ने कहा। बोलते समय उसकी नासिका कुछ फैल गयी थी। और आवाज़ भी किसी रोगी की-सी थी। असमंजस में पड़ी उमीदा कुछ क्षणों के लिए उसकी ओर देखती रही पर बेर्गेर की लंबी अंगुली अभी भी उसकी ओर टिकी थी। नर्स ने जब आदेश लिख लिया, तभी डॉक्टर की अंगुली नीचे गिरी। सब डॉक्टर उसके पीछे हो लिये। उमीदा ने कुछ पीछे रहकर पोलिश की ओर तीव्र दृष्टि डाली। अब वत्स्लाव एकदम कमज़ोर पड़ गया था। वह फक चेहरे से छत की ओर निहारता ख़ामोशी से लेटा था।

उमायदेर की बारी आयी। अपनी आदत के विपरीत बेर्गेर ने अपने स्वराष्ट्रवासी का प्रसन्नतापूर्वक अभिवादन किया। पर भद्दे क़दवाले जर्मनी ने कुछ जवाब दिये बिना मुँह फेर लिया। उसने अभी अपने पोलिश दोस्त

की हालत देखी थी। अब अपनी क़िस्मत के भय ने उसके दिल में घर कर लिया था। पर डॉक्टर ने सिर्फ़ उसकी नब्ज़ ही देखी।

"मक्खन चाहिये! जितना ज़्यादा हो, उतना अच्छा।" उसने उमीदा से कहा। फिर किसी सैनिक की तरह डग भरते बाहर निकल गया। सब उसके पीछे-पीछे चल पड़े। गलियारे में देर तक उनके क़दमों की आहट गूँजती रही। फिर कमरे में सन्नाटा छा गया। इस सन्नाटे से घबड़ाकर उमीदा अपनी मेज़ के पास, एक कोने में झुककर बैठ गयी। काँपती अंगुलियों से अपने पेशबन्द की रस्सी खोलने की चेष्टा करती, गुपचुप निगाहों से वह अपने रोगियों की ओर देख रही थी। उसे वत्स्लाव का बड़ा भय था। कहीं कोई जंजाल न शुरू कर दे। वह तो एकदम स्वस्थ मालूम हो रहा था। उसके एक ओर ऑपरेशन के आदेश से सभी दुखी थे। उसे शांत रहना चाहिये, थोड़ा-सा क्रोध का एहसास भी उसकी ज़िन्दगी के लिए ख़तरनाक था। पर वह चुप था। लेकिन अप्रत्याशित बात यह थी कि सन्नाटा उमायदेर ने तोड़ा। वह लेटे-लेटे इतने ज़ोरों से पलट पड़ा कि उसकी खाट चरमराकर टूटती मालूम पड़ी। वह किसी चीज़ से नाराज़ था। उमीदा दौड़कर उसके पास आयी।

"क्या हुआ?"

"क्या हुआ? इस बचकाने व्यवहार से आप लोग क्या छुपाने की कोशिश में हैं?"

"ज़रा ठहरिये, आप बीमार है..."

"यह लीजिये, आप भी हिंस्र पशुओं से दाँत निपोड़ रही हैं। अच्छा होगा अगर आप अपने मुँह से कोमलता का नक़ाब उतार फेंकेंगी। सचाई छुपाने से आपको क्या फ़ायदा।"

उमीदा किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गयी। आँसुओं से उसका गला रुँध गया। उसने ख़ुद पर क़ाबू पाने की कोशिश की।

"शांत हो जाइये, उमायदेर, ख़ुदा की क़सम।" उसने अनुनयपूर्वक कहा। "क्या आप मुझे बुरा मानते हैं? आप तो... ख़ुदा का शुक्र कीजिये। आप के लिए अच्छा-खासा खाना देने को डॉक्टर ने कहा है। निश्चित रूप से आपका रोग ज्यादा ख़तरनाक सिद्ध नहीं हुआ है। बिना ऑपरेशन आप ठीक हो जायेंगे।"

"मैं अपने बारे में नहीं, आपके बारे में बोल रहा हूँ, नर्स?"

उमीदा उसकी ओर ताकते हैरान हो गयी। उसने इस भद्दे, हृष्ट-पुष्ट आदमी की आँखों में पहली बार किसी रहस्यपूर्ण तीव्रता की झलक महसूस की।

"अच्छा, लाइये वही मक्खन। काफ़ी हो गया, अब शोर नहीं मचाऊँगा। मेरा मुँह मक्खन से भर दीजिये।"

चिढ़कर उमीदा वहाँ से दूर हट गयी। न जाने क्यों उसका क़द झुक गया था। वत्स्लाव को उसपर दया आ गयी और उसने इशारे से उसे बुलाया। उसने उसके हाथ थाम लिये।

"बुरा न मानिये..." अपने भद्दे पड़ोसी की जगह उसने क्षमा माँगी। "यहाँ एक गोपनीय चीज़ है जो हम समझ नहीं पा रहे हैं। इस लिए ऐसा हो रहा है।"

"कहाँ?"

"यहाँ भी और सारी दुनिया में।"

"वह क्या गोपनीय चीज़ हो रही है, बताइये न।"

"मुझे कहाँ से मालूम।"

शायद वे सब उमीदा से किसी चीज़ की प्रतीक्षा कर रहे थे, पर क्या? उमीदा भला क्या कर सकती थी? उमीदा का ख़्याल था, यहाँवालों की हालत खानवालों से काफ़ी बेहतर है। यथासम्भव वह उनकी देखभाल कर रही थी, बातचीत करती थी, उनकी अच्छी सेहत की जी-जान से कामना करती रहती थी और क्या चाहिये उनको?

इसी ख़्याल ने उमीदा के दिल में घर कर लिया। यूँ तो अपनी ही पीड़ा कम न थी, तिस पर रोगियों की भी कभी-कभी ऐसी समझ में नहीं आनेवाली बातें उसे अपमानजनक लगती थीं। उसकी पीड़ा दोगुना हो जाती। यह तो सच है कि बीमार उजड्ड होता है। लंबी बीमारी के कारण वह दूसरों की हालत पर कोई ध्यान नहीं देता, स्वार्थी हो जाता है। पर यह लोग तो ऐसे नहीं थे, इनका दिल पीड़ाओं, ग़ुस्सों, द्वेषों से हमेशा भरपूर रहता है। यूँ देखा जाये तो यह ठीक भी है। स्वस्थ होने के बाद इन्हें फिर खान में जाना पड़ेगा। भविष्य में किसी उम्मीद की झलक उनके लिए पेश नहीं आनेवाली थी। दिन-रात उनका ख़्याल एक ही है: मौत! इस लिए अपना ग़ुस्सा सदा पास रहती उमीदा पर डाल देने के अलावा वे और क्या कर पाते?

इसी बीच वत्स्लाव के दो ऑपरेशन किये गये। अब वह पहले की तरह हँसमुख नहीं दिखाई देता था। वह अति निष्ठुर, नीव हो गया था।

"क्या मेरे फेफड़े किसी पहाड़ की तरह मालूम होते हैं। कितने अर्से से काट रहे हैं, कभी उसका ख़ात्मा नहीं होता। बेर्गेर भी पक्का कसाई सिद्ध हुआ, काटते समय कोई परवाह नहीं करता। सुनो, ऐ जर्मनी, मेरा एक फेफड़ा उसी बेर्गेर ने काट-काटकर खा डाला है। हाँ-हाँ-हाँ . . . "

वत्स्लाव की ताक़त जवाब दे गयी, वह चुप हो गया। उमायदेर अब उसकी नक़ली प्रसन्नता पर विश्वास नहीं करेगा, यह सिर्फ़ उसकी कड़ी वेदनाओं का प्रकटीकरण ही था। पहले का वत्स्लाव अब नहीं था। उसके फेफड़े की खर्राहट यहाँ तक सुनाई दे रही थी।

इन्हीं दिनों हवा में गर्मी आ गयी, वसन्त आ पहुँचा। जंगल के दामन में घासें उग आयीं, बेझोंकी, शांत, गर्म हवा तरह-तरह के फूलों की सुगँध से भर उठी। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे दुनिया में कोई युद्ध नहीं हो रहा है, इन साफ़-सुथरे कमरों में भी मृत्यु की भयावह छाया नहीं। वत्स्लाव अब ठीक हो गया था और सब को हैरत में डालकर खिड़की से भटककर अन्दर आ पहुँची मधुमक्खी से बातें कर रहा था।

"हट जाओ। क्या मैं मधु खाने योग्य हूँ आजकल?" कहते मधु मक्खियों को दूर करता। पर उसकी हँसी और मज़ाक़ पहले की तरह तीव्र और बुद्धिमत्तापूर्ण सिद्ध नहीं होती। अब किसी पर उसकी बातों का असर नहीं होता था। पर अप्रत्याशित रूप से वत्स्लाव कुर्त बेर्गेर का सब से चहेता मरीज बन गया था। डॉक्टर ने उसे मक्खन, मधु देने का आदेश दिया था। ख़ुद डॉक्टर अक्सर यहाँ आया करता, उसकी हालत की जाँच-पड़ताल किया करता। वत्स्लाव में जीने का इरादा और बढ़ गया था। इस लिए वह डॉक्टर की सभी सलाहों को कान लगाये सुनता, पड़ोसियों को नज़र अन्दाज़ किये सिर्फ़ अपने ही बारे में सोचने में लगा रहता।

उमीदा और जर्मनी बर्गेर व वत्स्लाव के बीच पैदा हुई इस आकस्मिक घनिष्ठता से चकित थे। बेर्गेर के लिए वत्स्लाव एक ऐसा आदमी था मानो उसी ने बनाया हो, एक ऐसी गुड़िया जिसे उसी ने जान प्रदान की हो। वह रोगी की ओर मुस्कुराते देखता, प्रसन्नता से उसके कंधों को थपथपाता, दूसरों से अनकही अच्छी बातें उसको सुनाता। पर उमीदा

उसके प्रति कोई भी सहानुभूति प्रकट करने में असमर्थ थी, उसका जी ही नहीं करता। इसके लिए वह अपने आप को कोसती भी। क्योंकि इस समय जब आदमी की किसी मक्खी की-सी क़दर भी नहीं रह गयी थी, आदमी की सेहत के लिए संघर्ष करना पक्की भलमनसी थी! उमीदा भी इस संघर्ष में हिस्सा लेने से ख़ुश रहती। उमायदेर तो बेकार ही उस पर बरस पड़ता है।

इन्हीं दिनों उमायदेर का आॅपरेशन तय हुआ। उमीदा इससे बहुत डरती थी, दिन भर उससे दूर रहने की कोशिश करती। शाम होते-होते दरवाज़े के पास लेटे फ़ांसीसी की मृत्यु हो गयी। इसी घटना के प्रभाव से उमायदेर ने ज़्यादा शोर नहीं मचाया। रात में कमरे में न किसी को नीन्द आयी, न कोई बातचीत हुई। ठीक चौखट पर मृतक की लाश पड़ी थी। लाश बच्चों की-सी छोटी थी। मरते वक्त उसने अपने बच्चों के नाम ज़बान पर लिये थे, इस लिए उमीदा आख़िरी क्षणों में उसके पास रह नहीं सकी थी। जक... ल्यूल्यू... जक... ल्यूल्यू... और तीसरे का नाम क्या था? उमीदा ने याद करने की बहुत कोशिश की पर असफल रही।

अचानक तीखी चीख़ सुनायी दी:

"तो कह क्यों नहीं देते? आख़िर लाश क्यों निकाल बाहर नहीं करते?"

यह उमायदेर की आवाज़ थी। उमीदा डर गयी: अगर वह उठा तो उमीदा पर, ख़ुद उमायदेर पर भी कोई न कोई शामत ज़रूर आती।

"मैंने कहा न, अभी यहाँ से हटा देंगे।"

लेकिन लाश सुबह तक वहीं पड़ी रही। सुबह में स्ट्रेचर तो आया लेकिन उस पर लाश नहीं बल्कि वत्स्लाव को ले जाया गया। वत्स्लाव का भी रंग मुर्दे की तरह पीला पड़ गया था। क्या हो रहा है, यह उसकी समझ में नहीं आने के कारण उसने अपने पड़ोसियों पर एक याचनापूर्ण दृष्टि डाली, फिर चारों ओर नज़र दौड़ाकर यहाँ से विदा हो गया।

उमायदेर अपना सिर उठाये उसे विदा दृष्टि से देखता रहा। अब उसे भी अपने बीमार होने का पूरा विश्वास हो गया था। क्योंकि वह भी अक्सर खीजता रहता, कोई चीज़ उसकी समझ में आसानी से न आती तो लापरवाही से हाथ झटककर सोचना छोड़ देता। उसने अपने आॅपरेशन पर

भी वैसे ही लापरवाह होने की कोशिश की पर एक ख़्याल उसे चैन नहीं लेने देता था! फ़्रांसीसी के बाद वत्स्लाव और वत्स्लाव के बाद मैं . . . हम सबों की आख़िरी मंज़िल एक ही है।

"नर्स!" वह चीख़ उठा।

उमीदा फ़्रांसीसी की लाश सौंपने और काग़ज़ात ठीक करने में व्यस्त थी। फौरन उसके पास जा नहीं पायी। इस पर जर्मन फिर से चीख़ा। उमीदा दरवाज़े के पास ख़ाली जगह ठीक करके और अपनी आँखों से फूटते आँसू पोंछकर उमायदेर के पास चली अयी। जर्मन मुँह फेरकर लेटा था।

"वत्स्लाव को कहाँ ले गये?" उसने पूछा।

"मुझे ठीक मालूम नहीं, शायद डॉक्टरों की सलाह-मशविरा लेने के लिए।"

"डॉक्टरों की सलाह-मशविरा लेने के लिए?"

उमीदा जाने को हुई।

"ज़रा ठहरिये। बैठिये।"

"यूँ खड़ी ही सुन सकती हूँ। बताइये . . ."

उमायदेर काफ़ी देर तक चुप-चाप लेटा रहा। फिर कुछ अलग ढँग से, दबी व कोमल आवाज़ में उसने पूछा:

"आपकी उम्र अभी बीस साल की होगी?"

उमीदा ने कोई जवाब नहीं दिया। जर्मनी उसी अन्दाज़ में बोला:

"आप कहाँ और कब सीख गयीं यह दो तरफ़ा काम करना?"

उमीदा भय से स्तब्ध रह गयी। उसका मतलब क्या है? क्या उसे किसी गुप्त चीज़ की जानकारी है? क्या वह उसे इतना सताना चाहता है?

"मुझे अपने कार्य से बाहर की बात करना मना है।"

"आप वास्तव में क्या काम करती हैं?" जर्मनी ने झटके से उसकी ओर मुड़कर गुस्से के साथ पूछा। उमीदा रो पड़ी।

इस तरह कई दिन बीत गये। जर्मन ऑपरेशन के इंतज़ार में था। एक दिन वत्स्लाव को फिर अपनी जगह लाकर लिटा दिया गया। लेकिन यह एकदम ही कोई दूसरा वत्स्लाव था। अब का वत्स्लाव धीमी आवाज़ से बोल पाता, छोटी-छोटी साँस लेता। उसकी आँखें ही बच गयी थीं।

उसने आँखों से कुछ कहा पर उमीदा समझ नहीं पायी। उमीदा ने उसके मुँह पर से पसीना पोंछते पूछा:

"क्या आप मुझे पहचान रहे हैं?"

बीमार ने "हाँ" का इशारा करते आँखें बन्द कर लीं।

वह दो रात वैसे बिना कुछ बोले लेटा रहा। बस उसकी साँसें भर सुनायी देतीं। तीसरे दिन डॉक्टर बेर्गेर ने आकर कहा कि उमायदेर ऑपरेशन के लिए तैयार नहीं है। यह कहते हुए वह क्रोध से चिल्लाया:

«Schlaffen! Schlaffen! Schlaffen!» (सोये रहो, सोये रहो)।

बीमार को जितना हो सके उतना ज्यादा सोना था। उमीदा ने मानो पहली बार देखा, बेर्गेर का चेहरा अत्यन्त भयावह था। उसके पतले होंठ पीले पड़ गये थे, नासिकाएँ फैल गयी थीं, बिना भौंहों और बरौनियोंवाली उसकी आँखें चमक रही थीं, अनघने बालों में पसीने की बूँदें चुहचुहा रही थीं।

नहीं, यह बेर्गेर नहीं, एक अलग ही आदमी था।

उमीदा बहुत डर गयी थी। सिर्फ़ पीठ फेरकर लेटे जर्मनी की लापरवाही ने ही उसे ढाढ़स दिया।

उसी दिन वत्स्लाव बोल उठा। उसने खिड़की की ओर इशारा किया। उमीदा ने बात भाँपकर उसकी पीठ से टिका कर दो तकिये लगा दिये। फिर खिड़की की ओर देखते वह बैठ गयी। वसन्त का उमंग से भरा दृश्य बीमार की गीली, उदासीन आँखों में प्रतिबिंबित हो उठा। उसकी आँखें मानो फटी पड़ रही थीं और धीरे-धीरे अधिकाधिक गीली होती जा रही थीं, उन पर उदासी गहरी हो गयी थी। उमीदा को बाद में मालूम हो गया, यह विडंबनापूर्ण विदा का क्षण था। वसन्त से विदा। ऐन बहार में जीवन छोड़के जाना! इस से भयानक मृत्यु आदमियों के जीवन में शायद ही होती हो।

उस दिन पौ फटते ही वत्स्लाव ने उमीदा को अपने पास बुला लिया। उसकी धुँधली आँखें छत पर टिकी थीं। कमजोर हाथों से वह जर्मन की ओर इशारा कर रहा था। पर एक भी शब्द उसके होंठों से नहीं निकल पा रहा था। उसके सौ बार चेष्टा करने के बावजूद उमीदा कुछ नहीं

समझ पायी। इसी क्षण जर्मनी अपनी जगह पर छलाँग-सी लगाकर चिल्ला उठा। इस भयानक सन्नाटे को वह सह नहीं सका।

"चुप हो जाइये!" उमीदा ने डाँटकर कहा।

"फिर मौत! फिर मौत!" जर्मन चीख़ा।

उमीदा को डर हो रहा था कि कहीं वह वत्स्लाव की बातें न सुन पाये। उसने हाथ झटककर जर्मनी को झिड़क दिया।

"मैं... मैं... अब... अभी मर जाऊँगा," फुसफुसाकर वत्स्लाव ने कहा। उसकी फुसफुसाहट सारे कमरे में सुनायी दे रही थी। चिरंतनता के पहले के सन्नाटे में प्रतिध्वनि बड़ी तीव्र होती है। "वह ... वह ऑपरेशन में... न जाये... वत्स्लाव हाथ से जर्मनी की ओर इशारा करते हुए कहा। वह एक भी शब्द पूरी तरह नहीं कह पा रहा था। "वहाँ कोई न जाये। वह रोगियों का अध्ययन नहीं करता है... क्या आप समझ गयीं?"

उमीदा का चेहरा मुर्दे-सा सफ़ेद पड़ गया था। दोनों हाथों से अपना मुँह थामे वह मौत की घड़ियाँ गिनते रोगी से नज़र नहीं उठा पा रही थी। उसका चेहरा सर्द, भीगा था। "मृत्यु से पहले, शायद प्रलाप कर रहा है," उसने सोचा।

"नहीं, मैं एकदम ठीक, सच बोल रहा हूँ," वत्स्लाव ने दुहराया। "मैं वास्तव में रोगी नहीं था। उसने चार बार काटा। जीवित आदमी में बिना कोई झिझक चाक़ू से प्रहार करता है। वह कसाई है! डाकू है! आप लोग यहाँ से भाग जाइये! अभी भाग जाइये!"

उमीदा के घुटने कँपकँपा रहे थे, वह अपने-आप, अनजाने वहाँ से हट गयी। वत्स्लाव की साँस रुक गयी, पाँव एक बार ज़ोरों से फड़फड़ाकर वह मर गया।

उमीदा किसी ओर भाग जाने को थी पर उमायदेर ने उसे रोक लिया। उमायदेर ने उठकर कपड़े पहन लिए थे। एक हाथ से उमीदा को थामकर उसने दूसरे हाथ से ऊपरवाली बिजली बुझा दी। बाक़ी दो रोगी गहरी नीन्द में थे। मेज़ पर बस लैंप की क्षीण रोशनी थी। पौ फट रहा था, गलियारों, कमरों में सन्नाटा था।

"क्या आप ने सुन लिया?" उमीदा ने जर्मन की बेचैन आँखों में देखकर कहा।

"हाँ," उसने जवाब दिया। "मैं भी रोगी नहीं हूँ। रोगी नहीं हूँ, समझ गयीं?"

पहले से बार-बार सुनी बात का मतलब अब उमीदा पूरी तरह समझ चुकी थी।

"अब मुझे 'कार्य से बाहर' की एक बात कहने की इजाज़त दीजिये," इधर-उधर नज़र दौड़ाते हुए जर्मनी ने कहा। "यहाँ से हमें भाग जाना चाहिये, दूसरा कोई तरीक़ा नहीं।"

क्या करे, हतप्रभ उमीदा की समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था।

"आप कोशिश करके देखिये। मैं..."

"आपका ऑपरेशन वह नहीं करेगा लेकिन आप उसके हत्यारे कामों की गवाह हैं। और ऐसे काम का कोई गवाह नहीं होना चाहिये, क्या आप नहीं जानती हैं?"

उमीदा की आँखों के सामने कुर्त बेर्गेर की आकृति आयी: भारी-भारी चमकदार बूट, सोने की फ़्रेमवाली ऐनक, रक्त से सनी लंबी अंगुलियाँ। उमीदा चीख़ते-चीख़ते बची।

"मैं आप के लिए बोझ बन सकती हूँ," वह बुदबुदायी।

"यह कहना मूर्खता है।"

"कहीं फँस जायें?"

"दूसरा कोई तरीक़ा नहीं है।" कहते हुए उमायदेर लड़की को अंधेरी खिड़की की ओर खींचकर ले गया।

उमीदा को अब फँस जाने से उतना डर नहीं था जितना बैर्गेर की आकृति को फिर से देखने का। अपने रक्तहीन, पतले होंठों को चिमटते, बिना बरौनियोंवाली आँखें फाड़कर उसके सामने से न निकल पड़े। रात इतनी अन्धेरी थी कि...

वे भाग लिये।

पर वही भयानक अन्धेरा, वही भय अभी तक उमीदा के दिल में बस रहा प्रतीत होता था।

अचानक दरवाज़ा खटखटाया।

अन्धेरे में ड्योढ़ी पर दो आदमियों की छाया दिखाई दी। बिजली जलते ही उमीदा असमंजस में चिल्ला पड़ी। उसका चेहरा फ़ीका पड़ गया और वह पीछे रखी मुलायम कुर्सी पर बैठ गयी। उसके सामने हाथों में

टोपी भींचते कुर्त बेर्गेर खड़ा था। चित्तियोंवाले पलकों को उछाल-उछाल-कर बेर्ता ने कभी इसे, कभी उसे देखते खाट के नीचे से उमीदा के जूते निकाल दिये।

"मुझे माफ़ करियेगा, फ़ाऊ डॉक्टर, मैं ने आपको डरा दिया।" वह बोली।" अन्धेरा छा गया और आप ने बिजली तक नहीं जलायी। यह लीजिये, आपको देखने मेरे जैसा ही एक अजीब जवान आया है।"

"क्या कॉफ़ी चाहती हैं?" कोई जवाब न मिलने पर ड्यूटीवाली औरत माफ़ी माँगते हुए दूर खिसक गयी।

"फ़ाऊ बेर्ता!" जल्दबाज़ी से उमीदा ने कहा। वह उसे वहाँ से जाने नहीं देना चाहती थी पर चुप रही। आख़िर ख़ुद पर क़ाबू पाकर बोली:

"मेरे लिए कॉफ़ी लाओ।"

पर उसके सामने बेर्गेर खड़ा था। वही मनुष्य ... "वही"।

लेकिन इस समय वह उतना भयानक नहीं दिखाई दे रहा था जितना उमीदा सोच रही थी। सच कहे तो काफ़ी कोमल लग रहा था। अपनी टोपी हाथ में लेकर उसने उसे नमस्कार किया। बिना बालोंवाला उसका सिर झुर्रियों से भरा था। उसका क़द भी उतना सीधा नहीं था जितना दिन में मंच पर बोलते समय था।

"क्या सेवा है, बेर्गेर?" उसने 'डॉक्टर' नहीं कहा। अब वह ख़ुद पर पूरी तरह क़ाबू पा चुकी थी।

"मैं बैठ सकता हूँ?"

"बैठिये।"

बेर्गेर ने अपनी टोपी घुटनों पर रख ली। सोने की अँगूठीवाले अपने हाथ कहाँ रखे, न जानने के अन्दाज़ में वह हिचकिचाकर बैठा रहा। उमीदा अपनी स्मृति में बसे भयानक बेर्गेर की आकृति बिसराकर इस बूढ़े पुरुष, एकदम अलग बेर्गेर से मुलाक़ात की जल्दी ही आदी बन गयी। अपनी नज़र से उसने यह भी भाँप लिया कि इस आदमी की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। सुबह के गर्वोल्लास का उसमें नामोनिशान तक नहीं था।

"आपकी रिपोर्ट सभा में पढ़ी गयी और हमें बड़ी खीज हुई है। आप ने कारण नहीं बताया है, क्या आपकी तबीयत ठीक नहीं है?"

"आपकी बातों से ऐसा मालूम होता है जैसे इस अनुचित मौक़े पर आप मेरे लिए जी-जान दे रहे हैं।"

बेर्गेर ने अपनी टोपी को कहीं रखने के अन्दाज़ में उसे फिर हाथ में ले ली। उसकी कुर्सी चरमरा उठी।

"सिर्फ़ मेरे लिए नहीं बल्कि सारे ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में यह एक आश्चर्यजनक घटना है। आपकी रिपोर्ट पर लोगों की बड़ी जिज्ञासाएँ टिकी थीं।"

"हाँ, आश्चर्यजनक घटना हुई," उमीदा इस ढँग से बोली मानो उसके पास कोई नहीं है। "मैंने ताजों, तख़्तों, मेहराबों को ख़ून से रंगे जाने के बारे में सुना था... मौत की फैक्टरी के दरवाज़े पर एक बोर्ड भी लटका देखा था जिस पर लिखा था: "श्रम और स्वतंत्रता"। मैं ऐसे भी आदमी जानती हूँ जो अपनी माँ को भी शर्मिन्दा कर डालता है। राजनीति में, मुहब्बत में ढोंग-फरेब पहले से मौजूद हैं। ऐसी भी जगहें हैं जहाँ सौंदर्य का व्यापार होता है। लेकिन विज्ञान के क्षेत्र में रक्त के धब्बे... इनसान की पवित्रता, क्या, खो गयी है, बेर्गेर?"

मेहमान ने समझा कि उमीदा बात को दूर से शुरू करनेवाली नहीं है। वे दोनों एक-दूसरे को अब अच्छी तरह समझ गये थे, दोनों को सब कुछ स्पष्ट था। बेर्गेर अपनी कोमलता हटा देने को मजबूर हुआ, यहाँ तक कि अपनी बेचैनी को छुपाये बिना उसने टोपी सोफ़े पर फेंक दी।

"मैं डॉक्टर बेर्गेर हूँ। डॉक्टर बेर्गेर..."

"नहीं!.."

"मैं आपका मेहमान हूँ इस समय। पर आप ख़ुद भी इस मुल्क की मेहमान हैं, मेरी सहकर्मी!"

"मुझे सहकर्मी कहने की हिम्मत न कीजिये। आप का सहकर्मी किसी कसाई को होना चाहिये, किसी डाकू को होना चाहिये।"

"अच्छा..." बेर्गेर ने कहा और उठकर कमरे में इधर-उधर चहलक़दमी करने लगा। उसे मुख्य बात के इतनी जल्दी शुरू हो जाने की उम्मीद न थी।

"आप ख़ुद आये हैं," उमीदा बोलती गयी, "मैंने आपके मुँह पर थूक कर आप को निकाल बाहर नहीं किया। मैं आप से बात कर रही हूँ, इसकी क़ीमत आप को समझनी चाहिये।"

"आप डॉक्टर हैं, आप ख़ुद थोड़ा विचार करके देखिये..."

"नहीं, मैं डॉक्टर नहीं हूँ! जब तक विज्ञान का पथ आप जैसे नीच जीवों के रक्तसिक्त एड़ियों के नीचे मसला जायेगा तब तक मैं डॉक्टर नहीं हूँ। मेरे लिए सब से पहले इनसान होना ज़रूरी है, शक्तिशाली, ईमानदार, होशियार इनसान! नहीं तो इस ख़ाली कमरे में आप अभी भी मुझ पर चाक़ू से प्रहार करके मेरी हत्या कर सकते हैं। मैं आपके अपराधों की साक्षी हूँ।"

"आप बहुत तेज़ मालूम होती हैं, मैडम," मुस्कुराने की कोशिश करते हुए उसने जवाब दिया। "हाँ, बहरहाल रूस के लोगों की प्रकृति ही ऐसी होती है। क़दम-क़दम पर आप की निगाह में हत्या, अपराध, मौत, चाक़ू से प्रहार पेश आता रहता है। अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी को भंग किये बिना, किसी विद्वान जैसे धीरज से अपना भाषण ख़त्म करके चली जातीं तो कितना अच्छा होता। जो बात आप कहना चाहती थीं, बाद में भी कह सकती थीं।"

"जिस मँच पर अपनी हत्याओं से मज़बूत हुए पाँव आप ने रखे हों, उस मँच पर मैं भी अपने पाँव रखूँ? तब मेरे इनसान के प्रति पवित्र, प्रिय विचारों की क्या मंशा बचती? विज्ञान के क्षेत्र की पवित्र स्वच्छता मुझ में अपने बचपन से ही एक दिव्य हैरत, महिमा, भलमनसी पर स्नेह, विश्वास, उच्चतम गर्व समाता आ रही है। मैं हरगिज़ यह नहीं चाहती कि इस सफ़ाई पर कभी कोई गिद्ध आ बैठे।"

"बचपन से... मैं ने भी अपने बचपन से जो कुछ किया, सब इसी विज्ञान के लिए किया है," बेर्गेर के चेहरे पर उदासीनता की झलक पैदा हुई। उसकी आँखें एक जगह टिकी थीं और वह बिना किसी उतावलेपन से बोलता जा रहा था। "आप शायद सोच रही होंगी, बेर्गेर मेरे दिल में दया पैदा करना चाहता है। लेकिन युद्ध के बाद के सालों में भूखे, आश्रयहीन, खंडों में भटक-भटककर रहा हूँ... अपने आख़िरी पैसों से मैंने डॉक्टर का अनुभव ख़रीद लिया। उसके बाद..."

"बेर्गेर!" उमीदा ने बेताबी से कहा, "आप मेरे पास क्यों आये? मेरे सामने फ़रियाद करने से आप का क्या मतलब है? आप इस तरह बोल रहे हैं जैसे कुछ समय के बाद मेरे पाँवों पर गिरकर गिड़गिड़ाने

लगेंगे। नहीं, आपकी बातों को मैं सचाई के तौर पर क़बूल नहीं कर पाऊँगी।"

"नहीं, मैं आप का ध्यान एक साधारण न्याय की ओर खींच रहा हूँ। बस! युद्ध! भीषण युद्ध! महायुद्ध! लाखों-लाख लोग बेकार ही मरते जा रहे हैं। ऐसे समय अगर उन में से दो-चार विज्ञान के लिए मर जायें तो इस में क्या बुराई? विज्ञान के लिए!"

"बहुत हुआ! विज्ञान शब्द आप जबान पर भी न लाइये। आप का विज्ञान से कोई संबंध नहीं। हाँस ब्राऊन ने अपनी कविताओं में लोगों की ज़िन्दगी नष्ट करने का प्रचार किया था और ख़ुद को महाकवि एलान किया था। जिन आदमियों ने ऑस्वेंत्सिम की भट्ठियों* की स्थापना की थी, वे भी ख़ुद को होनहार इंजीनियर कहते थे लेकिन हम कैसे कह सकते हैं कि वे फासिस्ट नहीं हैं?"

"मेरा रूस को गुलाम बनाने का कोई लक्ष्य नहीं था। आप को मालूम है, मैं विज्ञान के लिए अपनी जान देने को तत्पर हूँ। मेरा पूरा विश्वास है, मेरा आविष्कार विज्ञान में अमर रहेगा।"

"विज्ञान को इनसान की सेवा करनी चाहिए। पर आप अपराधी हैं।"

"मैं प्रार्थना करता हूँ कि हम आपस में विद्वानों जैसी बातें करें। आधुनिक विद्वानों की तरह..."

"आधुनिक... मेरा इनसानों के प्रति प्रेम, स्नेह, सहज मानवीय प्रवृत्ति गयी-गुज़री है क्या? मैं अपने इन गुणों के कारण पिछड़ी हूँ क्या?"

"ओफ़! आप लोग कितने सीधे-सादे हैं! इनसान... इनसान शब्द का आजकल कोई मायने नहीं है। वह एक ख़ाली बर्तन की तरह आवाज़ देता है बस, ख़ानुम!"

उमीदा ने कुर्सी पर आराम से बैठकर बेर्गेर को घूरा।

"अब आप होश में आ ही गये। इतनी तिकड़मबाज़ी करने से आप को क्या फ़ायदा?"

"हाँ, आप मुझे अच्छी तरह जानती हैं?" बेर्गेर अब अपने असली रूप में आ गया था। उसके पतले, गीले होंठ कँपकँपा उठे, नासिका

---

* आदमियों को जलाने के लिए द्वितीय महायुद्ध के दौरान जर्मन फासिस्टों ने कई शहरों में ऐसी भट्ठियाँ बनायी थीं।

फैल गयी। पर उमीदा ने किसी तरह का डर या भय तक महसूस नहीं किया, क्योंकि बातचीत के दौरान वह इस ग्रादमी के ग्रन्धेरे दिल के कोने-कोने को पहचान गयी थी।

"मुझे मालूम है, ग्राप बचे फासिस्टों में एक हैं।" उमीदा बड़ी शांति से बोली। लेकिन उसकी यही शान्ति बेर्गेर का धीरज नष्ट किये जा रही थी। उसने ग्रपनी लंबी ग्रंगुली उमीदा की ग्रोर टिका दी। ऐसा व्यवहार भूतपूर्व नर्स के लिए ग्रनजाना न था।

"हाँ, यह कोई रहस्य की बात नहीं है। पचास साल से ग्राप लोग जी-जान से समाज की सफ़ाई की घोषणा कर रहे हैं। यह करेंगे, वह करेंगे। पर यह सब मृगमारीचिका ही है। ग्रौर क्या हुग्रा? इनसान पहले से ग्रधिक बड़े प्रकोप का बलि बन गया, ग्राफ़तें बढ़ गयीं, रोग बढ़ गये। एक के बाद दूसरा रोग पैदा होता जा रहा है। ग्राप ग्रपने ख़्याल से समाज की सुविधा के लिए संघर्ष कर रहे हैं। लेकिन समाज को ग्रापकी नहीं, हमारी ज़रूरत है।" बेर्गेर ने बग़ल से समाचार-पत्रों का एक बंडल निकालकर मेज़ पर फेंक दिया। सब ग्राज के सान्ध्यकालीन समाचार-पत्र थे। सभी ग्रख़बारों के मुखपृष्ठ बेर्गेर की तस्वीरों से सजे थे। उन में उसकी सिर्फ़ इसी संगोष्ठी की नहीं, दूसरे सम्मेलनों में खींची तस्वीरें भी थीं। ग्रजीब ग्रक्षरों में लिखे शीर्षक ग्राँखों को चकाचौंध कर देते: "डॉक्टर बेर्गेर का ग्राविष्कार," "ग्रन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में एक सनसनीखेज घटना," "इनसान के लिए कितनी हवा चाहिये," "शल्यचिकित्सक का चाक़ू जीवन के तारों पर," "सब से छोटा फेफड़ा..." उमीदा की नज़र पृष्ठ के सब से नीचे छपे एक छोटे से लेख पर पड़ी: "सोवियत विद्वान ने ग्रपना भाषण वापस ले लिया।"

"ग्राप तो सातवें ग्रासमान पर जा चढ़े हैं, बेर्गेर," उमीदा ने समाचार-पत्र हटाते हुए कहा। "लेकिन हमारे बीच मुलाक़ात सिर्फ़ ग्रापके ग्रपराधों के बारे में होगी।"

"ग्रब देर हो चुकी है। कानूनी तौर पर मेरा कोई ग्रपराध नहीं रहा है।" बेर्गेर ग्रपनी टोपी के ग्रन्दर से सफ़ेद दस्ताने निकालकर तल्ख़ी के साथ उन्हें पहनने लगा। "ग्राप ने मुझे ग्रपराध करते समय नहीं देखा है। मैं ग्राप को पहचानता भी नहीं हूँ। कौन जाने, ग्राप कोई विद्वान भी नहीं।"

"मैं आपकी यही निष्ठुरता, नीचता पहले से जानती थी।" उमीदा ने जाकर दरवाज़ा खोल दिया। "अगर हमारे बीच यह बहस नहीं हो पाती तो मैं एक फूहड़ इनसान बनकर यूँ ही घर लौट गयी होती। पर अब यूँ नहीं लौटूँगी। यह अतीत की बात नहीं, बेर्गेर, यह आज की बात है। कल मैं प्रेस-कांफ़्रेंस की घोषणा करूँगी।"

"दलील कहाँ हैं? गवाह कहाँ हैं?"

उमीदा ने खुले दरवाज़े की ओर इशारा किया।

बेर्गेर पसीना की बूँदों से भरे अपने सिर पर टोपी पहनकर भारी क़दमों से निकल गया। उसके पीछे देखते हुए उमीदा ने अपने मन में सोचा: "उसे बूट ज़्यादा फ़बते थे।"

दलील! गवाह! उसने मंच पर से दस आदमियों के नाम गिनाये थे जिनका उसने ख़ुद इलाज किया था। वे सब अब ठीक-ठाक हैं। पर उमीदा ने क्या किया? वह अपने पक्ष में कितने नाम गिना पायेगी? उसके सारे के सारे गवाह मर चुके हैं। प्रेस-कांफ़्रेंस घोषणा मात्र तो होती नहीं है। बिना दलील, बिना गवाह के उसकी बातें तोहमत-सी बन सकती थीं। संवाददाताओं को वह क्या जवाब देगी?

उमीदा आधी रात तक हाथों में सिर लिये बैठी रही। उसकी नीन्द उड़ गयी थी। अब क्या किया जाये? कहीं उसने यह बहस छेड़कर कोई बड़ी ग़लती तो नहीं की थी?

उमीदा अपने जीवन में कभी ऐसे उधेड़बुन में नहीं पड़ी थी। उसे अपना सिर बोझिल प्रतीत हो रहा था। बाँहों में घुटने समेटे वह सुबह तक यूँ ही बैठी रही। जागकर रात बिताना कितना मुश्किल होता है। लेकिन नहीं, यह काम यूँ भी छोड़ा नहीं जा सकता है। नहीं तो वह ख़ुद को जीवन भर दुखद यंत्रणा देती रहेगी। जल्लाद के चाक़ू ने जब चौथी बार फ़्रांसीसी के फेफ़ड़े काटे तो वह ज़बान पर अपने बच्चों के नाम भी नहीं ले पाया था। उसका नाम क्या था? याद नहीं आ पाया। और वह बेचारा पोलैंडवाला वत्स्लाव... उपनाम क्या था? उन सब का यही हश्र होगा, अगर वह पहले से जानती तो उनके और दूसरे कमरों के भी सभी रोगियों के नाम याद कर लेती।

उमायदेर... हाँ, उमायदेर! वह तो बच गया था, है न। और शायद इसी शहर का रहनेवाला था। शायद वह यहाँ कहीं मिल जाये।

उमायदेर . . . उमायदेर। लेकिन युद्ध के बाद जीवन की लहरों ने उसे कहाँ फेंक दिया होगा, कौन जानता है। उसे ढूँढ़ा जा सकता है या नहीं?

आज की सुबह विलक्षण थी। गिरजाघरों के ऊपर लटके बादल अब कहीं उड़कर चले गये थे। उमीदा की भी चेतना एकदम साफ़ हो गयी थी। उसने हठात् सिर उठाया और अपने में हलकापन महसूस करते उठ खड़ी हुई। और उसे यह भी महसूस हुआ कि वह "कार्ल उमायदेर," "गुस्तव उमायदेर," "फ़ीत्स उमायदेर" कहते बुदबुदा रही थी। बस यही एक नाम उसके दिल-दिमाग़ पर छा गया था। उमायदेर का लंबा क़द, उसके लम्बे पाँव उसकी आँखों के सामने आ गये। अस्पताल से भाग निकलने के बाद उसने उमायदेर से पूछा था: "आप का शरीर तो किसी पहलवानों का-सा है पर आप काम दरज़ी का करते हैं।" विदाई के दिन उन्होंने किसी परित्यक्त मशीन शॉप में आलू भूनकर खाये थे। "हाँ सिलाई करता हूँ, आप जैसी कोमल कन्याओं के जाकिटों के लिए कोमल बेलबूटे मशीन में सीता हूँ," उसने उल्लासपूर्वक कहा था। पर वह राजनीति से कोई संबंध नहीं रखता था। अपने बेटे के सेना से भाग जाने के कारण वह कैंप में फँस गया था। दुबारा न फँसने पर उसने दृढ़ संकल्प किया था कि अपने देश जाकर अपनी पत्नी के साथ मिलकर वह फिर से सिलाई की दुकान खोलेगा।

क्या? सिलाई की दुकान? निजी वर्क-शॉप? ऐसे शॉपों की केन्द्रीय कर समिति अच्छी तरह जानती है। अगर उमायदेर की आशा पूरी हुई तो।

उमीदा दौड़कर बाहर निकली। उसने गलियारे के भोजनालय में जलपान किया। फिर पूछ-ताछ कार्यालय में जाकर पता लगाया कि केन्द्रीय कर समिति यहाँ "फेडेरल ज़मीन कर इंसपेकशन का प्रेफेक्टुरा कार्यालय" कहा जाता है। उमीदा ने एक कार में बैठकर वही पता ड्राइवर के हाथ में थमा दिया।

टैक्सी बीस मिनट के अन्दर-अन्दर पुरानी, लाल ईंटोंवाली एक इमारत के पास जाकर रुकी। उमीदा नीचे ही कमरे का पता लगाकर लिफ़्ट का इंतज़ार किये बिना, सीढ़ियों से पाँचवी मंज़िल पर जा पहुँची। उसके पीछे-पीछे फ़ोटो-कैमरेवाला एक पीले रंग का, बूढ़ा आदमी भी चला आ

रहा था। वह भोजनालय में भी उसको मिला था। नहीं, शायद उमीदा भूल कर रही हो, क्योंकि फ़ोटो कैमरा तो किसी भी आदमी के पास हो सकता है।

उमीदा को तैंतीस उमायदेरों के पते वहाँ से हासिल हुए। उन में से सात का नाम गुस्तव तीन का नाम विल्हेल्म और बाक़ी कोन्रड, जोज़ेफ़, कार्ल आदि... उसे गुस्तवों से काम शुरू करना उचित मालूम हुआ। उनके पते एक-दूसरे से बहुत दूर-दूर के थे। एक शहर के एक छोर पर, किसी बदबूदार झोंपड़ी में स्थित शॉप में मिल गया। वह किसी पादरी जैसे लम्बे बालोंवाला, पच्चीस साल की उम्रवाला नौजवान सिद्ध हुआ। उसके बाप का नाम गुस्तव उमायदेर था, पर वह कब का मर चुका था।

"कितनी उम्र में उनकी मृत्यु हुई थी?" उसने पूछा।

"बयासी में," जवाब मिला।

उमीदा का मन कच्चा हो गया। मेट्रो की ओर दौड़ पड़ी। दूर में फिर वही पीले चेहरेवाला आदमी दिखाई देता प्रतीत हुआ पर वह शीघ्र ही भीड़ में ओझल हो गया। इसकी गर्दन में फोटो कैमरा नहीं था।

दूसरा पता एक विशाल फैक्टरी का था जो आधुनिक यंत्रों से सुसज्जित थी और उसके दरवाज़े पर नियोन लाइट से उसका नाम लिखा था। यह तो अच्छी-ख़ासी फैक्टरी कही जा सकती थी। वहाँ उमीदा को मालूम हुआ, मेनेजर म्यूंख़ेन गया हुआ था। उमीदा कुछ देर विमूढ़-सी खड़ी रह गयी। फिर मज़ाक़ के तौर पर उसने हाथों से मेनेजर की आकृति खींचकर दिखाने की कोशिश की:

"मुझे जनाब उमायदेर अच्छी तरह याद हैं, उनका क़द..." और वहाँ उपस्थित लोग ठहाका मार कर हँस पड़े। मालूम हुआ, उनका मेनेजर यहाँ सब से नाटा और हृष्ट-पुष्ट आदमी था।

"हँसमुखी" औरत ने सड़क पर जाकर फिर टैक्सी बुलाई। फेडेरल क्षेत्र के किसी शहर में एक "मर्सीदिज" उसकी टैक्सी के पीछे लग गयी।

"ज़रा ठहरिये," उमीदा ने कहा।

टैक्सी रुक गयी। वह कार भी कुछ आगे जाकर मोड़ पर रुक गयी।

"चलिये।"

"मर्सीदिज" फिर पीछा करने लगी। शाम के क़रीब वह दो बार

टैक्सी के पास से फर्राटा भरती निकल गयी। टैक्सी का ड्राइवर काफ़ी ज़िन्दादिल साबित हुआ। वह घृणा से मुस्कुरा उठा पर शान्त रहा।

"आपको भयभीत करने की कोशिश कर रहे हैं, फ़ाऊ। लेकिन आप धीरज रखिये। मैं अभी उनसे पिंड छुड़ा लूँगा।"

उसने वैसा ही किया। इधर-उधर चक्कर काटता तंग रास्तों पर वह पंद्रह मिनट तक टैक्सी दौड़ाता रहा। इसके बाद कोई उनका पीछा नहीं कर पाया।

लेकिन बाक़ी सारे पते भी बेकार साबित हुए। आख़िरी गुस्तव इसी शहर का निवासी था। उमीदा ने पैदल जाने का निश्चय किया और टैक्सी छोड़ दी।

यह गुस्तव उमायदेर भी बिलकुल अलग आदमी था। बूढ़ा, झुर्रियों से भरा। वह बड़ा बकवादी था। उमीदा से उसकी अनर्गल बातें आख़िर तक नहीं सुनी गयीं, वह उपेक्षापूर्वक वहाँ से चल पड़ी। लेकिन बूढ़े ने खिड़की से सिर निकालकर उसे फिर रोका। "अरे क्या बदमाशी है, क्या करने को मेरे पास अपना काम नहीं?"

"मोमेंट, फ़ाऊ. . . "

"अपने मोमेंट के साथ भाड़ में जाओ," उमीदा ने मन में सोचा। वह बहुत थक गयी थी, तिस पर कल सुबह से फिर दूसरे उमायदेरों की तलाश करनी थी। शायद उसकी सारी कोशिशें बेकार साबित हों। नाम-पते के बिना क्या कोई आदमी ढूँढ़ा जा सकता है? कितने साल बीत चुके हैं।

"मोमेंट। एक घटना मुझे याद हो आयी। अब याददाश्त का कोई ठिकाना नहीं रहा। क्या करूँ, बूढ़ापन . . . "

"अब उसकी स्मृतियाँ सुननी पड़ेंगी मुझे," उमीदा ने खीजकर सोचा। वह अनचाहे पीछे मुड़ गयी।

"वही पाजी होगा, नहीं, जिराफ़. . . वह मुझे चैन लेने देगा या नहीं, यह पता आपको किसने दिया था?"

उमीदा जल्दी-जल्दी पलकें मिचमिचाकर ऊपर खिड़की की ओर ताकती रही। इस बकवादी बूढ़े के गुस्से में भी उसे कोमलता दिखाई दी।

"क्या कहा आपने, जिराफ़?"

"नसपीटा जिराफ़! करों के बैंक में मेरे पैसों को साफ़ करते-करते

चूक गया था वह। सदा हम दोनों के नाम से सब को धोखा होता है। क्या मुझे अब अपना नाम बदलाना पड़ेगा, हे भगवान!"

"सुनिये, बापू, आप उस को जिराफ़ क्यों कह रहे हैं?"

"तुम तो जर्मन भाषा काफ़ी अच्छी जानती हो, बेटी, पर स्पष्ट है, तुम अजनबी हो। क्या तुमने कभी जिराफ़ देखा है?"

"हाँ... लेकिन अब बात भी तो कहिये," उमीदा बेताबी से बोल उठी, "किसको आप जिराफ़ कह रहे हैं?"

"उसी पाजी को... हाँ, वह मेरे पैसे ले भागा था लेकिन... अगर मैं तुम से कहूँ तो..."

"क्या उसका नाम गुस्तव उमायदेर था?"

"अवगुस्त उमायदेर, पाजी का नाम अवगुस्त उमायदेर था! समझी? हम दोनों से क्यों सब को धोखा होता है, बताओ, क्या हम एक जैसे दिखाई देते हैं? वह पाजी है पर मैं अपनी कमाई पर दिन काटनेवाला एक पाक-साफ़ आदमी हूँ। वह जिराफ़ एकदम निकम्मा, निठल्ला, पर मैं, खुदा का शुक्र है, तुम देख रही हो।" बूढ़े ने अपना क़द सीधा करके तम्बाकू से पीले पड़े अपनी मूँछों पर हाथ फेरा। उमीदा हँस पड़ी।

"ज़रा ठहरिये, बापू..."

ख़ुशी के मारे उमीदा फूली नहीं समा रही थी। दौड़कर वह भीतर आ गयी। अब उसके सामने कोई एकदम भिन्न बूढ़ा खड़ा था: इसके गुस्से और बकवास में भी कोमलता थी, झुर्रियों के बीच स्थित आँखों में स्नेह की झलक थी। उसका सारा जीवन मेहनत-मशक़्क्त में कटा था।

"निश्चित रूप से वह भी दरज़ी है? वही... उसी जिराफ़ के बारे में पूछ रही हूँ।"

"जी हाँ।"

"अवगुस्त उमायदेर उसका नाम है?"

"जी हाँ।"

"कहाँ रहता है?"

"बहुत दूर। हेलिंडोर्फ़ नामक जगह पर।" थोड़े सन्देह से बूढ़े जवाब दिया।

शहर का नाम अपनी बही में लिखते हुए उमीदा ने इस सन्देह कारण पूछा।

"अगर वह जगह इतनी दूर नहीं होती तो जाकर मैं ख़ुद उसकी ख़बर न लेता।"

ख़ुशी के मारे उमीदा ने बूढ़े को बाँहों में भर कर उसके काँटेदार चेहरे को चूम लिया। फिर दौड़ती हुई बाहर निकल गयी।

"मेरी ओर से भी नमस्ते कहना उस पाजी जिराफ़ को!" बूढ़े ने अपना कपोल थामते हुए कहा। "और यह भी कहना कि अगर फिर हम दोनों को धोखा हो ... "

बाक़ी शब्द उमीदा ने नहीं सुने। शायद वह देर तक बकबक करता रहा होगा। अजीब बूढ़ा था वह! ऐसे आदमी भी होते हैं। अपनी भलमनसी छुपाने के लिए बाज़ लोग दिखावे में भद्दा होते हैं, बकबक करते हैं।

मुसाफ़िरख़ाने में बेर्ता कॉफ़ी के साथ एक थाली में निमंत्रण-पत्रों का एक ढेर भी लायी। कौन-कौन आया, कितने संवाददाता आये, कितने अजनबी लोगों ने उसके बारे में पूछ-ताछ की – इस सब के बारे में बेर्ता देर तक सुनाती रही। उमीदा ने इन सारी बातों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। उसके ज़ेहन में बस एक ही बात थी – अवगुस्त उमायदेर। अवगुस्त ... हाँ, यह वही है। उसे पहली बार देखने से किसी भी आदमी के मन में एक ही बात आती: "हृष्ट-पुष्ट।" सच में वह हृष्ट-पुष्ट था। "जिराफ़ ... "

उमीदा हँस पड़ी। बूढ़े ने ख़ूब कही थी यह बात।

कल पौ फटते ही रवाना होना ज़रूरी है। हेलिंडोर्फ़ ... उमायदेर ... लंबे क़दवाला ... हृष्ट-पुष्ट ...

उमीदा गहरी नीन्द में सो गयी थी। सुबह में जब बेर्ता ने आकर दरवाज़ा खटखटाया, वह अपने बिस्तरे पर नहीं थी।

सड़कें शाहबलूत के पत्तों से आच्छादित थीं। भीगे, नंगे उपवनों में कोहरों व धुएँ के बादल छाये थे। चारों ओर शरद् की परिचित सुगँध फैली थी।

सिर्फ़ शहर अजनबी था। पुराना जर्मन ज़िला। यहाँ सारी शक्ति, सलाहियत, कुशलता बोर्डों को मसरूफ़ की जाती है। इस लिए हर बनिये की दूकान, हमाम, हजामतख़ाना के ऊपर अजीबोग़रीब चमकदार अक्षरोंवाले बड़े-बड़े बोर्ड दिखायी देते थे। ऊपरवाले बरामदे पर तारों में धुले कपड़े लटक रहे थे।

अवगुस्त उमायदेर का वर्क-शॉप किरख़ा मैदान के बाद आनेवाले एक अहाते में इकमंज़िली लंबी इमारत में स्थित था। दरवाज़ा खुलते ही देव-दार वृक्ष के उबलते छिलके जैसी गँध नाक में आयी। मशीनों के अनवरत शोर कानों को बहरा कर रहे थे।

उमायदेर वहाँ नहीं था। उमीदा ने चैन की साँस ली। पर इसके साथ उसे डर भी हो रहा था, कहीं यह भी दूसरा उमायदेर निकला तो।

इस लिए जब उसे मेनेजर के कमरे में ले जाया गया तो दूर से ही लंबे क़दवाले आदमी को देखकर उसका दिल फट जाने को हो आया।

हाँ, वही उमायदेर था! उसने दरवाज़े के पास खड़े आदमी को देखकर लकड़ी तराशना बन्द कर दिया। पतलून पर लिपटे छीलनों को झाड़कर वह आगन्तुक की ओर बढ़ आया। वह सचमुच एक लंबा-तड़ंगा, चौड़े वक्षवाला, बेढंगा आदमी था।

"नमस्ते! आपको क्या चाहिये?" उसने पूछा।

उमीदा कुछ हटकर खड़ी हो गयी, मुस्कुरायी। मन में सोचा: "बूढ़ा हो चुका है।"

"मेरे "हमनाम", उसने धीमी आवाज़ में कहा।

उमायदेर ने अतिथि को सिर से पाँव तक निहारा। उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। भौंहें सिकोड़े वह देर तक चुप रहा। वही उमा-यदेर था, उसके उभरे कपोलवाले भद्दे चेहरे पर स्मृतियों ने कभी सर्द, कभी गर्म छाया डाली। असमंजस में वह बुदबुदाया: "नर्स!"

हर्षित उमीदा अपना हाथ बढ़ाती जब उसके क़रीब आयी तो उसने अपने भद्दे हाथों से उमीदा के कंधों को थामकर बाँहों में भर लिया।

"नर्स," उसने दुहराया।

उसके आलिंगन में उमीदा जैसे छः आदमी समा सकते थे। उमायदेर मेहमान को बार-बार बाँहों में भर रहा था। उसकी पीली बरौनियाँ अश्रु-सिक्त थीं। वह बस एक ही शब्द दोहराता जा रहा था: "नर्स।" यह शब्द बहुत सी स्मृतियों से संबंधित होने या इस सीधे-सादे आदमी के दिल में बैठ जाने के कारण अब उमीदा को सुनने में बड़ा अच्छा लग रहा था।

"अवगुस्त . . . मुझे आपके नाम का पता कल ही चला।"

क्या? कैसे? अब इसके बारे में पूछ-ताछ करने का उमायदेर को ख़्याल तक नहीं आया था। वह अपने पर क़ाबू पाने की कोशिश कर रहा

था। अप्रत्याशित मिलन! बात कहाँ और किससे शुरू करे, यह न समझ पाते हुए वह अपनी तारीफ़ करने लगा। अपने घर लाकर उसने उसे सब कमरे दिखाये, अपनी सालाना आय के बारे में बताया, अपनी स्त्री से उसकी जान-पहचान करायी। उमायदेर खाते-पीते परिवारों में से मालूम हो रहा था: सभी कमरे अच्छी तरह सुसज्जित थे, परोंवाले तकिये, खिड़कियों पर एकदम नये पर्दे टँगे, आदमक़द शीशे, मखमली सोफ़े पर संगमरमर के छोटे-बड़े सात हाथी।

"ओ, माफ़ करना, मैं आपको क्या कहकर बुलाऊँ? नाम जानता नहीं हूँ, सो बस "नर्स" ही "नर्स" कहता जा रहा हूँ। पर बुरा न मानियेगा, बल्कि अब आप. . . " उसने फिर से उमीदा के सुडौल क़द और अश्रुसिक्त आँखों की ओर देखा।

"इस में क्या हर्ज है, यही कहकर पुकारिये," उमीदा हँसी। फिर बात को दूसरी ओर मोड़कर बोली। "आख़िरकार आपने शॉप प्राप्त कर ही लिया है, है न?"

"हाँ, वैसा ही हो गया। मैं और मेरी धर्मपत्नी हेर्तुदा, दोनों बराबर काम करते रहे हैं।" यह कहकर अवगुस्त ने अपनी थुलथुली औरत के कंधे पर हाथ रखा। दोनों के चेहरों पर सुख की मुस्कुराहट चमक रही थी। शायद हेर्तुदा जवानी में काफ़ी सुन्दर रही होगी पर अब अपने पति की तुलना में काफ़ी बूढ़ी मालूम पड़ती थी। पति की प्रतीक्षा में सूख गयी होगी। उमीदा ने चाहा, कोई अच्छी बात कह कर उन्हें हर्षित कर दें।

"वहाँ भी आपका नाम अवगुस्त की ज़बान पर ही रहता था।" पर शीघ्र ही उसने अनुभव कर लिया, दोनों को "वहाँ" शब्द नहीं अच्छा लगा था।

"अरे, हेर्तुदा, मेहमान के लिए चाय-पानी लाओगी या नहीं?" अवगुस्त उल्लास से बोला। उसकी पत्नी दौड़कर बाहर चली गयी।

फिर दोनों सोफ़े पर बैठकर बातचीत करने लगे। उन्होंने एक-दूसरे को अपने-अपने बच्चों, गुज़रे दिनों, संघर्षों के बारे में बता दिया। जब बात कुर्त बेर्गेर पर पहुँची तो अवगुस्त गुस्से के मारे बोल उठा:

"हूँ जल्लाद! क्या वह अभी भी ज़िन्दा है? हिंस्र कहीं का!" यह कहते हुए उसने रूमाल से पसीना पोंछा। उमीदा ने जब प्रेस-कॉन्फ़ेंस

और गवाही देने के बारे में बताया तो वह अपनी मुट्ठी भींचकर यह कहते हुए उमीदा का समर्थन करने लगा।

"आपने कमाल कर दिया है, नर्स। उसका पर्दाफ़ाश करके उसे चारों खाने चित्त कर देना चाहिये। सारी दुनिया को उसे शर्मिन्दा करना चाहिये।" और वह उठ खड़ा हुआ। "देखो न, वह ज्ञान के क्षेत्र में घुस गया है। ओफ़ हिंस्र! क्या आप से मिलने वह ख़ुद आया था? क्यों नहीं, अब ज़माना जो बदल गया है, अपनी जान बचाने की कोशिश भी करनी है, न!"

"हाँ अवगुस्त, मैं उसे पूरी तरह बेनक़ाब कर दूँगी। उसकी सचाई कल ही सारी दुनिया जान जायेगी। पर यह आसान नहीं। मैंने उससे कह दिया है, कल प्रेस-कॉंफ़्रेंस करूँगी। वह भी अब चैन से नहीं बैठा होगा। चारा ढूँढ़ेगा, आतंक फैलायेगा, संवाददाताओं को रिश्वत देगा। आप ख़ुद जानते हैं, वह किसी भी धूर्त्तता से बाज़ नहीं आनेवाला आदमी है। शायद वह अकेला नहीं है। पर मैं सिर्फ़ आप पर ही भरोसा करती हूँ। जाकर प्रेस-कॉंफ़्रेंस के समय आप गवाही देंगे, यानी, आप बता देंगे कि यह घटना वास्तव में हुई थी, आदि..."

"नहीं!"

यह हेर्तुदा की आवाज़ थी। उसकी आवाज़ कर्कश थी जैसे बहुत रोयी हो। वह हाथ में चाकू, चम्मच थामे मेज़ के पास आँखें फाड़ती खड़ी थी।

"नहीं, अवगुस्त कहीं नहीं जायेगा। तुम नहीं जाओगे!" वह फिर चिल्ला पड़ी।

"फ़ाऊ हेर्तुदा," उमीदा खड़ी हो गयी, "फ़ाऊ हेर्तुदा... आख़िर..."

"नहीं! मैं ने कहा न, नहीं, वह कहीं नहीं जायेगा, बस!" और यह कहते हुए वह घबड़ाती-सी पीछे हट गयी। उसके सफ़ेद, मुरझाये चेहरे पर आँसुओं की बूँदें लुढ़क रही थीं।

उमीदा अवगुस्त की ओर खोज भरी निगाह से देखने लगी। बात ऐसा मोड़ लेगी, उसने सोचा तक नहीं था। इस लिए वह कुछ विमूढ़-सी रह गयी। पर उसे पूरा विश्वास था, काम इस औरत की अस्वीकृति के बावजूद बन जाएगा।

"हेर्तुदा," अवगुस्त ने कहा। पर उसकी पत्नी ख़ामोश थी। "हाँ, उसके लिए भी आसान नहीं," यह कहते हुए अवगुस्त ने पत्नी के दुबले कंधे हाथों में दबोच लिये और पत्नी के कारण बुरी हालत में पड़े आदमी की तरह माफ़ी माँगने लगा। लेकिन इसी क्षण हेर्तुदा गुस्से के साथ तीखी आवाज़ में चीख़ पड़ी:

"मुझे इतना तंग किस ने किया है? किसने? बोलो तो ज़रा! तुम! तुम! उसी नीति के कारण..."

"मेरा नीति से कोई संबंध नहीं है।"

"अच्छा? कैंप से कंकाल बना कौन आया? तुम्हीं तो थे न? और किस के कारण? उसी नीति के कारण! और फिर से अपने को उसी फन्दे में डाल रहे हो? तुम्हें किसने पैरों पर खड़ा किया, क्या भूल गये? तुम्हारे ही कारण मैं मरने को हूँ। अभी-अभी हमें पारिवारिक चैन मिला है। नहीं, नहीं, अब मेरी ताक़त जवाब देने लगी है, अब मैं ख़त्म हो चुकी हूँ।"

वे तब तक चुप रहे जब तक उसका रोना-कलपना थम न गया। फिर उमीदा ने उमायदेर को याचनापूर्ण दृष्टि से निहारा:

"अवगुस्त, मेरे दोस्त..."

अवगुस्त ने निराश हो मुँह फेर लिया। यह देखकर उमीदा भयभीत हो उठी। "क्यों? कैसे? यह सब सिर्फ़ हेर्तुदा से संबंधित नहीं मालूम होता है।"

"अवगुस्त, मैं आप पर भरोसा रखती हूँ। आप ज़रा फ़ाऊ हेर्तुदा को समझाइये।"

अवगुस्त बिना हिले-डुले दुविधा में पड़ा था। तभी उसकी पत्नी की चीख़ फिर सुनाई दी:

"काफ़ी हुआ, मैडम। हम इस जैसी बातों से कोई संबंध नहीं रखते हैं।" अपने पति की मायूसी देख वह और भी गंभीर हो उठी थी। उमीदा के पास अब फिर अवगुस्त से प्रार्थना करने के अलावा कोई चारा न था।

"इस में कोई ख़तरा नहीं है! बस जो कुछ हुआ था, सुना देंगे, यह तो कोई अदालत नहीं, अवगुस्त।"

"नर्स, हेर्तुदा और मैं, दोनों ने यह वर्क-शॉप ख़रीद कर, अपनी गृहस्थी को थोड़ा-कुछ मज़बूत बनाकर अभी-अभी चैन की साँस ली है।"

"अब एक अच्छा मौक़ा मिला है। यह काम अगर हमने पूरा नहीं किया तो कौन करेगा? वह मंच पर से बकबक कर रहा है और हम चुप हैं, अब उसने एक ग्रुप बनाया है – फिर भी हम चुप हैं। और कल-परसों अगर वह, उन दिनों की भाँति, सड़क पर जाकर अगर धूम-धाम से जश्न मनायेगा तो क्या तब भी हम खिड़की का पर्दा खोल कर उसे देखते रहेंगे?"

"'उन दिनों', 'उन दिनों'... क्यों बार-बार उसकी रट लगाती हैं?" चीख़ पड़ी हेर्तुदा।

"अवगुस्त, आप बहुत ज़िंदादिल आदमी थे, है न? क्या आप को याद है?"

"नहीं, नहीं, मुझे कुछ भी याद नहीं। सब बीत चुका है। यह कब की बात थी! अवगुस्त कहीं नहीं जाएगा, समझ गयीं, मैडम?!" हेर्तुदा फिर रोती-कलपती पति के कंधों से लिपट गयी। बच्चों की तरह उसके पीछे खड़ी हो वह अपनी अश्रुसिक्त आँखों से उसे गिड़गिड़ाती दृष्टि से देखने लगी।

"हमारे बच्चे हैं, नर्स," अवगुस्त निराश स्वर में बोला।

"मेरे भी... बच्चे हैं," धीमी आवाज़ में उमीदा बोली। उसको भी बच्चों की याद बहुत सता रही थी।

"आप दोज़ख़ का दरवाज़ा हमारे लिए खोलकर अपने देश चली जा-येंगी, मैडम," हेर्तुदा ने कहा, "हमारा यहाँ सर्वनाश हो जायेगा..."

"बाद में वे हमें चैन नहीं लेने देंगे, नर्स," हृष्ट-पुष्ट उमायदेर की मोटी आवाज़ भी क्रन्दन करती महसूस हुई। "पर मैं आप के सामने ऋणी हूँ, मैं आपको भूल नहीं सकूँगा।"

"मुझसे कुछ भी संबंधित नहीं है, उमायदेर, मैं आप से उधार माँ-गने नहीं आयी हूँ। अगर हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे चैन से रह सकें तो बेर्गेर जैसे लोग भयभीत होने चाहियें। अगर वे अपने को एकदम आज़ाद सोचने लगे, तो उन बीते काले दिनों की फिर आने की सम्भावनाएँ भी ज़रूर बनी रहेंगी। देखिये, 'उन दिनों' को मैं नहीं, बेर्गेर याद दिला

रहे हैं। ज़रा सोचिए अवगुस्त, यह बहुत अहम मामला है। मर्दों का काम है। और फिर यह आप से संबंध रखता है।"

"नहीं, यह काम अकेले अवगुस्त से संबंधित नहीं, अकेले अवगुस्त क्या कर सकता है?" उमायदेर की आड़ से हेर्तुदा बोल उठी। वह अपने पति से यूँ चिपक गयी थी मानो कोई उसे उससे छीने लिये जा रहा हो। "हम कहीं नहीं जायेंगे, बस!" उसने अपने पति की कमर में टहोका लगाया। तब वह भी अपने कंधे उचकाकर बोल उठा:

"हम... जा नहीं सकते, नर्स... हमें क्षमा कीजिये।"

उमीदा ने दरवाज़े की ओर पलटकर अपने सर्द ललाट पर हाथ रखा। अभी तक यह आदमी उसकी दृष्टि में किसी फरिश्ते-सा दिखाई दे रहा था पर अब वह अचानक पराया लगने लगा था।

वह दरवाज़े की ओर चल पड़ी। पति-पत्नी उसे जाते देख रहे थे। पत्नी तो बेहद ख़ुश हो रही थी—चलो, बला टली। शायद वह बुत के सामने खड़ी हो सीने पर क्रॉस बना रही होगी। पर अवगुस्त क्या कर रहा है? उसे आत्मग्लानि नहीं हो रही होगी?

"नर्स..."

मेहमान आशान्वित हो रुक गयी। रुककर वह पीछे नहीं पलटी, सिर्फ़ कान लगाये खड़ी रही: वह क्या कहना चाहता है? शायद वह बोल उठे: "कल मेरा इंतज़ार करना, ज़रूर आऊँगा।"

कुछ देर की ख़ामोशी के बाद उमायदेर ने माफ़ी माँगने के अन्दाज़ में कहा:

"कॉफ़ी तैयार थी... नर्स। क्या फिर हमारी मुलाक़ात कभी नहीं होगी?"

"मुझे मालूम नहीं, उमायदेर..." उमीदा ने कहा। यह कहकर वह चलती बनी। वह "मुलाक़ात आप पर निर्भर करती है" कहना चाहती थी पर कुछ बोली नहीं। यद्यपि उमीदा निराश हो वापस जा रही थी, इसके बावजूद उसके दिल में अभी तक आशा की कोई किरण दमक रही थी: "कल वह वहाँ पहुँचेगा, यह संभव है।"

वह अपने आपको चाहे जितना दिलासा दे, चाहे किसी चीज़ पर भरोसा करे न करे, फिर भी उसकी हालत बुरी थी। अब बिना कुछ सोचे-विचारे काम तो शुरू कर ही देना पड़ेगा। पीछे जाना मुमकिन न

था। काँग्रेस में उपस्थित लोग, न जाने कितने ही विशेषज्ञ उससे जवाब देने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। संवाददाता क़दम-क़दम पर उस से सवाल कर रहे हैं। अगर वह यूँ ही चुप रही तो वे सब ऐसे फ़सादों के न जाने कितने ताने-बाने बुन डालेंगे कि... लेकिन इससे भी बड़ी एक और बात यह थी कि अगर वह चुप रही तो निस्सन्देह उस का निकम्मापन तो प्रकट होगा ही, इसके साथ-साथ उसकी आत्मवेदना किसी असाध्य रोग का रूप धारण कर ले सकती थी। उमीदा अपने आप को अच्छी तरह जानती थी। क्या जब वह बीमारों के चेहरों की ओर देखेगी, अपने हाथ में शल्य चिकित्सक का नश्तर थामेगी तो उसे ऐसे अनुभव पीड़ा नहीं देंगे?

जब वह होटल लौटकर अपने कमरे में दाख़िल हुई, उसकी दृष्टि मेज़ पर पड़े हवाई जहाज़ के टिकट पर पड़ी। टिकट आज के लिए मास्को का था। किसी ने उसे जितना संभव हो जल्दी से जल्दी चले जाने की चेतावनी दी थी।

उमीदा ने टिकट हाथ में लेकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले और उसी जगह रख दिये।

"नहीं, मैं जा नहीं सकती। मेरा काम अभी पूरा नहीं हुआ है," यह कहकर वह मुलायम कुर्सी पर बैठ गयी। वह मुस्कुरायी। उससे कोई डर रहा था—यह महसूस कर उसे बड़ा आनन्द मिला।

प्रेस-काँफ़्रस दूसरे दिन ठीक समय पर शुरू हो गया। वह पहली मंज़िल में स्थित, हमेशा ख़ाली रहनेवाले 'काँग्रेस सैलून' में हुआ। हॉल कोई ज़्यादा बड़ा न था, सोफ़े भी काफ़ी ख़स्ताहाल थे। दूसरी मंज़िल की फटेहाल सीढ़ियों पर भी लोग खचाखच थे। होंठों में लंबी-लंबी पाइप लगाये मदाम संवाददाताएँ अपने घुटनों को दिखाती खिड़कियों पर बैठी थीं। बीचवाली मेज़ के इर्द-गिर्द प्रौढ़ व शिष्ट विद्वान बहस करते बैठे थे। दुनिया देखे बूढ़े-जवान संवाददाता अपने अपने सिनेमा-कमरे ठीक करने में मग्न थे, उन में से कोई नोटबुक के पन्ने पलट रहा था, चुइंगम चबाता, एक दूसरे को दूर से नमस्ते कहता, बेताबी से इधर-उधर नज़र दौड़ाता, अपनी सिगरटों से धुआँ निकालता। सर्वलाइट के प्रकाश में अभी से धुएँ के बादल तैरने लगे थे।

जब उमीदा अन्दर घुसी तो शोरग़ुल थम गया। दूतावास का प्रेस-अता-

शी एक नौजवान आदमी जिसका कपड़ा काफ़ी सुन्दर और सीधा-सादा था, फोटो-कैमरों की आवाज़ें थम जाने तक चुप-चाप खड़ा रहा। अन्ततोगत्वा उसने संवाददाता-सम्मेलन का उद्घाटन किया। सब से पहले सोवियत विद्वान, डॉक्टर क़ारीयेवा को भाषण देने के लिए इजाज़त मिल गयी:

"श्रीमानो और श्रीमतियो!" उमीदा अपनी ओर खा जानेवाली निगाह से देख रही आँखों में झाँकती बोली। "फेफड़ों के रोगों पर अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी से जब मैंने अपनी वैज्ञानिक सूचनाएँ वापस ले लीं तब से मुझ से प्रेस के बहुत से प्रतिनिधियों ने बार-बार इसके कारण बताने की प्रार्थना की। मैंने निश्चय किया कि कारण सब लोगों को जानना चाहिये। इस हेतु यह प्रेस कॉफ़्रेंस बुलाया गया है और मैं आप लोगों को तकलीफ़ दे रही हूँ।"

उमीदा ने मन ही मन महसूस किया कि वह बिना घबड़ाये ठीक ढँग से बोल रही है। वह ऊपरवाली, लंबी और चमकदार मेज़ के पास अकेली खड़ी थी। उसने काले अतलसवाली अपनी पोशाक के ऊपर से काली जाकिट पहन रखी थी। इस से उस की भरी-सी कमर तंग हो गयी थी। काले-काले बालोंवाले सिर के पीछे के जूड़े ने उसके चेहरे को और भी साँवला बना दिया था। न उसके हाथ में, न मेज़ पर कोई काग़ज़ था। वह बिना किसी हड़बड़ी के जर्मन भाषा में बोल रही थी। पहले उस की आँखें कुछ घबड़ाकर सैलून की कभी इस, कभी उस जगह दौड़ती रहीं। जिन लोगों की वह खोज कर रही थी, वे वहाँ मौजूद नहीं थे—न उमायदेर, न बेर्गेर... उसने ऊपर सीढ़ियों पर और गलियारे में खड़े लोगों पर भी नज़र दौड़ायी। उसे अब तक अवगुस्त के आने की उम्मीद थी।

अब उमीदा को सब से अहम बात बतानी थी, उसने आरम्भ तो किया लेकिन वह ख़ुद को नितान्त अकेला महसूस कर रही थी मानो वह अभी उसी भयावह कैंप में हो। जीते-जी काटे जा रहे उन्हीं आदमियों के परिचित चेहरे, मृत्यु से पहले क्रन्दन, उनके क्षणिक आक्रोश तथा सफ़ेद डॉगरी और काले बूट पहने "डॉक्टर" की सर्द निगाहें—यह सब उसकी आँखों के सामने से अभी तक मिटे नहीं थे। लेकिन इन सब का अब कोई नामोनिशान नहीं बचा था... उमीदा अकेली थी। न साक्षी, न बलि हो गये रोगी, न ख़ुद बेर्गेर था...

इस अकेलेपन से उसे और भी बल मिला। उसे सामने खड़े फ़ोटो

कैमरे ऐसी तोपों की तरह लगे जिनसे कुछ देर बाद उस पर गोला-बारी होनेवाली थी। पर उमीदा घबरायी नहीं...

हाँ, उसे एक बार ऐसा ज़रूर महसूस हुआ कि सामने बैठे लोगों को अपने शब्दों की सचाई दिखाने की वह बेकार कोशिश कर रही थी। इसकी कोई ज़रूरत नहीं थी। उसकी बात एकदम साफ़, किसी विद्वान की घोर नाराज़गी तक सीमित होनी चाहिये।

उमीदा की बातें डॉक्टर बेर्गेर से संबंधित हैं – यह लोग पहले से जानते थे। इस लिए जब सूचना का सार स्पष्ट हुआ तो हाल में शोरगुल मच गया। लकड़ी की सीढ़ियाँ चरमरा उठीं। बाज़ चपलूस संवाददाता अपने टेपरिकॉरडर खुला छोड़ टेलीटाइप की ओर दौड़ पड़े। लेकिन उन में कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने इस क़िस्म की सनसनियाँ बहुत देखी थीं। वे पाँव पर पाँव रखे आरामकुर्सी पर चैन से बैठे रहे। कभी कभी एक-दूसरे को काग़ज़ पर कुछ लिखकर बढ़ा देते थे। उनके चेहरों पर न क्रोध, न विस्मय का भाव होता।

"शर्मिंदगी! जर्मन का अपमान!" पीछे से आवाज़ आयी। पर उसे किसी ने शांत कर दिया। उमीदा बोलती गयी। वह किसी भी चीज़ पर ध्यान दिये बिना बड़ी शांति के साथ बोल रही थी। उसने कुर्त बेर्गेर जैसे ज्ञान के 'सितारे' के विज्ञान के क्षेत्र में आने पर, अस्पतालों में दाख़िल होने पर अपनी ठोस नाराज़गी प्रकट की। उसने सब लोगों से अपने इस बर्ताव का समर्थन करने की अपील की। सर्वाधिक मानवीय विज्ञान – चिकित्सा विज्ञान की स्वच्छता के लिए उसकी शिष्ट परम्पराओं, उसके महान मानवीय अग्रणियों के सम्मान के लिए, इस क्षेत्र में वास्तविक विद्वतापूर्ण यश की रक्षा के लिए संघर्ष करने का आह्वान किया।

अब उसकी आवाज़ पहले से कहीं ऊँची और स्पष्ट थी।

इसके बाद कॉंफ़्रेंस का सब से जटिल और अहम क्षण आया – प्रश्नोत्तर का!

सवाल करनेवाले पहले अपने समाचार पत्र या अपनी टेलीवीजन-कंपनी का नाम लिखा बोर्ड ऊपर उठाकर दिखाते या चीख़कर उसका एलान करते थे। अगर उनका सवाल मामूली हो तो वह शोर में विलीन हो जाता था।

"डॉक्टर, कृपया, हमें यह बताइये कि बेर्गेर के उन ऑपरेशनों में

क्या आप नर्स के तौर पर हिस्सा लेती थीं? क्या ऑपरेशनों को आप अपनी आँखों से देखा करती थीं?"

इस सवाल के साथ सारे हॉल में सन्नाटा छा गया।

"नहीं," उमीदा ने जवाब दिया। "मेरा काम रोगियों के कमरे को साफ़-सुथरा रखना, रोगियों की देख-भाल करना, उनको ऑपरेशन के लिए तैयार करना था। मैं एक क़ैदी थी जिसको अस्पताल की नर्स का नाम दिया गया था।" यह कहकर उसने अपनी कलाई खोलकर उस पर गुदा क़ैदी का नम्बर लोगों को दिखाया। फोटो-कैमरे उसकी तस्वीर खींचने लगे। उमीदा ने खीजकर अपने को बिजली के प्रकाश से हटा लिया।

"आप की वैज्ञानिक सूचनाओं के बारे में हम कब और कहाँ जान पायेंगे? क्या वे कांग्रेस के संग्रह में छपेंगी?"

"अगर उस संग्रह में बेर्गेर की सूचनाएँ शामिल होंगी तो मेरी सूचनाएँ उसमें आपको नहीं मिलेंगी।"

"नहीं छपेंगी! क्या वास्तव में आप के पास सूचनाएँ हैं?" किसी ने व्यंग्य भरे लहजे में पूछ लिया।

सीढ़ियों के नीचे एक सुन्दर पुराने सोफ़े पर चुइंगम चबाते बैठे तीन जवानों में से एक ने यह सवाल पूछा था। वे तीनों भी अच्छी पोशाकें पहने थे, बालों को तेल लगाकर कंघी की गयी थी। वे बिना कुछ लिखे काफ़ी समय से बातचीत कर रहे थे।

सब उनकी ओर पलटे पर शोर न थमा। तभी खिचड़ी बालोंवाला एक फ़ांसीसी उठ खड़ा हुआ और हॉल में शांति छा गयी।

"मैडम," प्रौढ़ संवाददाता ने ऐनक पोंछते हुए कहा। वह रूसी में बोल रहा था। "आप ने घटनाओं का वर्णन साफ़-साफ़ और विश्वासपूर्ण ढँग से किया है। पर हम जानना चाहते हैं, इन के साक्षियों से हमारी मुलाक़ात कब और कहाँ हो सकती है?"

उमीदा को ऐसे सवाल पूछे जाने की पूरी उम्मीद थी। लेकिन अपने जवाब के बार में वह अभी तक कुछ भी नहीं तय कर पायी थी।

"साक्षी नहीं हैं," उसने जर्मन भाषा में हॉल की ओर कुछ घबराहट के साथ देखकर कहा। हॉल में फिर से शोर की लहर फैल गयी। "मैं तो आप से कह चुकी हूँ कि सभी साक्षी मर गये हैं, जनाब। इस लिए मैं ख़ुद गवाह हूँ।" शोर ज़्यादा बढ़ने से उमीदा पसीने में नहा गयी।

आह अवगुस्त उमायदेर... पल भर को आ जाते तो तुम्हारा क्या जाता...

"अगर ऐसी बात है तो अपने संस्मरण आप हमें नहीं, बच्चों को सुनातीं तो ज्यादा अच्छा रहता!" उन तीनों जवानों में से एक ने कहा। इस सवाल का जवाब देना ज़रूरी न था, इस लिए शोर पहले से भी दुगुना हो गया – इस चीख़ का कौन समर्थन कर रहा है, कौन उसकी निन्दा कर रहा है – जानना मुश्किल था, उमीदा बहरी-सी हो गयी थी, उसकी आँखें लोगों के ऊपर तैरते धुएँ के बादल पर टिकी थीं। अब वह इस भीड़ की ओर कुछ लापरवाही से देखने लगी थी। हाँ, यह लोग ऐसे ही थे, वे न तो अपनी, न तो दूसरों की क़द्र करते।

एक पतली, लम्बी अंग्रेज़ औरत ने चिल्लाकर कुछ कहा। उसकी बातें उमीदा को अनुवाद करके बता दी गयीं:

"क़ारीयेवा ख़ानुम, अगर थोड़ी देर के लिए मान लें कि प्रयोग के दौरान मरे वे लोग थे ही नहीं तो क्या आप बेर्गेर के आविष्कार को ज्ञान के क्षेत्र में कोई अहमियत देंगी या नहीं?"

"नहीं, मैं यह मानने में असमर्थ हूँ। एक नहीं, आधे क्षण के लिए भी मानने में असमर्थ हूँ। क्योंकि ऑपरेशन की मेज़ पर पड़े वे दसों रोगी अभी तक मेरी आँखों के सामने हैं जो पशु की तरह जिबह किये गये थे। वे जीवन पर्यन्त क्षण भर के लिए भी मेरी आँखों के सामने से नहीं हटेंगे। मैं डॉक्टर हूँ और मैं आदमियों को मारने के लिए नहीं, मौत से बचाने के लिए काम करती हूँ।"

हॉल में सन्नाटा छा गया था।

"हमारे ख़्याल में आप प्रचारिका लगती हैं।"

यह चीख़ शांत हॉल के ऊपर ही लटककर रह गयी। किसी ने उसका समर्थन नहीं किया। उन तीनों जवानों की ओर किसी ने देखा भी नहीं। सब जानते थे, यह आवाज़ उनकी थी। यह अनुचित सन्नाटा किसी ने नहीं तोड़ा। यह इस ख़्याल में कि यह उनके प्रति सम्मान का चिह्न है, उन में से एक जो दूसरों से काफ़ी बड़ा था, उठ खड़ा हुआ और बोलने लगा, "मैडम, आपने डॉक्टर बेर्गे के ख़िलाफ़ कोई भी गवाह या दलील पेश नहीं किया।" अपने हाथ में ज़ंजीरवाली किसी चीज़ से खेलते हुए उसने बोलना शुरू किया। "अच्छा, इस में कोई हर्ज नहीं। आपने

अपनी बैज्ञानिक सूचनाओं की भी घोषणा नहीं की। अब, क्या, आप ज्ञान से कोई संबंध रखती हैं—इस पर भी हमें बिना किसी दलील के विश्वास करते रहना पड़ेगा?"

हॉल एक हिलोरा खाते चुप हो गया। उमीदा को ऐसा लगा मानो इस वृद्ध को कहीं देखा हो। पर अब इस के बारे में सोचने का मौक़ा नहीं था।

"इस सवाल का जवाब देती हूँ, सर!" उसने कहा। "जनाब, आप तीनों भी कुर्त बेर्गेर की पार्टी के सदस्य मालूम होते हैं। मैं आप के लिए कोई दलील पेश करने को नहीं हूँ। आप पर कोई भी दलील असर नहीं करती—यह सब पहले से जानते हैं। अधिकार की दृष्टि से आपकी पार्टी और हम अभी तक युद्धावस्था में हैं। हम फासिज़्म के साथ कभी शांति नहीं कर सकते!"

पहले कुछ आदमियों ने तालियाँ बजायीं, फिर ऐसा हुआ मानो कोई विस्फोट हुआ हो, शोर के मारे कुछ नहीं सुनाई देने लगा। कई लोग काग़ज़-पेंसिल जेब में समेट भीड़ के बीच से अपने लिए जगह बनाते चलते बने। कोई मेज़ पर चढ़कर भाषण देने की इजाज़त माँग रहा था, कोई बिना इजाज़त किसी को गालियाँ देना शुरू कर रहा था। अब बहस जारी रखना असंभव हो गया था। प्रेस-कॉंफ़्रेंस के संचालक ने उमीदा के इशारे से अपना गला माइक्रोफ़ोन की ओर बढ़ाते कुछ कहा। सूचना के प्रकाशन में पूरी साफ़गोई बरतने की अपनी उम्मीद प्रकट करके उसने कॉंफ़्रेंस बन्द कर दी।

उमीदा जब होटेल में लौटी, हाथ मलती, बहुत देर तक चहलक़दमी करती रही। उसके कानों में हॉल का शोर अभी तक नहीं थमा था। चाहे जो भी हो, उसने अपने मन की सारी बातें बता डाली थीं। उसका मन हल्का था। अब वह अपने अन्त:करण के सामने किसी तरह दोषी नहीं थी। अब उसे चैन की साँस लेनी चाहिये। लेकिन न जाने क्यों वह पूरी तरह चैन नहीं ले पा रही थी।

या तो सब से महत्वपूर्ण बात उसने छोड़ दी थी? या तो उसने ज़रूरत से ज्यादा बातें की होंगी? नहीं! उसने जो कुछ कहा था वह सब सच था, पक्का था, साफ़ था। उसने ज्यादा बोलने की भी कोशिश

नहीं की थी बल्कि वह काफ़ी संयत रही थी। पर उसको अभी भी संतोष नहीं मिला था। उसका दिल बेचैन था।

उसके ख़्याल में वह सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य तक पहुँच नहीं सकी थी—उसका भोलापन किसी ने नहीं भाँपा था। उन्हें सिर्फ़ दलील और गवाह की जरूरत थी। सहज अनुभूति, हृदय के क्रन्दन का यहाँ कोई आदर नहीं।

अजीब बात है, बेर्गेर अब कहाँ है? वह क्या कर रहा है? ऐसा कभी नहीं हो सकता कि आज की बात उस तक न पहुँचे। वह अपनी आपबीती उमीदा से छुपा रहा है। क्या वह अब व्यंग्य के साथ मुस्कुराते शराब पी रहा है या भयभीत है?

बहरहाल कल कोई सनसनीखेज बात ज़रूर होगी। वह जीतेगा या...

उमीदा ने खिड़कियाँ भड़ाक से खोल दीं। वातावरण में बारिश की गँध थी। पूरे सप्ताह से बादल उमड़-घुमड़ रहे थे, बिजली कड़क रही थी पर बारिश नहीं। उमीदा ने पसीने से तर अपने कालर खोल दिये। अन्धेरी खिड़की से ताककर उसने आँखें भींचीं: अन्धेरा इतना घना था कि देखना भी मुश्किल था। मौसम दमघोंट था। गहरे सन्नाटे के मारे उसकी कनपटियों में दर्द होने लगा। उमीदा इस अन्धेरे और सन्नाटे में रहने से ख़ुद को अशक्त महसूस कर रही थी। पर इसी क्षण कहीं रात के अन्धेरे में एक बिजली चमक उठी और किसी हिंस्र पशु-सी उसकी पुर-ज़ोर आवाज़ से ज़मीन आसमान हिल गये। उमीदा ने यह भी महसूस किया कि ज़मीन में गहरे धँसी लाल ईंटोंवाली इमारतें भी काग़ज़ी खिलौने की तरह हिल उठी थीं। बिजली से छतें, छतों की मीनारें, पेड़, शाखों में लटकते पत्ते पल भर के लिए चमक उठे और फिर अन्धेरा छा गया।

उमीदा को कमरे की रोशनी जलाने से भय हुआ? हाथों से दीवार टटोलती वह अपनी कुर्सी तक जा पहुँची।

कुछ देर बाद मुसलाधार बारिश शुरू हो गयी। पूरे सप्ताह भर से मात्र उमड़ते-घुमड़ते रहनेवाले बादल अब ज़मीन पर भुरककर गिर रहे थे। उमीदा को अनवरत शोर मचाती बारिश की शीतलता से कुछ चैन मिला और वह अलस भाव से कुर्सी पर बैठ गयी। कमरा अन्धेरा था।

क्या आज भी जागते रात काटेगी? उसका सारा शरीर पिसा महसूस हो रहा था लेकिन ज़्यादा थकान के बावजूद उसे नीन्द नहीं आ रही थी।

मेज़ पर टिकट के टुकड़े पड़े थे। उसका दिल मचल उठा। सहसा उसे अपने बच्चों की याद हो आयी और वह घर लौटने को बेताब हो उठी।

फिर भी कुर्त बेर्गेर को बेनक़ाब नहीं किया जा सका। वह अभी भी सिर ऊँचा किये चल रहा होगा, बड़े इत्मीनान से कुछ मुस्कुराते हुए लोगों को झुककर नमस्ते कर रहा होगा। सफ़ेद डॉगरी पहने वह क्लीनिकों में दाख़िल होता रहेगा, मँचों पर भाषण देता रहेगा। विख्यात विद्वान के रूप में सैंकड़ों लोगों के सामने अपने भाषण पढ़ता रहेगा।

उसने इसी के लिए तो दसों स्वस्थ आदमियों की हत्या कर डाली थी। वह उनकी छाती फाड़कर, महीनों उनके फेफड़ों के टुकड़े-टुकड़े करता रहा था, उनकी जान बड़े आहिस्ते-आहिस्ते ले ली थी।

कुछ दिन पहले टेलीविजन पर पत्थर का टुकड़ा दिखाया गया था, शायद कल उसे संग्रहालय में सौंपा जायेगा। चाँद से लाया गया एक पत्थर... हम से करोड़ों प्रकाश-वर्ष दूर आकाशगंगा का रहस्य हमें मालूम है पर इनसान और पशु के बीच की सीमा कहाँ है—यह हम अभी तक नहीं जानते हैं।

वास्तव में मानवता किस से सीमित है? क्या हम मानवता के उच्चतम लक्षण, स्वच्छता से अभी तक इतनी दूरी पर हैं? या तो सब लोग मानव नहीं गिने जा सकते हैं? तब क़ानून, अधिकार, पद—यह सब एक ही तरह हैं क्यों?

एक पादरी ने ऐसा कहा था: "पशुओं की आदतों के इनसान पर प्रभाव डालने का कोई भय नहीं है। इनसान अपने पाशविक दर्जे से कब का गुज़र चुका है। अब उसके लिए एक ही भय बाक़ी है—दानव बनने का!"

अजीब बात है! दानवी? कौन-सा दानव? "पीला दानव" (सोना)?

उमीदा के ख़्याल में ज़माने, धारणाएँ—सब गड्ड-मड्ड हो गयीं। सपना और वास्तविकता, रात और दिन भी अस्त-व्यस्त हो गये। उसने अपनी आँखें खोलकर देखा कि भोर हो चुका है। बारिश थमने से उजाला हो उठा था या रात ढलकर सुबह हो चुकी है—वह नहीं जानती थी।

तभी दरवाज़े पर दस्तक सुनायी दी। सर्दी खायी उमीदा कुर्सी से झटके से उठ खड़ी हुई और कपड़ों को ठीक करने लगी।

"आइये।"

"ओ फ़ाऊ डॉक्टर! क्या मुसीबत है! हाँ, मुसीबत!" कमरे में बेर्ता से पहले उसकी आवाज़ आयी। "देखिये न, इस जैसे जवान की हत्या की गयी है। कितना सुडौल, कितना शिष्ट था।" उसने समाचार-पत्रों का बंडल मेज़ पर रखकर कॉफ़ी की थाली डॉक्टर के हाथ में थमा दी।

उमीदा ने समाचार-पत्र के पन्ने पर छपी तस्वीरों पर नज़र डाली: वह एक बेढंगा, दुबला-पतला, उभरी-सी भीतर धँसी आँखोंवाला आदमी था। वह सुडौल कैसे रहा? शायद वह बेर्ता का परिचित हो। हर किसी की अपनी दुनिया, अपनी हसरतें होती हैं...

सहसा उमीदा के हाथ काँपने लगे और थोड़ी-सी कॉफ़ी छलक भी गयी। अगर बेर्ता ने तेजी से उसके हाथ से प्याला न ले लिया होता तो वह ज़मीन पर गिरकर टुकड़े-टुकड़े हो जाता। उमीदा दोनों हाथों से समाचार-पत्र खोलती कुर्सी पर बैठ गयी। वह घबरा गयी थी और नहीं जानती थी कि इस से ख़ुश होना चाहिये या नहीं। उसी तस्वीर के ऊपर कल के काँग्रेस की सूचना छपी थी। शुरू से अन्त तक! सवाल, जवाब, तालियाँ, शोरगुल – सब के सब! साफ़-साफ़! दो जगहों पर उमीदा की भाषण करते वक्त की तस्वीरें भी थीं।

उमीदा ने बेताबी से नज़र दौड़ायी, हाँ, सब कुछ छपा था। इसमें कोई नक़ल नहीं था। संपादक ने अपनी ओर से भी कुछ नहीं जोड़ा था। यह कैसे हुआ? यहाँ के समाचार-पत्र कभी ऐसा नहीं करते। यह अच्छा है या बुरा?

उमीदा फिर सिर झुकाकर अपने जवाब पढ़ने लगी। बेर्ता उसकी कॉफ़ी हाथ में थामे अभी तक पास में खड़ी थी और बोलती जा रही थी:

"मेरा मन इतना नर्म है, फ़ाऊ, क़सम खाती हूँ, मैं तो रो पड़ी। मैं ने उसे एक बार ही देखा था पर अभी तक वह मेरी आँखों के सामने है। यह कितने अफ़सोस की बात हुई है..."

उमीदा उसकी ओर पलटी। बेर्ता का चित्तियोंवाला चेहरा लाल-लाल हो गया था।

"उसकी हत्या की गयी है..."

"किसकी?" उमीदा ने पूछा।

"अरे फ़ाऊ, क्या आप ने नहीं पढ़ा? यह लीजिये, यह रहा," कहते हुए बेर्ता ने उभरे कपोलोंवाले उस दुबले आदमी की तस्वीर दिखा दी। "उस दिन आप के पास आया था न। ज़रा पढ़िये। ओह, कितने अफ़सोस की बात हुई है..."

उमीदा की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। पर उसके हृदय में एक सिहरन-सी हुई। कहाँ देखना है, यह नहीं जानते हुए वह शीर्षक पढ़ने लगी। क्या बकबक कर रही है यह औरत? "उस दिन आया नौजवान" वह कौन था? हाँ, बेर्गेर आया था। उसके अलावा तो कोई नहीं आया था।

"क्या वह उस समय आया था जब मैं नहीं थी?"

"न-न! आकर आप से काफ़ी देर तक बातचीत करता रहा था। सुडौल, शिष्ट आदमी था..."

"वह बेर्गेर था, कुर्त बेर्गेर" उमीदा ने न जाने क्यों कुछ तीखेपन से कहा।

"जी हाँ, वही! मैं उसी आदमी के बारे में बोल रही हूँ।"

बेर्गेर? उसकी हत्या किसने की? कब? क्यों?

उमीदा के दिमाग़ में कौंधता-सा एक ख़्याल आया: "उमायदेर? क्या वह सच में..."

अपनी आँखों पर विश्वास न करते हुए उसने फिर से तस्वीर को घूर-कर देखा। नहीं, यह दूसरा आदमी था। उमीदा ने इसे कभी नहीं देखा था।

उफ़, क्या हो रहा है? उमीदा दोनों हाथों में मुँह लिये थोड़ी देर तक बैठी रही। फिर उसने समाचार-पत्र की ओर देखा। सहसा उस-की नज़र तस्वीर के ऊपर लिखे शीर्षक पर पड़ी: "हलो, क्या यह पुलिस स्टेशन है? शीघ्र ही पहुँच जाइये। मैंने ख़ून किया है!" मोटे-मोटे अक्षरों पर फिर से नज़र दौड़ाकर वह ख़बर पढ़ने लगी।

आज रात दो बजे एक अपरिचित आदमी ने डॉक्टर बेर्गेर को उसके कार्यकक्ष में गोली मार दी थी। क़ातिल ने उसी जगह से पुलिस को फ़ोन करके ख़ुद को क़ानून के हवाले कर दिया था। सूचना में सारी घटना का साफ़-साफ़ वर्णन था। तस्वीर में वही अज्ञात आदमी था।

उमीदा उसकी निराश आँखों में देखकर उठ खड़ी हुई। ऐसी आँखें... ऐसी आँखें वह सिर्फ़ कैंप में देखा करती थी। यह निस्संदेह बेर्गेर के बलि-यों में से एक था। पर वह कहाँ से आ टपका!

उमीदा ने जल्दी से फिर समाचार-पत्र हाथ में ले लिया।

उस सूचना के नीचे "क़ातिल से बातचीत" भी छपी थी। उस में क़ातिल ने अपना नाम, जन्मस्थान आदि, बताया था। वह किसी समय एक कुशल खिलाड़ी हुआ करता था। युद्ध के समय उन्नीस साल की उम्र में उसे बेर्गेर के अस्पताल में दाख़िल किया गया और कई ऑपरेशनों में उसके फेफड़ों की आधी काट-छाँट कर दी गयी जब दूसरे ओर के फेफड़ों की बारी आयी तो अचानक गोलाबारी शुरू हो जाने से उसे भाग निकलने का मौक़ा मिल गया था। इस तरह वह अभी तक एक ओर के फेफड़ों से ही साँस ले रहा था। आज तक वह रोगशय्या से उठ नहीं पाया था। लोग दिन-रात जिस ताज़ा हवा का सेवन करते रहते हैं, उसके लिए वह सदा तरसता ही रहा। उसने अपने दिल में बेर्गेर को देखे बिना न मरने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। कल जब उसने रेडियो पर सब कुछ सुना तो अपनी पूरी शक्ति समेटकर वह उठ खड़ा हुआ और डॉक्टर का पता लगाकर उस से मिलने चला आया। "बाक़ी सब कुछ आप ख़ुद जानते हैं। मैं सिर्फ़ इसी के लिए जीवित था, पर अब ... अब आप मुझे क़ैदी बना सकते हैं," क़ातिल ने कहा था।

पन्ने के सब से नीचे थानेदार का वक्तव्य भी छपा था: "क़ानूनन क़ातिल को गिरफ़्तार नहीं किया जा सकता था क्योंकि डॉक्टरों के मुताबिक़ उसकी उम्र की घड़ियाँ बहुत कम बाक़ी रही थीं सिर्फ़ एक महीने की ..."

वही पीले रंगवाला, दुबला-पतला आदमी अभी तक उमीदा की आँखों के सामने से नहीं हट पा रहा था मानो वह दूसरी दुनिया के झरोखे से उसे झाँक रहा हो।

"मुझे उसकी जवानी का चेहरा याद नहीं आ रहा है जब उसकी उम्र उन्नीस साल की थी।" उमीदा ने आँखें एक जगह टिकाते हुए कहा।

"अगर एक ही महीना हुआ, तो वह अब..."

"अब वह नहीं है, अज़ीमजान," उमीदा ने कहा और सोच में डूब गयी। "आधे फेफड़ोंवाला प्रतिशोधी! मेरा साक्षी।"

"सब कुछ अपने समय पर होना चाहिये, बेटे! अगर और एक महीना तुमने देर की होती तो यह आख़िरी साक्षी भी नहीं रहता।"

"क्या आप सोचते हैं, यही आख़िरी गवाह था?"

आचिल बाबा अपने सुन्न पड़े घुटनों को मलकर उठ खड़े हुए। प्यालियों में चाय ठंडी पड़ चुकी थी। सूरज के प्रकाश से भरपूर कमरों में सन्नाटा छा गया था। सिर्फ़ किसी खिड़की के पर्दे के पीछे फँसी भिड़ की भनभनाहट आ रही थी।

परे बैठा अज़ीमजान ने बोझिल स्मृतियों के बाद विचारमग्न हो गयी अपनी प्यारी मौसी को ढाढ़स देना चाहा:

"इस बात से आप को ख़ुद को पीड़ा नहीं देनी चाहिये, उमीदा अपा। क्या आप ने उसकी हत्या की है? नहीं। कुर्त बेर्गेर को भी अपनी करनी का फल मिल गया है। अगर वह जीवित रहा होता जो क्या यह अच्छी बात होती? अगर आप यूँ ही लौट आतीं तो आपको फिर कभी चैन नहीं मिलता।"

"आप ठीक कहते हैं, अज़ीमजान। पर जब से मैं वहाँ से लौटी हूँ, मुझे ऐसा लगता है, मैं एक घोर अपराध कर बैठी हूँ। मेरे दिल में अभी तक एक खीझ है।"

"मुझे भी ऐसा लगता है," आचिल बाबा कमर पर हाथ रखकर क़ालीन पर चहलक़दमी करने लगे।

"अब मेरे दिल में भी एक खीझ पैदा हुई है, बेटी। हमें उम्मीद थी, तेरे घर में हमें कुछ आराम मिलेगा और हमारा दिल हल्का होगा पर ऐसा नहीं हुआ।"

"जानते हैं, बापू, मुझे डर होता है कि कहीं आदमी का धर्म नष्ट न हो जाये — अब मैं सिर्फ़ इसके बारे में सोचने लगी हूँ। आदमी अणु के अन्दर छिपी भयानक शक्तियों को बाहर निकाल रहा है। इस से वह ख़ुद भी प्राकृतिक तौर पर हज़ार गुना अधिक शक्तिशाली बन जायेगा। अन्ततोगत्वा यही शक्ति मानव के लिए हानिकारक बनेगी — ऐसा न होने देने के लिए क्या आदमी अपने धर्म पर भरोसा कर सकता है? धार्मिक शक्ति अणु के अन्दर नहीं होती, ज्ञान में नहीं होती है पर कहाँ होती है?

नाना-नाती उसकी बातें समझ पाये या नहीं, यह उमीदा को मालूम न था पर उन्हें उसने प्रश्न की दृष्टि से देखा। सच कहा जाये तो वह प्रश्न का उत्तर स्वयं से चाहती थी। काफ़ी देर की चुप्पी के बाद आचिल

बाबा ने उसके सामने आकर अपनी मोटी-मोटी, कँपकँपाती अंगुलियोंवाले हाथ से बेटी के बाल सहला दिये।

"कहाँ मिलेगी? हमसे मिलेगी। हमारी ज़िन्दगी से, हमारे कार्यों से, हमारे आदमियों से मिलेगी। ख़ुद तुम से मिलेगी, प्यारी बेटी!"

उमीदा अपने बूढ़े बाप की आँखों में देखकर प्रफुल्लित हो उठी। बाबा की बातें अज़ीमजान को भी बहुत रास आयी थीं। अपनी मौसी के बारे में उसके दिल में भी ऐसी ही अच्छी बात थीं पर वह उन्हें प्रकट करने में झिझक रहा था। अब उमीदा का चेहरा फूल की तरह खिल उठा था।

हवाई जहाज़ में वे एक नौजवान संवाददाता के साथ बैठे जिसके दाँत दूर से चमकते दिखाई दे रहे थे।

"क्या स्तेपी में जा रहे हैं? बहुत ख़ूब, बात करते जायेंगे," जवान आदमी ने सामान रखने में उनको सहायता देते हुए कहा। वह बहुत बकवादी था, हवाई जहाज़ उड़ने तक बोलते-बोलते उसने कान बहरे कर दिये।

"हाँ तो आप योल्दाश अका के यहाँ जा रहे हैं?" संवाददाता बोला। "वह तो हमारा ही आदमी है। माफ़ कीजिये, आप आचिल बाबा हैं न? मैंने आप के बारे में कुछ सुना था पर देखा नहीं था।"

दरवाज़े के ऊपरवाली बत्ती बुझते ही जवान ने सिगरेट सुलगा ली। वह बोलने से बाज़ नहीं आ रहा था। कभी बोलता, कभी पढ़ता, कभी टटोलता। ज़्यादातर एक साथ बोलता भी और पढ़ता भी।

"योल्दाश अका को इस साल प्रतिनिधि चुना गया है, क्या आप जानते हैं? वे आजकल कारख़ाने के डाइरेक्टर हैं," संवाददाता ने एक पुरानी पत्रिका के पन्ने पलटते हुए कहा।

"योल्दाश कुशल आदमी है, यह मैं जानता हूँ। वह अपने बाबा पर गया है," आचिल बाबा ने पीठ पीछे टिकाते हुए कहा। "उसका बाबा अब्दुलअहद-दुमा बड़ा जानकार, विद्वान आदमी था। बेचारा मर गया।"

"क्या तब के ज़माने में भी ऐसा हुआ था? उस ज़माने में तो एक भी पढ़ा-लिखा आदमी नहीं होता था – हमने ऐसा सुना था?" अपने नाना की छड़ी घुटनों पर रखे अज़ीमजान ने पूछा। "आपने कहा था न कि कामीला के बाप भी और योल्दाश अका के बाबा भी..."

"अतीत को अन्धेरा ही अन्धेरा बतानेवालों से मैं घृणा करता हूँ," आचिल बाबा ने दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा। इससे यह मालूम हो रहा था कि वह बातचीत करने के इच्छुक हैं।

"बेनाम, रंक, भिक्षु," अतीत यही है न?" व्यंग्य से संवाददाता मुस्कुराया।

"उज़्बेक कभी रंक नहीं बना," बाबा ने कहा, "हमारे पुरखे तेल पीकर नंगे कभी नहीं लेटे हैं। हो सकता है, कभी-कभी पेट से भूखे रहे हों पर दिल हमेशा भरा रहता था। मानसिक दरिद्रता उनके लिए बेगानी चीज़ बनी रही है।"

"ज़रा मुझे देखिये, अका," नौजवान ने अज़ीमजान से कहा। "क्या आप चाँद से उतरे हैं? फिर भी हज़रत नवाई को आप जानते होंगे? क्या आप ने वह तस्वीर देखी जिसमें उलुग़बेक और प्तोलोमेय साथ-साथ बैठे हैं? मैं आप से कहूँ तो बीरूनी ने यूनानियों की मशहूर पौराणिक पुस्तक "इलियड" यूनानी ही भाषा में पढ़ी है। संस्कृत से भी अरबी में उन्हों ने अनुवाद किया था। अल-फरग़ानी बग़दाद अकादमी के सदस्य चुने गये थे। जमर्न महाकवि दांते ने अपनी एक सुविख्यात रचना में उनका नाम बड़े आदर के साथ बताया है। मशरब कौन था? अपनी दुःखद क़िस्मत और विलक्षण वीरता के लिए वह उस ज़माने की परिस्थिति की दृष्टि से पोलैंड के विद्वान जोर्डानो ब्रूनो से कम मशहूर हैं? अल-ख्वारज़्मी का..." यह नौजवान काफ़ी जानकार सिद्ध हुआ, उसका लगातार बढ़-बढ़कर बोलते देखकर अज़ीमजान हक्का-बक्का रह गया। पर आचिल बाबा इतिहास में लंबी जड़ें फैलाये अपने पुरखों के बारे में विचारमग्न हो गये थे।

"दूर की बात तो छोड़ दीजिये, मैं आप को अपने अब्दुलअहद का क़िस्सा सुनाता हूँ," यह कहते हुए आचिल बाबा ने छड़ी से टेक लगायी।

हिकायत

सितंबर के आख़िरी दिन थे।

फसल कटाई ख़त्म हो चुकी थी, खेत नंगे बन गये थे। सिर्फ़ चरागाहों पर भूसे के ढेर शरद की बारिश से काले पड़े खड़े थे। पत्रविहीन

जंगल इंद्रधनुष की तरह चमक रहे थे। सब से पहले हलके रंगों के वृक्ष —सुनेहले तनेवाले वासच्छाय वृक्ष, अभी तक हरे-भरे भूर्ज, आग की तरह दमकते देवदार और पॉपलर दिखाई देते है। चटक लाल रंग के चरागाह के दामन से गुज़री पगडंडियों पर कुकुरमुत्ते की गँध फैली है।

अभी-अभी खोदे गये आलू और चुकन्दरों के खेतों पर बादलों की छाया तैर रही थी। वह रेंगती हुई ग्राफ़ की चमकती सफ़ेद इमारतों के परे जा रही थी।

देवदार के गिरे पत्तों से आच्छादित पगडंडी पर एक आदमी धीरे-धीरे, हाथ पीछे करते चला आ रहा है। घासों की तीखी गँध से उसका दिल उमंग से भरा था, वह चारों ओर बड़े शौक़ से देखते जा रहा था। पगडंडी के किनारे उगे किसी पेड़ के कुछ तल्ख़ मेवे मुँह बनाते चबाने लगा। उसने काला ऊनी शेरवानी के ऊपर से दो कमरबन्द लगा लिए थे, चोग़ा भी पहन रखा था। उसकी छोटी-सी काली दाढ़ी ने उसके दुबले-पतले चेहरे पर चार चाँद लगा दिये थे। पहली नज़र में वह किसी दूसरे देश से आया प्रतीत होता था। शायद इसी कारण, दूर से आ रहे घुड़सवार पर नज़र पड़ते ही उससे कतरा निकलने की इच्छा से वह जंगल की ओर मुड़ गया था।

पर यहाँ सारी-की-सारी पगडंडियाँ चलते-चलते एक-दूसरे से ज़रूर जा निकलती थीं। कुछ चलकर उसे वही घुड़सवार फिर दिखाई दिया। घोड़ा यहाँ चलने का आदी हो गया था क्योंकि वह बिना किसी झिझक के मोरी के किनारे-किनारे चला आ रहा था। खेतों में बालियाँ चुननेवाले बच्चे भी, राह पर चलते मर्द भी उसे देखते ही सिर से टोप उतारकर सलाम बजाने लगते। जब वह बिलकुव क़रीब आ गया तो मुसाफिर ने भी परे हटने के बजाय अपना हाथ सीने पर रख लिया। घुड़सवार परदेसी को देखकर उसे निहारने लगा।

घुड़सवार एक सफ़ेद दाढ़ीवाला बूढ़ा था पर काठी पर किसी जवान की तरह मज़बूती से बैठा था। वह छोटे क़दवाले घोड़े से नीचे कूद गया। तभी मुसाफिर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो उठा जैसे पैग़म्बर ख़िज्र से मुलाक़ात हुई हो।[°] उसके पाँवों में पुरानी महसियाँ, सिर पर मुलायम टोप (शायद वह ऊँट के रोएँ से बना है) और कँधों पर भी एक बड़ा शाल था। उसके कान बड़े-बड़े नाक गोल-गोल-सी, सफ़ेद बढ़ी भौंहों के नीचे

से आँखें चमक रही थीं। पुराने दोस्तों की तरह वह सीधे इसकी ओर आने लगा। मुसाफिर ने भी भाँप लिया कि उसे या तो कोई पैग़म्बर, या कोई महान शख़्स मिल गया है। क्योंकि जब उसकी मुलाक़ात बादशाह से हुई थी तो भी वह इतना विमूढ़ नहीं हुआ था।

"अस्सलाम अलयकुम!" बूढ़े ने हाथ बढ़ाते हुए कहा। उसका हाथ गर्म व लम्बा था, नसें उभरी थीं। ग्राफ़ टॉल्स्टाई लेव निकोलायेविच! दूर से अच्छी तरह नहीं देख पाने के कारण उसने मुसाफिर पर फिर से सिर से पाँव तक नज़र दौड़ाई। उसके ललाट और चेहरे की झुर्रियाँ अधिक-गहरी हो गयीं, बढ़ी भौंहों के नीचे प्रज्वालित आँखें चमक उठीं।

"मुझे अब्दुलअहद क़ारी कहते हैं," घबराहट के मारे मुसाफ़िर की जीभ अटक गयी थी। उसने महान लेखक के बारे में बहुत कुछ सुना था, उनका मकान यहीं पर स्थित है यह भी जानता था, उनकी कुछेक कहानियाँ भी उसने पढ़ी थीं।

"आप तुर्क या ईरानी हैं?"

"मैं तुर्किस्तान का हूँ, हुज़ूर, उज़्बेक हूँ।"

"ओह, कितना अजीब है! आइये, ज़रा बैठिये," टॉल्स्टाई उसे पुराने देवदारों के बीच से दो-चार ठूँठ दिखाई दे रहे चरागाह की ओर ले आये। ख़ूब खिले फूलों के बीच में वह अक्सर घूमते-फिरते थे, बहुत बैठने से ठूँठों के ऊपरी हिस्से चमक रहे थे।

लेव निकोलायेविच पहले चुप रहे, काफ़ी देर बाद ख़ुद पर क़ाबू पा सके। मुल्ला अब्दुलअहद भी कुछ होश में आकर इस महान आदमी के क़रीब आ बैठा।

"क्या आपकी सेहत ठीक-ठाक है, आदरणीय लेव निकोलायेविच?"

"ठीक हूँ, शुक्रिया। दिन-ब-दिन मृत्यु की ओर बढ़ रहा हूँ। यह भी अच्छा है। "बड़े भोज" का भी मौक़ा तो आख़िर आ ही गया है।" उनकी आवाज़ भारी और शांत थी। बोलते समय उन के पोपले मुँह के साथ-साथ माँसल नाक भी हिलती थी।

"आप का घोड़ा काफ़ी समझदार मालूम होता है," मुल्ला अब्दुलअहद ने बूढ़े के दिल में चोट लगानेवाली बातों से पिंड छुड़ाने के लहजे में कहा। "जिस जगह पर आपने उसे छोड़ा था, वहीं, अडिग खड़ा है।"

लम्बी ग्रीवावाली छोटे क़द की घोड़ी वास्तव में उसी जगह खड़ी थी जहाँ मालिक ने उसे छोड़ा था और वह कभी-कभी अपनी पूँछ हिला रही थी। टॉल्स्टाई की आँखें चमक उठीं उनके चेहरे पर एक मुलायम तबस्सुम छा गया।

"उसका नाम है देलीर ... इनसानों जैसा व्यवहार करती है। कभी-कभी मुझे संदेह होता है, कहीं जादू से घोड़ी बनी कोई शाहज़ादी न हो। अलिफ़ लैला की कहानी आपको याद है कि नहीं?"

"हाँ," अब्दुलअहद ने कहा। बूढ़े के शब्दों और आँखों में एक उल्लास देख वह प्रसन्न हो उठा था। उन्होंने अपनी आवाज़ थोड़ी ऊँची करके पूछा:

"आप कहाँ से आ रहे थे? यहाँ कैसे आ गये?"

मुल्ला अब्दुलअहद ने देखा, इस बूढ़े से बातचीत करते समय कुछ छुपाने की ज़रूरत नहीं है, उनसे अपनों की तरह बातचीत की जा सकती थी। नहीं तो उन्हें विश्वास भी नहीं आयेगा।

"बादशाह की ओर से यहाँ निर्वासित किया गया हूँ, लेव निकोलायेविच।"

"अच्छा!" लेव निकोलायेविच ने अपनी सफ़ेद भौंहें चढ़ायीं। उनकी घट्टेदार अंगुलियाँ ऊनी रूमाल से बेचैनी से खेलने लगीं। "मुझे कभी निर्वासित नहीं किया गया है। मैं कुछ कठिनाइयाँ झेलने को उत्सुक हूँ। मेरे इर्द-गिर्द आप जैसे सैकड़ों, हज़ारों उत्पीड़ित लोग पीड़ा सह रहे हैं। मुझे जेल में या निगरानी में रहना भी नसीब न हुआ। मैं भी बादशाह के लिए ख़तरनाक आदमी हूँ, एक भी बादशाह नहीं जिसकी हिक़ारत मैंने न की हो। मैं कठिनाइयाँ देखने को तरसता हूँ।"

"इसकी आप आरज़ू भी न कीजिये, लेव निकोलायेविच।"

"जानता हूँ, यह सहल नहीं है। लेकिन स्वतंत्र होना भी उससे अच्छा नहीं। तो बताइये, दिन कैसे काट रहे हैं?"

"किसी न किसी तरह ... यहाँ चाहे कम ही सही लेकिन मुस्लिम हममज़हब मिल गये हैं। क़ाराचाय, चेर्केस ... मुझे अपने-अपने जशनों में निमंत्रित करते हैं, मैं कुरान से कुछ आयतें पढ़ देता हूँ।"

"अच्छा! और क्या करते हैं?"

"मैं अपने देश में दाम्ला, यानी अध्यापक था।"

"अध्यापक? अच्छा, तो मुझे बताइये, आप को किस अपराध के लिए निर्वासित किया गया है? या आप एशियायी लोगों भी कहीं धर्म-पूजा छोड़कर सरकारी नीति में घुसपैठ करने लगे हैं क्या?"

मुल्ला अब्दुलअहद हँसा। उसने सोचा, यह बूढ़ा जिसकी गिरजाघर से बहिष्कृति हुई है, मज़ाक़ कर रहा है। फिर उसने अपने राज्य दूमा के सदस्य होने के दौरान कई प्रतिनिधियों के भड़कावे से बादशाह के नाम निवेदन पत्र लिखने में शरीक होने की कहानी सुना दी। उस निवेदन पत्र में दो चीज़ें माँगी गयी थीं। पहला – उन बायों का धन छीन लेना जिन्होंने संपत्ति बढ़ाने की ठान ली हैं...

"ज़रा मेरी बात तो सुनिये, मुल्ला..."

"अब्दुलअहद।"

"मुल्ला अब्दुलअहद। आप ने बहुत ठीक काम किया था।" लेव निकोलायेविच की रक्तहीन, भद्दी अंगुलियाँ उसके लम्बी, श्वेत दाढ़ियों की लहरों के बीच में काँपती भटकने लगीं, उनका चेहरा रोशन हो उठा। "बहुत ख़ूब चीज़ थी वह! आप हेनरी जॉर्ज को जानते हैं?"

"नहीं, लेव निकोलायेविच।"

"कोई बात नहीं। फिर भी आप का निवेदन न्यायसंगत था। ज़रूरत से ज्यादा धन रखना – निपट नीचता है।" उनकी कहीं दूर टिकी गहरी आँखों में एक दर्द झलक उठी। उनकी आवाज़ भी कुछ नीची हो गयी। "क्या दिलचस्प चीज़ है, मैं और आप हमआरज़ू निकले। ऐसा निवेदन अपने बादशाह के सामने, अपने समय में मैं ने भी पेश किया था। लेकिन कोई नतीजा न निकला। मुझे बड़ा कष्ट झेलना पड़ा, बीमार हो गया। यहाँ तक कि एक अंग्रेज़ी समाचार-पत्र में मेरी मृत्यु पर शोक प्रकट कर-नेवाले पत्र भी छपा था। क़ब्र के लिए जमीन का टुकड़ा भी ख़रीद लिया गया था..." बूढ़े ने ख़ुद को विषय से बहकते महसूस कर उससे पू-छा: "और दूसरा क्या था?"

"दूसरा यह था, लेव निकोलायेविच, स्तालीपिन के आदेश के अनु-सार स्थानीय निवासियों की ज़मीनें छीन ली गयीं और..."

"और निवेदन का नतीजा निर्वासन हुआ, है कि नहीं?"

"एकदम ठीक, हुज़ूर।"

फिर विचारमग्न लेव निकोलायेविच यास्नाया पोल्याना में एक नौकर

की कहानी सुनाने लगे। लेखक ने जब उससे पूछा, "तुम्हारे पास वह लटकी चीज़ क्या है, चाक़ू है या और कोई चीज़ है?" तो उस ने जवाब दिया कि वह "शमशीर" है।

"इस से तुम क्या करते हो? रोटी काटते हो?"

"कौनसी रोटी?"

"तो अपनी देखभाल करनेवाले आदमी को काटोगे?"

तब नौकर ने ऐसा जवाब दिया:

"किसी को भी काटना हो–मुझे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता।"

"आख़िर तुम ख़ुद भी एक आदमी हो, अपने साथी का क़त्ल करने में तुम्हें कोई झिझक नहीं होती है?"

"यह तो मेरा कर्त्तव्य है," नौकर ने उत्तर दिया।

"क्यों तुमने ऐसी बुरी नौकरी चुन ली?"

"मैं क्या करूँ, मेरी अपनी क़ीमत सोलह रूबल है और मेरे इस काम के लिए अतिरिक्त सोलह रूबल का बढ़ावा मिलेगा। कुल मिलाकर बत्तीस रूबल।" नौकर की इस बात ने मुझे कुछ उलझी बहसों की चाबी का काम किया।" लेव निकोलायेविच ने आगे कहा, "मिसाल के तौर पर वही स्तालीपिन। मैं उसके बाप का दोस्त था। ख़ुद उसे अपने घुटनों पर बैठाकर लाड़-प्यार करता था। पर अब वह आदमियों को क़त्ल कर रहा है, फाँसी पर लटका रहा है। क्यों? क्योंकि यह उसका कर्त्तव्य है, उसने यह नौकरी इस लिए चुन ली क्योंकि उसकी अपनी कोई क़ीमत नहीं है। पर इस नौकरी में उसे सालाना अस्सी हज़ार रूबल मिलते हैं। ऊँचे दर्जे के समाज के लोगों का हाल यही है, मुल्ला। इससे ख़ुद बादशाह भी बचा नहीं है। अगर वह सभ्य आदमी होता, मैं उससे अर्ज़ करता कि आदमियों के बीच का वैर-भाव ख़त्म कीजिये, उनमें स्नेह और मुहब्बत का शासन हो..."

अब्दुलअहद को अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था। क्या कहे, न जानते हुए वह विमूढ़-सा बैठा रहा। उसे एतराज़ करने की इच्छा थी।

"आदरणीय लेव निकोलायेविच..."

लेकिन लेव निकोलायेविच ने बातचीत ज़रा हलकी करने के ख़्याल से दो टूक सवाल किया:

"अच्छा आप इस खेत पर कैसे आ गये?"

मुल्ला अब्दुलअहद ने भी अपने दोस्त को उलझनों की दुनिया से वापस आया देख चैन की साँस ली।

"मैं यहाँ से थोड़ी ही दूर, कोज़लोवो ज़ासेका में ठहरा हूँ, लेव निकोलायेविच। यह जंगल, रूस का शरद मुझे बहुत रास आ गया है। आख़िरी बार और देख लूँ, शायद आँखें तृप्त हो जायें — इसी ख़्याल से घूम-फिर रहा था।"

"आख़िरी बार?"

"जी हाँ। दो महीने बाद मेरा निर्वासन-काल ख़त्म हो जायेगा।"

"अच्छा! उसके बाद कहाँ जायेंगे?"

"अपने देश जाऊँगा। अगर नसीब हुआ तो अपने बच्चों के यहाँ। मेरे छः बच्चे हैं, लेव निकोलायेविच।"

फिर दोनों विचारमग्न हो गये। कुछ परे सुनहले जंगल के दामन पर देलीर ठूँठों के बीच बची-खुची घास कुतर रही थी। एक बादल की छाया रेंगकर गुज़र गयी। आलुओं के काले-काले बग़ीचों में उड़ते कौवे, दूर में भूँसों के ढेर पर चूहों का शिकार करती मिक्की (चील), कम उगे सूरजमुखी पौधों बंजर ज़मीन, झाड़ियों से भरे दर्रे साफ़-साफ़ दिखाई देने लगे।

"कितनी सुहानी प्रकृति है!" अब्दुलअहद क़ारी ने कहा।

"यहाँ मुझे भी बहुत रास आता है। यास्नाया पोल्याना को मैं अपनी दूसरी माँ समझता हूँ।"

"ऐसी सुन्दरता हमारे यहाँ होती... सैकड़ों कवि ग़ज़लें, दास्तानें लिख डालते..."

"हाँ, पूर्वी, पूर्वी... किसी ज़माने में मैं ने भी उससे बड़ा प्यार किया था।" लेव निकोलायेविच कोमल स्वर में सुनाने लगे। "दिसंबरियों के बारे में एक नावल लिखनेवाला था। उस वक्त जनरल पेरोव्स्की का ख़ीवा नगर पर आक्रमण, ख़्वाराज़्म शहर के बारे में मैं ने बहुत कुछ पढ़ा था। अजीब देश, अजीब कवि... अब उनमें से एक की भी याद नहीं। अपने कवियों की कविताओं से मुझे कुछ पढ़कर सुनाइये, मुल्ला अब्दुलअहद।"

अब्दुलअहद क़ारी बुरी हालत में पड़ा। उसने अपनी अंगुलियाँ ज़ोरों

से चटखायीं और कुछ याद में लाने की कोशिश की। फिर उसका लम्बूतरा, दुबला चेहरा प्रफुल्लित हो उठा।

"मैं आपको किस तरह समझाऊँ, लेव निकोलायेविच।"

"अच्छा, अपनी मातृभाषा में ही कुछ पढ़ दीजिये, मैं ज़रा सुनूँ।"

अब्दुलअहद ने मन में आयी एक ग़ज़ल पढ़ दी।

"अफ़सोस की बात है, मैं समझ नहीं पाता हूँ," ग़ज़ल की संगीतमयता पर मोहित हो लेव मिकोलायेविच ने कहा। "फिर भी मैं कुछ अन्दाज़ लगा सकता हूँ। जानते हैं, जब मैं ने क़ज़ान में पढ़ा था तब थोड़ी तुर्की भाषा भी सीखी थी। पर अब भूल चुका हूँ। क्या आप मुझे कोई सहज-सी चीज़ नहीं पढ़कर सुनायेंगे?"

"अच्छी बात है। एक मामूली चीज़ यह ग़ज़ल है, जिसको अहमद यस्सवी ने लिखा है।" यह कहकर मुल्ला कवि के "हिकमत" नाम के संग्रह से एक शेर पढ़ने लगा।

जो आक़िल ख़ुद को कहते हो ग़रीबों को सहारा दो,
फिरी लोगों के बीच और तुम यतीमों को सहारा दो,
रहा हूँ मैं हमेशा दूर हो मतलब परस्तों से
रहा हूँ दूर जिनके मन मरे थे ऐसे लोगों से।

है सर मिट्टी का, ख़ुद मिट्टी का हूँ मिट्टी का तन मेरा,
ख़ुदा से वस्ल को है हर घड़ी बेताब मन मेरा,
जला सौ बार, हो पाया न पाक अपने गुनाहों से,
समाकर रह गया धरती में शबनम सा बदन मेरा।

बनूँ बस देखते हो उसको, दास उसका मैं चाहूँगा,
बिछूँ उसकी डगर पर धूल का जैसा मैं चाहूँगा,
मैं चाहूँगा कि जलकर आशिक़ों की राख बन जाऊँ,
यह कहते-कहते अपनी क़ब्र में जाना मैं चाहूँगा।

करो क्यों ज़ालिमों का शिकवा, तुम तो ख़ुद ही ज़ालिम हो
पड़े एक गाल पर थप्पड़ तो आगे दूसरा कर दो,

मिला दुनिया का सारा माल फिर भी जी नहीं भरता,
तुम्हारा इतना लालच देखकर हैरान हूँ मैं तो!

सताएँ तुम को गर ज़ालिम तो मेरी ओर तुम देखो,
करो मेरी इबादत, आँसू छिड़को, अपना दिल काटो,
निकालो सारे शुबहे अपने दिल से और करो तौबा
जो ज़ालिम हैं किया था मैंने ही बलवान उनको तो!

"वाह-वाह, यह तो एक महान दार्शनिक मालूम पड़ता है! क्या वह आपके यहाँ सुविख्यात है?"

"जी हाँ! प्राचीन कवि है।"

"नाम क्या था?"

"यस्सवी, हुज़ूर।"

"अजीब बात है, क्यों मुझे अब तक ज्ञात नहीं है वह? कनफ़ूसियस को मैं जानता हूँ। गाँधी जी को जानता हूँ... पर इसको... क्या यस्सवी है?" टॉल्स्टाई ने फिर से जोश में आकर आँखों से उसकी ओर सवाली दृष्टि से देखा। "अब आप मुझे बताइये: क्यों सारे जहान के महान बुद्धिमान लोग सदा जोरों से इसी शिक्षा को फैलाते आ रहे हैं? सभी जनगणों सभी धर्मों में वे क्यों बड़ी संख्या में हैं: कृष्ण, बुद्ध, लाओ-त्स्ज़ी, सुक़रात, एपिकतेत, मार्क आव्रेली, रुस्सो, कान्ट, एमरसन, चान्नींग, और यह यस्सवी... क्योंकि यह सिर्फ़ इसी की शिक्षा नहीं है, यह आम मानव की शिक्षा है। नैतिक सचाई और धार्मिक सचाई दोनों एक चीज़ है। इनसान को राज्य के क़ानूनों के नहीं, मुहब्बत के क़ानूनों के अनुसार रहकर अपने नैतिक उत्थान के बारे में सोचना चाहिये। बादशाह का शासन फायदेमन्द नहीं है। वह जनता को क्रांति के दर्रे में खदेड़ रहा है। यह भयावह, ख़ूनी क्रांति होगी। यह एक महापाप होगा, मुल्ला।"

अब्दुलअहद क़ारी मानो अपने हमसोहबत को नहीं पहचान पाया, वह उनकी ओर निहारने लगा, कुछ कहने के अन्दाज़ में होंठों को हिलाता रहा, पर बूढ़े की बात काटने की उसकी हिम्मत नहीं हो पा रही थी।

लेव निकोलायेविच ने अपनी बात जारी रखी:

"समाज का हित भी एक चीज़ है। लोग इसकी फ़िक्र जितनी कम करें तो अपनी मानसिक हालतों, नैतिक उत्थानों के बारे में सोचने के लिए उतना ज़्यादा वक्त रहेगा और ज़ुल्म, क़त्ल, ख़ूनरेज़ी भी कम होगी। आदमी अपने लिए ख़ूनरेज़ी नहीं करता है, वह ज़्यादातर अपने दोस्तों के लिए काफ़ी आसानी से यह काम करता है, पर समाज के हित के लिए सैकड़ों लोगों को क़त्ल किया जाता है।"

"लेव निकोलायेविच..."

"आज का समाज ज़ुल्म पर आधारित है। उससे जितना आप दूर रहें, आप उतने ही ऊँचे और साफ़ होंगे।"

"आप मेरी मंशा समझ नहीं पाये, लेव निकोलायेविच।"

पर लेव निकोलायेविच ने मानो उसकी बात सुनी तक नहीं थी। वह किंवदंती सुनाने लगे कि किस तरह गौतम बुद्ध ने अपने बच्चों को भूखे बाघ को खाने दिया था।

"लेव निकोलायेविच, मैं आप को... मैं वैसा नहीं हूँ। लेव निकोलायेविच, जब में दूमा में था... यस्सवी भी संयोगवश... अब मैं एकदम..."

"आपने क़ुरान कंठस्थ कर लिया है पर नीति में टाँग न अड़ाइये! इस तरह यूरोप आदमी को ख़राब करता है। आप काफ़ी जानकार सिद्ध हुए हैं, आपकी बातचीत मुझे रास आयी... आपके बहाने मुझे अपने बेकार प्रेमियों से अलग रहकर कुछ चैन मिला, शुक्रिया," कहते हुए लेव निकोलायेविच हँस पड़े। फिर फौरन थके आदमी की तरह उठ खड़े हुए, अपनी बड़ी उँगलियों को कमरबंद में घुसेड़कर हलकी-सी आह भरी। अपना क़द ठीक किया। एक-एक डग भरते वह अपनी घोड़ी की ओर चले।

"हाँ," वह फिर रुक गये, "आप तुला जाइये और वहाँ रुम्यान्त्सेव के पुस्तकालय का इस्तेमाल कीजिये। दुनिया में सबसे बुरी चीज़ वह है, जब विद्वान आदमी को किताबों की कमी महसूस होती है।" उन्हों ने अपने लम्बे ऊनी कुर्ते की जेब से नोटबुक निकालकर कॉलर में लटकी फूँदनवाली क़लम से उस टुकड़े पर कुछ लिखा और अब्दुलअहद को थमा दिया।

"मेरे प्रांगण में आइये, फिर बातचीत करेंगे। अब बहुत थक गया हूँ। नमस्कार।"

मुल्ला अब्दुलअहद कुछ कहे बिना मूक खड़ा रहा। लम्बी ग्रीवेवाली

नाटी घोड़ी अपने समय के महान इनसान को उसकी सारी विडंबनाओं के साथ ले जा रही थी। मुल्ला अब्दुलअहद अपने मन की बात उनके सामने प्रकट नहीं कर पाया और चुप रह गया था। "वह मेरे बारे में क्या सोचने लगे हैं?" दुख से या सुख से अश्रुसिक्त अपनी आँखें पोंछते हुए वह बुदबुदाया। पर उसके हृदय में अरमान भरा था! वह चीख़ रहा था: "मैं उस जैसा आदमी नहीं हूँ, लेव निकोलायेविच! आप भूल रहे हैं! जो मन में आये आप कह सकते हैं पर मैं वैसा आदमी नहीं हूँ!"

टॉल्स्टाई के आदेश के अनुसार आये मेहमान को रुम्यान्त्सेव पुस्तकालय में पहले ही दिन अच्छी तरह स्वागत किया गया। विशेषकर प्रोफेसर की बेटियों के आनन्द की कोई सीमा नहीं थी। वे अब्दुलअहद को मज़ाक़ के तौर पर "राजकुमार" कहकर बुलाती थीं। "राजकुमार" किताबों का बड़ा प्रेमी साबित हुआ, सुबह से शाम तक रोज़ वहाँ पढ़ने में मग्न रहता। यह दुमंज़िली लकड़ी की इमारत, उसकी रूसी शैली में बनाये गये कॅडलवाले साफ़-सुथरे हॉल, ख़ास तोर से बूढ़ा, ख़ुशलफ़्ज़ ड्यूटीवाला और बहुतेरा जवान-बूढ़ी औरतें उसे बहुत रास आ गयीं। जैसे उसे कोई ख़ज़ाना मिल गया हो, वह किताबें पढ़ने में व्यस्त हो गया।

उसने पढ़ना टॉल्स्टाई की किताबों से शुरू किया था। अब रोज़ आकर सब से पहले उन्हीं की किताब माँगता, शाम विचारमग्न हो घर लौटता। दिन, हफ़्ते इसी तरह बीतते रहे। वह मानो कुछ देख ही नहीं रहा था, एकदम दूसरी दुनिया से मोहित हो चलता फिरता था।

बर्फ़ पड़ती रातों को कीचड़वाली राह से ज़ासेका लौटते हुए उसकी आँखों के सामने उसी दूसरी दुनिया के दृश्य फिर से प्रज्ज्वलित हो उठते थे। कभी घायल अन्द्रेय की फुसफुसाहट उसके कानों में आ पड़ती जो आऊस्तेरलीत्स के मैदान पर धराशायी हुआ था? ऊँचे-ऊँचे, असीम, साफ़ आसमान... "यह स्वच्छ ऊँचाई पहले मैं ने क्यों नहीं देखी थी?" मन में कहता है "राजकुमार।" "मैं कितना सुखी आदमी हूँ कि अब जी भर के देख रहा हूँ! हाँ! इस असीम आसमान के अलावा सब कुछ तुच्छ है, सब कुछ झूठा है। उसके अलावा कुछ भी नहीं है। ख़ुदा का शुक्र!" कभी "राजकुमार" की आँखों के सामने सुन्दरी नताशा की आकृति पेश आती। वह जवान, हँसमुख, नटखट, जिसका हृदय प्रेम

पूरित था... जब वह उसे नाराज़ होती देखता तो "राजकुमार" का दिल छोटा हो जाता।

भिनसरे के झुटपुटे में फिर उसी राह से कीचड़ों से सना तूला में आते समय उसके कानों में ओलेनिन की आवाज गूंज उठती: "चारों दिशाओं को मैं प्रेम के जाल से लपेट डालूंगा...", "तोड़ा जायेगा, दिमित्री, यह जाल तोड़ा जायेगा," यह अद्‌भुत बूढ़े येरोफ़ेय की आवाज़ थी। बड़ा बुद्धिमान आदमी है येरोफेय! सच में सभी लोगों से प्यार नहीं किया जा सकता। नहीं, कभी-कभी क्रोध का भी इस्तेमाल करना ज़रूरी है।

एक दिन ऐसे ही विचारों में ऊब-डूब चलते-चलते मुल्ला अब्दुलअहद अचानक चीख़ उठा:

"नहीं, लेव निकोलायेविच, आप भी वैसे नहीं हैं। आप वैसे नहीं, जैसा आप ने ख़ुद कहा था। आप वैसे नहीं हैं।"

घनी सफ़ेद भौंहोंवाले, आँखों में फौलाद-सी चमक लिये विशालकाय वृद्ध उसकी आंखों के सामने आये। उनकी उभरी नसोंवाली बेढँगी उँग-लियाँ दाढ़ी पर फिर रही थीं। "आप बड़े ही चतुर बूढ़े सिद्ध हुए हैं," मुस्कराकर अब्दुलअहद ने सोचा। मुँह से तो आप नम्रता, स्नेह की बात करते हैं पर ख़ुद नित्य विद्रोह करते हैं, क्रोध करते हैं। नेख़ल्यूदोव वि-द्रोहियों से प्रेम करता है। सिमॉनसन ने तो प्रकाश दिया, वह बल की प्रतिमा है। "नहीं, लेव निकोलायेविच, आप को मुझ से अपने दिल में समाये सूरज छुपाने की कोई आवश्यकता नहीं है!"

उस दिन तूला के रास्ते में वह अचानक यास्नाया पोल्याना की ओर मुड़ गया। उसकी लेव निकोलायेविच से मिलने की इच्छा थी। बिना मिले उससे न रहा जायेगा। उनसे दुबारा बात करनी ही होगी, नहीं तो जीना मुश्किल हो जायेगा—इसी एहसास के साथ वह हड़बड़ाये चला जा रहा था।

"नहीं, आप वैसे नहीं हैं, लेव निकोलायेविच!" वह अपनी उत्ते-जना पर क़ाबू न पाने के कारण मन ही मन में बड़बड़ाते जा रहा था। वह इस क़दर बेताब था मानो किसी विश्व-भर का महत्व रखनेवाले आवि-ष्कार की ख़बर पहुँचा रहा हो।

...यास्नाया पोल्याना में सब कुछ श्वेत है; खेत भी, तुषार से

आच्छदित वन भी, दोतरफ़े दरवाज़े के गुंबदोंवाले खंभे भी, बाड़ों के तालाब भी, घर भी। अच्छी तरह साफ़ किये गये रास्तों की दोनों ओर बर्फ़ के ढेर किसी पर्वतमाला की भांति दिखाई देते हैं। चौराहों पर भव्य फीटन खड़े हैं, उनमें जुते घोड़े अपने नथुनों में पहनाये नये थैलों से बाजरे चबा रहे हैं। बरामदे की सीढ़ियों पर, ओसारों में लोग टोलियों में बातें करते खड़े हैं। अब्दुलअहद भाँप गया कि यह लोग दूर से आये हैं और सुबह-सवेरे से ग्राफ़ से मिलने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इन में समाजवाद-जनवाद के बारे में बहस करते, हरे रंग की टोपी पहने विद्यार्थी, भगवान के भक्त मुझिक (रूसी किसान), हल्के कपड़ों में सर्द खाकर झुके बैठे बूढ़े बुद्धिजीविवर्गी, ऊदबिलाव के फरवाले कॉलर के कपड़े पहने धनी आदमियों के बच्चे, विदेशी लोग उपस्थित हैं।

तो लेव निकोलायेविच ने बेकार ही यह नहीं कहा था "मैं अपने भक्तों से छुपकर आराम करता हूँ।" तब मुझे क्या करना चाहिए? क़ारि धीरे से कुछ आगे चलकर ओसारे के नीचे जाकर बैठ गया। धीरे-धीरे सूर्योदय होने लगा, आसमान उज्जवल हो उठा, फिर भी बर्फ़ गिर रही थी।

कोने की आराम कुर्सी पर लोमड़ी का कोट पहने, पाँवों में सफ़ेद ऊनी बूट डाले, पतली-सी मूँछोंवाला एक धनी जवान गर्व से बैठे किसी से बात कर रहा है:

"ग्राफ़ अपनी "सोमवार" नामक कृति में ..."

"सोमवार" नहीं, हुजूर ... "

"जी हाँ, "सोमवार" नहीं, "बुद्धवार" नामक नावल में वेश्याओं के जीवन का वणर्न किया है। वह यह खीं ... खीं ... कहाँ से जानते हैं? इसके बारे में आप का क्या सुझाव है?" जवान ने कुछ और कहकर अपनी हथेली होंठों पर रख खींसे निपोड़ी।

मुल्ला अब्दुलअहद इस कुत्सित मूर्ख के पास से हटकर नीली बेंच के दूसरे सिरे पर जाकर बैठ गया। बेंच के पीछेवाली हिस्से पर, ओसारे के लकड़ी के खंभों पर चाकू से क्या-क्या न लिखे गये थे। क़ारि के लिए एक अच्छा शग़ल मिल गया था, वह लिखावटें पढ़ने लगा:

"हत्या की सज़ा उठायी जाये!" हस्ताक्षर।

"महात्मा की जय!" विद्यार्थी।"

"संघर्ष में थके लोगो! इस आवास में आकर थोड़ा आराम लें।"

मुल्ला अब्दुलअहद के पीछे पाँवों में लाल रंग के चमड़ेवाले मोज़े – क़ागा पहने एक ऊँचे क़दवाला अजनबी ग़ुस्से में खड़ा था।

"माइन गोट्ट! * यह क्या बदमाशी है? मैं क्योल्न से यहाँ तक नग़द चुकाकर आया हूँ। कल सारा दिन प्रतीक्षा में कट गया था। और आज भी, माइन गोट्ट!"

"क्या आप का मिलना इतना ज़रूरी है?"

"ओ, जानी-मानी बात है कि रूस में दो... वह... क्या कहूँ, उल्लेखनीय स्थल देखने हैं: पहला वसीली ब्लाझेन्नी का चर्च, दूसरा ग्राफ़ टॉल्स्टाई। अगर बिना देखे वापस जाऊँ तो मैं अपने दोस्तों को क्या जवाब दूँगा?"

क़ारि की नानी मर गयी। मुँह फेरकर वह लिखावटें पढ़ने में लगा रहा:

"दुनिया भर के मेहनतकश एक हो और महात्मा के सामने सिर झुकाओ। जवान रूस।"

"मैं एक धूमिल घुमक्कड़, तुम्हारा प्रणाम करता हूँ।"

"महान बुद्धिमान, मैं तुम्हारा शुक्रिया अदा करता हूँ?" प्रोफ़ेसर (हस्ताक्षर)।

कुछ आगे एक पुराने चकमान** के ऊपर से रस्सी घुमाकर बाँधे, कानी आँखवाले एक कूबड़ वृद्ध की स्त्रियों जैसी आवाज़ सनाई दी:

"हक़ताअल्लाह ख़ुद साक्षी है, इस दुनिया में मैं ने जो नेकियाँ की हैं वह सब श्रीमान् ग्राफ़ शराफ़त से हैं। उनका ज्ञान..." कूबड़ की बात खाँसी से भंग हो गयी। कुछ लमहे के बाद उसकी फिर से आवाज़ निकली। "मैंने चींटी तक को पीड़ा नहीं पहुँचायी है। गोश्त, अंडे से सदा परहेज़ करता हूँ, तपस्वी हूँ, अल्लाह का शुक्र..."

इस समय बरामदे में फिर दरबान निकल आया और उसने घोषणा की कि आज भी लेव निकोलायेविच बाहर नहीं निकल सकेंगे। फिर से चिल्ल-पों शुरू हो गया।

---

* जर्मन शब्द – "हे ईश्वर!"

** एक क़िस्म का चोग़ा।

"माइन गोट्ट!"

"ग्राफ़ से बताइये, मैं पहले हिल्डया..."

"सुनिये, मेरे बारे में उनको बताया कि नहीं?"

पर दरबान अन्दर जा चुका था।

अब्दुलअहद को वृद्ध और अबल लेव निकोलायेविच पर दया आ गयी। इन लोगों की उनको क्या ज़रूरत थी? और ख़ुद क़ारि की? वह यहाँ क्यों खड़ा है? वह कुत्सित भाषावाला धनी बच्चा, मूर्ख अजनबी, काने दरवेश के बारे में सोचकर न जाने क्यों उसकी घिग्घी बँध गयी, चेहरे पर दोनों हाथ रख कुछ देर तक वह बैठा रहा और फिर वहाँ से चलता बना। बर्फ़ अब ज़ोरों से गिरने लगी थी। रास्ते दुबारा बर्फ़ से ढँक गये थे, पाँवों तले चरमराहट की आवाज़ होती थी।

"नहीं, अब यहाँ नहीं आना है। उनको परेशान नहीं करना है। वह विश्राम करें। वह इन धन के लोभियों से बहुत ऊब गये होंगे। इन "भक्तों" का यहाँ आने से एक ही उद्देश्य था: "मैंने अमुक को देखा" कहकर डींग मारना। कितने बेशर्म हैं!"

एक दिन जब वह रोटी ख़रीदने स्टेशन की दूकान गया था तो उसने उस कूबड़ को कॉफ़ी घर में देखा था। वह एक मुझिक के साथ बीच में शराब की बोतल रखे सूअर का भुना गोश्त खा रहा था। दोनों के मुँह मैले थे, नशे से उनकी आंखें निद्रालु थीं, हाथों में बड़ी हड्डी लिये कुत्ते की तरह कुतरते जा रहे थे। कैसा लकपट है। ख़ुद को दरवेश बताता है, कहता है गोश्त नहीं खाता...

वितृष्णा के मारे मुल्ला अब्दुलअहद यहीं से सीधे फिर यास्नाया पोल्याना चला गया। भाग्य से अगर लेव निकोलायेविच से मिलने का अवसर मिले तो हालाँकि उन्हें क्या कहना ख़ुद को मालूम नहीं था, फ़िर भी वह दौड़ते जा रहा था।

आसमान धुंधला है। हालांकि अभी शाम नहीं हुई, अंधेरा छा गया था, जंगल किसी बादल की तरह दिखाई दे रहे थे। क़ारि परिचित रास्तों से तेज़ क़दमों से चलकर दरवाज़े से अन्दर घुसा। उसका किसी ने स्वागत नहीं किया। बर्फ़ अभी नहीं हटायी गयी थी, बाड़ा सूना-सा था: न भक्त थे, न ख़िदमतगार। क़ारि के क़रीब आते-आते परिचित ओसारे के

सामने में पड़े घोड़े के गोबर पर से कौवों का झुंड उड़ गया। सब कहीं सूनापन था। मुल्ला अब्दुलअहद का हृदय झूम उठा...

उसे कोई बग़ल से उठाकर दरवाज़े के बाहर ले आया।

"चल बसे, आख़िर वह चल बसे," उस आदमी ने कहा।

वह कौन था। क़ारि उसके बारे में कुछ पता नहीं चला पाया। कुछ दूर कई मुझिक लोग पछता रहे थे:

"रात को ही चल बसे। हे भगवन, अब क्या होगा..."

"यास्नया पोल्याना से अन्तिम विदा ले ली..."

मुल्ला अब्दुलअहद उस दिन ज़सेका में भी, कोसाया गोरा में भी निरुद्देश्य भटकता रहा, कहीं ठिकाना नहीं मिला। सभी जगह लोग भागदौड़ की चर्चा कर रहे थे। क़ारि अपरिचित लोगों की बहसों में शामिल हो गया, जो घटना घटी थी वह अति रहस्यात्मक थी यहाँ तक कि किसी किंवदंती का रूप धारण कर रही थी। पर मुल्ला अब्दुलअहद के लिए एक बात स्पष्ट थी: टॉल्स्टाय एक हैं? महान विद्रोही, गर्वशील, अभागा टॉल्स्टाई हैं!"

संध्या को कहीं झुण्ड में सुनाई दिया:

"तपस्वी बनकर चर्च में गये हैं।"

"परलोक की चिंता करने का समय आ गया था न!"

"चर्च से शांति स्थापित करने का इन्होंने निश्चय किया है।"

तभी मुल्ला अब्दुलअहद से न रहा गया। वह झुण्ड के अन्दर घुसकर चिल्ला उठा:

"नहीं, वह वैसे नहीं हैं! आप उनको नहीं जानते हैं, वह वैसे नहीं हैं!"

पर टोली में जुटे लोग थोड़े ही इसकी बातें समझते थे। सब के सब कंधे उचका-उचकाकर तितर-बितर हो गये।

"आजकल बहुत से दीवाने मिलने लगे हैं," उनमें से एक ने कहा।

मुल्ला अब्दुलअहद अपनी कोठरी जब लौटा, वह बहुत थका हुआ था। लेशमात्र भी नींद उसकी आंखों में नहीं थी। ढलवाँ लोहे के कारखाने के दफ्तर का सीधा-सादा मितभाषी क्लर्क मत्वेय जिस कमरे में

रहता था, वह काफ़ी तंग होने के बावजूद गर्म, रोशन और आरामदेह था। उसको कुल मिलाकर सरकार की ओर से एक रूबल बीस को-

पेक मिलता था और उस में से तिरानवे कोपेक देकर वह तीन साल से यहीं किराये पर रहता था।

तीन साल। आखिरी दिनों की उत्तेजनापूर्ण घटनाओं में मुल्ला अब्दुल-अहद को पता नहीं चला कि उसके निर्वासन का समय बहुत कम बचा था। पहले वह इन्हीं दिनों के लिए कितना तरसता रहता था। वह दिन भी एकदम क़रीब आ ही गये। और हाल ही में वह अपनी मातृभूमि के लिए रवाना होगा। उसे फूला न समामा चाहिए था। बस, और एक हफ़्ते तक धीरज रखने की ज़रूरत थी। पर न जाने क्यों वह शांत था, मन में बिलकुल दुसरी बातों ने घर कर लिया था। लौटकर वह वहाँ क्या करेगा? अपने बाल-बच्चों को गोद में लेगा, फिर क्या? क़ाज़ी बनने, क़ारि का काम करने का ज़माना अब जा चुका है, अपने मन में भी ठीक नहीं लगेगा। हाँ, वह लेव निकोलायेविच की कृतियों के अनुवाद में व्यस्त होगा। जितना उससे होगा, करेगा।

"लौटने" के विषय में अब्दुलअहद के विचार पक्के नहीं हो पाये फिर कहीं टल गये। बीते तीन साल की चिंताओं और इस एक महीने की चिंताओं के बीच बहुत कम अन्तर पड़ रहा था। यह तीन साल कितने ही निष्फल, तुच्छ ढंग से कट गये—इसके बारे में सोचते-सोचते वह चकित हो जाता था। बाद के दिनों ने उसके जीवन के बारे में सारे तर्कों को अस्तव्यस्त कर डाला।

तीसरे पहर रात को वह तोशक बिछाकर लेट गया। कल शुक्रवार था।

जुमे की नमाज़ वे अब्दुरहमान क़ार्त (बूढ़ा) नाम के एक बाशक़िर्द (तातारी) की कोठरी में पढ़ते थे।

अब्दुरहमान का यहाँ जापान के युद्ध के बाद निर्वासन किया गया था। जत्थे के बाक़ी लोग क़ाराचाय, नोग़ाय, चेचेन जैसे जातियोंवाले बारह-तेरह आदमी थे। उनमें से अधिकतर अपने देश से निर्वासित लोग थे। उन्होंने अब्दुलअहद क़ारि का हज़रत नाम रख लिया था, उसके क़ुरान पढ़ने के ढंग की वे बड़ी सराहना करते थे।

ज्यों ही उन्होंने नमाज़ शुरू की थी, दरवाज़ा भड़ाक से खुला और पहले ठण्डी हवा आयी और पीछे-पीछे ग्वोज़्दिकोफ़ घुस आया। उसने देखा, सभी दरवाज़े की ओर पीठ करके नमाज़ पढ़ रहे हैं, वह कुर्सी

पर बैठ गया, मूँछों में जमे पाले झाड़ टोप घुटने पर रख, वह प्रतीक्षा करने लगा।

उसके अन्दर आने को सबने महसूस किया था। बिना देखे सब जान गये थे। इसके लिए उसकी आहट ही काफ़ी थी। झंडाराल में सबकी फेहरिस्त रखनेवाला यही ग्वोज़्दिकोफ़ होता है। अपने काम से प्यार करनेवाला यह आदमी दुबला-सा, मरे भेड़ की आंखों जैसी क्षीण आंखोंवाला था। बिना वर्दी पोस्तीन और फरवाला टोत पहनता था। उसका आना बेतुका नहीं होता। यों तो सभी नमाज़ पढ़ रहे थे लेकिन उनका ध्यान कब का भंग हो चुका था। नमाज़ पढ़नेवालों ने जब आमीन कहकर हाथ चेहरों पर फेरे तो ग्वोज़्दिकोफ़ उठ खड़ा हुआ और उसने कहा:

"जनाब! मैं यहाँ सचिव साहिब का नया आदेश आप को पहुँचाने आया हूँ। आज से तीन से ज्यादा आदमियों का एक स्थान पर जमा होना मना किया जाता है। अब सब अपने-अपने घर चले जाइये। इसके बाद से, इस तरह की टोली बनाना ग़ैर कानूनी समझा जायेगा।"

नमाज़ पढ़नेवाले नमदे पर पाँवों में जुराब पहने खड़े थे, खिड़कियाँ उनकी आड़ में थीं सो, अंधेरा हो गया था। पीछे से मुल्ला अब्दुलअहद की आवाज़ सुनायी दी:

"जनाब ग्वोज़्दिकोफ़, हम यहाँ नमाज़ पढ़ने के लिए ही जमा होते हैं। आप किसी समय यहाँ आकर सुन सकते हैं।"

क्रोध से ग्वोज़्दिकोफ़ ने आंखें फाड़-फाड़कर कहा:

"सचिव का आदेश ही क़ानून है! मुल्ला, आप से कुछ बातें करनी हैं, बाक़ी लोग जा सकते हैं।"

जब लोग निकल गये तो ग्वोज़्दिकोफ़ क़ारि की बांह थामकर कहने लगा: "बात यह है, मुल्ला, सुना है कि आप उस अधर्मी बूढ़े के यहाँ अक्सर जाया करते हैं। होशियार, यह मेरी दोस्ताना सलाह है आप के लिए। अगर आप ने कहीं क़ानून का उल्लंघन किया तो मैं और तीन साल का वायदा करता हूँ।" यह कहते हुए उसने दस्ताने उतारकर तीन उंगलियाँ क़ारि की नाक के नीचे लाकर दिखाया। "फिर से तीन साल! विशेषकर यह अंमित आदेश ठोस है!" ग्वोज़्दिकोफ़ जल्दी से घूमकर भारी क़दमों से निकल गया। उस जगह पर जहाँ वह खड़ा था, बर्फ़ का गंदा पानी रह गया।

तीन दिन के बाद प्रात:काल मुल्ला अब्दुलअहद खिड़की की खटखटाहट से जाग पड़ा। शीशे पर तुषार के कारण आगन्तुक को पहचानना असंभव था। जाकर उसने दरवाज़ा खोलकर देखा तो मत्वेय खड़ा था। रंग फक था। माफ़ी मांगने के अन्दाज़ में वह बड़बड़ाया:

"क्या करें... होनी को कौन टाल सकता है... क्या बड़ा, क्या छोटा इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। अस्तापोवो स्टेशन पर..." मत्वेय कुछ बड़बड़ाते हुए एक ओर चला गया। इस बीच मुल्ला अब्दुलअहद जल्दी से कपड़े पहन अपना टोप ज़ोरों से सिर पर चस्पाँ कर चोग़े के दामन लहराते दौड़ पड़ा। उसका पूरा शरीर सर्द पसीने से तर था, वक्ष खुला लेकिन जैसे ठण्ड का उसे कोई अहसास ही न था।

बुरी ख़बर का अहसास उसे तब हुआ जब वह तूला जानेवाली गाड़ी पर बैठा। टॉल्स्टाई चल बसे हैं। लेव निकोलायेविच अब नहीं रहे। उसकी आंखों के सामने धुँधलका-सा हो गया। डिब्बों में भी, प्लेटफ़ार्मों में भी लोग खचाखच हैं पर कोई चिल्लपों या शोर नहीं था, जैसे सब किसी मौन पूजा में व्यस्त हों। यह मुल्ला अब्दुलअहद ने अभी भाँपा। सचमुच लोग अस्तापोवो जा रहे हैं? वहाँ सारे लोग समा सकते हैं? पीतर्सबुर्ग है, मास्को है, यह सब अस्तापोवो में समा सकते हैं? पर ख़ुद टॉल्स्टाई कैसे समा गये थे। क्या उन्हें यहाँ से ले जायेंगे कि नहीं? सारे देश से होकर, सारे संसार भर से होकर लोग उन्हें अपने कंधों पर नहीं ले जायेंगे?

अब्दुलअहद को कोई द्वेष, कोई मानसिक पीड़ा सता रही थी। वह टॉल्स्टाई की "बेजान लाश" की कल्पना करने से भी डरता था। इस आदमी ने उसके सूने-सूने मन को किसी आशाओं, आकांक्षाओं से भर दिया था। पर अभी तक उसे मालूम नहीं था कि उनसे इसको प्रेम था या घृणा! पर एक चीज़ वह ज़रूर महसूस करता था: यह आदमी सदा किसी महान व्यवहारों से संबंध रखता था। यानी मानव से, मृत्यु से, भय से, सुख से, क्रांति से, तक़दीर से, मानवजाति की क़द्र से, यौवन से, भगवान से ... पर अब... अब क्या होगा?

डिब्बे में कोई रोता, कोई कराहता, इक्के-दुक्के झंडाराल के आदमी दिखाई देते थे। पर मुल्ला अब्दुलअहद के विचार कोई भी चीज़ भंग नहीं कर सकी। कितनी आत्मग्लानि की बात है! ज़िन्दगी भर कठोरता के वि-

रुद्ध संघर्ष करके एक ऐसा महात्मा इसी कठोरता के घेरे में चल बसा।

दोपहर के बाद गाड़ी अस्तापोवो से कुछ आगे रुकी। सभी लोग डिब्बों से कूद-कूदकर नीचे उतरे और दौड़ने लगे। आगे भी एक ट्रेन खड़ी थी। मुल्ला अब्दुलअहद ने दरवाज़े से झाँककर देखा। सिर्फ़ दो रंग ही दिखाई दे रहे थे: सफ़ेद और काला। सफ़ेद बर्फ़ पर लाखों लोग किसी बादल जैसे रेंगते जा रहे थे। कोई भीड़ आकर मुल्ला अब्दुलअहद को अपने साथ घसीटते ले गयी। घुटनों तक गहरी बर्फ़ में चलकर नंगे पेड़ों के बीच से वे गुज़रे, ढलवाँ लोहे के पिंजड़े उन्होंने पार किये। जब स्टेशन की इमारत दूर से नज़र आयी तो लोग निश्चल खड़े हो गये। मुल्ला अब्दुलअहद के पाँवों के मुलायम चमड़े के बूट और बालाई जूते यहाँ ख़ूब काम आये, जिन्होंने सन के जूते पहन रखे थे वे सब बर्फ़ में धँसकर पीछे रह गये थे। पर वह लोगों के बीच से आगे गुज़र आया। कुछ आगे चला तो झंडाराल के कंधे से टकरा गया। यहाँ वे बहुत थे, दस, सौ, हज़ार... सबों ने एक दूसरे से हाथ मिलाकर ज़ंजीर की तरह लोगों को घेर लिया था। लोग ज़ोर लगाते, ज़ंजीर टूटने को हो जाती! पर कुछ दूर बरछी थामे झंडाराल भी खड़े थे। लोग चिल्लाने लगे। कितने ही लोग पाँव सर्दी खाने से गिर पड़े हैं, पाँवों के नीचे बाल-बच्चे, स्त्री-औरत चिल्ला-पों करते थे। क्रोध बढ़ने लगता है, पीछे कोई झंडाराल को गाली देता है, कोई बर्फ़ में जम गये गोबर झंदाराल के मुँह पर दे मारता है।

इसी समय "ज़ंजीर" के पास खड़े मुल्ला अब्दुलअहद ने महसूस किया कि दायें कंधे से उसे किसी ने थाम लिया है। मुड़कर देखा तो ग्वोज़्दिकोफ़!

"मुझे अपना वायदा पूरा करने का हक़ है, मुल्ला," उसने कहा। पर हाथ उसके कंधे से नहीं हटाया। यह जेल में जाने का संकेत था।

मुल्ला अब्दुलअहद की निपट काली दाड़ी पर गर्म आंसू लुढ़क आये। सर्दी को क्या ख़बर थी कि ये आंसू किस लिए बह रहे थे, उसने उन्हें किसी माला के मनकों की तरह जमा दिया, बस!

हवाई जहाज़ दोपहर के क़रीब ज़मीन पर उतरा। हवाई अड्डा एक विस्तृत मैदान के ऐन बीच में स्थित था, वहाँ एक मंज़िली इकलौती इमा-

रत के अलावा कुछ नहीं था। संवाददाता इधर-उधर भाग-दौड़ के बाद आख़िर में एक कार ले आया। दस मिनट में वे शोरगुल भरे शहर की किसी सड़क पर आये। अनगिनत ट्रकों की लाइन हमेशा बनी रहती थी। शायद यह कोई औद्योगिक शहर है, बड़ा, सुन्दर, नया और योजनाबद्ध। क़ैराग़ाच के कुछ पहले सजाये गये बिरवों की क़तारें तस्वीर की तरह दिखाई देती थीं। सि ॅ राजमार्ग ही नहीं, बल्कि दोनों किनारों की नालियाँ भी कंकरीट से बनी थीं। बोर्डों, झण्डों, फूलों से सुसज्जित मैदान भी नज़र आये। लाइन में चल रहे बच्चे और कुछ लड़कियाँ जिनके कुर्ते पर नम्बर लिखा गया था इनके पास से गुज़रीं।

"आप ने कहा था न, हम स्तेपी में जायेंगे?" आज़ीमजान ने पूछा।

"स्तेपी पुराना नाम है। पर लोग या तो आदी नहीं हो पाये हैं या शायद कहने में आसान हो, सो अभी तक "स्तेपी" नाम लेते हैं। सच में तो हमारे शहर का नाम भी "चोलाबाद" (आबाद स्तेपी) रखा गया है," संवाददाता ने समझाया।

उसने कार रोकने को कहा, जहाँ फ़िटर बिजली के खंभे में बल्बों की माला पहना रहे थे और ख़ुद वह छापाख़ाने के सामने उतर गया।

"आपका स्टॉप अगली सड़क पर है," यह कहकर उसने विदा ली और हमको वहाँ पहुँचा देने को ड्राइवर से कहा।

योल्दाश का घर खाद्य दूकान के ऊपरवाली तीसरी मंज़िल पर था। दरवाज़ा बन्द था, क्या करें, न जानते हुए बाबा ख़ुर्जी पर बैठ गये। अपनी छड़ी पर टेक लगाये इंतज़ार करने लगे। इसी वक़्त सीढ़ियों से एक लड़का उतरने लगा जिसके हाथ में पिल्ला था और ख़ुद बार-बार नज़ला सुड़-सुड़ खींचे जा रहा था।

"योल्दाश चाचा की कुंजी दरी के नीचे है," उसने कहा।

आबिल बाबा ने पाँव साफ़ करने की दरी उठाकर देखा तो कुंजी चमकती दिखायी दी। यह लीजिये, कितनी विश्वसनीय जगह मिल गयी उनके लिए! उन्होंने दरवाज़ा खोला।

तीन कमरोंवाला फ़्लैट था। किताबों से भरे काम के कमरे के अलावा बाक़ी दो कमरे में बेतरतीबी थी, पर ठण्डा-गरम पानी, साबुन, इत्र-सब कुछ था। घर के मालिक के आने तक वे मज़े से नहाये। आ-

ज़ीमजान ने काफ़ी अर्से से शेव नहीं किया था। सो, दाढ़ी बनाकर बिलकुल जवान बन गया!

"मुझे एक चीज़ का बड़ा ताज्जुब है, बाबा," उसने आईने के सामने आकर कहा, "आप के इतने घर-बारवाले पोते, भतीजे, सैंकड़ों भाई-बहन हैं। एक को साल-भर आप ने नहीं देखा, दूसरे को चार-पाँच साल से। मालूम होता है, काम से उनको फ़ुर्सत ही नहीं मिलती, आप पेंशन पर हैं। अगर हो सका तो आप घूम-फिरकर सबों के यहाँ जा सकते हैं।"

"कहाँ से ... चाहे रिश्तेदारों के यहाँ आया या ग़ैर-रिश्तेदारों के यहाँ ... चलते-चलते उनमें कोई फ़र्क़ नहीं रहेगा, बेटे। जितने इनसान हैं, सब एक-दूसरे के सम्बंधी हैं।

"इतने बड़े परिवार का मुखिया बनने के बावजूद आप ने बाग़-बग़ीचा भी नहीं लगाया। जैसे चिनार गाँव में अपना वह आंगन ही लीजिये," अज़ीमजान ने कहा।

"क्या हमारा आंगन संकरा है? अच्छा मैंने अभी तक महसूस ही नहीं किया था। मैं घर में नहीं, ज़िन्दगी भर लोगों के बीच में जिया। किसी ज़माने में हमारा परिवार बहुत बड़ा था। मेरे बच्चों ने चारों ओर उड़-उड़कर विभिन्न स्थलों पर अपना-अपना बसेरा बना लिया है। बाग़-बग़ीचा लगाने का ख़्याल तक नहीं सूझा। पर मैं भाग्यशाली हूँ, आज़ीमजान। अपने बच्चों की चिंता काफ़ी है। सब के कंधों पर जनता की ज़िम्मेदारी है। मैंने उनको इसी लिए तो पाला-पोसा है। मेरे जैसे बूढ़े को इसके अलावा क्या चाहिए?"

अज़ीमजान की बाबा पर टिकी आंखें फिर विचारमग्न हो उठीं। कभी-कभी वह अपने बाबा को इस तरह ताकता था मानो वह उनको पहली बार देख रहा हो। जैसे बाबा का कोई रहस्य उसे मोह लेता हो।

योल्दाश अपने चार-पाँच मित्रों सहित तभी हड़बड़ाता आ पहुँचा। सबों के कॉलर सफ़ेद थे, गलों में टाइयाँ, शरीर पर भव्य सूट। मेहमानों ने एक दूसरे से हाथ मिलाये, परिचय किया।

योल्दाश ने प्रफुल्लित हो मेहमानों को बैठाया, उनका हाल पूछा पर स्पष्ट था, उसे फ़ुर्सत कम थी, उसके मित्र भी जल्दी में थे।

"यहाँ आकर आपने बहुत अच्छा किया है, आचिल बाबा! शायद आप की इस शुभउपस्थिति के कारण..."

"क्या बात है, बताओ तो ज़रा, सब कहीं इतनी सजावट। क्या कोई उत्सव-जश्न होनेवाला है?" आचिल बाबा ने पूछा।

आज कारख़ाने की बीसवीं वर्षगाँठ थी।

"आप ऐन त्योहर पर आये हैं। आचिल बाबा," सब एक साथ बोल उठे, "बड़ा जश्न होगा, मेहमान बहुत होंगे, जिन्होंने इस कारख़ाने का निर्माण किया वह आयेंगे। वे सब अपने यार-दोस्त हैं। उनके बीच यहाँ तक कि अंतरिक्ष यात्री भी हैं। सब एकदम अपने।"

"अच्छा, अब हांकिये मत, बताइये, मेरी पत्नी कहाँ है? क्या तुम्हें कुछ मालूम है, ऐ इंजीनियर?" योल्दाश अकबकाकर बोला।

"अज़ीज़ा वहीं है, रानो के पास," इंजीनियर ने उत्तर दिया।

योल्दाश ने सकुचाते हुए बैठे, अपने से कुछ बड़ी उम्रवाले दोस्त की ओर देखा। वह शायद रानो का पति था।

"रानो को जच्चावार्ड में छोड़कर आया हूँ, कॉमरेड डाइरेक्टर," उसने जवाब दिया।

"उसका हाल क्या है?"

"आज ही प्रसव की उम्मीद है..."

सब नौजवानों ने एक दूसरे को देखा। योल्दाश गहरी चिंता में पड़ गया।

तभी किसी ने अन्दर आकर नमस्ते कही। यह एक चश्मेवाला प्रौढ़ व्यक्ति था। मेहमानों की गँध पाकर ही इधर निकल आया था। वह आचिल बाबा से देर तक हाल-चाल पूछता रहा।

"क्या करना है हम को?" योल्दाश ने पूछा और अपना फ़ैसला प्रकट किया: "आज की मीटिंग दूसरे दिन के लिए छोड़नी पड़ेगी।"

"क्या?"

"फ़ैसला हो चुका है।" योल्दाश रानो के पति को संबोधित करके बोला। "मास्टर, आप यहीं रहिये, हम अभी लौट आयेंगे।"

उसके उठने से सब लोग उठ खड़े हुए और शोरग़ुल के साथ बाहर निकल गये।

"आप मेहमानों से बात करते रहिये," मास्टर ने उस प्रौढ़ व्यक्ति से कहा।

"चाय गैस पर चढ़ी है," योल्दाश ने निकलते हुए कहा।

जब सब लोग रवाना हुए तो आर्चिल बाबा ने अपने नये परिचित से पूछा :

"यह क्या बात है, किसी के बच्चा जनने के कारण सारे शहर का त्योहार टल जायेगा?"

चश्मेवाले प्रौढ़ ने पहले चाय बनायी, फिर मेहमानों के सामने बैठे बिना उतावलेपन के जवाब दिया :

"ओह, आप इनको नहीं जानते, महाशय, एक दूसरे के कारण मीटिंग तो क्या उससे बड़े जश्न टाल सकते हैं।" चायदान पर तह किये तौलिये डालकर उसने बात जारी रखी: "टालते हैं? नहीं, आदरणीय महाशय, यह एक दूसरे पर जान देते हैं। उन में से एक डाइरेक्टर, एक मिस्तरी, एक इंजीनियर, एक पार्टी समिति का सचिव है, पर सबके सब इसी कारख़ाने के मज़दूर हैं। अब ज़रा दस्तरख़ान से कुछ न कुछ खाइये, बेटे, आप भी लीजिये, संकोच मत कीजिये। लीजिये।" कहते हुए प्रौढ़ व्यक्ति प्यालियों में चाय उंडेलने लगा। "हाँ, मैं इन्हें जानता हूँ। महायुद्ध के बाद की बात थी कि..."

क़िस्सा

> सिर्फ़ ऊपर देखने के आदी लोगों को नीचेवाले भेड़-बकरियों के झुण्ड लगते हैं लेकिन यथार्थत:, नीचे अलग-अलग क़िस्म के लोग रहते हैं, और उनमें हरेक की अपनी बुद्धि, अपनी इच्छा होती है। उनमें से हरेक अपने आप में एक विश्व है।
>
> अन्द्रेय प्लतोनोव।

वसंत के आख़िरी दिन हैं। ज़मीन की नमी अभी दूर नहीं हुई। स्तेपी की हवा में न जाने क्यों ख़मीर की बू आती है।

सफ़ेद धूल से सनी निर्माण कारख़ाने की अर्द्ध तैयार इमारतें, ईंट पकानेवाली विशाल अँगीठी की कालिख उगलनेवाली गन्दी चिमनियाँ, वहाँ की दमघोंट हवा पीछे रह गयी। कँटीली घासोंवाली नयी ऊबड़-खा-

बड़ सड़क पर एक ख़स्ताहाल पुरानी मोटर चली जा रही थी। जब वह झटके खाकर उछलती, उसकी बॉडी से सीमेंट की धूल का बादल-सा निकलकर उतनी दूर तक की सड़क को सफ़ेद चादर का रूप दे देता। ट्रक पर कोई सात-आठ सजे-धजे नौजवान सवार थे। वे सब खड़े थे। उनमें अधिकांश के सिर पर कोई टोपी नहीं। वे स्तेपी की ताज़ा हवा लेते अपनी मस्तानी आंखों से दूर-दूर तक निहार रहे थे। अपने कोट के किनारों को हवा में पंखों की तरह परवाज़ होते देख उन्हें बड़ा मज़ा आ रहा था और वे चाहते थे कि ट्रक की गति अधिक से अधिक तेज़ हो। ड्राइवर-कैबिन को बार-बार खटखटाकर वे कह उठते: "ज़रा तेज़ी से चलाओ न, अपना घोड़ा, पाकाना पक*।"

आगे से उतरी रूसी टोपी पीछे मोड़कर पहने सईद ने उनके हाथ थाम लिये:

"अब बस भी करो! नाराज़ हो जायेगा, हमने इतनी मिन्नत करके तो उसे राज़ी किया है।"

कहते हैं, समय पड़ने पर गधे को भी बाप कहा जाता है। पाकाना पक नामक इस ड्राइवर को राज़ी करने के लिए भी नौजवानों को कुछ ऐसा ही करना पड़ा था। बड़े मान-मनौतल के बाद यह पारा दिमाग़ राज़ी हुआ था। मोटर अच्छी तो नहीं थी, मगर पैदल चलने से तो बेहतर ही थी। उन्हें अपने चरवाहे दोस्त की शादी में पचास-साठ किलोमीटर दूर उसके घर पर जाना था।

सईदजान के लिए सब से बड़ी ख़ुशी की बात यह थी कि अज़ीज़ा वहीं होगी। मालूम हुआ था, जिस लड़की की शादी हो रही थी, वह उसी की बड़ी बहन थी। शादी-दावत के बहाने मुलाक़ात हो जायेगी। उसका असली मक़सद तो यही था। यह सोचकर सईदजान मुस्कुरा उठा। जब मोटर भर साथी आएँगे, अज़ीज़ा दौड़कर बाहर आ निकलने से सकुचाकर एक कोने में खड़ी रह जायेगी। "हटो बच्चो! स्वयं सईदजान आया है, अपने साथियों के साथ!" साथियों में योलदाशवाय भी है।

---

* पक – कोरियाई नाम है। पाकाना – उज़्बेक भाषा में बौना। यहाँ घनिष्ठ मित्रों के पारस्पारिक संबोधन को कुछ हास्यजनक रूप दिया गया है।

वह कोमसोमोल के सदस्यों का प्रधान है। सईदजान के लिए यह भी बड़ी प्रतिष्ठा की बात है। इस समय सईदजान के कंधों को ज़ोर से पकड़े वह अपने ऊँचे क़दवाले शरीर को तेज़ हवा में मुश्किल से संभाले खड़ा है। योलदाश लम्बे क़द का लेकिन दुबला-पतला है। उसकी सूरत जिप्सियों से मिलती जुलती है, उसकी घनी भौंहें हैं, सुबह-सुबह उठकर रोज वह रगड़-रगड़कर दाढ़ी-मूँछ सफ़ाचट करता लेकिन दो घण्टे बाद वे फिर बढ़ जातीं। सईद ठीक उसके विपरीत था – उसका मोटा-थुलथुला होता बदन ट्रक की बॉडी से मानो चिपका-सा था, वह हिल-डुल भी नहीं रहा था। चेहरे पर एक भी बाल नहीं, हमेशा एक-सा चमकता रहता। तभी एकाएक उनकी नज़र एक अजीब दृश्य पर पड़ी।

रास्ते से कोई दो सौ मीटर की दूरी पर दो मोटरें खड़ी थीं: एक ट्रक, एक कार। ट्रक के पास तीन आदमी किसी चीज़ पर गरमागरम बहस कर रहे थे। वे एक-दूसरे को घूँसा भी दिखा रहे थे। ऐसा लग रहा था कि अगर उन्हें अलग नहीं किया गया तो मार-पीट कर लेंगे।

"देखें, किस में ज़्यादा दम है," सईद चिल्लाकर बोला।

मगर उन लोगों ने मुड़कर देखा तक नहीं। झगड़ा काफ़ी गंभीर लग रहा था। पक ने मोटर की रफ़्तार जब थोड़ी कम कर दी तो पहले योल-दाश व सईद, फिर बाक़ी लोग ट्रक से कूदकर उस ओर दौड़ पड़े।

झगड़ा करनेवाले अचानक आये इन सजे-धजे नौजवानों को देखकर अवाक रह गये।

"क्या बाप की जायदाद का झगड़ा है?" हाँफ़ते हुए सईद ने पूछा।

उन लोगों में उम्र में सब से बड़े आदमी ने अपने साथी का हाथ हटा-या जिसने उसका दामन कसकर पकड़ रखा था। सईदजान पर उसने ऐसी नज़र डाली मानो कह रहा हो कि बस तुम फ़ैशनवालों की ही कमी थी यहाँ। फिर वह कार की ओर चल पड़ा। उसके साथी ने गिड़गिड़ाती-सी निगाह योलदाश पर डाली। फिर शायद उसी को सबसे ज़्यादा सीधा-सादा समझकर फ़रियादी ढंग से कहने लगा:

"आख़िर इससे कुछ कहिये न, भाइयो, लौटकर जा रहा है, न जाने कहाँ का बुज़दिल भेज दिया..."

"वे क्या कहेंगे, गँवार कहीं के, देखना हो तो जाकर ख़ुद देख लें!" अधेड़ आदमी मोटर के पास रुककर बोला, "बुज़दिल भी कहता है!"

नौजवानों को तभी कुछ दूरी पर मिट्टी के ढेर के पीछे फुत्कार-सी सुनाई दी। दौड़कर वे वहीं जा पहुँचे। उन्होंने देखा कि गैस पाईप लाइन की दरार के कारण बड़ा धमाका हुआ है और ज़मीन में विशाल गढ़ा पैदा हो गया है। उस गढ़े के ऊपर भाप उठ रही है। सब नाक दबाये पीछे लौट पड़े।

"यह कैसे हुआ?" किसी ने पूछा।

जिस आदमी ने गिड़गिड़ाकर योलदाश को मोटरवाले आदमी को रोकने के लिए कहा था, उसी ने बात स्पष्ट की। वह पाइपलाइन की देखरेख करनेवाला था।

"पाइपों की मोटाई एक जैसी नहीं, इसी लिए यह होता है, भैया। जब मैंने फ़ोन पर दुर्घटना की सूचना दी तो इसी आदमी को भेज दिया गया।" गैसपाइपलाइन की देखरेख करनेवाले ने कहा।

"गैस का निकलना तो बन्द कर दिया गया?" सईद ने पूछा।

"ज़रूर। कम्प्रेसर से उसे खींचा भी गया।"

"अभी तो आ रही है।"

"सारी गैस खींची नहीं जा सकी। लम्बाई बहुत है। थोड़ी रह गयी।"

"इसी को आप थोड़ी कहते हैं?" पक ने मिट्टी के गढ़े के पीछे टिमटिमाती हवा को दिखाया।

"अच्छा, देख लिया?" मरम्मत के लिए आये अधेड़ उम्रवाले दुबले-पतले आदमी ने उनके नज़दीक आकर कहा। उसकी दाढ़ी बढ़ी थी, चेहरा झुर्रियों से भरा। "और यह अनपढ़ चाहता है कि मैं वहाँ जाकर जुड़ाई करूँ। मुझे कबाब बनाकर क्या करोगे, बड़ा दुबला हूँ। खा नहीं सकोगे।"

इस मज़ाक़ पर कोई हँसा नहीं। योलदाश ने सईद की ओर देखा। उसका अभिप्राय समझकर भी सईद ख़ामोश रहा।

"व्यर्थ का झगड़ा है, आइये, नहीं तो शादी की दावत में हम देर से पहुँचेंगे," पीछे से कोई बोला।

किसी ने उसे जवाब नहीं दिया। इतने लोग मूल्यवान गैस की नीली धारा को मिट्टी से निकलकर हवा में उड़ते देख रहे थे। वे क्या करें, कुछ सूझ नहीं रहा था। अनुभवी वेल्डर सईद भी बस सिर हिलाकर रह गया: वेल्डिंग का यंत्र तो क्या, दियासलाई लेकर भी वहाँ नहीं जाया जा सकता था।

"देखो, शादी के लिए कहीं देर न हो जाये, बच्चो!" चुचके चेहरेवाले अधेड़ ने कहा। "जब सारी गैस निकल जायेगी, हम ख़ुद आकर मरम्मत कर देंगे।" नौजवान कुछ कह नहीं सके, धीरे-धीरे लौट पड़े। पक ने मोटर भी स्टार्ट कर दी थी।

"कितनी देर में निकल जायेगी सारी गैस?"

"मुझे क्या मालूम," देखरेख करनेवाले ने कंधे उचकाये, "एक महीने में या दो महीने में..."

किसी ने हैरान होकर सीटी बजायी। योलदाश रुक गया। उसे अपने कारख़ाने के सौ-सौ मीटर लम्बे भट्ठे याद आये जहाँ सीमेंट बनाया जाता था। इन सब के लिए गैस की ज़रूरत थी।

"तब तक हमारा कारख़ाना..."

"तब तक सिर्फ़ आप का ही नहीं, चार-पाँच दूसरे कारख़ाने भी बेकार रहेंगे, अभियोग-पत्र लिखा जायेगा।

अभियोग-पत्र! योलदाश अनमना अपने साथियों के साथ चला।

इसी क्षण सईद भीड़ से निकलकर न जाने क्यों मरम्मत करनेवाले की मोटर का दरवाज़ा खोलकर अन्दर झाँकता रहा। मोटर के वृद्ध मालिक की समझ में कुछ भी नहीं आया। सईद कुछ देर सोचता रहा, फिर कुछ कहे बिना लौट आया। योलदाश के कंधों पर हाथ रखे वह मोटर की ओर चल पड़ा। लड़के मोटर पर चढ़ रहे थे। किसी ने सईद को हाथ बढ़ाया। वह आसानी से ट्रक पर चढ़ गया और योलदाश को भी अपना हाथ बढ़ा दिया। योलदाश और सईद कुछ देर तक एक-दूसरे को देखते रहे। तभी पाकाना पक बोल उठा:

"भाई, इतनी सुस्ती क्यों दिखा रहे हो? जाना है या नहीं?" और उसने ट्रक चला दिया। योलदाश चलती ट्रक पर चढ़ गया।

अब नौजवानों में पहले जैसी चहल-पहल नहीं थी। योलदाश ने कोने में पड़े गन्दे बोरे पर उकड़ूँ बैठकर सिर नीचे झुका लिया था।

सबके सब मातमी अन्दाज़ में ख़ामोश थे।

ट्रक तेज़ी से आगे बढ़ रही थी। बेहिसाब ख़ामोशी सईद सह नहीं सका। उसने केबिन की छत को दोनों हाथों से खटखटाना शुरू कर दिया। पक को लगा, कहीं कोई पहिये के नीचे कुचल तो नहीं गया। उसने इतनी तेज़ी से ब्रेक लिया कि सब सईद पर जा गिरे।

"लौटो, पक!" सईद चीख़ पड़ा।

इस आवाज़ का विरोध करना कठिन था, ट्रक लौट चली।

पाइप टूटनेवाली जगह पर पहुँचकर सईद और योलदाश दोनों छलाँग लगाकर मोटर से उतरकर अपने शानदार कपड़े उतारने लगे।

अधेड़ आदमी के साथ मोटर से वेल्डिंग मशीन व गैस के बैलून उतारने में व्यस्त सईद ने नौजवानों से चीख़कर कहा:

"उतारो अपने कपड़े, नौजवानो! कुदाल उस मोटर में हैं। ख़ेमेवाला टाट भी ले आओ।"

उधर अधेड़ उम्र का वेल्डर बड़बड़ाये जा रहा था।

"जवानी के कारण नासमझी की बातें कर रहे हो। मेरी बातें मानो। मैं १६ साल से यही काम कर रहा हूँ। आवाज़ सुन रहे हो? आग लग गई तो पाँच मीटर की दूरी से भस्म कर देगी..."

"आप का नाम क्या है?" सईद ने उसकी बात का कोई जवाब न देते हुए पूछा।

"ज़ाकिर..."

"ज़ाकिर अका, पंप किस की मोटर से मँगवायेंगे आप अपनी मोटर भेजिये, वह जल्दी ले आयेगी।"

ज़ाकिर अका कंधे उचकाकर अपने ड्राइवर की तलाश करने गये। इस बीच योलदाश के नेतृत्व में बाक़ी नौजवान कुदालों से पाइप की पुरानी खाई खोदने लगे थे।

योलदाश सईद के पास आकर खड़ा हो गया था। चिन्ता भरी आवाज़ से उसने ज़मीन की ओर देखते हुए कहा:

"क्यों सईद... क्या ख़याल है तुम्हारा?"

"कुछ कहा नहीं जा सकता!" सईद बोला।

उसने ठीक फ़ैसला किया था या ग़लत, ख़ुद उसे नहीं मालूम था। पर अब पीछे नहीं लौटा जा सकता था। सईद ने ख़ेमेवाले मोटे टाट को

नहर के पानी में भिगोया, देखा एसिटिलीन कितना है, फिर बर्नर की दोबारा जाँच की। जब तक पंप लाया गया, पाइप के पास चौड़ी-सी खाई बनाई जा चुकी थी: गैस की बू से नौजवानों का दम घुटते-घुटते बचा था। अब वे कुछ दूर पर अपना शरीर सफ़ेद कुरते से पोंछते, कुदालों का सहारा लिये खड़े थे।

योलदाश फिर सईद के पीछे आ पहुँचा:

"देखो, कम से कम घबराना मत।"

सईद चुप था, अपने काम में व्यस्त। वह वृद्ध का मज़दूरोंवाला तंग कपड़ा अपनी पूरी शक्ति लगाकर पहनने की कोशिश कर रहा था।

आधा घंटा बाद उसे भारी भीगे टाट में लपेटकर खाई के अन्दर उतारा गया।

"अरे नौजवानो, मैंने इसे इजाज़त नहीं दी है, मैंने मना किया है, सुन लो सब लोगो," अधेड़ आदमी ने चीख़कर कहा।

उसे एक नौजवान के साथ नहर के किनारे पंप की देखरेख के लिए खड़ा कर दिया गया ताकि वे कुछ दूर रहें। दमकल की नली हाथ में थामे योलदाश तैयार हो गया।

बेकार लोग एक ओर जाकर सांस रोके खड़े थे। इस बीच हवा में कई बालिश्त की ऊँचाई तक आग लग गई। खाई के ऊपर जहाँ सईद उतारा गया था, आग की नीली लपटें फूट पड़ी थीं। आस-पास की घास एक क्षण में भस्म हो गई, रेतीली मिट्टी बिलकुल काली पड़ गई मानो उसमें काला तेल डाल दिया गया हो। पास खड़े लोग न जाने क्या कहते हुए चिल्लाकर, मुँह-आँख बन्द किये पीछे हटे, पर उनकी आवाज़ें नहीं सुनाई दे रही थीं। दहकती आग, दमकल से बहते पानी और वेल्डिंग मशीन के फुफकारने की आवाज़ से कानों के परदे फट रहे थे। योलदाश ने दमकल की नली के साथ आग के कुछ नज़दीक जाना चाहा तो वृद्ध और नौजवान डर के मारे पीले पड़कर "बस" कहते हुए चिल्ला उठे। सब घबरा गये, अवाक रह गये। निकले थे शादी की दावत खाने और चेहरे पर कालिख पुत गयी थी। सब के मन में यही विचार था, "हमने क्या कर दिया? सईद कहाँ है?" और वे आग के गिर्द दौड़-धूप कर रहे थे।

पाइप से कोई आधा मीटर ऊपर तक आग की नीली लपटें उठ रही थीं। योलदाश को खाई में सिर्फ़ काला पड़ा टाट ही दिखाई दे रहा था। कुछ समझ में नहीं आ रहा था, सईद ज़िन्दा है या नहीं। हवा गर्म हो गयी थी, नज़दीक जाना असंभव था। कितना समय बीत गया, आख़िर? घड़ी भी नहीं देखी गई, बात पहले से पक्की नहीं हुई: कैसे ख़बर दी जाय, कैसे मदद दी जाय, कब... कोई योजना तक का निश्चय नहीं लिया गया था। बच्चों का सा काम हुआ, ज़ाकिर अका ठीक ही कह रहे थे। अगर सईद बेहोश पड़ा हो या जल गया हो, तब क्या होगा?

योलदाश घबरा गया, साधारण पंप से झरता पानी का कोई असर नहीं ही रहा था। इससे निकलते पानी को तो मानो आग लीले जा रही थी।

कितना समय बीत गया—एक मिनट या एक घंटा—कुछ मालूम नहीं, लेकिन तभी लपटों से भरी खाई की कगार पर एक काली-सी चीज़ हिली और मिट्टी धसक पड़ी। टाट में लिपटा सईद खाई से निकलकर लुढ़कता चला आ रहा था। सब उसकी ओर दौड़ पड़े। पानी की धार टाट पर चलाई गई जिससे भाप उठ रही थी। दो-तीन नौजवानों ने पानी की धार के बीच से सईद को हाथों में उठाकर आग से निकाल लिया। किसी ने कसकर पकड़ा होगा या चोट लगी। सईद ने टाट से सिर निकालकर ढाल उतार फेंका और पास के नौजवान के वक्ष पर धकेलकर कहा: कितना ठस हो, बैल कहीं के!"

पीछे गिरते-गिरते बचा "बैल" सईद की आवाज़ सुनकर ख़ुशी से मुस्कुरा उठा। सईद टाट पर चित लेट गया और आसमान को घूरने लगा। वह बेहोश होते होते बचा था उसका वक्ष लोहार की धौंकनी की तरह बड़ी तेज़ी से ऊपर नीचे चल रहा था। शरीर से पानी बह रहा था। साथियों को अब उसके हाथी की तरह मज़बूत होने का गुमान हो गया था। स्वच्छ हवा में वह जल्दी ही ठीक हो गया। लेटे ही लेटे उसने नज़रों से योलदाश को ढूँढ़ लिया।

"कैसे हो?" योलदाश ने उकड़ूँ बैठकर उस के कंधों को पकड़कर देखा।

"रस्से की ज़रूरत है," सईद ने धीरे से कहा।

सब चुप हो गये।

"रस्से की ज़रूरत है," सईद ने फिर से कहा। कुछ लोगों ने किसी संदेह से एक दूसरे पर नज़र डाली लेकिन योलदाश उसकी तरकीब समझ गया था।

"सईद . . . "

"डेढ़-दो मिनिट ही बरदाश्त किया जा सकता है। आग ऊपर है।"

"सईद . . . . तुम जल्दबाज़ी न करो, कुछ सोच लें। यह गंभीर बात है।"

"तुम बर्नर पर पानी की धार न डाला करो, सिर पर चलाओ, सिर पर। हवा की कमी है।"

"सुनो . . . "

सईद उठ खड़ा हुआ। रस्सा तैयार था, उसने कमर से रस्सा बांध लिया। टाट को नहर में भिगोकर ऊपर से लपेट लिया।

"सिर फिर गया है लड़के का . . , पागल हो गया है," कहकर अधेड़ आदमी दूसरी ओर देखने लगा।

"रस्सा हिलते ही खींच लेना!" सईद ने चिल्लाकर कहा। अब उसकी आवाज़ काफ़ी मज़बूत थी। "यदि दो मिनट से अधिक हो और मैं रस्सा न हिलाऊँ तो भी खींच लेना।"

भारी भीगे टाट को लपेटे वह भालू की तरह चलते हुए आग में गया और उसी क्षण खाई में लुढ़क गया। सब अपने-अपने स्थान पर दौड़ पड़े। फिर आग की लपटें, गैस की सिर चकरानेवाली बू, चेहरे को जलानेवाली गर्म हवा . . . रस्से को पकड़े लोग घड़ी से आँखें उठाये बिना, ज़मीन पर रेंगते हुए आग के कुछ नज़दीक चले आये।

दो मिनट भी नहीं हुए थे कि रस्सा हिल गया। हड़बड़ाकर उसे खींचा जाने लगा। कीचड़-पानी से सना टाट दिखाई दिया।

इस बार सईद की हालत अधिक गंभीर थी। उसपर बालटी भर-भरकर पानी डाला गया पर वह काफ़ी समय तक होश में नहीं आ सका। कोई ५-६ मिनट बाद ही उसने आँखें खोलीं, जी भर सांस ली और आस-पास के लोगों की ओर मुस्कुराकर देखते हुए आँख मारी:

"आप कुछ न सोचिये . . . दिमाग़ काम कर रहा है। केवल दिल ही

बरदाश्त नहीं कर रहा है," उसने फिर उठकर कहा। उसका चेहरा अब सुबह जैसा दमकता नहीं था। रंग कुछ उतर गया था।

दस मिनट बाद वह फिर उतरा। कुछ देर बाद खाई के ऊपर आग कम होने लगी थी। अब तरकीब स्पष्ट थी, हरेक अपना काम जानता था, नतीजा भी दिखाई देने लगा था। सब सजीव हो उठे। मगर इस बार सईद को बिलकुल बेहोश निकाला गया। वह कराह रहा था। पर होश में आते ही उसने आग और खाई पर नज़र डाली...

इस प्रकार उसे सात बार उतारा और खींचा गया। अंतिम बार जब वह उतरा तो आधे मिनट के अन्दर ही अन्दर आग बुझ गयी। सब खाई की ओर दौड़ पड़े, मगर पाइप के पास अब नहीं जाया जा सकता था; ..इस्तेमालशुदा चीज़ों से अब भी धुआँ आ रहा था। नीचे पानी में गन्दे टाट से लिपटे, सिकुड़कर पड़े सईद को फिर रस्से से खींचकर निकाला गया। अब की बार उसने शायद ढाल के बिना काम किया था क्योंकि ढाल कुछ दूरी पर पाइप के नीचे पड़ा था। भौं-बारौनियाँ जल गयी थीं। आंखें बच गयी हों तो ग़नीमत!

साफ़ हवा में लाकर लेटाते ही सईद के फेफड़े फिर धौंकनी की तरह काम करने लगे। उसके साथी उसे बहादुरों की तरह हाँफ़ते हुए बेहोश पड़े देखते रह गये। मरम्मत करने के लिए आया आदमी और पाइप लाइन की देखरेख करनेवाला, दोनों कभी पाइप के इस तरफ़ तो कभी उस तरफ़ जा रहे थे। उन्हें अपनी आंखों पर विश्वास ही नहीं हो रहा था।

"वाह, जीते रहो, तुमने बड़ी अच्छी तरह मरम्मत कर दी है, बहादुर! अधेड़ आदमी ने जाँघों पर हाथ मारते हुए कहा। फिर वह खाई के पास कीचड़ में बैठ गया। गैसपाइपलाइन की देखरेख करनेवाला कुछ बातूनी-सा आदमी तो, अब अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए शब्द ही नहीं ढूँढ़ पा रहा था। नौजवान भी मौन थे मानो कह रहे हों, अब बकवास की कोई ज़रूरत नहीं। जब सईद को सोते देखा तो मिट्टी के ढेर पर बैठकर वे सिगरेट पीने लगे। हवा के झोंकों से अब तक सारी बदबू दूर हो चुकी थी। दोपहर कब का बीत चुका था। हर कहीं सन्नाटा ही सन्नाटा छाया हुआ था। गर्मियों की ख़बर लाते कहीं दूर से भाँरद्वाज की आवाज़ आ रही है। और सईद हाथ फैलाके चित पड़ा है, बिलकुल धरती के पुत्र जैसा...

इसी प्रकार एक घंटे बाद जब वह सोकर उठा तो काफ़ी तरोताज़ा हो चुका था। सब प्रसन्न चित्त उससे हाल पूछने लगे। ज़ाकिर-अका भी आ-कर उसके हाथ दबाने लगे और उसका हाथ उन्होंने अपनी आंखों से चिप-का लिया। (उज़्बेकों में किसी के प्रति सम्मान का प्रदर्शन करते हुए ऐसा करते हैं)।

"सुनिये," सईद अपने प्रति अत्यधिक सम्मान-प्रदर्शन से सकुचाकर बोला, "आप खाई अभी बन्द न कीजियेगा। अभी जुड़ाई की जांच करनी है और इस्तेमालशुदा चीज़ें भी जल गयीं।"

"बहुत ख़ूब, बहुत ख़ूब, जैसा तुम ने कहा है, सब कुछ हम वैसे ही करेंगे..." अधेड़ व्यक्ति ने हाथ छाती पर रखकर कहा।

पाइपलाइन के निरीक्षक और अधेड़ आदमी, दोनों की निगाहें सईद पर टिकी थीं। नौजवान अपने नये सूट हाथों में लेकर मोटर पर चढ़ गये। पाकाना पक ट्रक स्टार्ट कर चुका था।

"ऐ, भाई, कम से कम अपना अता-पता तो बता जाओ," ज़ाकिर अका ने चिल्लाकर पूछा लेकिन उनकी आवाज़ ट्रक से उड़ती धूल और नौजवानों की ख़ुशी भरी चीख़ में खोकर रह गयी।

क्षितिज पर डूबते सूरज की लालिमा फैल गयी थी और नौजवानों ने गीत छेड़ दिया था:

अरे, गा दे तू कोई भी गाना,
होय, होय, होय ऽऽऽ
हम तो हैं तेरे दीवाना
होय, होय, होय ऽऽऽ

मानो रात से हड़बड़ाती ट्रक तेज़ गति से आगे बढ़ी जा रही थी। नौजवान एक-दूसरे के कंधों पर हाथ रखे झूम रहे थे। सईद व योलदाश सबसे आगे खड़े थे, मैले कुर्तों के ऊपर उन्हों ने अपने सूट डाल लिये थे। वे बराबर गाये जा रहे थे:

तेरा ख़याल आते ही
दिल में उठती है टीस

बिन चूमे तुझे प्रिया,
कैसे मिटे यह टीस
होय, होय, होय ऽऽऽ

इस तरह गाते झूमते जब वे बस्ती में पहुँचे, वहाँ के निवासियों ने उन्हें देखकर सोचा: "शादी-दावत से बिलकुल शराबी होकर-ही लौटे हैं।" किसी ने रास्ते में पेश आयी घटना के बारे में कुछ भी नहीं बताया।

रास्ते में मिले हर किसी से हँस-बोलकर बातें करते वे अपने-अपने घरों को रवाना हो गये। सईद और योलदाश भी अपने होस्टल की ओर चल पड़े। कारख़ाने से उठते शोर के कारण यहाँ हमेशा चिल्लाकर बोलना ज़रूरी था। सईद ने उछलकर नाली के पास उगे सेल के पेड़ की एक शाख़ा तोड़ दाँतों के बीच में दबा लिया। कली का खट्टारस मुँह को अच्छा लगा।

"शादी-दावत बुरी नहीं रही, क्यों?" योलदाश ने चिल्लाकर कहा।

सईद अपने जीवन में आये एक महत्वपूर्ण क्षण को महसूस कर रहा था, कल से सब कहीं बस उसी की चर्चा होगी।

"चूमने दो, होय, होय चूमने दो..." जवाब देने की जगह वह गाने लगा। फिर दोस्त के कान में धीमे से बोला: "विश्वास है? अभी तक मैंने अज़ीज़ा को चूमा नहीं है।"

"नहीं तो..," यह बात योलदाश को भी दिलचस्प लगी। अभी तक उसकी कोई प्रेमिका नहीं थी।

"मुझे विश्वास नहीं," योलदाश सच्चे दिल से बोला।

"सच कहता हूँ। पता नहीं वह शादी से लौटी या नहीं?"

सईद की आँखें चमक रही थीं, वह ख़ुश था। उसी क्षण कुछ उदासी योलदाश का दिल चुभो गयी। अब सईद की अवश्य अज़ीज़ा से मुलाक़ात होगी। वह अपनी बड़ाई, ख़ुशी ज़ाहिर करेगा। अगर आज नहीं तो कल अज़ीज़ा ख़ुद ही अख़बार उठाये दौड़ी चली आयेगी। सईद उसे बाँहों में भर लेगा, अगर पहले नहीं चूमा, तो अब...

अपने कमरे में जाते समय योलदाश का सिर झुका था। अब वह अपने ख़यालों को नहीं संभाल पा रहा था, पता नहीं किसके बारे में क्या सोचे।

कारख़ाने से उठता शोर चारों ओर फला था। उसकी बत्तियाँ कहीं धीमी, कहीं आँखों को चौंधियानेवाली थीं। स्तेपी का यह एकमात्र कारख़ाना था, किसी एकाकी चट्टान की तरह खड़ा।

भविष्य में यहाँ एक बड़ा शहर बसनेवाला था। आस-पास दर्जनों सरकारी फ़ार्मों की बस्तियाँ उठ खड़ी होनेवाली थीं। इसी बात को ध्यान में रखते हुए यहाँ निर्माण कारख़ाना बनाया गया था क्योंकि बहुत अधिक सीमेंट, ईंट, ऐस्बेटस, बड़े-बड़े ब्लाकों, पाइपों, लौह कंकरीट के ढाँचों, मकानों के लिए पुनस्संघनित कंक्रीट ब्लाकों की ज़रूरत पड़नेवाली थी। नये-नये खाते शुरू किये जा रहे थे। एक ओर आँखों को चौंधियाती वेल्डिंग की लपटें उठती रहतीं तो दूसरी ओर अधूरी खाइयाँ थीं। योलदाश ने अपना काम लौह कंकरीट के ढाँचों को गोदाम तक पहुँचानेवाले क्रेन चालक के सहायक के रूप में शुरू किया था। अब वह ब्लाकों को भट्ठे में पहुँचानेवाले डिब्बे खींचनेवाली ट्रॉली के चालकों की टोली का प्रधान है। ऐसबेस्टस की पाइपें बनाने की लाइन पर काम करनेवाली अज़ीज़ा से यहीं उसका परिचय हुआ था। यह लड़की पहले योलदाश को कुछ अजीब-सी, कुछ बेशर्म-सी लगी थी : सबको सलाह मशविरा देती फिरती। ज़रूरत हो या न हो—सबके काम में वह दख़लन्दाज़ी करती रहती। योलदाश की दिलचस्पी उसमें तभी पैदा हुई जब वह सईद के साथ घूमने फिरने लगी। जब योलदाश ने उसके व्यवहार पर ग़ौर किया तो उसे वह अच्छी, साफ़, खरी व समझदार लड़की लगी। मगर तब देर हो चुकी थी। अब वह मन ही मन इस बात से व्यथित था। आज की घटना के बाद तो अज़ीज़ा को पाने की रंचमात्र आशा भी जाती रही थी।

कारख़ाने की बस्ती में, अतलस की पोशाक अज़ीज़ा जैसी इक्की-दुक्की लड़कियाँ ही पहनती थीं। जब वह बिना दीवार के आंगनों से होकर गुजरतीं तो उसकी झिलमिलाती पोशाक की आकृति देख कुत्ते भोंक देते।

होस्टल में पहुँचकर अज़ीज़ा सईद के कमरे के दरवाज़े के पास रुक गयी। उसने अपने बॉब घुँघराले बाल ठीक कर लिये। उसके चेहरे पर अभी तक उस थोड़ी सी शराब की लाली चमक रही थी जो उसने शादी की दावत में पी थी। दरवाज़ा खुलते ही सईद ने लड़की को देख लिया

ग्रौर उसकी ग्रांखें चमक उठीं। उसने झपटकर उसे ग्रन्दर खींच लिया। वह ग्रज़ीज़ा की राह देखते ही बैठा था। स्नान करने के बाद उसने सफ़ेद कुरता पहन लिया था, कॉलर खुला छोड़ दिया था। उसका दिल उसी के लिए ग्रधीर था, छटपटा रहा था, सारा शरीर ग्रन्दर की किसी गर्मी से दहक रहा था। जब ग्रज़ीज़ा ग्रन्दर ग्रायी तो सईद ने उसकी ग्रोर विलक्षण ढंग से देखा।

"शादी कैसी रही?" सईद ने पूछा।

"हाँ, ग्रच्छी ही रही," ग्रौर फिर सिर हिलाते हुए बोली: "सईद, मैंने सब कुछ सुना।" यह कहकर उसने सईद की हृष्ट-पुष्ट बाँह थाम ली।

व्यग्र सईद ने ग्रचानक लड़की को खींच, बाँहों में भर, उसके मुखड़े पर चुम्बन जड़ दिया। बेबस ग्रज़ीज़ा कुछ लड़खड़ाई। लेकिन जल्दी ही उसने खुद को संभाल लिया ग्रौर ग्राँख उठाए बिना नौजवान की कमीज़ के मुड़े कॉलर को ठीक कर दिया।

"ग्रपने को क़ाबू में तो रखिये, जनाब!" उसने कहा।

फिर काफ़ी देर की चुप्पी के बाद, "कल क्लब में मिलेंगे," कहकर वह झट से बाहर निकल गयी।

सईद ग्रदाक् जहाँ का तहाँ खड़ा रह गया। ग्रोफ़, होंठों में ग्राग सुलगाकर चलती बनी। ग्रगले दिन सब कहीं बस गैस पाइप लाइन की घटना की ही चर्चा थी। सड़क पर, वर्कशॉप में, दफ्तर में, घर पर, जहाँ दो व्यक्ति मिले, वहीं यही बात। तीसरे दिन ग्रख़बार में इसकी ख़बर छप गयी।

सलीम नामक एक नौजवान समाचार-पत्र का एक बड़ा गट्ठर ही ख़रीद लाया।

"वाह, हमारे बारे में ग्रख़बार ग्राया है! यह लीजिये: "ग्रात्मत्यागी नौजवान," कहकर चिल्लाते हुए वह ग्रवकाश में नाश्ता करते समय वर्कशॉप में प्रविष्ट हुग्रा। यह वर्कशॉप ग्रभी ग्रधूरा था। सवेरे नौजवान यहीं एकत्र होकर ईंटों पर, खिड़की पर बैठकर खाना खाते थे।

"यह हैं: "ग्रात्मत्यागी नौजवान!" देखा? उन्हीं में से एक ग्राप के भाई हैं। बारी-बारी से लो, जल्दी मत करो, फाड़ दोगे! इनमें से एक ग्राप का भाई है, हाँ! मैं तब पंप की कुंडी दबाते खड़ा था!"

सलीम के लाये अख़बार एकदम हाथों-हाथ बंट गये। सब अपना-अपना नाश्ता छोड़ समाचार-पत्र पढ़ने में लग गये। गहरा सन्नाटा छा गया, अख़बार की सरसराहट तक नहीं हुई। सब लोग फिर अपने खाने में लग गये मानो कुछ भी नहीं हुआ हो। ख़बर छोटी-सी थी, इण्टरव्यू के रूप में दी गयी थी।

"बेकार का शोर!"

"इतनी सी बात है।"

"पंप की कुंडी दबानेवाला।"

"ऐसे लोग ही बड़ी अफ़वाहें फैलाते हैं..."

फिर सब अपनी अपनी बातों में लग गये। अख़बार की ख़बर किसी को याद भी नहीं रही।

केवल दुबला-पतला योलदाश ही लकड़ी पर बैठा अभी तक अख़बार को घूर रहा था। वह पढ़ नहीं रहा था पर आंख भी नहीं उठा पा रहा था। उसका चेहरा थोड़ा ज़र्द पड़ गया था, वह दोस्तों की बातों की ओर भी कान लगाये था। चारों ओर नज़र डालकर वह फिर समाचार-पत्र को देखने लगता। इण्टरव्यू फ़रमानोव ने दिया था। उसमें अनुभवी, सरगर्म नौजवानों की चर्चा थी। कारख़ाने का समुदाय... नौजवानों का एक गिरोह... छुट्टी के दिन... योलदाश ने बार-बार पढ़ा, सईद का नाम ढूँढ़ा। नहीं, उसका नाम कहीं भी न था। यह कैसे हुआ? चारों ओर देखकर योलदाश ने सईद की तलाश की, मगर उसे देखने से वह कुछ हिचकता भी था। मानो इसके लिए वह ख़ुद दोषी हो... उस दिन की आग, टाट से निकले बेहोश सईद का पिचका हुआ चेहरा, जली हुई भौंहें उसकी आँखों के सामने आ गईं। अब वह वस्तुतः सईद के सामने अपने को दोषी समझने लगा, उससे मिले, तो क्या कहेगा, उससे आँखें कैसे मिलायेगा? आख़िर यह तो अन्याय है! अपनी जान ख़तरे में डालकर...

इतने में ढाल माथे पर चढ़ाये, एक ओर इलेक्ट्रोड का डिब्बा और दूसरी ओर में अख़बार दबाये सईद आ पहुँचा।

"पढ़ा?" उसने योलदाश को देखकर पूछा।

उसकी शांत भाव मुद्रा देखकर योलदाश कुछ आपे में आया। बड़ा

नेक नौजवान है। अगर दूसरा आदमी होता... तभी लकड़ी से पीठ टिकाकर बैठे सईद ने सिगरेट पीना शुरू कर दी।

"तुम तो शायद सिगरेट नहीं पीते थे?"

"यूँ ही, कभी-कभी जब काम नहीं होता है।"

"क्या कोई काम नहीं?"

"इलेकट्रोड नहीं है, गोदाम में नम पड़ गये।"

"नासमझ लोग," योलदाश काफ़ी देर बाद बोला।

"अख़बार के बारे में कह रहा हूँ," वह बोला।

"अरे, छोड़ो..."

"नहीं, छोड़ूँगा नहीं। फ़रमानोव से जाकर मिलूँगा। जिस चीज़ के बारे में कुछ नहीं जानता, उसमें हस्तक्षेप न करे।"

"क्या पागल हो गये हो?" सईद कपड़े से धूल झाड़ता उठ खड़ा हुआ। "मैं अपने लोगों के पास जा रहा हूँ, अपनी समष्टि के पास!" उसने खिड़की से कूदते हुए कहा।

लेकिन योलदाश समझ गया, उसके अभिनय में कुछ नाराज़गी ज़रूर है! वह जबरन अपने को प्रसन्न दिखाने की कोशिशें कर रहा था। पर यह स्वभाविक भी था। उसे चोट पहुँची थी। सईद क्या, ख़ुद योलदाश भी कुछ उदासीन हो गया था मानो उसके अन्दर कुछ टूट-सा गया हो, मन का प्रकाश बुझ गया हो। अन्याय का उसपर सदा ऐसा ही प्रभाव पड़ता था।

फ़रमानोव उसे अपने कमरे में मिला।

"अहा, कोमसोमोल!" कहकर उसने ख़ुशी से उसका स्वागत किया।

वह योलदाश का नाम नहीं जानता था या भूल जाता था इसलिए सदा "कोमसोमोल" कहकर ही बुलाता था। योलदाश भी नाराज़ नहीं होता था, "कोमसोमोल" बनने में क्या बुराई थी। मगर अब मज़ाक का वक्त नहीं, योलदाश एक गंभीर मामले पर बातचीत करने आया था।

"मेरा नाम योलदाश है," उसने गंभीरता से कहा। फिर एक कुर्सी पर बैठकर बोलना शुरू कर दिया। मोटर में अचानक तम्बूवाले टाट के मिलने के बारे में, झुर्रियों से भरे चेहरेवाले ज़ाकिर अका के बारे में, सईद के गैस की खाई में जाने के बारे में और ७ बार उसे बेहोश खींच निकाले जाने के बारे में, उसे देखने पर सबके उसे मृत समझकर घबरा

जाने, आदि, आदि के बारे में उसने कुछ अधिक विस्तार से बताना चाहा, शायद इस लिए कि घटना के बारे में पहली बार बता रहा था। फ़ारमानोव उसकी बातें सुनते-सुनते कभी मेज़ की नोट बुकों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखता, कभी मेज़ पर के शीशे को काग़ज़ से पोंछने लगता।

"सब कुछ सुन चुका हूँ, आश्चर्यचकित हूँ, कोमसोमोल! सुन चुका हूँ, मुझे बताया गया था," कहकर फ़रमानोव अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ। अपनी चौड़ी पेटी में हाथ डालकर वह चहलक़दमी करने लगा। हालाँकि उसकी उम्र ५० से ऊपर थी फिर भी वह जवान लग रहा था। अपने बाल हमेशा सफ़ाचट रखता, बड़े-बड़े ऐनक पहनता। वह एक कर्मनिष्ठ व्यक्ति था और उसकी बातें भी गंभीर होती थीं। "यह मज़दूर वर्ग के सच्चे गुण हैं। यह एक अदभुत समष्टि है। सच कहें तो एक बड़ी समष्टि का छोटा हिस्सा!" उसने गर्व के साथ कहा।

"यह बातें हम इण्टरव्यू में पढ़ चुके हैं।"

"अच्छा, तो किसी बात से नाराज़ हैं क्या?"

"आख़िर यह तो एक प्रकार की वीरता है, साथी फ़रमानोव!"

"हाँ, हाँ, ज़रूर! तो?"

"इसे अलग-अलग दृढ़ चरित्रवाले लोगों ने किया। उनमें से एक सईद है... उनमें प्रमुख सईद था—यही कहना अधिक ठीक होगा। हमारे बीच वही अकेला वेल्डर था। अगर वह नहीं होता या सईद की जगह कोई और होता तो शायद..."

"आप कहना क्या चाहते हैं।"

"अख़बार में सईद के बारे में लिखना ज़रूरी था। आपकी ख़बर में एक भी नाम नहीं है। यह..."

"अच्छा, तो यह बात है? तो क्या आप के विचार से कुछ लोगों को समष्टि के ऊपर रखना था?" फ़रमानोव ने मेज़ पर झुककर, सिर तिरछा करके मुस्कुराते हुए सईद की ओर देखा।

"यह तो अन्याय है। उसी ने सारा काम किया है, अपनी जान खतरे में डालकर..."

"और बाक़ी लोग, आप, मोटर के दूसरे नौजवान? यदि आप का वह वीर अकेला होता तब वह क्या कर पाता?"

"कम से कम उसका नाम तो लेना था..."

"देखिये, आपने उसका क्या नाम कहा? आप को कहीं ख़ुद उसी ने तो नहीं भेजा मेरे पास? क्या यह नहीं हो सकता कि अख़बार के ज़रिये प्रसिद्धि पाने के लिए वह आग में कूदा हो?"

योलदाश इतनी तेज़ी से उठ खड़ा हुआ कि कुर्सी ज़ोर से आवाज़ करती पीछे सरक गयी।

"क्यों तिरस्कार करते हैं, साथी फ़रमानोव!" उसने बौखलाकर कहा।

फ़रमानोव ने मेज़ के पीछे से निकलकर धीमे से योलदाश की बाँह थाम ली:

"मैं अपने-आप को पेश करनेवाले लोगों को पसन्द नहीं करता हूँ। ऐसे लोगों का दौर बीत चुका है। अब हम किसी को भी समष्टि से ऊपर नहीं जाने देंगे, भई!" उसकी बाँह पकड़े फ़रमानोव उसे द्वार की ओर ले गया। "यही बात है, कोमसोमोल! अकेली वीरता हमारे लिए विजातीय, परायी बात है। हमारे यहाँ अलग-अलग चुने हुए लोग नहीं हैं, समष्टि है, जन समुदाय है..."

द्वार खुलते ही योलदाश रुक गया। पासवाले सोफ़े पर दोनों हाथों से सिर थामे सईद बैठा था।

"सईद?" योलदाश ने हैरान होकर कहा। कहीं इसने सारी बातें सुन तो नहीं लीं?

सईद उठ खड़ा हुआ। उसकी आँखें अजीब थीं, चेहरे पर न जाने कैसे संदेहों के साथ बढ़ती दृढ़ता के भाव की झलक भी थी।

"अच्छा, नौजवान तो वह... आप ही थे," फ़रमानोव ने ध्यान से सईद को देखा। फिर बांसे से ऐनक लेकर पोंछते हुए बोला: "अच्छा तो सोचे-समझे बिना आग में कूदनेवाले आप ही हैं।"

सईद को उसने बस यही कहा। प्रशंसा में या निन्दा में–कुछ समझ में नहीं आया।

योलदाश के विचार से सईद का बदलना भी, उसका बिगड़ना भी इसी दिन से शुरू हुआ। अभी तक यह बात उसकी समझ में नहीं आ रही थी। आदमी इतना कैसे बदल सकता है। सईद का चलना-फिरना। उसके विचार, उसकी बातें बदल गयीं, वह ख़ुद भी कुछ अजीब हो गया,

उसे समझना मुश्किल था। एकदम ज़िद्दी। न दोस्ती मानता, न सद्व्यवहार। योलदाश को मालूम नहीं था। वह इतना कमज़ोर, चिड़चिड़ा है। सबके लिए चिंता का कारण बन गया। विशेषकर बेचारी अज़ीज़ा के लिए।

एक स्पताह बाद योलदाश ने सुना, सईद कारखाना छोड़कर जानेवाला है। इसके लिए प्रार्थना पत्र दे चुका है। योलदाश के लिए यह अप्रत्याशित था। उसे इसका ख़याल भी न था कि बात इस हद तक पहुँचेगी। ऐसे तो कोई भी जा सकता था: सईद भी, कोई और भी। मगर सईद का प्रार्थना पत्र उसी घटना से सम्बद्ध था। योलदाश ग़ुस्से में आ गया। उसकी इस हरकत से तो उसके साथियों और कोमसोमोल पर भी धब्बा लग सकता था।

फ़रमानोव की बात ही सच साबित होगी। समाचार-पत्र के ज़रिये प्रसिद्धि पाने के लिए आग में कूदा था। लेकिन उसे पक्का विश्वास था, सईद ऐसा नहीं। उसे तुरंत ढूँढ़ना चाहिए। शायद घर पर ही होगा। पिछले कुछ दिनों से उसने क्लब वग़ैरह में जाना बन्द कर दिया था।

योलदाश जब उसके यहाँ पहुँचा, तो देखा, जनाब वेल्डर अधनंगे पलंग पर सिगरेट का धुआँ उड़ाते लेटे थे। बत्ती भी नहीं जलाई थी। अंधेरा कमरा धुआँ से भरपूर। योलदाश ने दोस्त को सलाम कहकर बत्ती जला दी। खिड़की भी खोल दी। सईद ने धीरे से उठकर पतलून पहन, कमीज़ कंधों पर डाल ली। उसका एक कमरे का फ्लैट काफ़ी आकर्षक था, फ़र्श पर रंगीन, सुन्दर-सा कालीन, आस-पास की किसी दुकान में न मिलनेवाला एक ख़ूबसूरत पलंग के पास रखा जानेवाला लैम्प, यहाँ तक कि आलमारी में एक टी सेट भी मौजूद था।

सईद ने मेज़ पर पड़ी कुछ बेकार-सी किताबों को परे हटाकर जाम और गिलास रख लिये।

"न जाने कब से एक बोतल पड़ी है," उसने कहा।

योलदाश कुर्सी खींचकर मेज़ के पास बैठ गया।

"मैं इसके लिए नहीं आया... सुनो, क्या यह सच है कि तुमने प्रार्थना-पत्र दिया है?"

"दिया, तो क्या हुआ?" सईद ने पूछे बिना जाम भर दिये। "एक जाता है, दूसरा आता है—हरेक की अपनी मर्ज़ी। कहावत नहीं सुनी

है, देगची में हत्था, बनानेवाला अपनी मर्ज़ी से लगाता है। किसी और जगह पर काम करके देखें। या यह कोई अपमानजनक बात है?"

योलदाश जाम टकराये बिना शराब पानी की तरह गटक गया।

"अपने को भोला दिखाने की कोशिश करते हो, सईद। इसकी क्या ज़रूरत है?" आस्तीन से होंठ पोंछकर वह बोला। "तुम उन लोगों में से नहीं जो अपने दोस्तों को, समष्टि को आसानी से छोड़ सकते हैं। होश में आओ। अपना प्रार्थना-पत्र वापिस ले लो। लोग क्या कहेंगे?"

सईद शराब पीये बिना सिगरेट लेकर फिर पलंग पर लेट गया। अभी कुछ देर पहले वह ख़ुद यही सोचते पड़ा था।

"अगर तुम इसे नाराज़गी समझते हो तो तुम भी दूसरों जैसे ही हो। वापस नहीं लूँगा, बहुत सोच चुका हूँ," उसने कुछ देर बाद कहा।

"कहाँ जाओगे?"

"जहाँ चाहूँ। शहर जाऊँगा," वह अचानक उठ खड़ा हुआ। बौखलाहट में सिगरेट राखदानी में मसलते-मसलते उसने अँगुली जला ली। "मैं पैसे के लालच में नहीं जा रहा हूँ, तुम ऐसा कभी मत सोचना..."

"यह मैं जानता हूँ।"

"मैं अपने आदर, आत्मसम्मान का रोना रो रहा हूँ। मैं ज़िन्दा हूँ या नहीं? अब तुमने भी फ़रमानोव की भांति हर बात में "समष्टि" "आम लोग" कहना शुरू कर दिया। आख़िर यदि समष्टि मुझ जैसे लोगों से होगी, तो इस में बुराई क्या है? तुम यह क्यों नहीं मानते?"

चलो, अब बात साफ़ हो गयी, योलदाश मन ही मन सोच रहा था। सईद यहाँ से क्यों जाना चाहता है, इस बारे में उसका अनुमान ठीक ही था लेकिन न जाने क्यों वह इसे स्वीकार करने से हिचकिचाता था।

"क्यों नहीं मानते?"

"तो आप इसी तरह मानते हैं?" सईद ने अँगुली उठाई: "ज़रा सोचो, यहाँ तेरा-मेरा नाम तक नहीं है: 'हे लड़का!' 'हे कोमसोमोल!'"

यह तो बस एक ही आदमी की आदत है। तुम उसे... समष्टि,

समुदाय पर न थोपो," योलदाश बोला, "और फिर तुम इस शब्द का मीनमेख मत निकालो। मैं इसमें सहमत नहीं हूँ। समूह, समष्टि! यह बड़े मूल्यवान शब्द हैं। मैं फ़रमानोव की तरह उसका व्यर्थ उपयोग नहीं कर रहा हूँ। समष्टि! यह आदमी को सम्मान प्रदान करता है। तुम ख़ुद को एक अनाथ-सा दिखाने की कोशिश मत करो, इस तरह हमारा दिल नहीं पसीजावा पाओगे। तुम्हें भली-भाँति मालूम है, हमारे यहाँ अग्रणी लोगों का योग्य आदर किया जाता है।"

"हाँ, पिछले साल हम-तुम छः महीने तक सम्मान-पट्ट पर लटके रहे थे," सईद ने कहा। "दरवाज़े के पास साठ अग्रणी लोगों की बड़ी-बड़ी तस्वीरें लगायी गयी थीं। बहुत दिनों तक हम लटके रहे... धीरे-धीरे पीले पड़ गये। बारिश में मुरझा गये, हवा के झोंकों से फट-चीट गये। तेरी तस्वीर मेरी तस्वीर पर लटककर चिपक गयी। क्या तुम सोचते हो, मैंने एहसास नहीं किया: गुज़रते समय तुम सदा कनखियों से तस्वीर को देख लेते थे। फिर तेरी तस्वीर आधी फटकर गिर पड़ी, मैंने उसे कीचड़ में पड़े देखा था, किसी ने ध्यान न देकर उसपर पैर भी रख दिये। खिज़ाँ की हवा मुझे भी उड़ा ले गयी..."

"तो यही बात है?"

"यही नहीं। बस यूँ ही याद आ गया।"

"नहीं, तो और क्या कहना चाहते हो? क्या तुम अपने लिए विशेष सम्मान चाहते हो? आदमी को कुछ विनम्र होना चाहिए। समष्टि में सब बराबर हैं।"

सईद हँस पड़ा।

"कहते हो, सिर्फ़ फ़रमानोव ऐसे कहता है। ख़ुद तुम उस्ताद से भी एक क़दम आगे बढ़ चुके हो..." योलदाश ने ख़ुद भी ऐसा ही महसूस किया था लेकिन बात ज़बान से निकल चुकी थी।

सईद ने हँसकर जब उस की ओर देखा तो वह आँखें चुराने लगा। सईद ने अपनी बात जारी रखी:

"कहते हो, समष्टि में सब बराबर हैं, पर क्यों, ज़रा बताओ, न? क्यों सबको बराबर होना है? क्या ऐसा कोई क़ानून है? उल्टे ही हमारा सिद्धान्त तो यह है कि हरेक को उसके काम, उसकी योग्यता के अनुसार मुआवज़ा मिले। यही है न?"

योलदाश चुप रहा। वह पलंग पर हाथ-पाँव फैलाकर लेटे सईद की ओर से मुँह फेरकर बैठा रहा। मानो दोनों अपने आप से ही बोल रहे हों। मेज़ पर एक ख़ाली, एक लबालब जाम ज्यों के त्यों पड़े रहे।

"किसी का नाम ज़बान पर कुछ अधिक लिया जाने लगा तो अब के इक्के-दुक्के "जनवादी" उसे "व्यक्ति पूजा" कहकर चिल्लाने लगे। "आम अग्रदल," "आम वीरता।" अगर सब आम है तो अग्रदल कैसा? वह किस के आगे है? वीरता भी आम नहीं हो सकती है, योलदाश मियाँ। यदि आम है तो उसे वीरता नहीं कहते।"

"माफ़ करो, मगर महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध में हमारी जीत को तुम क्या कहोगे?"

"तो क्या महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध के वीर नहीं थे? गस्तेल्लो का नाम ज़बान पर लेना बन्द कर दिया गया लेकिन वह तो अपनी जगह बरक़रार ही रहा।"

"पहले तो तेरा यह कहना ही ग़लत है कि उसकी चर्चा बन्द की गई," योलदाश बोला, "दूसरे, अगर कुछ लोगों के बारे में बराबर कहा जाता और लाखों अज्ञात सिपाहियों को भुला दिया जाता तो यह भी ग़लत होता।"

"'अज्ञात सिपाही' कहना ही भुला जाना नहीं है, क्या?" सईद उठ खड़ा हुआ। "नहीं, मैं इस वाक्य को नहीं समझता। उसमें एक कड़वी अफ़सोसनाक बात है। जी चाहता है, आदमी के सम्मान का रोना रोएँ। वह ख़ुद भी नहीं, नाम भी नहीं। तो क्या रह गया उससे?" फिर वह आकर योलदाश के सामने बैठ गया। "सुना है, अफ़्रीका में एक प्रकार की चींटी होती है। जब वे बड़े समूहों में आगे बढ़ती हैं तो एक हेक्टर तक की भूमि काली काली हो जाती है। अगर रास्ते पर कोई गढ़ा मिला तो आगेवाले अपने आपको उसमें डाल देती हैं, उसके बाद आई चींटियाँ उनके ऊपर से गड्ढे को भरकर पुल बना देती हैं। लेकिन गड्ढे के अथाह होने पर क्या होता है, योलदाश मियाँ? मालूम है, किसी चींटी को यह मालूम भी नहीं होता, वे इसके बारे में सोचती भी नहीं। वे बस यही जानती हैं, साथ-साथ जाना है, नहीं तो साथ-साथ मरना है। लेकिन अगर मैं उन चींटियों की तरह ख़ुद को नहीं बनाना चाहता तो तुम्हारा क्या ख़्याल है?"

"देखो, यह तो बड़ी भीषण बात है!" योलदाश ने सईद को यूँ घूर कर देखा मानो उसे पहली बार देख रहा हो।

"समष्टिवाद के बारे में इतने अनिष्टकारी विचार तुम ने किस से सीखे?"

सईद ने कन्धे उचका दिये:

"मैं तो कहीं गया नहीं, आप ही लोगों के बीच रहता आया हूँ..."

"अब मालूम हुआ हमारे बीच रहकर भी तुम कितने बेगाने थे। और जब दूर चले जाओगे, तो न जाने क्या होगा? ज़रा सोचो, समष्टि पर पत्थर फेंककर और तो कुछ नहीं पाओगे, हाँ, पछताओगे ज़रूर। सबसे बुरा समूह भी अकेलेपन से बेहतर है, याद रखो। लेकिन फिर भी बताओ, तुम चाहते क्या हो?"

"मुझे कुछ नहीं चाहिए!" सईद ने गिलास की शराब खिड़की से बाहर फेंककर कहा। "मैं एक इनसान हूँ, मेरा भी एक अस्तित्व है, मेरी अपनी एक दुनिया है, काम है, नाम है, भावनाएँ हैं। मैं ख़ुद को, अपने व्यक्तित्व को महसूस करना चाहता हूँ," उसने अपने सीने पर मुक्का मारते हुए कहा।

"तुम महास्वार्थी हो। जाओ, और मैदान में गले में फाँसी लगाकर चीख़ो, मैं स्वयं अपना स्वामी हूँ। अपने व्यक्तित्व का प्रदर्शन करो," योलदाश रास्ते की कुर्सी को पैर से हटाकर चला गया। तो सईद ने दिल की बातें बता ही दीं। वस्तुतः, वह स्वयं में एक जगत है। पर योलदाश को ख़्याल ही नहीं था कि उसके ऐसे नीच विचार हैं। कुछ हद तक योलदाश उसके दुराग्रह को समझने लगा था। यह लोगों का व्यक्तित्व छीनने, झुंडवाद विरोधी भाव था। पर समष्टि के बारे में यह दृष्टिकोण उसमें कहाँ से आया।

तभी फुटपाथ पर अज़ीज़ा नज़र आयी। योलदाश ने अंधेरे में भी उसे फ़ौरन ही पहचान लिया। वह उछलकर नालियों को पार करते उसके सामने पहुँच गया।

"अज़ीज़ा, मैं सईद के यहाँ से आ रहा हूँ!"

"नमस्ते।"

"उसका मूड ख़राब है। तुम भी वहीं जा रही हो?"

अज़ीज़ा कुछ देर उसे देखती रही, फिर एक भी शब्द बोले बिना

चली गई। योलदाश को यह उतना ही बुरा लगा जितना मरे को लात मारना। परेशान मन वह बाग़ में जाकर बेंच पर बैठ गया। ज़ाहिर था, इस मामले में योलदाश का हस्तक्षेप अज़ीज़ा को अच्छा नहीं लगा था। शायद वह यह भी सोचती हो कि सईद में आये परिवर्तन के पीछे योलदाश का भी हाथ हो। वस्तुतः, सईद के चले जाने से योलदाश को एक अच्छा मौक़ा मिलता क्योंकि अज़ीज़ा तो उसके पीछे जायेगी नहीं, यहीं रहेगी। मगर योलदाश के मन में ऐसी कोई बात नहीं थी। वह नेक दोस्त था, स्वार्थी और मौक़े से फ़ायदा उठानेवाला नहीं। लेकिन इस बेढब परिस्थिति ने योलदाश को अज़ीज़ा की नज़र में बेमतलब दोषी बना दिया था।

थोड़ी ही देर बाद सेल के पेड़ के नीचे से जानी-पहचानी आवाज़ सुनाई दी। योलदाश ने सईद और अज़ीज़ा की आवाज़ें पहचान लीं। वह फिर गड़बड़झाले में पड़ गया था: उठकर जाये तो दोनों देख लेंगे और वह नहीं चाहता था। वे उसे दोबारा देखें, मौन बैठे रहकर वह उनकी बातें सुनना भी ठीक नहीं समझता था। इसी उधेड़बुन में वह काफ़ी देर तक बैठा रहा। रात के सन्नाटे में उस बेंच पर बैठे लोगों की आवाजें एकदम साफ़ सुनाई दे रही थी। अज़ीज़ा की कोयल जैसी आवाज़ में आत्मविश्वास, उतार-चढ़ाव और उत्साह का पुट था।

"मैं अपनी मुहब्बत पर शर्मिन्दा नहीं हूँ, सईदजान अका। मैं आप से विनती करती हूँ, न जाइये। मैं भली भांति जानती हूँ। आप बड़े कार्य-कुशल हैं, यहाँ आप के बराबर कोई भी नहीं। काश, मैं भी ऐसी होती। आप जो काम करते हैं वह हर कोई नहीं कर पाएगा। मगर..."

"आप को ग़लतफ़हमी हुई है, मेरी बुलबुल," सईद की गहरी आवाज़ सुनाई दी। (उनकी बातचीत तो अच्छी लगी लेकिन योलदाश से "बुलबुल, चुलबुल" जैसे शब्द नहीं सहन हो पा रहे थे)।

"आप ने ग़लत समझा है। मैं केवल अपनी ही फ़िक्र नहीं करता। आख़िर, लोगों को एक स्थान पर इकट्ठा करके, फिर उन्हें बराबर से बांटकर कोई औसत जैसी चीज़ तो नहीं पायी जा सकती है। समुदाय मुट्ठी भर किशमिश नहीं है। उसमें लोग हैं और लोग भले-बुरे होते हैं, उनमें निकम्मे लोग भी होते हैं..."

"और आप अवश्य अलग स्थान पाना चाहते हैं? विशेषाधिकार..."

"छोड़िये, मैं यह बातें सुन चुका हूँ। अभी-अभी योलदाश घंटे भर

बकवास करके गया है।" इस बात से अज़ीज़ा को शायद दुख हुआ था क्योंकि उसकी आवाज़ काफ़ी देर बाद सुनाई दी।

"बेगाने हो गये हो..."

"यह क्या आप लोगों ने समझौता कर लिया है? एक ही बात रट रहे हैं सब," सईद ऊँची आवाज़ में बोलने लगा। "दूसरों से कुछ फ़र्क़ न हो, जिस रास्ते पर सब चलते हैं, उसी रास्ते से चलो, दायीं ओर मत देखो बायीं ओर मत मुड़ो, आगे मत जाओ, पीछे न रहो, धरती मत गिरो, आसमान पर मत चढ़ो, रेवड़ से अलग न हो जाओ, नहीं तो बेगाने हो जाओगे! यही बात है न।"

अज़ीज़ा के आँसू फूट पड़े और वह भाग खड़ी हुई।

"अज़ीज़ा, मेरी जान!" कहकर सईद भी उसके पीछे दौड़ पड़ा। "आख़िर मैं शहर में आप को, तुम्हें..." और फिर कुछ देर तक वहाँ से कपड़ों की, दो बदनों के मिलने व परे हटने की सरसराहट सुनाई दी। योलदाश सिर्फ़ अटकल ही लगा सकता था: शायद सईद ने लड़की को बाँहों में जकड़ने की कोशिश की थी मगर वह भाग निकली थी या शायद थप्पड़ भी मार बैठी थी या कोई शाखा टूटी थी लेकिन कुछ ऐसी ही आवाज़ सुनाई दी थी।

योलदाश अपने आप से बहुत नाराज़ था कि यहीं छिपकर बैठा है, और ऐसा लगा मानो उसके दिल में बर्फ़ का टुकड़ा-सा फँस गया हो। बसंत की रात काफ़ी गर्म थी पर उसे ठण्ड भरी कँपकँपी महसूस हुई। उसे अफ़सोस हुआ कि अज़ीज़ा जैसी एक सुन्दरी अपने गर्व की रक्षा नहीं कर पा रही है...

इन तीनों को घुन की तरह खा डालती समस्याओं से अधिकांश लोग बेख़बर थे। दिन यूँ ही गुज़रते रहे।

एक इतवार को फ़रमानोव ने योलदाश को बुला भेजा। वह अपनी छुट्टी के दिन भी दफ़्तर में ही गुज़ारता था। योलदाश को पहले से मालूम था, वह उसका स्वागत कैसे करेगा, क्या कहेगा। फ़रमानोव कोई जटिल आदमी नहीं था।

उसका पूरा नाम कोई नहीं जानता। सब लोग बस "फ़रमानोव" ही कहते हैं। पूरा नाम जानने की ज़रूरत भी नहीं थी क्योंकि फ़रमानोव सच्चे अर्थों में "सामाजिक आदमी" होकर अपना सारा जीवन समुदाय

के साथ, दफ़्तर में, सभाओं में, भाषणमंचों पर बिताता था। उसका अपना भी कोई ऐसा आदमी नहीं जो उसका नाम बताकर उससे लाड़-प्यार करे। दुनिया में अपनों के नाम पर बस एक बेटी थी और वह भी कहीं पढ़ती थी।

फ़रमानोव अविवाहितों के होस्टल में एक छोटे से कमरे में रहता था। रहता तो क्या था, बस सोने ही जाता था। वहाँ बाक़ी समय दफ़्तर में, अधिकतर सभाओं में गुज़ारता। हरेक सभा में उसे कहीं न कहीं देखा जाता था।

इस समय वह कारख़ाने की ट्रेड यूनियन समिति का अध्यक्ष था पर कारख़ाने के डाइरेक्टर ने उसे अपना ज़्यादा समय जवानों के पालन-पोषण में लगाने को कहा था, यहाँ तक कि नौजवानों के मामलों पर उसे उप-डाइरेक्टर भी बना रखा था। दरअसल इन दिनों कारख़ाने में सैकड़ों नौजवान थे। उनमें अधिकांश युद्ध के कठिन ज़माने में व्यावसायिक स्कूलों में शिक्षा पाये नौजवान थे। बहुत से नये-नये खातों के खुलने से नये-नये लोगों को भरती करना पड़ा था। उनके काम पर ख़ास तौर से ध्यान रखना ज़रूरी था।

फ़रमानोव बड़ा कर्मठ आदमी था। जब वह पुरानी फ़ौजी कमीज़ के ऊपर बँधी पेटी के नीचे अंगूठा टिकाकर बड़े गोल ऐनक के नीचे से घूरता तो योलदाश मुँह की बात भी भूल जाता। योलदाश को वह अधिकतर नौजवानों की समस्याओं के संबंध में बुलाता था।

वे नौजवानों के अवकाश कार्यक्रम, उनके मनोरंजन के प्रबंध, आदि, के बारे में बातें करते थे। फ़रमानोव इस पर बड़ा ध्यान देता था। नौ-जवान मज़दूरों के हर घंटे की फ़ुर्सत का वह ध्यान रखता था। हमेशा की तरह इस बार भी योलदाश के आने पर उसने बड़ी-बड़ी रंगीन ता-लिकाएँ और रेखाचित्र खोलकर मेज़ पर बिछा दिये थे।

"हाँ, तो, कोमसोमोल..." वह बोला। तालिकाओं को वह ऐसे ताक रहा था मानो कोई सेनाध्यक्ष सैनिक मानचित्रों का अध्ययन कर रहा हो। फिर उसने एक ख़ाली ख़ाने पर अंगुली रख दी, "इस घंटे में क्या किया जायेगा? ज़रा बताइये।" योलदाश ने मकड़ी के जाले जैसी तालिका को ध्यान से देखा पर उसे कोई जवाब नहीं सूझा।

"और इस समय?" फ़रमानोव ने फिर पूछा और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना आदेश दिया: "व्याख्यान! लिखिये, "व्याख्यान"!"

"इस सप्ताह व्याख्यान बहुत हो गये, कॉमरेड फ़रमानोव, कुछ समय ख़ाली रखें... कुछ उनकी अपनी मर्ज़ी पर छोड़ें, तो..." योलदाश ने कहा।

फ़रमानोव बड़ी-सी लाल पेंसिल को घुमाते हुए, मेज़ के गिर्द चहलक़दमी करने लगा।

"सुस्ती..."

"सुस्ती नहीं, हरेक को अपना भी तो काम है।"

"बातें मत बनाओ। जब आदमी किसी काम में नहीं लगा होता, बड़ी गड़बड़ियाँ होती हैं। वह नशाख़ोरी, बदमाशी, लड़ाई-झगड़ा, लफंगापन करता है। नहीं, कोमसोमोल! तुम उन्हें किसी सामाजिक काम में व्यस्त रखो।" फ़रमानोव ने अपनी लाल पेंसिल फिर उसी जगह लगा दी: "क्लब का प्रोग्राम रखो। समुदाय के साथ। व्याख्यान नहीं तो फिर डाँस ही सही!"

"ठीक है।"

इसके बाद उन लोगों की बात चली जो परसों क्लब में आयोजित कार्यक्रमों में नहीं आये थे। फ़रमानोव ने आज ही उनके न आने का कारण जान लेने और क़दम उठाने को कहा।

"हम समुदाय के अनुशासन का उल्लंघन करने, एकता को तोड़ने नहीं देंगे, कोमसोमोल, हाँ। अभी, फ़ौरन, इन कामों को अंजाम दो।"

"अभी? कॉमरेड फ़रमानोव...", पहले योलदाश लटपटा गया फिर बोला: "अभी तो बड़ी भूख लगी है... फिर अपना भी एक काम है।"

फ़रमानोव की नाममात्र की भौंहों में बल पड़ गये। वह योलदाश को साश्चर्य यूँ घूरने लगा मानो उसके सामने कोई ऐसा ऊँट खड़ा हो जिसके पंख उग आये हों। सामुदायिक दीक्षा की बात चल रही है और यह अपने पेट की बातें कर रहा है। अपना काम? अपना कैसा काम हो सकता है?

"सुनो, कोमसोमोल .."

योलदाश उसकी नज़रों से ही उसके विचार समझ चुका था, बोलने की कोई ज़रूरत नहीं थी।

योलदाश सबसे पहले तोलागान के यहाँ गया। स्वभाव से गंभीर और कुछ संकोची तोलागान ब्लाक खाते में पाड़ बाँधने का काम करता था और एक बूढ़े फ़ोरमैन के यहाँ किराये पर रहता था। मगर उसका किराये का कमरा अक्सर खाली ही रहता क्योंकि वह अपना ज़्यादातर समय अटारी में ही बिताता था। गर्मियों में वहीं सोता, काम करता और पढ़ता। फ़ोरमैन का बेटा जो अब सेना में नौकरी करने चला गया था, इस अटा-री में अपने कबूतरों को रखता था। तोलागान ने थोड़ा उसका विस्तार कर दिया था। उसमें खिड़की बनाकर उसने अपने आवश्यक साज-सामान रख दिये थे। रेडियो का बड़ा शौक़ था उसे। यहाँ उसने एक वर्कशॉप-सा बना रखा था लेकिन शोर पड़ोसियों को कष्ट नहीं पहुँचाता। छत पर उसने ५–६ ढंग के ऐण्टिना लगा रखे थे।

जब कबूतरों की बीट से सफ़ेद हुई लकड़ी की सीढ़ियों से योलदाश वहाँ पहुँचा, तोलागान का चेहरा खिल उठा। गंभीर व संकोची स्वभाव-वाला यह नौजवान थोड़ा नशे में था। ख़ुशी से चिल्लाते हुए उसने यो-लदाश को गले लगा लिया। योलदाश ने कभी उसे इतना प्रसन्न नहीं देखा था। पलक झपकते उसने बुल्गारियाई कोन्याक की बोतल निकाल ली। सुप्रसिद्ध चित्रकार का भतीजा होने के कारण उसके पास ऐसी नि-राली चीज़ें हमेशा मिलती थीं।

"नहीं, तोला, मुझे भूख लगी है..." योलदाश ने सीधे अपने आने का कारण बता देना चाहा पर तोलागान ने उसे बोलने ही नहीं दिया।

"क्लब-उलब की बात छोड़ो भई, मुझे तुम से कुछ कहना है," तोलागान बोल उठा। आज वह बहुत प्रसन्न था। "भूख लगी है तो खाना भी खिलाएँगे! और तुम यह देखो!" उसने कोई छोटी-सी लाल पुस्तिका निकालकर मेज़ पर रख दी और बड़े गर्व से योलदाश की ओर देखा। "हाथों में लेकर देखो न!"

"क्या है यह?" योलदाश ने पुस्तिका हाथों में ले ली।

"ब्रॉडकास्ट के लिए लाईसेंस!" तोलागान ने उसके हाथ में एक गिलास थमाकर अपने गिलास से टकराया, "लो! क्या ऐसी ख़ुशियाँ

मनाने योग्य नहीं? ऐसे लाईसेंस सबको नहीं मिलते, साल भर में बस दो-तीन व्यक्तियों को ही दिये जाते हैं। सात साल तक लगातार रेडियो क्लब जाने के बाद मुझे यह मिला है। पीग्रो।" उन्होंने पी ली। "कल शहर गया था, प्रतियोगिता में।"

"प्रतियोगिता?"

"वायरलेस-सिगनल ग्रहण करने की जनतंत्रीय प्रतियोगिता थी। बुरा नहीं रहा, ख़ुद देख ही रहे हो। ग्रौर तुम डाँस क्लब की बातें करते हो!"

इसकी क्या ज़रूरत है?" योलदाश ने लाल पुस्तिका को हाथों में संभालकर पूछा। तोलागान की कैफ़ियत का उसपर भी प्रभाव पड़ा।

"इसका ग्रर्थ है, ग्रब व्योम में मेरी ग्रपनी रेडियो तरंगें होंगी। धरती पर पहाड़ों, रेगिस्तानों, महासागरों में मेरे हज़ारों दोस्त होंगे, जब जी चाहे मैं उनसे बातें कर सकूँगा।"

तोलागान ने पुस्तिका बड़ी सावधानी से सीनेवाली जेब में रख ली ग्रौर योलदाश को सैंडविच देकर ग्रपने शॉप के ग्रौज़ारों को दिखाना-समझाना शुरू कर दिया। यहाँ सरल रूप से बनाये गये रेडियो सेट, प्लास्टिक के डिब्बे में रेडियो, टेलीफ़ोन का रिसीवर, ग्रपने हाथों बनाया गया ट्रांसमीटर ग्रौर न जाने बिजली के कैसे-कैसे यंत्र थे।

ख़ुशी से ग्रोतप्रोत होकर देर तक बोलने के बाद तोलागान ने केवल वाल्वों से बने एक खुले रेडियो सेट को चालू कर बड़े शोरगुल के बीच से दो-एक सिगनल पकड़कर लिख लिये।

"ग्रपना समय दे रहा है... मैं इन सबसे परिचय प्राप्त करूँगा!" उसने यूँ बताया मानो ग्रब सारा ग्रासमान, शहर ग्रौर गांव उसके हाथों में हो। ग्रब वह योलदाश को एक ऐसा ग्रादमी लगने लगा जिस ने ग्रंतरिक्ष के राज़ जान लिये हों, कोई चमत्कारिक भाषा सीख ली हो। वह एकदम एक भोला-भाला लड़का था। जब व्यावसायिक स्कूल में सर्दियों के दिन ठंड खाते रेडियो प्रेमियों की मंडली में जाता था, उस समय उसे कोई कुछ नहीं समझता था। ग्रौर ग्रब वह वस्तुत: ख़ुद एक जगत था।

प्रसन्न साथी से विदा लेकर जाते हुए योलदाश यही सब सोच रहा था कि ग्रचानक उसे याद ग्राया। वह फ़रमानोव की बात तो भूल ही

गया था। लेकिन कोई बात नहीं, ' अब ऐसी बातें तोलागान की समक्ष में कहाँ से आयेंगी।

फिर वह एरगश के घर की ओर चल पड़ा। पिछले हफ़्ते से उसने भी क्लब में आयोजित प्रोग्रामों में जाना बन्द कर दिया था।

पारिवारिक होने के कारण एरगश को दो कमरों का फ्लैट मिल गया था। जब योलदाश उसके कमरे में पहुँचा, वह ग्यारह व तेरह वर्षों के अपने दोनों बेटों में व्यस्त था। छोटे को आईना पकड़ाकर बाल काटनेवाले औज़ार से वह बड़े बेटे का बाल काट रहा था। जब ठंडी मशीन गर्दन से सट जाती, बड़े को गुदगुदी होती और वह हँसने लगता। ऊपर से ओढ़ाये कपड़े से सुनहरे बाल गिर पड़ते। दूसरा अपने बड़े भाई को देखकर हँसने लगता और आईने को ठीक से पकड़ नहीं पा रहा था। दोनों भाई नीली आंखोंवाले, गोरे और बड़े प्यारे थे। योलदाश दहलीज़ पर रुककर बच्चों की शैतानी से अधिकाधिक प्रसन्न होते एरगश को देखता रहा। एरगश ने बच्चे के बाल काट, कपड़े झाड़कर दोनों को जाने की इजाज़त दी। लड़के हँसते हुए दौड़कर अन्दर गये तो वह उदास होकर इन्हें जाते देखता रहा।

"आओ, भाई," कहकर उसने योलदाश के कंधे पर एक हाथ रख दिया लेकिन उसकी नज़र उसी दरवाज़े पर टिकी थी जिससे बच्चे अन्दर गये थे।

"हाँ भाई, जा रहे हैं," उसने धीरे से कहा। उसकी चमकीली आंखों से आँसू की एक बून्द ढुलक पड़ी। "मरीया निकोलायेवना को अपने योग्य आदमी मिल गया..."

एरगश सिलिकेट ईंट के भट्टे पर सहायक फ़ोरमैन का काम करता था। वह योलदाश से तीन-चार साल बड़ा था। वह कुछ लंगड़ाते, सिर और कंधे झुकाकर चलता था। वह अत्यंत मृदुभाषी, बड़ा विनम्र नौजवान था। लेकिन इस समय वह योलदाश को बड़ा दुखी लगा।

"हमेशा के लिए जा रहे हैं..." वह दुबारा बोला, "इतने साल बाद अचानक। एकदम अकेला रह जाऊँगा..."

यह बड़े दुख की बात थी। योलदाश भी झिझक गया।

मरीया निकोलायेवना और एरगश को अधिकाँश लोग मियाँ-बीबी ही समझते थे। इस रूप में उनकी सराहना भी करते थे।

28—3486

जब मज़दूर नाश्ता करने जाते, दरवाज़े के पास अधेड़ उम्र की एक रूसी महिला को दो बच्चों के साथ खड़ी पाते। इस मोटी-सी ख़ूबसूरत महिला के हाथों में कोई गठरी या टोकरा होता। बच्चों में एक दूध भरी बोतल और दूसरा गर्म नान लिये खाना खाने के लिए अपने बाप की प्रतीक्षा करते थे। एरगश उन्हें दूर से ही देखकर दौड़ पड़ता, बच्चों को बारी-बारी से प्यार करने के बाद वे नहर के किनारे जाकर बैठ जाते थे। विस्तृत स्तेपी में नहर के किनारे ठंडी हवा रहती थी। दहकते भट्ठे के पास से आये एरगश को यहाँ अच्छा लगता, भूख लगती थी। मरीया निकोलायेवना नहर में उसे अर्द्धनग्न स्नान करते और हरी-भरी घास पर खाना खाते देखना, साथ ही बच्चों का खेलना, विशाल कारख़ाने के शोरग़ुल की पृष्ठभूमि में नहर के पानी की खनखनाहट सुनना पसन्द करती थी।

कई बरसों से यही बात थी। इस शान्त-सुखी परिवार का सब आदर-सम्मान करते थे। जब कभी औरतें मरीया निकोलायेवना के पति से उम्र में ८-१० साल अधिक होने का ज़िक्र करतीं तो भी उसे कलंकित करने नहीं बल्कि परिवार में साहचर्य की प्रशंसा करने के लिए।

और परिवार का सच्चा हाल एरगश के घनिष्ठ मित्रों को ही मालूम था।

सन् १९४२ में बेरदिचेव शहर विस्थापित किया जा रहा था। उन्हीं विषम दिनों शोर-शराबा, भाग-दौड़ के वातावरण में युवा लेफ्टिनेंट एरगश वहीं था। समय कम, वाहनों की कमी, हलचल, नियम-अनुशासन ख़त्म हो चुका था, विशेषकर आम जनता में बड़ा तहलका मचा था: चारों ओर रोना, चिल्लाना, हरेक परिवार अपने सामर्थ्य के अनुसार घोड़े पर या पैदल अपने कुछ सामान उठाके भाग रहा था। एरगश जिस घर में रहता था, उसकी मालकिन—कुछ मोटी, आकर्षक स्वरूप की विधवा अपने चारों बच्चों के साथ सड़क पर रोती भी रह गई। सामान की गठरी बाँध, मुन्ने को गोद में और बाक़ी तीनों को साथ लेकर वह घर से निकल आयी, मगर कहाँ जाये, कैसे जाये—कुछ मालूम नहीं था। एरगश काफ़ी भागदौड़ करता फिरा। काश, किसी मोटर या गाड़ी में बिठाकर भेजने का मौक़ा मिलता! सभी वाहन, हरेक घोड़ा संस्थाओं, कारख़ानों, दफ़्तरों में बांटे जा चुके थे। समय बहुत

कम था, थोड़े ही घंटों में शहर पर गोले बरसाये जाने लगेंगे, आग लग जा-येगी, दुश्मन आ पहुँचेंगे। तभी दौड़ता हुआ एरगश आया और बच्चों को घर में बन्द कर गोद में मुन्ने को लिये मरीया निकोलायेवना को शादी की रेजिस्ट्री कराने के दफ़्तर में खींचता ले गया। मरीया निकोलायेवना ठोकरें खाती हाँफ़ती एरगश के साथ-साथ जा रही थी। कहाँ? यह उसे मालूम नहीं था। जब शादी के रेजिस्ट्री ऑफ़िस में पहुँची, तभी सब कुछ उसकी समझ में आया: सैनिक अफ़सरों के परिवारों को वाहन पहले दिये जाते थे। मरीया निकोलायेवना पहले दंग रह गई, अनिश्चय की हालत में वहाँ से खिसक जाना चाहा पर एरगश ने उसकी बांह मज़बूती से पकड़ लिया।

"मरीया निकोलायेवना! कोल्या, ईरीना, मीशा की खातिर... वीत्या के लिए!" उसने कहा और मुन्ने को अपने हाथों में ले लिया।

फिर उन्होंने दफ़्तर के कर्मचारी को ढूँढ़ा जो दफ़्तर के साज़-सामान लादने में व्यस्त था। कर्मचारी ने इन से बचने के लिए जल्दी ही काग़ज़ बना दिये।

इस प्रकार वे पति-पत्नि बन गये। मरीया निकोलायेवना को उज़्बेकि-स्तान भेजा गया। लड़ाई के बाद एरगश ने उन्हें इसी कारख़ाने के निर्माण स्थल पर ढूँढ़ लिया। कोल्या पढ़ाई में था। ईरीना की सत्तरह बरस की ही उम्र में शादी हो चुकी थी। मीशा और वीत्या का पालन एरगश के हाथों हुआ।

"अचानक होता तो कठिन लगता... यूँ तो ख़ुद भी जानता था, मैंने स्वयं कहा था, मरीया निकोलायेवना को," एरगश दहलीज़ पर योलदाश के कंधे पर हाथ रखे खड़े-खड़े उदास स्वर में बोला। "मैंने ख़ुद कहा था, शादी कर लीजिये। और वह मुझसे कहा करती थीं: ब्याह कर लो, आख़िर मुझे यह बुरा लगता है कि मैंने तेरे हाथ बांध दिये हैं। कब करोगे ब्याह? पर मैं इन्हें छोड़कर ब्याह कैसे करता, ख़ुद सोचो..."

एरगश और योलदाश देर तक एक-दूसरे को अपने दिल की बात सुनाते रहे। एरगश बहुत परेशान था। पास के कमरे में बच्चों के चिल्लाने, उनकी हर हँसी से उसके दिल में हूक-सी उठती। वह ऐसे अच्छे, शान्त-सुखी परिवार का आदी हो चुका था। बच्चे उसके लिए अपने बन चुके

थे। वह उनकी शरारतों, उनके प्यार का आदी हो गया था। अपनी पूरी जवानी उन्हीं पर उसने लगा दी थी। अब वे चले जायेंगे और वह अकेला रह जाएगा – यह तो वस्तुत: बड़े दुख की बात थी। यह सारा क़िस्सा सुनकर योलदाश भी परेशान हो उठा।

इसी हाल में वह बाहर निकल आया। छुट्टी के दिन भी क्या करते भटक रहा है? एरगश को भी वह न तसल्ली दे सका, न अपनी बात कह सका। जी चाहा, घर जाकर पलंग पर लेटे, ख़ूब सोये, मगर फ़रमानोव का कहना पूरा न करे, यह नहीं हो सकता था, वह कल पूछेगा।

इसी प्रकार खिन्न मन घिसटती चाल से वह तैमूर और पोलात के यहाँ गया। उसने इन दोनों के बारे में इस लिए एक साथ सोचा कि या तो तैमूर पोलात के यहाँ होगा, या पोलात तैमूर के यहाँ। दोनों नये वर्कशॉप के निर्माण स्थल पर स्क्रेपर चलाते थे, दोनों घूँसेबाज़ी के शौकीन थे। कारख़ाने के कामगार उन्हें सदा एक साथ "तैमूर-पोलात" कहते मानो दोनों एक ही आदमी हों। क्लब में घूँसेबाज़ी प्रतियोगिता के विज्ञापन में लिखा जाता: "प्रथम जोड़ा तैमूर-पोलात होगा।" और छोटे-छोटे बच्चे "आज तैमूर-पोलात होगा" कहकर क्लब में दौड़ पड़ते थे।

फिर भी योलदाश उन्हें सदा बहस, वाद-विवाद करते देखता। न वे अलग होते, न सहमत। उस समय भी योलदाश ने पोलात के दरवाज़े के निकट आते ही दोनों की आवाज़ सुनी। कुछ लोग उपेक्षा के साथ इन वाद-विवादों को बकवास कहते: इन लोगों को ट्रेनर ने सिगरेट-शराब निषेध कर दिया था तो क्या करें, बकवास ही करते रहते थे। और योलदाश का अलग ही विचार था। उदाहरण के लिए पोलात को लें। कुछ साल पहले उसे शहर में एक चिकित्सक युवती से मुहब्बत हो गयी, तभी से चिकित्सा विज्ञान की पूजा करने लगा था।

जब योलदाश उसके कमरे में पहुँचा, पोलात खिड़की के तख़्ते पर घुटने पकड़कर बैठा था और मेज़ पर, तकिये पर चिकित्सा कोश के खंड पड़े थे। और तैमूर दोनों हाथ जेब में डालकर चहलक़दमी कर रहा था।

"इनसान पीढ़ी दर पीढ़ी विकसित होता, आगे बढ़ता जाता है। हरेक पीढ़ी, एक नया क़दम। यदि वह, जैसा कि तुम कहते हो, अपने

श्राप में व्यस्त रहा ... " तैमूर ने योलदाश का हाथ मिलाकर श्रभिवादन किया पर श्रपनी बात जारी रखी, "श्रगर वह श्रपने श्राप में व्यस्त रहता तो सर्वाधिक विवेकशील जीव होकर भला कहाँ तक पहुँच पाता ?"

"कल शाम को कहाँ थे ?" योलदाश ने बीच में रोकते हुए पूछा।

"कल भी यहीं थे," पोलात ने कहा। "बात यह है कि हम सर्वाधिक विवेकशील जीव कहलाते हैं। यदि हम श्रंतरिक्ष में जायें, चाँद की मिट्टी की बनावट जान लें श्रौर श्रपने शरीर में बहनेवाले ख़ून की बनावट न जानें, यदि हमें यह मालूम न हो कि हमारा जिगर कहाँ है, उसे क्या ज़रूरत है तब हमारे विवेक का क्या फ़ायदा ?" जब पोलात क्षण भर के लिए चुप हुश्रा, योलदाश फिर पूछ बैठा :

"श्रौर परसों कहाँ थे ?"

"परसों भी यहीं थे," पोलात ने श्रपनी बात जारी रखी, "श्रादमी को सबसे पहले श्रपने श्राप को भली-भांति जानना है। श्रादमी को ज़िन्दगी एक बार मिलती है। दुनिया में सबसे श्रनमोल वस्तु है – श्रादमी का जीवन। यदि श्रादमी के विवेक की दीपिशखा बुझ जाये तो विश्व भर में श्रंधेरा छा जायेगा ... मगर क्या हम जानते हैं, बुद्धि या दिमाग़ क्या है ? इनसान को सबसे पहले श्रपने जीवन का रहस्य, धमनियों, ख़ून, दिमाग़, दिल के कार्यकलाप को यानी शरीर विज्ञान को भली-भांति जानना है ताकि ... "

"इसके लिए ख़ास विशेषज्ञ हैं, चिकित्सा विज्ञानी हैं," तैमूर ने लगातार चहलक़दमी करते हुए कहा।

"शाबाश, हरेक श्रादमी को सबसे पहले डॉक्टर होना चाहिए," पोलात फिर बोल उठा, "पर दूसरों का इलाज करने के लिए नहीं बल्कि श्रपने लिए, श्रपने दौर, श्रपनी बुद्धि के योग्य होने के लिए। इनसान होकर श्रपने श्राप को न जाने – यह शर्म की बात है। श्रभी-श्रभी तुम धरती से छह श्ररब प्रकाश वर्ष की दूरी पर उड़नेवाले क्वाज़ारों के बारे में कहा पर यदि पेट में दर्द हुश्रा तो तुम श्रसहाय हो, तुम्हें किसी श्रौर की ज़रूरत पड़ेगी जो तुमसे पूछ-पूछकर तुम्हारी बीमारी का श्रनुमान लगाएगा। लेकिन सच पूछो तो तुम्हारे जिस्म को तुमसे ज़्यादा बेहतर कौन जान सकता है, तुममें क्या कुछ हो रहा है, इसका तुम्हीं सबसे श्रच्छा एहसास कर सकते हो। बीमारी का नाम तुम्हें बताना चाहिए श्रौर डॉक्टर

इलाज करेंगे। चिकित्सा एक बड़ा जटिल ज्ञान है और हरेक सचेत, बुद्धिमान आदमी को उसकी भाषा जाननी चाहिए।"

"और बाक़ी काम कौन करेगा?"

"इनसान नहीं तो कोई काम भी नहीं। इस लिए इनसान के लिए शरीर विज्ञान की जानकारी जीवन की बुनियादी बात बन जानी चाहिए। बाक़ी काम उस के बाद..."

"तुम तो स्वार्थपने की हद कर रहे हो। अपना ख़्याल ख़ुद न किया तो कौन करेगा..." तैमूर बोला। "अभी-अभी तुम ने ख़ुद कहा था। आदमी को जीवन एक ही बार मिलता है। और यह जीवन अधिक लम्बा भी नहीं होता। तो इस हालत में दूसरों के लिए भविष्य के लिए, भावी पीढ़ियों के लिए जीना है। हमने ज्ञान, तकनीक का विकास किस हद तक किया, विश्व के रहस्यों का उद्घाटन करने में कितना योगदान किया—आनेवाला समय हम से यही पूछेगा। नहीं भई, जीवन का मज़ा, उसका मूल अर्थ सृजन करना, नवीनताएँ पैदा करना, चमत्कारों की तह तक पहुँचना है... तभी "मैं जी चुका" कहना ठीक होगा। तुमने क्वाज़ारों की याद दिलाई। क्वाज़ार-सृष्टि के आदि साक्षी हैं। उनसे अरबों साल पहले फैला प्रकाश, रेडियो तरंगें अभी अंतरिक्ष के किसी गलाकटिक में पहुँचे हैं। जब वे पृथ्वी तक पहुँचेंगे तब कितनी दुनियाओं का इतिहास सुना सकेंगे! पर जब वे सुनाने लगेंगे हम क्या उनकी भाषा समझ पायेंगे?.. और तुम पेट की बीमारियों की बात करते हो।"

पोलात ने साथी पर ऐसी कड़ी नज़र डाली मानो कह रहा हो "बच्चे न बनो।" खिड़की से उतरकर उसने मेज़ पर रखे दही को पी लिया। दोनों क़द-काठी से एक जैसे हैं, दोनों उरातेपा के रहनेवाले हैं। दोनों के बाल घुँघराले, दोनों ही चौड़े कंधोंवाले नौजवान हैं। योलदाश को उनकी बहस में अपनी बात कहने का मौक़ा ही नहीं मिला। बस वह कभी इसकी ओर से, कभी उसकी ओर से हाँ-हूँ करता देर तक बैठा रहा। अंधेरा घिर आया था। उसे अभी अज़ीज़ा के यहाँ भी जाना था। सो वह धीरे से उठकर चलता बना...

अजीज़ा कारख़ाने की बस्ती के उसी भाग में रहती थी जहाँ ३-४ मंज़िली इमारतों का निर्माण शुरू हो गया था। कारख़ाने से कुछ दूर होने के कारण उसे पहले की तरह अब भी "स्तेपी" कहा जाता था।

भविष्य में शहर का इसी स्थान पर निर्माण होना था। अभी इसका कोई नामकरण नहीं किया गया था। केवल संवाददाता उसे कभी-कभी चोलाबाद (आबाद स्तेपी) कहकर लिखा करते थे।

द्वार खुद अज़ीज़ा ने खोला और योलदाश के अन्दर आते ही उसके वक्ष पर सिर रखकर रो पड़ी। लड़की का सिर खुला था, वह उज़्बेक लोगों के राष्ट्रीय फ़ैशन की पोशाक पहने थी, पैर नंगे थे। वक्ष पर टिके सिर से इत्र मिश्रित कोई रहस्यपूर्ण गंध उसकी नाक में समा गयी। योलदाश उसके क्रन्दन से किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा खड़ा का खड़ा रह गया।

"आप का दोस्त चला गया। बेचारी बच्ची को पहले तो सपनों का महल दिखाया और फिर चला गया... अब यही है..." लड़की की माँ ने आस्तीन की ओट में मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

तो सईद चला गया। उसके जाने का योलदाश को विश्वास तो था लेकिन यक़ीन नहीं हो पा रहा था। अज़ीज़ा को भी शायद इस हद तक बात बढ़ने की उम्मीद न थी।

"कहती हूँ, रोओ, गिड़गिड़ाओ मत, लड़की हो, अपने को इतना नीचे न गिराओ," लड़की के रोने से बेबस होकर माँ कुर्सी पर बैठ गई।

योलदाश ने भी बैठकर माँ-बेटी को तसल्ली देने की कोशिश की: कहाँ जायेगा, ज़रूर लौट आयेगा, न भी आया तो चिट्ठी लिखेगा ही, वहाँ सब कुछ ठीक होगा तो बुला भेजेगा, क्या कारख़ाने के अतिरिक्त और स्थान नहीं, दुनिया बड़ी है... प्यार-मुहब्बत है, तो बस...

अज़ीज़ा की परेशानी देखकर योलदाश ने अपने दोस्त से कोई सरोकार नहीं रखने का निश्चय कर लिया। अगर सईद के दिल में लड़की के लिए थोड़ा भी प्रेम होता, वह ऐसा न करता। ख़ैर, अब अज़ीज़ा अपना मान-सम्मान ताक़ पर रखकर उसके पीछे न चल पड़े।

विदा लेते हुए योलदाश अपने लिए भी अप्रत्याशित बात कर गया: लड़की के रोने से लाल गालों को अपनी हथेली से उसने सहला दिया। अज़ीज़ा ने इसे क्या समझा, उसे मालूम नहीं। पर उसके लिए यह एक बड़ी बात थी। जाते समय रास्ते भर लड़की के लाल गाल उसकी आँखों के सामने नाचते रहे और हथेली आग की तरह दहकती रही...

आज योलदाश को कई लोगों के यहाँ जाना था। पर वह कहीं नहीं गया। जाना भी बेकार था। सबकी अपनी समस्याएँ, अपनी दिल-चस्पियाँ थीं।

मगर फ़रमानोव अपनी बात नहीं भूला था। अगले दिन पाली के बाद योलदाश को बुलाकर वह अपना अंगूठा चौड़ी पेटी के नीचे रखकर खड़ा हो गया। इस का मतलब था: अच्छा, तो मेरे कहे काम का क्या हुआ? योलदाश कुछ अनिश्चय के साथ, लड़खड़ाता हुआ बोला लेकिन रुक रुककर उसने हरेक के बारे में, क्लब में उनके न आने के बारे में विस्तार से बता दिया।

"कुछ समझ में नहीं आ रहा, क्या आप उन लोगों की वकालत करने आये हैं?" फरमानोव ने "कोमसोमोल" की बातों से नाराज़ होकर कहा, "या उन्होंने आपको मध्यस्थ बनाकर भेजा है?"

"नहीं, ऐसा क्यों? जो बात थी, मैंने बता दी। हरेक का अपना दुख-दर्द, अपना सुख, हरेक की अपनी दुनिया, अपनी समस्याएँ हैं, अपने हित..."

"मैंने आप को अलग-अलग लोगों के नहीं बल्कि समुदाय के हितों की रक्षा करने भेजा था," हालाँकि फ़रमानोव नाराज़ था, वह शांत स्वर में बोला! वह शायद ही कभी बौखलाता था। "नहीं, कोमसोमोल, आपकी कोई भी बात नहीं मानी जा सकती। आप उनकी सूची बना दीजिये, कोई उपाय करना होगा।"

"काश आपको मालूम होता, वे कैसे लोग हैं..." योलदाश मिन्नत भरे लहजे में बोला।

"जानना भी नहीं चाहता, उनकी हरकतों से ही मालूम है, वे कैसे हैं। उन में से हरेक सोचता है, मैं दूसरों जैसा नहीं हूँ, मैं अलग हूँ। नहीं, कोमसोमोल, हम सब एक हैं। एकात्म हैं, एक समुदाय के लोग हैं, हाँ!"

"यह तो ठीक है मगर यदि आप हरेक के दिल तक पहुँचकर मन की बातें जान लेते..."

फ़रमानोव ने बैठे-बैठे अपनी आंख चौड़ी करके मुस्कुराते हुए उसे देखा मानो किसी को पुचकार रहा हो।

"देखो, कोमसोमोल, मेरे अधीन दो-दो हज़ार, तीन-तीन हज़ार

लोगों के समुदायों ने काम किया। यदि मैं हरेक आदमी के दिल तक पहुँचता तो मेरा सारा जीवन इसी में लग जाता। नेता लोगों को एक-एक आदमी की तरबियत करने में सफलता थोड़े ही मिलेगी, भई। यह काम केवल शक्तिशाली समुदाय पूरा कर सकेगा। समुदाय हमारे हाथों में कारगर साधन है।"

योलदाश "साधन नहीं, यह आपके लिए एक नक़ाब है" कहते-कहते रुक गया। फिर शांत मन से विचार किया तो सोचा, नहीं कहा अच्छा किया, नहीं तो बिलकुल सईद जैसी बात बन जाती। अब योलदाश सदा घृणा के साथ सईद की याद करता था। इतना आडंबर, इतनी सुन्दर बातें, सब बेकार की बातें साबित हुईं। समष्टि को ठुकराकर उसके चले जाने से फ़रमानोव के सामने योलदाश की ज़बान कट गयी थी।

"हरेक — एक अलग जगत ... कहते," फ़रमानोव ने अपनी बात जारी रखी, "यदि अपने-आप को एक अलग दुनिया समझने लगें तो समुदाय का क्या होगा? लेनिन की किताबें पढ़ी हैं तुमने?"

योलदाश की समझ में नहीं आया, क्या कहे। उसने बस, कंधे उचका दिये। सकुचाया-सा वहाँ से चला गया।

नौजवानों के फ़रमानोव के काम का दौरा बुख़ार की तरह रह-रहकर बढ़ जाता था। पिछले दिनों शायद बुख़ार कुछ थम गया था क्योंकि योलदाश को उसने अभी तक नहीं बुलवाया था। कहते हैं किसी काम में बहुत व्यस्त है।

योलदाश भी बाक़ी सारा काम छोड़कर गुपचुप अज़ीज़ा पर नज़र रखने लगा: सईद की तलाश करने जायेगी कि नहीं? योलदाश के लिए इस समय सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यही था। वसंत बीत गया, गर्मियों का सूरज स्तेपी को बड़ी बेरहमी से जलाने लगा। शाम को बबूलोंवाले पार्क में शौकिया कलाकारों का ऑर्केस्ट्रा लोकप्रिय धुनें बजा रहा था। नौजवान अपने-अपने कामों में व्यस्त थे, केवल योलदाश अज़ीज़ा की खिड़कियों के नीचे मंडराता रहता। वह लड़की से तो नहीं मिला लेकिन उसके शहर न जाने से वह काफ़ी शान्तचित्त हो गया था।

इस बीच कारख़ाने में एक और नया अनुभाग चालू किया गया, काफ़ी परिवर्तन, नवीनताएँ आयीं। एक नई बात भी हुई। कारख़ाने को कच्चा माल पहुँचाने के लिए नई सड़कों के निर्माण हेतु नौजवानों की टोलियों

का गठन किया जाने लगा। ऐसी ही एक टोली के गठन का काम योलदाश को सौंपा गया। नये स्थान पर जाने, अपने समवयस्क नौजवानों के साथ ख़ेमा बनाकर रहने और अतिरिक्त पैसे कमाने में सभी रुचि रखते थे। बहुत से लोग "मेरा नाम लिखो! मेरा नाम लिखो!" कहकर अनुरोध करने लगे। पर योलदाश ने तोलागान, एरगश, तैमूर, पोलात, शोर-पटु सलीम, नरमात, ज़रीफ़ जैसे अपने परिचितों के नाम ही लिखे।

सब लोग इस उधेड़बुन में पड़े थे कि "कब जायेंगे?" "कहाँ जा-येंगे?" "नेतृत्व कौन करेगा?" एक दूसरे से भी वे इसी प्रकार के हज़ारों सवाल पूछते थे। पर अचानक मालूम हुआ, पहाड़ों में स्थित सि-लिकैट खानों तक सड़क बनानेवाली इस टोली का नेतृत्व फ़रमानोव करेगा। पहले तो सब परेशान हुए, भौंहें सिकोड़ीं पर ज़्यादा सोच-विचार करने का समय नहीं था। केवल योलदाश बुरी तरह चिन्तित था। फ़रमानोव उसकी बनाई सूची देखकर क्या कहेगा? अगर "इसे काटो, अमुक को लिखो" शुरू हुआ, तो सारा काम दोबारा करना पड़ेगा। हो सकता है, दोस्तों से भी अलग होना पड़े।

लेकिन फ़रमानोव ने नामों में कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी – न तो वह उन्हें पहचानता था, न उनके नाम ही उसे याद थे। कभी-कभी तो वह ख़ुद योलदाश को भी पहचान नहीं पाता था।

"तो क्या, टोली तैयार है, कोमसोमोल?" उसने सरगर्मी से पूछा। "कितने हैं?" कहते हुए उसने सूची के अंत में नज़र डाली और उनके पेशे पूछकर उसे अपने पास रख लिया। योलदाश प्रसन्न हुआ, अब की बार फ़रमानोव उसे अच्छा लगा था: "ख़ुदा क़सम, बुरा आदमी तो नहीं!" मन ही मन उसने सोचा। सीढ़ियों से दौड़ते हुए उतर रहा था कि अचानक याद आया: अज़ीज़ा के यहाँ जाना है।

जाने में दो दिन रह गये थे, अब उसे रोज़ जाना चाहिए। हो सकता है, विदा लेने के बहाने अपने दिल की बात भी बता दे। जाने से पूर्व कह दे तो अच्छो होगा, हिचकिचाते रहना ठीक नहीं। जिस स्थान पर जानेवाले हैं, वहाँ काम कैसा रहेगा, स्थिति कैसी होगी – किसी कठिनाई के समय यदि मन में एक उम्मीद हो तो मुश्किलें आसान हो जाती हैं।

वह सीधे उसके घर की ओर चल पड़ा।

कॉल-बेल दबाते ही अज़ीज़ा की माँ ने दरवाज़ा खोल दिया। हालांकि

उसे बेटी से बड़ी हमदर्दी थी, उसे अपनी बात मनाने में असमर्थ होने के कारण वह बहुत परेशान थी।

"चली गई," उसने आंखों में आंसू भरकर कहा, "उसी की तलाश करने गई।"

योलदाश घबरा उठा, उसका चेहरा फक पड़ गया। उसे ऐसी आशंका तो थी लेकिन उसके इतना अचानक चले जाने की कोई उम्मीद न थी। बेजान-सा वह उल्टे क़दम वहाँ से लौट पड़ा।

"बेटे, तुम कहाँ थे, क्यों पहले नहीं आये!" खिड़की से अज़ीज़ा की मां की आवाज़ सुनाई दी, पर योलदाश से कोई जवाब न देते बना। वास्तव में, वह कहाँ था, पहले क्यों नहीं आया? अपनी संकल्पहीनता, सुस्ती के कारण। सईद के जाने का भी यही कारण रहा था। सईद, ख़ैर, सईद जहन्नुम में जाये। पर यह, यह तो हद से ज़्यादा हो गया। ठीक सड़क के निर्माण के लिए जाने से पहले...

उधर इसी क्षण अज़ीज़ा शहर में उसी घर का दरवाज़ा खटखटा रही थी जहाँ सईद किराये पर रहता था। दरवाज़े पर लिखा था, अहाते में कुत्ता है। सो, डरकर कुछ दूर जा खड़ी हुई। दरवाज़ा नहीं खुला। फिर धीरे से जाकर खटखटाया और तेज़ी से दूर भाग गई। पास ही बाज़ार था, इस लिए सड़क पर बड़ी भीड़ थी। अज़ीज़ा सुबह से ही शहर में भटकते हुए इस मकान की तलाश कर रही थी। थकान के कारण पैर जवाब दे रहे थे।

अंततः, चरमराते हुए दरवाज़ा खुला। अधेड़ उम्र की मोटी-सी आकर्षक स्वरूप की महिला ने दरवाज़े से सिर निकालकर इधर-उधर देखा। अगर "चाची जी! चाची।" कहते हुए अज़ीज़ा दौड़कर न आती तो वह दरवाज़ा बन्द करके चली ही जाती। अज़ीज़ा ने सईद के बारे में पूछा। मालूम हुआ, वह यहीं रहता है लेकिन अभी काम पर गया है।

"आप उनकी कौन हैं?" लड़की को सिर से पाँव तक देखते हुए महिला ने पूछा।

"मैं... मैं वहीं काम करती हूँ जहाँ वे पहले काम करते थे... बहन समझिये..."

"आह हाँ," महिला साभिप्राय बोली। "उन्होंने तो हमसे समझौता

किया था, कोई बहिन-वहिन नहीं लायेंगे?!" और अपने मोटे शरीर को झटका देकर उसने अपनी दोनों पतली-सी वेणियाँ ठीक कीं।

"क्या ऐसा भी समझौता कराया जाता है?" अज़ीज़ा ने पूछा।

"वाह! हम ऐसे किराये पर रहनेवालों को बहुत देख चुके हैं, प्यारी लड़की। विशेषकर नौजवान..." महिला की आंखें चमककर अज़ीज़ा पर यूँ गड़ी जा रही थीं मानो कह रही हों: "समझती तो हो। भला ख़ुद कैसी हो?"

"मुझे उन्हें देखना है, दूर से आयी हूँ। वे कब लौटकर आयेंगे?"

"आइये," मकान मालकिन कुछ असंतोष के साथ बोली और मुड़कर अन्दर चली गयी।

अज़ीज़ा ने घबराते हुए इधर-उधर देखा:

"और कुत्ता? कुत्ता कहाँ है?"

"कुत्ता नहीं है!" महिला ने पीछे न देखते हुए कहा। दरवाज़े पर कुत्ते की तसवीर और उसके बारे में लिखी बातें उसे शायद याद ही नहीं। अज़ीज़ा उसके पीछे-पीछे चल पड़ी।

देखने में यह अच्छा आंगन नहीं था। दीवारें टूटी-फूटी, दो बूढ़े सेब के पेड़ों के नीचे गोबर मिली मिट्टीवाली क्यारियों में कम उगी, तीन-चार क़तार स्ट्राबेरी और गुलाब के थोड़े-से पौधे। लम्बे बरामदे से लगे तीन कमरों में तीन द्वार थे। मकान मालकिन चरमराते जूते पहने कभी एक में तो कभी दूसरे में आ-जा रही थी। कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या कर रही है।

"आप की अंगूठियाँ कितनी सुन्दर हैं!" तभी अज़ीज़ा बोल उठी। मकान मालकिन की सोने की अंगूठियों पर कुछ पहले ही उसकी निगाह पड़ी थी। "कहाँ काम करती हैं, चाची जी?"

"अरे, यह क्या आपके यहाँ की आदत है। सईदजान भी पहले मुझे चाची कहता था। क्या मैं इतनी बूढ़ी हो गई हूँ? मेरा नाम मलाहत है, प्यारी!"

"आप अकेली हैं, मलाहत बहिन जी?"

"अकेली न होती तो क्या इनकी नौकरानी बनी आगे-पीछे डोलती-फिरती? क्या आप सोचती हैं, वे हमें कम कष्ट पहुँचाते हैं?"

"तो आप के यहाँ किराये पर बहुत लोग रहते हैं?"

"तीनों कमरों में हैं। अगर अकेले होते तो अच्छा पर इनमें पत्नीवाले भी हैं। तंग आ जाती हूँ।"

"सईद अका किस कमरे में रहते हैं?"

मलाहत ने उन तीन कमरों में से एक की ओर संकेत किया।

"मैं देख सकती हूँ?" यह कहते हुए अज़ीज़ा उसी कमरे में चली गयी। कमरा काफ़ी चौड़ा था। सबसे पहले दीवार पर टँगा बड़ा-सा लाल क़ालीन नज़र आया। फ़र्श पर भी एक चीनी क़ालीन बिछा था जो बहुत बड़ा होने के कारण मोड़ दिया गया था। आईनेवाली आलमारी के ऊपर चीनी मिट्टी के फूलदान। जर्मनी के चमचमाते मूल्यवान फ़र्नीचर, मख़मल के परदे, टेलीवीजन सेट, टेपरिकार्डर... अज़ीज़ा का मुँह खुला का खुला रह गया, उसने किसी के घर में इतना ऐशो-आराम नहीं देखा था।

"कितनी सुन्दर है!" अज़ीज़ा की आंखें चमक उठीं।

"अरे, आय है तो शान है, प्यारी। बरकत हो उसकी। यह तो शहर के गैस कार्यालय के कामगार का कमरा है, जल्दी ही इंजीनियर बनेगा तब देखना..."

"यह सब सईदजान का है?"

"नहीं तो, क्या मेरा है? मुझ जैसी लाचार विधवा के पास ऐसी चीज़ें कहाँ से हो सकती हैं, प्यारी? दो जून की रोटी जुड़ती रहे, यही काफ़ी है।"

"क्या सईद अका की तनख़्वाह इतनी बड़ी है?" अज़ीज़ा ने पूछा।

"अरे प्यारी, कैसी नासमझी की बातें करती है। अब मात्र तनख़्वाह पर कौन रहता है? अब पवित्र लोग कहाँ?!"

"तो फिर कहाँ से..."

"कितनी भोली हो! इस महान शहर में गैस के सारे केन्द्र उन्हीं के हाथों में हैं, प्यारी। वह चाहें तो जलते हैं, नहीं चाहें तो बुझते हैं। और फिर क्या आप सोचती हैं कि इन सब को इजाज़त है? किसी ने गुप्त रूप से रखा, किसी ने सुरक्षा तकनीक के नियमों का पालन नहीं किया... हाँ, घरों में गैस की भट्ठी बनवाना भी बड़ा कष्टमय काम है; बारी है, योजना है, इजाज़त, बैलून की समस्याएँ हैं। कुछ लोग बारह महीनों तक अपनी बारी की प्रतीक्षा करते हैं। यदि ऐसे लोग सईद-

जान से संपर्क स्थापित कर सके तो एक ही दिन में सब कुछ तैयार – इजाज़त भी, नक़्शा भी, भट्ठी भी – रसोई में भी और स्नानगृह में भी ! गुपचुप, शांतचित्त रूप से, समझी।" अज़ीज़ा का दिल उलट गया, चेहरा पीला।

"झूठ! झूठ! आप झूठ बोलती हैं!" मुँह से यह बात न निकल जाये, इसलिए उसने दाँत पर दाँत जमा लिये। यह संभव नहीं कि सईद अका ऐसे बन जायें। नहीं, नहीं!

मलाहत घर की सजावटों के बीच बत्तख़ी चाल चलती बोलती जा रही थी :

"पैसे छोड़ो, प्यारी, व्यवहार को लें। कुछ भी हो, उसका काम शुभ काम है। अब शहर में सबसे प्रसिद्ध व्यक्ति कौन है – वही सईदजान। हाँ, आप ने साफ़ नहीं बताया, आप उनकी कौन हैं?"

उसके लिए इसका क्या महत्त्व है? सईदजान तो उसके लिए बेगाना है। दूसरों के काम में हस्तक्षेप करनेवाली वह कौन होती है?

महिला अचानक अज़ीज़ा को बुरी लगने लगी। संदेह भरी नज़रें, मोटी-मोटी उँगलियों पर बड़ी-बड़ी सोने की अंगूठियाँ, कपड़ा पहनने में बेढंगापन, जवान दिखाई देने की कोशिशें – ये सब उसे हास्यास्पद लगा।

अंततः सईद आ गया। घर से किसी को आया समझ वह हड़बड़ा उठा था। तभी अज़ीज़ा को खड़ा होते देख, वह रुक गया। वह पहले से भी अधिक हृष्ट-पुष्ट हो गया था। चेहरा शहरों के निवासियों-सा साफ़-चिकना। अच्छी क़िस्म का सूट धारण किये। थैला दहलीज़ पर रख, उसने कुछ दूरी पर खड़ी, बड़ी निर्लज्जता से निहारती मलाहत पर चिड़चिड़ी नज़र डाली। बात भाँपकर अपने जूते चरमराते वह चलती बनी। तभी सईद अज़ीज़ा की ओर बढ़ा। मगर अज़ीज़ा ने पहले की तरह उसकी बांहों में समा जाने के बदले सिर झुका लिया।

"अभी ख़त लिखने-ही वाला था..." सईद ने अनिश्चय के साथ कहा।

"अपनी सफ़ाई देते हैं?!"

"मैंने क्या अपराध किया है जो अपनी सफ़ाई दूं?" सईद ने अज़ीज़ा को प्रिय अन्दाज़ में अपने स्नेह का प्रदर्शन करते हुए पूछा। "आप कैसी

हैं... अज़ीज़ा? बहुत अच्छा किया, आ गयीं। वहाँ सभी लोग कैसे हैं, क्या खबरें हैं?"

अज़ीज़ा ने मान छोड़ गाल चूमने दिया। सईद ने दूसरी बातें शुरू कर दीं मानो उसके सवाल का जवाब मिल गया हो। फिर वह चाय बनाकर ले आया। आलीशान आलमारी से क़ीमती मिठाइयाँ निकालकर उसने चाँदी की तश्तरी में सामने रख दिया।

"कब आयीं, रास्ते में बहुत थक गई होंगी?"

वह बक-बक करता सवाल पर सवाल पूछता जा रहा था, मगर अज़ीज़ा समझ गई कि जवाबों में उसकी कोई दिलचस्पी न थी।

एक भव्य छोटी मेज़ के पास बैठकर उन्होंने चाय पी।

"बड़ी गर्मी है," उसने थोड़ा हाँफते हुए कहा। उसकी बढ़ती तोंद का उतार-चढ़ाव दिखाई दे रहा था।

"लगता है आप काफ़ी संतुष्ट हैं?" अज़ीज़ा ने चाय को फूँकते हुए कहा। सईद मुस्कुरा उठा। तभी फोन की घंटी बजी और सईद ने बैठे-बैठे उसकी ओर हाथ बढ़ा दिया।

"चैन से बैठने नहीं देते," उसने फोन पर बात ख़त्म करते हुए कहा। कुछ देर बाद फिर फोन आया। फोन करनेवाले आदमी से सईद बिना किसी दिलचस्पी के, उपेक्षा के साथ बोल रहा था।

"पता नहीं, कैसे ढूँढ़ लेते हैं?" उसने रिसीवर रखकर कहा। "जानते हैं। आदर करते हैं।"

"आप के साथ काम करते हैं?"

"हाँ। योलदाश कैसा है? अब भी "समुदाय", "समष्टि" कहकर दौड़ता रहता है क्या?" वह मुस्कुरा उठा। फिर अपने सवाल के जवाब की प्रतीक्षा किये बिना आगे बोला: "हमारा समुदाय बस तेरह व्यक्तियों का है। एक दूसरे को देखते ही नहीं। फ़ोन करनेवाले वे नहीं, आम लोग हैं।"

"तो अपनी मंज़िल पर पहुँच गये हैं?" अज़ीज़ा ने झुकी दृष्टि से देखते हुए पूछा: "समष्टि से मुक्त हैं, स्वावलम्बी हैं, जनता में प्रसिद्ध हैं।"

सईद मुस्कुराया। अब वह पहले की तरह जोश के साथ बातें नहीं करता था। व्यंग्य पर कोई ध्यान नहीं देता था, इस प्रकार उसके साथ बातचीत करने में कोई मज़ा नहीं रह गया था।

"यह शानो-शौकत बड़ी जल्दी हासिल कर ली? कैसे?" अज़ीज़ा ने चारों ओर संकेत करते हुए पूछा।

"यह सब, यहाँ मेरा कुछ भी नहीं है। यह देखो, सिर्फ़ टैपरिकार्डर ख़रीदा है, यही मेरा है।"

"और बाक़ी?"

"बाक़ी सब कुछ मलाहत का है। इनके लिए भी पैसे लेती है।"

अज़ीज़ा का सिर चकरा उठा। किस की बातों पर यक़ीन करे!

"और वह कहाँ से लाती है? अगर काम नहीं करती..."

"अरे, वह बड़ी माहिर औरत है," सईद ने कहा।

पता नहीं, यह बात उसने प्रशंसा में कही थी या निन्दा में।

"देखिये सईदजान अका..." अज़ीज़ा के चौड़े गाल लाल हो गये, सँकरी आंखे चमक उठीं, "आप बदल गये हैं। क्या आप उस तीन हज़ार व्यक्तियों की समष्टि की याद करते हैं जिसे आप ने छोड़ दिया? और दोस्तों की? क्या क्लब में, बाग़ में बितायी शामें आप को कभी याद आती हैं? और वह दिन जब आप आग में कूद पड़े थे? तब आप ख़ूबसूरत थे, आप का दिल सुन्दर था, याद है?"

अज़ीज़ा की आवाज़ बदलने से सईद भी कुछ रोब में आ गया लेकिन उसने ऐसा ज़ाहिर नहीं होने दिया।

"याद करता हूँ, क्यों नहीं," उसने शान्ति से कहा।

"नहीं, आप याद नहीं करते हैं।"

"मैंने सोचा था, आप मुझे देखने आई हैं, प्रसन्न हुआ था... लेकिन आप तो प्रचार करने लगीं।"

"हाँ!" अज़ीज़ा की आवाज़ तेज़ हो उठी। "आपको देखने आना चाहिए, आप की ज़ियारत करने आना चाहिए, आप महान आदमी हैं। एक विशेष, निराले, अनुपम आदमी! आप के दर्शन करने लोग क़तारों में आयेंगे। आप चौक में जाकर कुर्सी पर खड़े हो जाइये न..."

"ठीक है। करो अपना प्रचार, क्या कहना चाहती हो?"

"हम तो आप को इनसान समझकर ठीक रास्ते पर लाने के लिए प्रयत्नशील हैं। अफ़सोस है... लेकिन नहीं, हम भी नहीं छोड़ेंगे, हम आपको कानों से खींचकर इस दलदल से निकाल देंगे! योलदाश के साथ आयेंगे!" अज़ीज़ा अपना बैग उठाकर एकदम बाहर निकल गयी।

"अज़ीज़ा, प्यारी, सुनो ..."

अज़ीज़ा के बाहर निकलते ही भड़ाक से दरवाज़ा बन्द हो गया। साँकल डाल दी गई। यह घर की मालकिन मलाहत थी। ऊँचे बाड़ और बन्द दरवाज़े से सईद की पुकार नहीं सुनाई दी। उम्मीदों पर पानी फिर जाने से अज़ीज़ा बहुत परेशान हुई और कुत्ते की सूरतवाली लोहे की पट्टी पर माथा टिकाकर रो पड़ी।

"अभी योलदाश आदि के साथ लौटकर आयेंगे" कह रही थी वह रोते-रोते। अज़ीज़ा की एक मात्र आशा यही थी।

उधर योलदाश और उसके साथी अपने कारख़ाने से दो सौ किलोमीटर दूर, पहाड़ों पर अपने काम के नये स्थान को देख रहे थे। दोवतेपा नामक यह स्थान आदिम स्तेपी था। आज तक कोई भूला-भटका काफ़िला भी यहाँ से नहीं गुज़रा था। एक ओर नंगे चपटे पहाड़ों का घेरा था तो दूसरी ओर बेकायदा नदी बहती। यही नदी कारख़ाने तक पहुँचने के लिए एक मात्र रास्ता थी। यदि पहाड़ों पर स्थित खानों से नदी तक सीधा रास्ता बनाया जाये तो सिलिकैट क़रीब-क़रीब मुफ़्त में मिलेगा। योलदाश और उसके साथी दोवतेपा में इसी उद्देश्य से आये थे।

बजरों पर सवार होकर वे पन्द्रह-सोलह दिनों में अपने सारे साज-सामान के साथ यहीं आ पहुँचे। डिज़ाइनरों से ख़ाली रह गई दो झोंपड़ियों के पास सोने के लिए दो डिब्बे (रेलगाड़ी के डिब्बों की तरह होते हैं) तथा रसोई व गोदामों के लिए लकड़ी से कई कोठरियाँ बनाई गईं। ऊपर में उन्हें कनवास से ढक दिया गया। नदी का किनारा बड़ा अच्छा निकला, स्क्रेपेर और एक्सक्वेटर बजरे से अपने "पाँव" पर खड़े होकर उतर गये। पहले ही हफ्ते बिजली की मशीन चालू कर दी गयी, सुनसान पहाड़ जैसे सजीव हो उठे। सामान की ढुलाई, नये स्थान पर बसने, डिज़ाइन के अध्ययन, लोगों को पालियों में बाँटने से संबंद्ध सारा काम ख़ुद फ़रमानोव ने किया। उसने रसोई के अन्दर एक कोने में अपना दफ़्तर बना लिया था और वहाँ रात में भी रोशनी जलती रहती थी। पता नहीं, काम अधिक होने या किसी और कारण से, वह यहाँ पहले की तरह शांतचित्त नहीं था, किसी भी बात पर फौरन नाराज़ हो उठता, योलदाश को दफ्तर में बुलाकर, उंगली पेटी के अन्दर डाल, ऐनक के नीचे से छूटने का

यहाँ समय भी नहीं था और सुविधा भी नहीं थी। वह कहीं भी न जाय, योलदाश को भी, बाक़ी लोगों को भी अपने पास महसूस करता, उनकी अच्छी-बुरी आदतें, हरेक का स्वभाव, चाल-चलन —सब कुछ उसकी आंखों के सामने ही प्रतीत होता, उनकी आवाज़ें, ठहें, गाना-वाना उसके कानों में। ख़ुद भी नौजवानों जैसा हो गया।

कुछ उठाने-रखने में आसपास मददगार न मिलने पर वे उससे ही कह देते: "इसे उठाने में मदद दीजिये, कॉमरेड फ़रमानोव!" फ़रमानोव लकड़ी उठाने पर विवश। कुछ समझ में नहीं आता कि यहाँ उसे अपने आप को कैसे पेश करना, संभालना है, कभी-कभी छोटी-छोटी बातों पर क्रोधित हो उठता जैसे सब लोग उसकी बातें मौन होकर नहीं सुनते। लेकिन यह सभा नहीं, विराट स्तेपी थी।

सब साथ-साथ खाते-पीते, सोते-जागते। सो, आपस में कोई फ़र्क़ नहीं रह गया था। तीन-चार दिनों में फ़रमानोव ने कुछ नौजवानों के नाम भी जान लिये।

जिस दिन साज-सामान के साथ विस्फ़ोटक पदार्थ आये थे उसी दिन बारिश होने लगी। फ़रमानोव अंधेरा होने से पहले सब कुछ उचित स्थान पर पहुँचाने की चिंता में था। तभी अचानक एक नौजवान पुस्तकों के तीन-चार पुलिन्दे उठाये चला जाता दिखाई दिया। यहाँ डिब्बे, बोरे पड़े हैं और उसे पुस्तकें बचाने की फ़िक्र है, फ़रमानोव आग-बबूला हो उठा।

"रुको! क्या है यह?" फ़रमानोव चिल्लाया। बारिश से उसका ओवेरकोट भीग गया था, वह कुछ कांप भी रहा था।

"पुस्तकें हैं, पुस्तकें, साथी फ़रमानोव, मैं अभी उन्हें रखकर आता हूँ!" और नौजवान पुस्तकें उठाये दौड़ पड़ा।

"रुको! क्या नाम है तुम्हारा?"

"मेरा नाम पोलात है!" नौजवान ने रुके बिना कहा। वह बारिश में किताबें भीग जाने से परेशान था! "मैं पल भर में लौट आऊँगा।"

लेकिन आवेश में आये फ़रमानोव ने उसका रास्ता रोक लिया। कंधे पर हाथ रखते ही पोलात के पांव फिसल गये और किताबों का एक पुलिन्दा गिर पड़ा। ज़ोर की बारिश हो रही थी। भीग गया फ़रमानोव क्रोधित होकर "कुटिलता", "निजी साज-सामान" के बारे में जाने क्या-क्या चिल्लाता रहा लेकिन पोलात के कानों में कुछ नहीं सुनाई दे रहा

था। वह कीचड़ में पड़ी पुस्तकों को देखता रह गया था: आँखों में आँसू छल-छला आये थे।

आख़िर कोफ्त निगाहों से फ़रमानोव को देख, पुस्तकें उठाकर डिब्बे की ओर वह चला गया। फ़रमानोव ने उसका नाम पूछकर लिख लिया।

अगले दिन उसने पोलात को बुलाने का आदेश दिया। मगर योलदाश दौड़कर बुला लाने की जगह दहलीज़ पर ही खड़ा रहा।

"कॉमरेड फ़रमानोव, हम काम की शुरुआत ऐसी बातों से न करें," उसने कुछ अधिक साहस से कहा।

"कैसी बातों से?"

"यही... बुलाकर झिड़की देने से। वह आदमी ही है, पुस्तकों के बिना नहीं रह सकता।"

"पुस्तकों को मैं भी पसंद करता हूँ, भई। और बहुत-सी चीज़ों को पसन्द करता हूँ। लेकिन जब सभी लोग सरकारी काम के लिए जी जान से लगे हों, मैं अपनी पसन्द की चीज़ों में व्यस्त नहीं रह सकता। यह स्वार्थपरता है, अनुशासन के विरुद्ध है! क्या आप पहले ही दिन से समष्टि को अस्त-व्यस्त करना चाहते हैं?"

योलदाश बहुत थका हुआ था। गले में दर्द भी था। ग़रारा करने से कल कुछ ठीक हुआ था। आज दिन भर औज़ार वगैरह ले जाने में व्यस्त रहा था। अभी-अभी लौटा था। पोलात भी वहीं से आकर हाँफ़ते बैठा था। योलदाश का जी उसे बुला लाने का नहीं किया।

"पोलात को हम पर छोड़िये। नेता को एक-एक की तरद्दुद अलग-अलग नहीं करनी चाहिए, इसके लिए समष्टि तो है ही," योलदाश ने कहा।

"बेकार की बात है!"

"यह आप की अपनी बात है, साथी फ़रमानोव।"

फ़रमानोव आंखों को यों झपकाने लगा मानो योलदाश को पहचान ही नहीं पा रहा हो।

"आप की बात में कोई जान नहीं: यदि आप जैसे लोगों पर यह काम छोड़ दिया जाये तो पोलात आदि भी समष्टि को छोड़कर चले जा सकते हैं। सईद का क्या हुआ..."

"मुझे उस नाम के लोभी के बारे में कुछ न कहो। तुम्हें तो मालूम

ही है, वह हमसे क्या चाहता था! तुम किसकी वकालत कर रहे हो, भैया ?"

"भैया न कहिये, मेरा नाम है। वास्तव में सईद क्या है और आप क्या हैं! उसने समष्टि का अनादर किया और चला गया। और आप? क्या आप आदर करते हैं? आप हममें से किसी को जानते-पहचानते नहीं हैं। सईद ने तो अपने दिल की बात का साफ़-साफ़ इज़हार कर दिया। और आप अपना अनादर छिपाने की कोशिशें करते हैं, आप की ज़बान पर सदा "समष्टि, समुदाय, आम जनता" जैसे शब्द रहते हैं, उग्र "जनवादी" हैं आप ख़ैर, समष्टि आपको भी होश में लाने में समर्थ है।"

और योलदाश फटाक से दरवाज़ा बन्द करके चला गया।

फ़रमानोव के चेहरे का रंग उतर गया। वह पहली बार अपने को इतना निर्बल महसूस कर रहा था। उसे ख़ुद पर तरस आ रहा था। कैसा अन्याय है? ये लोग क्यों उसका इतना अपमान करते हैं? क्यों उससे घृणा करते हैं? क्या यह ठंडक पहले भी थी या यहीं आने के बाद पैदा हुई? शायद पहले भी थी। हाँ, ज़रूर थी, मगर तब फ़रमानोव को इसके बारे में सोचना नहीं पड़ता था। अब सोचने लगा: ऐसा क्यों?

क्या मुखिया होकर वह समष्टि से अपना व्यवहार ख़ुद तय नहीं कर सकता? या यह उसपर निर्भर नहीं? क्यों?

क्यों? क्यों? क्यों? अपने लोगों के घनिष्ठ सम्पर्क में आने के साथ ही साथ उल्टे ही फ़रमानोव उनसे अधिक झगड़े करते गया। इससे वह ग़ुस्से में आता, कभी-कभी उसे मज़ा भी आता, पर साथ ही वह कष्ट भी उठाता था। उसके मन में हज़ारहा सवाल उभरते।

आपसी संबंधों में तनाव बढ़ता गया। कभी-कभी योलदाश फ़रमानोव से अपने बुरे व्यवहार पर अफ़सोस करता था, मगर यह देखकर कि जब मुखिया युवकों से ख़ूब झड़पता, तब भी वह उसी स्थान पर कोई निर्णय लेता, उन्हें अपने दफ्तर में बुलवाता नहीं, इस हालत में वह सोचता कि यही व्यवहार बेहतर है।

इस समय सभी स्थानों पर काम शुरू हो चुका था। पहाड़ों के पार से स्क्रेपेरों की आवाज़ें सुनाई देने लगीं, पहाड़ी ढलान पर के तन्दूर पर कड़कते हुए अरचा पेड़ की लकड़ी जलती, नदी के किनारे पर नई पगडंडियाँ पैदा हुईं, कान पटरी की उस झन-झन के आदी हो गये

जिससे लोगों को नाली पर बुलाया जाता था। यों तो सड़क लम्बी नहीं थी, मगर उसके निर्माण में कठिनाई इस लिए थी कि भावी सड़क को दो पहाड़ियों को पार करना था। एक तो दीवार की तरह ढालू थी। ऐसा लग रहा था कि वह जानबूझकर यहीं रखी गई ताकि यहाँ कोई मार्ग न हो। दोवतेपा (बेढँगी पहाड़ी) नाम भी इस स्थान को शायद उसी के कारण दिया गया होगा। यह पहाड़ी चट्टान-पत्थरों की बनी थी और प्रोजेक्ट में भी उल्लेख किया गया था कि उसे विस्फोट से उड़ा देने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं है। इसी लिए सबसे अधिक ध्यान उसी पहाड़ी पर, वहाँ विस्फोटक पदार्थ रखने के लिए छेद बनाने पर दिया जा रहा था। बरमाने की मशीनें लगाई जाने लगी थीं।

फ़रमानोव नौजवानों के काम से तो संतुष्ट था, मगर उनका व्यवहार उसे जँचता नहीं था। वे उससे ऐसा सीधा-सादा व्यवहार रखते थे मानो वह उनका मुखिया नहीं बल्कि उनके बराबर हो। फ़रमानोव को लगता था कि उनकी हरेक हरकत उसकी प्रतिष्ठा पर आघात पहुँचाने की ओर उन्मुख है। वास्तव में कोई भी उसकी प्रतिष्ठा पर प्रहार करने के बारे में सोचता ही नहीं होगा पर उसको ऐसा लगता था।

एक दिन विस्फोट करने के जाल बिछाने के तरीक़े सिखाने के लिए एक पाठ हुआ। तोलागान तथा दो-एक अन्य नौजवान नहीं आये। कहा कि हम यह सब जानते हैं। फ़रमानोव बहुत क्रोधित हुआ:

"जानते हो तो क्या हुआ? आख़िर मुखिया के कहने पर आना तो चाहिए।"

संध्या के समय फ़रमानोव लड़कों के आवास में गया, सोचा कि ख़ुद जाकर तोलागान को सबक़ सिखाऊँ।

ग़ुस्से से उबलता फ़रमानोव ने जब दरवाज़ा खोला तो कमरे में कोई नहीं था। लेकिन अंधेरे कोने से आवाज़ गूँजी: "बिना पूछे अंदर क्यों आये, वापस जाओ!"

फ़रमानोव के रोंगटे खड़े हो गये: यह क्या व्यवहार है? कुछ आगे गया। पलंग पर चादर बिछी थी, सब कुछ ठीक-ठाक, परदे नीचे खींचे गये, कोई भी नहीं दिखाई दे रहा था, मगर उसी आवाज़ ने फिर कहा:

"बिना पूछ अन्दर क्यों आये, वापस जाओ!"

फ़रमानोव की नज़र कोने पर पड़ी तो देखता है: वहाँ तो पूरा वर्क-

शॉप है – खुले रेडियो सेट, रिसीवर, रेडियो के तार, हथौड़े, चिमटे... तो यह सब तोलागान का है। तो वह इसी में व्यस्त रहता है!

फ़रमानोव अभी कुछ सोच भी नहीं पाया था कि वही आवाज़ फिर सुनाई दी: "बिना पूछे अन्दर क्यों आये, वापस जाओ।"

फ़रमानोव समझ गया कि यह टेपरिकॉर्डर है। ग़ुस्से में बटन दबाकर आवाज़ बंद कर दी। मगर इसी क्षण उसके सिर पर ज़ोरदार प्रहार हुआ। सिर उठाकर ऊपर देखा: छत पर बेलना लटकाया गया था। बहुत क्रोधित होकर उसे पकड़ लिया, सोचा कि उठाकर फेंक दूँ, मगर कहीं से उसके ऊपर बालू उँडेल दिया गया, पाँव तले कुछ फट पड़ा, आंखों के सामने अंधेरा छा गया। ग़ुस्से से वह बावला हो, न आंखें मलने, न कपड़ा साफ़ करने के बारे में सोचता, बस चारों ओर देखता रह गया।

"बदमाश!" कहकर वह चिल्ला उठा। पागलों की तरह जाकर कोने में पड़े किसी औज़ार को उसने ठोकर मारकर गिरा दिया, फिर ऊपर चढ़कर वहाँ की चीज़ों को वह रौंदने लगा, न जाने क्या-क्या गिरा, क्या टूट गया, वाल्व टुकड़े-टुकड़े हो गये। जब फ़रमानोव वहाँ से निकला तो उसके ऊपर से बालू गिर रहा था, कपड़े गंदे, आंखें साफ़ नहीं देख रही थीं। उसका पारा चढ़ गया था, फिर भी आँखों में इस सवाल की झलक थी कि "कहीं किसी ने देखा तो नहीं?"

अच्छा हुआ कि आस-पास कोई नहीं था, बस बावरची औरत ने ही उसे दूर से देखा और "बाप रे!" कहकर घर के पीछे चली गई।

जब तोलागान और उसके साथी काम से लौटे तो बावरची औरत से यह बात सुनकर उन्होंने पहले ख़ूब कहकहा लगाया, फिर दिमाग़ कुछ ठीक हुआ तो सोचने लगे कि अच्छा नहीं हुआ। इस लिए उन्होंने जाकर माफ़ी माँगने का निश्चय किया। आख़िर तोलागान ने जब यह मज़ाक़िया "तकनीक" बनाया था तब उसे ख़्याल ही नहीं आया कि उनके सोने के कमरे में (यानी डिब्बे में) मुखिया आ जायेगा। उसने यह मज़ाक तैमूर के लिए बनाया था। तैमूर ने "शॉर्ट वेव रेडियो के माध्यम से लड़कियों से परिचय प्राप्त कर लें", कहकर बहुत तंग किया था। हरदम आ धमकता था। तोलागान की उपस्थिति, अनुपस्थिति में आ आकर इजाज़त के बिना यंत्र पर हाथ लगाना इजाज़त के बिना प्रसारण नहीं करना चा-

हिये था। इसी लिए तोलागान ने वह तरकीब ढूंढ़ निकाली ताकि इस तकनीक के माध्यम से तैमूर को सबक़ सिखा सके। पर इस जाल में कोई और नहीं फ़रमानोव आ फँसा। नहीं, उससे माफ़ी ज़रूर मांगनी है।

मगर जब डिब्बे में प्रवेश करके टुकड़े-टुकड़े हो गये यंत्रों को देखा तो तोलागान गुस्से में आ गया। यह तो न्याय की बात नहीं। आख़िर मज़ाक़ को समझना चाहिए, जैसे तुम मुखिया नहीं ख़ुदा हो। आख़िर यह सब बनाने के लिए . . .

तोलागान रोते-रोते बचा और एकदम टूट गये ब्रॉडकास्टिंग यंत्र के अवशेषों को इकट्ठा करने लगा। आखिर किसी ने भी माफ़ी नहीं मांगी, मुखिया ने भी नहीं बुलाया। ऐसा लग रहा था कि यह अप्रिय घटना भुलाई जाने लगी, मगर आपसी व्यवहार में अधिक तल्ख़ी आती जा रही थी।

ठीक उन्हीं दिनों दोवतेपा में फ़रमानोव की बेटी आ पहुँची और स्थिति बिलकुल बदल गई। लड़की चित्रकार थी। अपनी गर्मियों की छुट्टियाँ गतेपी में बिताने के लिए कारख़ाने आयी थी मगर यह सुनकर कि उसका बाप दोवतेपा में है, वह यहाँ चली आयी। अवाक् हुए पिता को उसने तुरंत शांत कर दिया: "मैं जिन दृश्यों की खोज कर रही थी, वे सब यहीं हैं।"

नौजवानों ने इस मुलाक़ात में बड़ी दिलचस्पी ली क्योंकि उन्होंने फ़रमानोव का पारिवारिक, रिश्तेदारी व्यवहार कभी नहीं देखा था। अजीब है, अप्रत्याशित स्थान पर फ़रमानोव का पैतृक प्यार उभर आया, उसके चलने-धरने, चेहरे पर, आंखों में नेकी की झलक पैदा हो गयी। बेटी शायद ऐन उसी समय आयी थी जब वह तनहाई महसूस कर रहा था, कष्ट उठा रहा था। इस लिए कहीं भी गये बिना, अपनी रानो को पास ही रखता था।

रानो दुबली-पतली, सांवली थी। हालांकि शक्लसूरत आकर्षक नहीं थी, पर वह गंभीर स्वभाव की, समझदार, अक़्लमन्द लड़की थी, कला का उसे बड़ा शौक़ था। इसी लिए यदि पहले रानो ने बस फ़रमानोव की बेटी होने के नाते सब का ध्यान अपनी ओर आकृष्ठ किया था तो फिर जल्दी ही उसने नौजवानों की शांत चुरा ली। उसे मालूम था कि सर्वत्र उसी की चर्चा हो रही थी कि नौजवान जानबूझकर उन्हीं पगडंडियों से

गुज़रने की कोशिशें करते जहाँ वह चित्र खींचती थी, कि शाम को गीत गाते वे देर से सोने के लिए लेटते, मगर वह सोचती थी कि इसका कारण उसका आकर्षण नहीं बल्कि यही है कि यहाँ पर कोई और लड़की नहीं है। और नौजवान उसकी ऐसी बात सुनकर उसके इर्द-गिर्द और अधिक चक्कर काटने लगे।

रानो अपने चित्र रसोई की दीवार पर टिका देती थी। पर नौजवान चित्रों से अधिक ख़ुद उसी को देखने को उत्सुक थे। हरेक नौजवान अपने ढंग से उसकी कल्पना करता, अपने सपनों के अनुसार उसके गुण बढ़ाता, हरेक के मन में अपनी रानो थी और वह उसी की आशा का पोषण करता था। एक दिन एरगश ने जिस की शादी की उम्र कभी के आ चुकी थी, खुल्लम-खुल्ला ढंग से उसकी ओर देखकर आह भरी। इसका अर्थ ख़ुद उसी को और भगवान को मालूम था।

काम के समय रानो हरा ब्लाउज़ और भूरे रंग का शलवार पहने कभी इस तो कभी उस चोटी पर दिखाई देती, कभी-कभी विस्फोट की धूल में चट्टान पर दिन भर बैठकर पाली से लौटते लोगों के साथ घर जाती थी। तसवीर रखने का उसका ढाँचा उठाये लौटनेवाले नौजवान नये चित्र के दृश्य पहचानकर गर्व का अनुभव करते थे:

"यह हमारा भाग है, पीछेवाला पहाड़ देखते हो?"

"धूल का यह बादल हमारा है। बरमाने की मशीन भी।"

"रानोख़ान, जल्दी ही हम टीले को उड़ायेंगे, पचास ट्रॉतील, द सौ एटमोस्फ़ीर! तभी देखेंगे धूल का बादल, दस मिनिट तक पत्थ बरसते रहेंगे, शानदार दृश्य! जायेंगी?"

यदि रानो निर्माण स्थल पर एक भी दिन नज़र न आये, तो नौजवा को उसकी कमी बड़ी खलती, ख़ुद हैरान थे कि पहले उसके बिना कै काम किया। एक दिन वह थोड़ा अस्वस्थ हो, अपने कमरे से नहीं नि ली तो पता नहीं नौजवानों ने काम कैसे किया। यही नहीं, उस दिन म सम की भविष्यवाणी सुनकर फ़रमानोव भी परेशान था, काम का हा देखकर वह और अधिक बिगड़ गया। अनुमान था कि पहाड़ों पर ज की वर्षा होगी, पंक बाढ़ की भी आशंका थी। यदि उसी समय हु जब इन कुओं में विस्फोटक भर दिया जायेगा तब सारा काम, कई मही का श्रम व्यर्थ हो जायेगा। कुओं में पानी भरेगा, विस्फोटक पदार्थ

जायेगा, बह जायेगा। पंक बाढ़ तक विस्फोट करने के लिए अधिक जोश, उत्साह के साथ काम करना ज़रूरी था... और ये...

और नौजवान आज भी शाम के खाने के बाद भोजनालय की मेज़ें एक ओर हटाकर आधी रात तक डाँस करते रहे। तोलागान ने टेपरिकार्डर के रिकार्डों को दो बार घुमाया। रानो कभी इस, कभी उस नौजवान के साथ डाँस करते घूमती, हाँफ़ उठी थी। उसका चेहरा सेब की तरह लाल हो चुका था। आज उसने कुछ छोटा और कुछ अधिक चौड़ा फ़ाक पहन रखा था। जब एक नौजवान की बाँहों से उड़कर दूसरे की बाँहों में आ जाती तो उसके फ़ॉक के घेरे फहराते और वह ख़ुद ख़ूब हँसती थी। तैमूर और पोलात जैसे शक्तिमान नौजवान तो उसे उठा-उठाके फिर फ़र्श पर रखते थे। जब रानो एरगश के साथ डाँस करती, तभी उसे कुछ आराम मिलता क्योंकि एरगश संजीदा है, दूसरों की तरह लड़की का चेहरा ताकते नहीं रहता, वह उसे कष्ट पहुँचाये बिना मन्द गति से चक्कर लेता है।

इस प्रकार उस शाम को कनवास की छत के नीचे ख़ूब ख़ुशियाँ, खेल-हँसी हुई। इतने नौजवानों के साथ डाँस करनेवाली रानो अंत में बहुत थक गई।

अगले दिन मौसम बड़ा सुहाना था। प्यारी-प्यारी हवा बह रही थी...

पहाड़ी पर पटरी को झंकारा गया, लोहे की आवाज़ देर तक क्षितिज में गूँजती रही। सड़क के निर्माण स्थल पर एक पाली समाप्त हो गई।

जब नौजवान हाथ-मुँह धोकर काम के लिए प्रस्थान होनेवाले थे, शोर पटु सलीम एक दुखद ख़बर के साथ आ पहुँचा। रानो अचानक बुरी तरह बीमार पड़ गई, उठ नहीं पा रही है!

योलदाश ने घड़ी पर नज़र डाली:

"आइये, तुरंत देखकर आ जायें!"

इस बात पर सभी स्वीकार हो गये। फ़रमानोव के कमरे में भोजनालय से होकर जाया जा सकता था। यह देखकर कि नौजवान हाल पूछने आये हैं, बेटी के पास बैठे फ़रमानोव की आँखों में आँसू आ गये। रानो फ़ोल्डिंग पलंग पर बहुत से कंबल ओढ़े पड़ी थी। उसका हाल देखकर सब लोग डर गये; कल की खिले फूल जैसी रानो मुरझा गयी थी! चेहरे

पर सर्द पसीना था, बुख़ार से बरौनियाँ नम थीं, आँखें पीली पड़ गई थीं। तेज़ बुख़ार से रानो काँप रही थी, साँस लेने में दिक़्क़त, जी मिचला रहा था। वह उठने की कोशिश करती, मगर कै करने में असमर्थ होकर बड़ा कष्ट उठा रही थी। वह शायद आये लोगों को पहचान नहीं पायी, कराहती रही।

पोलात आगे बढ़ आया।

"रानो! रानोख़ान!" पोलात ने लड़की के पास की कुर्सी पर बैठकर कहा। लड़की ने बड़ी कठिनाई से आँखें खोलीं। वह उसे पहचान गयी थी। पोलात ने उसका बुख़ार मापा, नब्ज़ देखी।

"जीभ दिखाइये ज़रा, रानोख़ान।"

फिर पोलात ने अपने दोस्तों को सम्बोधित किया:

"ज़रा बाहर जाइये, हवा नहीं आती..."

वह रानो के साथ अकेला रह गया। बाप द्वार के पास खड़ा था।

"उस दिन जब बीमार हुई थीं, तब भी इतना ही ज़्यादा बुख़ार था क्या?"

"जी हाँ", लड़की ने दुर्बल आवाज़ में कहा।

पोलात देर तक सोच में डूबा बैठा रहा। तसल्ली देने के लिए एक भी शब्द न पाकर दोस्तों के पास जा पहुँचा। सब लोग भोजनालय में उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

"कुछ समझ आया? ठीक तो हो जायेगी?" फ़रमानोव ने पूछा। पोलात जवाब देने में असमर्थ होकर कुछ क्षण तक चुप रहा और फिर रोगी के पास लौट आया। सब लोग द्वार के पास एकत्र होकर कान लगाके सुनने लगे। द्वार सख़्ती से बन्द नहीं होता था, बुरी तरह चरमरा रहा था। उसके होने से न होना बेहतर था।

"रानो... आप को क्या हुआ? कहाँ दर्द है?"

लड़की ने कराहते हुए सिर हिलाया:

"पता नहीं..."

पोलात ने तौलिये से उसका माथा पोंछकर फिर पूछा:

"सुनिये, जब आप विस्फोट के स्थान पर पत्थरों के बीच चल रही थीं, चट्टान पर बैठी थीं तब... आप को किसी कीड़े-मकोड़े ने तो नहीं काटा?"

रानो की आँखें खुल गईं। आँखों की पुतली घबराहट से चमक रही थी। फिर सिर हिलाकर धीमी आवाज़ में कहा: "हाँ, काटा था।" कहने को तो कहा, मगर पोलात की ओर वह जिस निगाह से देख रही थी उसमें सवाल था: "तुम्हें कहाँ से मालूम?" पोलात भौहें चढ़ाये था।

"कब? याद है?"

लड़की बुरी तरह हाँफने लगी, उसे उबकाई आ रही थी, बड़ा कष्ट था। नाड़ियाँ उभर आयीं। चेहरे पर पसीना भर गया।

"क्यों? क्यों पूछ रहे हैं, पोलात अका?"

"अच्छा, न बोलिये, कोई बात नहीं। घबराइये मत, थक जायेंगी..."

पोलात भोजनालय में चला आया। फ़रमानोव को संकेत से रोगी के पास भेजकर ख़ुद द्वार की ओर बढ़ा। वह बहुत परेशान, बहुत घबराया हुआ था। ऐसा लग रहा था कि वह आस-पास खड़े दोस्तों को देखता ही नहीं। दोस्त उसकी बात की प्रतीक्षा कर रहे थे। क्या बात है? ख़ोफ़नाक तो नहीं? यहाँ पोलात के अतिरिक्त और कौन यह जान सकता था। पोलात द्वार के पास रुका, योलदाश उसकी ओर बढ़ा मानो उसने कुछ अनुभव किया।

"अच्छा? कुछ बता सकते हो?"

पोलात ने कोई जवाब नहीं दिया। वह न जाने किस उधेड़बुन में पड़े साथियों को देख रहा था।

"अच्छा, तो बाहर निकलें। वहीं सलाह-मशविरा कर लेंगे," योलदाश ने घड़ी पर नज़र डालकर कहा। सब आगे बढ़ने लगे।

इसी क्षण पोलात ने तेज़ी से जाकर अपनी पीठ से द्वार को बन्द कर दिया। वैसे ही खड़े-खड़े लोहे का टेकन लगा लिया।

"क्या कर रहे हो? क्या मतलब है इसका?"

पोलात ने चुपके से द्वार को अन्दर से ताले से बन्द कर दिया और चाबी अपनी जेब में रख ली।

"अरे?!"

"खोलो द्वार!"

"नहीं, द्वार नहीं खोलना चाहिए," पोलात ने ऐसी धीमी आवाज़ में कहा मानो इसके लिए वह ख़ुद दोषी हो।

नौजवान एक दूसरे की ओर देखकर कुछ देर तक मौन रहे, फिर दोबारा शोर मचा।

"क्या करनेवाले हो, क्या बात है?"

"बताओ, न!"

"खोलो द्वार!"

"नहीं खोलूँगा," पोलात ने कहा और अपना अनुमान समझाना शुरू कर दिया। उसके विचार से रानो का रोग बड़ा विषम, संक्रामक रोग हो सकता है। चूंकि उड़ाये गये दर्रे की मिट्टी के बीच उसे खटमल ने काटा है। पोलात को मालूम है कि स्तेपी में ऐसे खटमल कभी कभी महामारी का स्रोत बन जाते, जब वे किसी को काटते तो शरीर में स्पीरोहेता नामक खौफ़नाक तत्व फैलाते जिस से रोग संचार होता।

"मुझे तो बीमारी का अनुमान लगाने का कोई अधिकार नहीं, मैं जो कुछ जानता हूं, वही कहता हूँ, बीमारी के सभी संकेत इसी का प्रमाण देते हैं..." पोलात ने सिर झुकाके कहा।

वह अचानक बेबस होकर द्वार के पास की कुर्सी पर बैठ गया। योलदाश भी बैठ गया। बाक़ी लोग अवाक् होकर खड़े रह गये। बेटी के पास से निकला फ़रमानोव इस सन्नाटे से घबराकर अन्दर के द्वार की दहलीज़ पर खड़ा रह गया! उसका बड़ा-सा ऐनक अंधकार में अजीब रूप से चमक रहा था। काफ़ी देर के बाद एरगश की शांत आवाज़ ने सन्नाटे को भंग कर दिया:

"यह तो स्पष्ट है... रानो, अफ़सोस है," उसने पोलात के पास आकर कहा, "अच्छा, द्वार बन्द करने का क्या मतलब है? हमें..."

पोलात ने न जाने क्यों अधिक समझाना उचित नहीं समझा। मन में पैदा हुए विचार से ख़ुद डर गया या अपनी दलीलों पर ख़ुद उसे विश्वास नहीं था पर उसने घबराई हुई आंखों से साथियों की ओर यों देखा मानो उनसे मिन्नतें कर रहा हो लेकिन बोला कुछ नहीं।

बात स्पष्ट थी, आख़िर कल वे आधी रात तक रानो के साथ नाचते रहे थे। आज सभी दुश्चिन्ता में पड़े थे। एक अभी तक स्थिति को न समझ पाकर नाराज़गी प्रकट करने के लिए तड़पता, साँस तेज़ करके शब्द ढूँढ़ रहा था तो दूसरा अपने ही विचारों को सम्भालने की कोशिश में मन ही मन बड़बड़ा रहा था। कुछ सिर झुकाये थे तो कुछ घबराकर आंखें

फाड़े थे। यहाँ एक पूरी पाली थी, मुखिया के साथ नौ व्यक्ति। रात की पालीवाले अभी इस घटना से बेख़बर प्रातःकाल काम से लौटकर सो रहे थे।

अचानक फ़रमानोव अपने शरीर से दरवाज़े को धकियाने लगा। स्थिति की गंभीरता अभी तक पूरी तरह उसकी समझ में नहीं आयी थी।

"खोलो! खोलो न?!" उसने चिल्लाकर पोलात से कहा। "आपको क्या अधिकार है? क्या अधिकार है?"

योलदाश जाकर दरवाज़े पर खड़ा हो गया।

"साथी फ़रमानोव..." फिर उसे भी आवाज़ ऊँची करनी पड़ी: "साथी फ़रमानोव!"

"खोलो, मैंने कहा न!" फ़रमानोव फिर दरवाज़े की ओर बढ़ा। "यहाँ मुखिया कौन है? कौन है मुखिया? मैं आप से पूछ रहा हूँ!"

"साथी फ़रमानोव..."

"आख़िर, आख़िर..." फ़रमानोव की आवाज़ बदल गई, करुण हो उठी, "आख़िर रोगी के लिए डॉक्टर बुलाना है या नहीं? कल-परसों पंक बाढ़ आयेगी, कुओं में विस्फोट का काम ख़तम करना है या नहीं? मैं यहाँ मुखिया हूँ या क्या? क्या हमें आप क़ैद कर रखनेवाले हैं! इसके बुरे परिणाम निकलेंगे। याद रखो!"

"साथी फ़रमानोव," योलदाश ने उसे एक ओर ले जाने की कोशिश की, "क्या आप नहीं समझते... स्थिति को!"

"अनुमान है! अन्दाज़ा!"

"ऐसी बातों से अन्दाज़ा ही काफ़ी है। बाहर लोग हैं... हमें क्या अधिकार है?"

फ़रमानोव कुछ शांत हुआ।

"क्या करना चाहते हैं?"

"आइये, साथ-साथ सलाह-मशविरा करें।"

सब लोग उनके गिर्द एकत्र हो गये।

"पहला काम है..." इसी समय अन्दर से रानो के कराहने की आवाज़ सुनाई दी। पोलात अपनी बात रोककर रोगी के पास गया। योलदाश ने बात जारी रखी:

"पहला काम: रोगी और उससे संपर्क रखनेवालों को अलग रखना

है। वह हमने कर लिया," उसने दरवाज़े पर नज़र डाली, "घबराना नहीं चाहिए। दूसरा काम है–तुरंत डाक्टर को बुलाने का उपाय ढूंढ़ निकालना।"

कोने में मूर्त्तिवत खड़ा तैमूर बोल उठा, "इसका कोई चारा नहीं।"

"सामान लानेवाला बजरा कब ग्रानेवाला है?"

"चार दिन बाद।"

फिर से सन्नाटा छा गया। सब कहीं न कहीं बैठ गये। ग्रचानक शोर पटु सलीम चीख़कर उठ खड़ा हुग्रा। उसने योलदाश का गरेबान पकड़ लिया:

"खोलो दरवाज़ा! मुझे छूत का भय नहीं। मैं बिलकुल स्वस्थ हूँ। तुझे कोई ग्रधिकार नहीं, खोलो!" तीन व्यक्तियों ने मिलकर बड़ी कठिनाई से उसे ग्रपने स्थान पर बैठाया।

"हाय, तुम तो बड़े नाज़ुक निकले, निखट्टू," एरगश ने हथेली झटककर कहा।

तभी ग्रन्दर से पोलात निकला।

"बुख़ार कुछ कम हो रहा है। मुझे लगता है कि सबका उसके पास जाना उचित नहीं। मैं... इसके बाद भी केवल... मैं उसके पास जाऊँगा। मंजूर है," योलदाश ने कहा। "सुनिये कोमसोमोल की ग्रनुशासनबद्धता का प्रदर्शन करने का समय ग्रा गया है। दूसरों का स्वास्थ्य हमीं पर निर्भर है। सावधान रहना–हमारा कर्तव्य है..."

"हमारे स्वास्थ्य का भी सवाल है। कोई उपाय ढूँढ़ निकालना चाहिए," पोलात ने कहा। उसकी इस बात से सब होश में ग्रा गये, सब सोच में डूब गये: मगर कोई चारा नहीं था।

इस बीच योलदाश बाहर जाकर एक काग़ज़ चिपका ग्राया जिससे स्थिति के बारे में दूसरों को पता चल जाये।

"ग्रच्छा, तो ग्रब क्या करने का विचार है?"

सब चुप थे।

सूरज उठ गया था, कनवास के छत के छेदों से ग्रन्दर जानेवाली धूप ने भोजनालय की हवा को दमघोंट कर दिया। कोई उपाय न सूझने के कारण सब बैठे रहे? ग्रचानक एरगश जल्दी से बोल उठा:

"सुनिये! तोलागान का ब्रॉडकास्टिंग यंत्र जो है?!"

सब हरकत में आने लगे: बैठे हुए लोग उठ गये, लेटे हुए लोग बैठ गये। शोर मचा। मगर उसी क्षण कोने से आयी तैमूर की आवाज़ ने सबका जोश-उत्साह ख़तम कर दिया।

"वह तो टुकड़ा-टुकड़ा हो गया है।" उसने कहा।

इसके बाद फिर सन्नाटा छा गया। यह सन्नाटा फ़रमानोव को लोहे की तरह भारी लगा। उसने सिर झुका लिया, आंखें ज़मीन पर टिका ली, फिर भी वह पास के लोगों की नज़रों को चुभती हुई अनुभव कर रहा था। इस क्षण वह भूल गया कि मुखिया है, इसके बारे में भी नहीं सोचा कि उसकी प्रतिष्ठा को आघात पहुँचेगा। आँखों में आँसू भरकर वह कहने लगा:

"प्यारे भाइयो, बच्ची को बचाना है... रानो को बचाना है, भाइयो, योलदाश, पोलात भैया..."

"अजीब है, उसने हमारे नाम भी जान लिए!" योलदाश ने हैरान होकर सोचा। अब फ़रमानोव उसे अपने इन साथियों की तरह सादा और नज़दीकी लगा। और उसका अपना नाम क्या है?

दिन ढलने लगा। अभी भी कोई उपाय ढूँढ़ा नहीं जा सका था। सब किसी चीज़ की प्रतीक्षा कर रहे थे, मगर किस चीज़ की, यह मालूम नहीं था। बजरे की? अच्छा, वह आये तब क्या? डॉक्टर तो उसमें होगा नहीं! यह आशा करना भी व्यर्थ था कि बाहर के लोग कोई चारा ढूँढ़ लेंगे। वे क्या कर सकते थे? यदि बुलडोज़र पर सवार होकर रवाना हो जायें तो कितने दिनों में पहुँचेंगे, रास्ता ढूँढ़ लेंगे या नहीं? हाँ, उसी बजरे की ही प्रतीक्षा करनी होगी।

सब लोग मन ही मन में कोई उपाय ढूँढ़ लेने के लिए प्रयत्नशील थे, मगर यह नहीं दिखाने के लिए इधर-उधर की बातें करते रहते। अच्छा कि भोजनालय में हैं। यहाँ खाना भी है, पानी भी। कोने में रानो की बनाई तसवीरें, कुछ पुरजे, ख़राब रेडियो सेट। रह-रहकर बेहोशी में रानो का बोलना सुनाई देता। पोलात उसके पास जाकर लौटता, उसके बाप को तसल्ली देने की कोशिशें करता। फिर उसने एक ओर सिमटकर उदास बैठे सलीम के माथे पर हाथ रखकर देखा:

"घबराओ मत," उसने मुस्कुराकर कहा। फिर जाकर वह योलदाश के पास बैठा।

"क्या सोच रहे हो?"

"सोच रहा हूँ कि बड़ी ऊट-पटाँग, निस्सार स्थिति में फँस गये हैं," योलदाश ने कहा। "हर चीज़ में कोई सार होना चाहिए। रहने में भी, मरने में भी..."

कुछ दूरी पर एरगश, भौतिकी की पुस्तक में आंखें गड़ाये एक अन्य लड़का और फ़रमानोव बैठे हैं। आखिर एरगश ने पहले मुखिया को संबोधित किया:

"यही बात है, साथी फ़रमानोव, भविष्य हमारा उज्जवल है..." उसने हाथ फैलाये। मुखिया ने उसके दुख भरे व्यंग्य का जवाब न दिया तो उसने लड़के से कहा:

"यहाँ से सही-सलामत निकल गया तो तुरंत शादी कर लूँगा। और तुम? तुम क्या करोगे?"

लड़का कंधे भिचकाकर अपनी पुस्तक में नज़र गड़ाये बैठा रहा। उसकी जगह कुछ दूर बैठे एक और नौजवान ने जवाब दिया:

"मैं? मैं यदि सही सलामत निकला तो लोगों की भरसक भलाई, नेकी करूँगा। सोचकर देखा तो मालूम हुआ कि अपनी उम्र में किसी की भी अच्छी तरह से सेवा नहीं की।"

अंधेरे में इस बात का सब पर गहरा प्रभाव पड़ा। रह-रहकर किसी की बात, सजीव बातचीत सुनाई देने लगी। फ़रमानोव का ध्यान एरगश पर है: मुखिया सोच रहा था कि वह विवाहित, बाल-बच्चेवाला है! योलदाश ने एक दिन उसके बारे में जो कुछ कहा था, उसपर विश्वास नहीं किया था। अब की बातचीत से पता चला कि सब सच है। जिन बच्चों का पालन-पोषण किया, वे अपनी माँ के साथ चले गये।

उन्हीं के कारण एरगश ने शादी नहीं की थी। अब उनकी जुदाई में अपने दुख का बड़े रंज के साथ वर्णन कर रहा है। फ़रमानोव ने अचानक पूछा:

"सुनो भैया, तुम्हारा नाम एरगश है, न?"

"जी हाँ, साथी फ़रमानोव।"

फ़रमानोव ने सिर हिलाकर नीचे देखा, चुप रहा।

छत में छेद के नीचे बैठे तैमूर ने अपने पास बैठे लोगों को आसमान, अंतरिक्ष के बारे में अकल्पनीय कहानियों से आकृष्ट किया था। छेद से

दूधधारा दिखाई दे रही थी। पास बैठे लोगों ने तैमूर पर सवालों का बौछार डाला।

"ये सब सितारे हैं?" किसी ने झिलमिलाती दूधधारा की ओर संकेत करके पूछा!

"हाँ, सारे का सारा, संख्या भी मालूम है।"

"अरे, इन्हें कैसे गिना जा सकता है?"

"एक सौ पचास अरब तारे हैं!" तैमूर ने कहा।

"एक दूसरे से टकरा सकते हैं?"

तैमूर सितारों के टकराने की संभावनाओं के बारे में कहने लगा।

"कई अरब साल में एक बार टकराने की संभावना है। उदाहरण के लिए, हमारे सबसे नज़दीक त्सेन्ताव्र तारे को लें। वह हमसे बस चार दशमलव दो प्रकाश साल की दूरी पर है। सूरज यह रास्ता सौ हज़ार वर्ष में तय कर सकता है। यदि वह सीधा त्सेन्ताव्र की ओर जाय तो उसे उसका पीछा करके उससे टकराने के लिए पाँच अरब साल की आवश्यकता है...

अन्दर से बेहोशी में प्रलाप करती रानो का बुरी तरह कराहना सुनाई दिया। पोलात बेंच पर सो गया था। उसे बुलाया गया, खींचकर जगाने की कोशिश की गई, पर वह जगा नहीं—बहुत थक गया था। फ़रमानोव ने उठकर घबराई हुई आंखों से चारों ओर देखा, पोलात को जगाने की एक और कोशिश की। बेटी की आवाज़ उसके दिल को चीरती जा रही थी। इस समय एरगश ने एकाएक उठकर अपने बाल ठीक कर लिये और द्वार को चरचराते हुए रोगी के पास चला गया। उसके साथी: "एरगश! एरगश!" कहते रह गये। जब वह वापिस आ गया, पोलात जागकर आंखें मल रहा था।

"सोते रहो, कोई बात नहीं, मैंने पानी पिला दिया है पूछ रही है कि क्यों इतने लोग हैं, क्या कर रहे हैं?"

पोलात की नीन्द दूर हो चुकी थी, उसने अफ़सोस भरी नज़रों से पोलात की ओर देखा:

"अच्छा नहीं किया..."

फिर कुर्सी लेकर रानो के द्वार के पास बैठ गया।

"एरगशवाय..." फ़रमानोव ने धीरे से कहा।

एरगश जाकर उसके पास बैठ गया।

"आप लेटकर कुछ सोइये... रानो की चिंता न करिये, हम देख-रेख करते रहेंगे।"

फ़रमानोव कुछ कहनेवाला था मगर कह नहीं पा रहा था।

"माफ़ करिये, साथी फ़रमानोव, आप का नाम हम जानते नहीं हैं।"

"नाम... नाम मुहम्मदजान है मेरा," कहकर फ़रमानोव ख़ुद प्रसन्न हो उठा। क्या यही कह नहीं पाने के कारण कष्ट उठा रहा था।

"मुहम्मदजान अका... इतना प्यारा, सादा नाम है और हमें मालूम नहीं था।" एरगश ने कहा। ऊँघते हुए बैठे लोगों का भी ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट हुआ। उन्हेने फ़रमानोव का नाम रटा।

"यदि नौजवान पंक बाढ़ आने तक विस्फोटक न लगाते, तो ठीक हो-ता, न, एरगश भाई?!" फ़रमानोव ने कहा। "हमारे बिना फिर भी सम्पन्न नहीं कर पायेंगे। पंक बाढ़ से हमारा सारा काम भी नेस्तोनाबूद होगा और अनेक टन विस्फोटक पदार्थ भी बह सकता है। योलदाश भी उनके पास आकर बैठ गया।

"ठीक कहते हैं, मुहम्मदजान अका। सुबह सवेरे हम आप को उन लोगों तक पहुँचायेंगे।"

"पहुँचाइये, एरगशवाय।"

"ज़रूर, मुहम्मदजान अका।"

प्रभात होने को है। अधिकाँश लोग नीन्द में पड़े हैं। प्रभात से पूर्व के सन्नाटे में नदी की खनखनाहट या वायु के झोंकों की आवाज़ सुनाई देती है। इसी क्षण कहीं कोई धड़ाका सुनाई दिया। जागते पड़ा योलदाश दरवाज़े की ओर भागा, वहाँ कोई नहीं। पोलात रानो को देखने गया। बुख़ार से निर्बल होकर प्रभात की ठंडक में रानो सो गयी थी। फिर सन्नाटा छा गया। मगर एक क्षण बाद भोजनालय के पीछे से फिर कोई धमाका सुनाई दिया। जाग गये लोग अभी अच्छी तरह होश में नहीं आ पाये थे कि दीवार की दो लकड़ियाँ तड़क... की आवाज़ से गिर पड़ीं। वहाँ से किसी का हाँफ़ना सुनाई दिया, आकृति दिखाई दी। एक हाथ में कुल्हाड़ा, दूसरे में कुछ और लिये कोई मुस्कुराते खड़ा था।

"तोलागान?!"

योलदाश, पोलात, एरगश उठ खड़े हुए।

"पीछे लौटो!"

तोलागान ने लौटने की जगह लकड़ियों को अपने स्थान पर ठोंक दिया, ज़मीन से कुछ ले लिया और मुस्कुराते हुए इनकी ओर बढ़ने लगा।

"पागल हो गया है यह!"

"पगला!"

नौजवानों की नींद उड़ गई। उन्होंने तोलागान को घेर लिया:

"क्या बात है?"

"कोई उपाय ढूँढ़ निकाला?"

"कोई चारा तो मिल गया?"

"खबर दी गई?"

और तोलागान को कुछ मालूम नहीं था। घटना की ख़बर पाने के बाद से वह बीस घंटे तक डिब्बे में बैठकर काम करता रहा था। न खाया, न पीया।

अपने हाथ पर की छोटी-सी डिबिया ज़मीन पर रखकर उसने द्वार के पास की टँकी से पानी लेकर पीया और जो बाक़ी रह गया, वह अपने चेहरे पर छिड़का लिया। फिर पोलात के पास गया।

"बताओ, क्या कहना है?"

एरगश और योलदाश भी उनके पास आ गये।

योलदाश ने तोलागान को आलिंगन में भरकर कहा:

"जो होना था, सो हुआ। शाबाश!"

"रानो कैसी है?" तोलागान ने पूछा। उसे किसी ने जवाब नहीं दिया।

"लेकिन यह पागलपन है," कहकर पोलात ने डिब्बे से ब्रॉडकास्टिंग यंत्र निकाला, "बड़ा पागलपन है," उसने सावधानी से यंत्र को इधर-उधर से देखते हुए कहा।

"क्या इसके लिए चोरों की तरह आना ज़रूरी था?"

"यदि मैं दरवाज़े पर आ जाता तो क्या आप मुझे प्रवेश करने की इजाज़त देते? और आप के बिना मुझे कहाँ से मालूम होता कि क्या प्रसारित करना है?"

"यह तो केवल ब्रॉडकास्ट करने का यंत्र है, और ग्रहण करने को कुछ है या नहीं!"

"हाँ, ज़्यादा मत घुमाओ, गिर जायेगा। एक बार टूट चुका है, यही काफ़ी है," कुछ दूरी पर मौन खड़े फ़रमानोव से तोलागान की आंखें चार हुईं। "बड़ी कठिनाई से जोड़ पाया हूँ।" उसने ब्रॉडकास्ट करने का यंत्र दोनों हाथों में ले, दीवार के पास खड़ी मेज़ पर रख दिया। "आओ, जल्दी बताओ क्या कहना है, मेरा काम बहुत है।"

"कैसा काम? अब तुम यहाँ से जाओगे कैसे?"

"अच्छा, तुम मुझे टेक्स्ट दे दो। हर पन्द्रह मिनट में एक बार प्रसारित करूँगा तो कोई रेडियो प्रेमी पकड़ लेगा। मेरा वेव अच्छा है।"

पोलात टेक्स्ट लिखने के लिए बैठा।

"छोटा और साफ़ हो!" तोलागान ने कहा। सब लोगों ने उसे घेर लिया। सब में आशा जाग गई। आँखें सजीव हो उठीं, बराबर सवाल पूछे जा रहे थे।

"तो क्या जवाब हमें नहीं मिल सकेगा?"

"हमें यह कहाँ से मालूम होगा कि किसी ने तेरे संकेत पकड़ लिये कि नहीं?"

"किस ने तोड़ दिया, क्यों?"

"चुप रहो! चुप! कुछ दूर जाओ, काम में रुकावट न डालो!"

योलदाश और तोलागान मेज़ के पास बैठ गये, पोलात टेक्स्ट ले आया।

"हम दोवतेपा में हैं। चिकित्सा सहायता की ज़रूरत है। फौरी चिकित्सा सहायता की। डाक्टर को ख़बर दीजिये। हम करांटीन पर हैं।" तोलागान ने ब्रॉडकास्टिंग यंत्र का बटन दबाया। लम्बा-छोटा, लम्बा-छोटा "बी-बीप, बी-बी-बीईप" ईथर में गये। पास बैठे लोगों को लगा कि अजीब पहिये बड़ी तेज़ी से आँखों से ओझल हो जाते हैं। उनके चेहरे प्रसन्न हो उठे और उन्होंने एक दूसरे की ओर देखा। केवल फ़रमानोव उदास बैठा था। उसके माथे पर पसीना था। किसी चीज़ का उसे बड़ा अफ़सोस था। अब हरेक नौजवान उसके लिए परिचित और नज़दीक लगने लगा।

तो तोलागान यही है? बड़ा अनोखा काम है उसका। और बाक़ी लोग भी... यह पोलात, एरगश, तैमूर... जैसा कि योलदाश ने कहा था, उनमें हरेक एक आलम है। वह नौजवान भी अजीब था।

अचानक उसे याद आ गया और उसने गंभीर रूप से पूछा मानो अब सबसे बड़ी बात यही है:

"योलदाशवाय, आप का एक दोस्त था, वही जो गैसपाइप लाइन जोड़ने के लिए आग में कूदा था, फिर हम से नाराज़ हो गया था, क्या नाम था उसका?"

"सईद।" योलदाश ने कहा, "वह तो चला गया, मुहम्मदजान अका। ग़ायब हो गया।"

"कैसे?"

योलदाश ने वे सभी बातें बता दीं जो उसे अज़ीज़ा की चिट्ठियों से मालूम थीं। सईद ने उसी मकान की मालकिन मलाहत से शादी कर ली थी। रात को मलाहत ख़ुद आ गई थी या कुछ और—सारांश में वे साथ रहने लगे। दो सप्ताह के बाद मालूम हुआ, मुहब्बत क्या! कोई आकर्षण भी नहीं था। सईद ने अज़ीज़ा से माफ़ी मांगते हुए ख़त लिखा था। इसके बाद सईद का पतन हुआ, वह पीने में लग गया।

"मलाहत और उसके मामले पर शायद मुक़दमा भी चलाया गया, या उसी पर मिलिशिया की निगाह पड़ी थी, ठीक मालूम नहीं... पर नौजवान ख़तम हो गया, बस," योलदाश ने ज़मीन पर लकीरें बनाते हुए कहा।

"अफ़सोस है! अगर न जाता, तो यहाँ के इतने सारे लोग उसे सही रास्ते पर लाते।"

"ज़रूर! समष्टि किस को होश में नहीं लाती!"

इस क्षण फिर रानो की घबराई हुई आवाज़ सुनाई दी। उसे उबकाई आती थी, रह-रहकर वह बेहोश हो जाती। जब उसकी आवाज़ सुनाई देती, फ़रमानोव और अधिक झुक जाता, आँखें चमक उठतीं। पोलात उसे बेटी के पास जाने की इजाज़त नहीं देता। इधर ब्रॉडकास्टिंग यंत्र की आवाज़ बराबर सुनाई देती है। तोलागान हर पन्द्रह मिनट में "बि-बीप" करता।

शोर पटु सलीम फिर आवेश में आ गया था। यह लड़का स्नायविक रूप से बहुत कमज़ोर था। न रोगी की कराहट को बरदाश्त कर सकता, न ही सन्नाटे को।

"सब नाकाम है। सब व्यर्थ हैं!" वह पहले तोलागान पर चिल्लाने

लगा, फिर योलदाश से जूझ पड़ा: "खोलो दरवाज़ा! मैं जाता हूँ, पैदल जाऊँगा! क्या मैं इस नरक में क़ैद होकर मर जाऊँ!" फिर फ़रमानोव से लिपट गया: "आप के लिए सब बराबर है, एशमत मरेगा या ताशमत मरेगा। मरने दो, समष्टि रह गई तो काफ़ी। मालूम है! बस "समष्टि!" "समुदाय!" ही है ज़बान पर।"

बेटी के बीमार होने से परेशान फ़रमानोव के लिए सलीम की यह चीख़ मरे को लात मारने के समान थी। बेचारा वृद्ध किसी छोटे बच्चे की तरह एक कोने में घुसकर जा बैठा। योलदाश को उसपर बड़ी रहम आयी और उसने सलीम के लुआब फेंकते मुँह पर एक घूँसा मारा। सलीम लड़खड़ा गया।

"छोड़िये, योलदाशवाय..." फ़रमानोव ने गिरते-गिरते बचे सलीम की बाँह पकड़कर कहा। "अच्छा नहीं है। वह ठीक कह रहा है। नाम क्या है तेरा, बेटे?"

सलीम ने रुआँसी आवाज़ में अपना नाम बताया।

"आओ, सलीमजान, आराम से बातें करें।"

वे बाप-बेटे की तरह एक स्थान पर बैठ गये।

उधर तोलागान ने अपने बड़े डिब्बे के सभी औज़ार बिखेर दिये थे, ख़राब रेडियो सेट को भी अस्त-व्यस्त करके कुछ असेंबल कर रहा था।

"सुनो, लगता है कि तुम टेक्स्ट में अपनी भी कोई बात जोड़ रहे हो," तैमूर ने उसके पास आकर पूछा।

"संपर्क का समय तय कर रहा हूँ।"

"संपर्क का समय? क्या ग्रहण की भी व्यवस्था करने की आशा है?"

"नहीं तो क्यों पसीना बहा रहा हूँ? लेकिन समय... समय नहीं है। काश मैं शाम तक संपर्क स्थापित कर पाता!"

उसने फिर ब्रॉडकास्टिंग यंत्र के पास जाकर बटन दबाया।

दिन ढलने लगा। बैठे हुए लोगों ने कल से अभी भूख का अनुभव किया, पहली बार नान लेकर खाया।

तैमूर नौजवानों को इकट्ठा करके अंतरिक्ष में किसी विस्फोट के बारे में बकवास कर रहा था। अचानक ज़मीन काँप उठी और बाहर ज़बरदस्त विस्फोट हुआ। सब अपने-अपने स्थान से उठ गये, कान खड़े कर लिये। विस्फ़ोट का शोर अभी तक थमा नहीं था।

"ये हमारे लोग हैं।" योलदाश चिल्ला उठा।

सब लोगों ने फ़रमानोव को घेर लिया, आँखें खोल-खोलकर उसकी बात की प्रतीक्षा कर रहे थे।

"हमारे लोगों ने विस्फोट किया, साथी फ़रमानोव !"

"हाँ," बाहर की ओर कान लगाये फ़रमानोव ने कहा। "सभी नौ कुँओं में ज़बरदस्त विस्फोट है। सुना? लेकिन पता नहीं, ठीक से व्यवस्थित किया या नहीं? अगर कुछ भूल गये तो सारा काम व्यर्थ रहेगा।"

सब चुप हो गये। यदि वास्तव में वे ठीक से विस्फोट नहीं कर पाये होंगे।

"घबराओ मत, सब कुछ ठीक है!" एक ओर अपने काम में व्यस्त तोलागान की आवाज़ सुनाई दी। "आप के इस हालत में फँस जाने की ख़बर मिली तो कोई हाथ पर हाथ धरे बैठा नहीं। सारा काम ठीक से किया गया था। पर मुझे बताया गया था कि न कहो। उन्हें डर था कि साथी फ़रमानोव मना कर देंगे।"

"शाबाश ..." फ़रमानोव ने धीरे से कहा। उसके चेहरे पर रंग आ गया। वह एक संतोषजनक थकावट का अनुभव करके पास की कुर्सी पर बैठ गया। पहले उसकी आँखें कहाँ थीं? क्यों सब कुछ के बारे में बेख़-बर रहता था? अगर बेटी की बीमारी के कारण इन नौजवानों के साथ न रह जाता तो इन्हें इतने नज़दीक से नहीं जान पाता। उनमें तो हरेक एक आलम है, एक नया जगत।

शाम को सच में हमारी कहानी को समाप्त करनेवाली एक घटना घटी। पहाड़ों और उनके ढलान पर शाम का सन्नाटा छा गया था, शाम की वायु घास की कुछ नम ख़ुशबू चारों ओर फैलाने लगी थी, उसी क्षण हेलीकोप्टर की आवाज़ सुनाई दी।

इधर ईयर फ़ोन लगाये तोलागान चिल्ला उठा: 'चुप रहो! चुप! मैंने संपर्क स्थापित कर लिया है। शांत रहिये, आख़िर!"

चुप्पी कहाँ! हैलीकोप्टर का शोर मानो इनके दिलों में था।

"चुप रहो, न!"

"चुप!" योलदाश ने कहा। कुछ शांति हो गयी। "बताओ, क्या कह रहे हैं तुझे?"

"आक़माल या आक़शाम गांव का एक कज़ाख़ लड़का है," तोलागान

ने हँसते हुए कहा, "मेरी आवाज़ उसे सुबह सुनाई दी। जल्दी ही इलाक़े में जाकर ख़बर दी। डाक्टर से मिला। डॉक्टर ने कहा कि करांटीन सबसे ज़रूरी है, सबसे ठीक उपाय है!"

"शाबाश!"

इसके बाद जो शोरगुल मचा, वह उतरते हेलीकोप्टर के शोर ने ही धीमा कर दिया।

कहानी तो ख़तम होती जा रही है, लेकिन यदि हम एक मुलाक़ात के बारे में नहीं बतायेंगे तो वह अधूरी रहेगी। दोवतेपा से लौटने पर साथी फ़रमानोव ने अचानक अवकाश प्राप्त कर लिया। सबके लिए यह अप्रत्याशित था, ख़ुद भी शायद अचानक इस निश्चय पर पहुँचा था। जिस काम का वह आदी हो चुका था और जिस पर उसे गर्व था वह अब उसे उचित नहीं लगा या कुछ और, पर वह अपनी ज़िद पर अड़ा रहा: "नहीं, नहीं, जब सही सलामत था, तब तक काम किया, अब इजाज़त दीजिये!"

पेंशन पाने के बाद ऊबकर अधिकतर शहर में जाता, पुराने उपवनों की साफ़ हवा में बैठा रहता। एक दिन वैसे ही बैठा था कि बेंच पर उसके पास कोई आकर बैठ गया। हरे-भरे छायादार, साफ़ उपवन में कोई भी बेगानी बू एकदम महसूस हो जाती है। फ़रमानोव ने नाक सिकोड़ ली।

पास बैठे भद्दे आदमी ने अपना शरीर बेंच पर ऐसे ढीला छोड़ दिया था कि बेंच टूटने से बाल-बाल बची। उसे हिचकियाँ आ रही थीं और मुँह से लहसुन और शराब की बदबू आ रही थी। फ़रमानोव नाराज़ होकर जानेवाला था कि पास बैठा आदमी उसे परिचित-सा लगा। अजीब लगा। रात की बारिश का पानी बेंच के पास जमा था। उसके नज़दीक दो फ़ाख़्ते गुटर्गुं कर रहे थे, शराबी की हिचकियों से डरकर वे उड़ गये। फ़रमानोव माथा सिकोड़कर सोच रहा था: "यह तो वही सईद है! हे अल्लाह, आदमी भी इतना बदल सकता है!"

वस्तुत: सईद को पहचानना कठिन था। उसका बड़ा-सा पेट था, कपड़े गंदे और उनपर चुनटें पड़ी थीं। गोल चेहरे पर दाढ़ी-मूँछें बढ़ गई थीं। आंखों के नीचे सूजन, दाँत-मुँह गन्दे। और सबसे बडे आश्चर्य की

बात थी कि वह बहुत बूढ़ा लग रहा था, पहले के सईद का कुछ भी नहीं रह गया था...

फ़रमानोव को उसके बारे में योलदाश की बातें याद आयीं: अपने से बड़ी कोई औरत, संदेहजनक जीवन, ख़ौफ़नाक काम, मुक़दमा, शराब पीना...

सईद किसी को पहचान नहीं पा रहा था, कभी उबकाई आने पर आंखें फाड़ देता, कभी चारों ओर निगाह डालता तो भी किसी को न देखकर आँखें बन्द कर "हिक-हिक" करने लगता। फ़रमानोव मानो जम गया। उठ खड़ा होना चाहता तो लगता किसी ने कन्धे बुरी तरह दबा रखे हों।

"सुनिये..." सईद भद्दी शराबी आवाज़ से बोल उठा, "वितृष्णा हो रही है क्या? मगर क्यों? मुझे किसने पैदा किया? अल्लाह ने! हाँ! आप को भी। इस लिए यदि कोई बुराई है तो वह अल्लाह की देन है!" अपना हाथ ज़ोर से बेंच की पीठ पर डाल आंखें बन्दकर वह चुप हो गया।

"बेचारा..." फ़रमानोव ने फुसफुसाकर कहा। फिर अपने स्थान से उठकर, कॉलर खड़े करके धीरे-धीरे चला गया। उपवन में सन्नाटा था, मौसम काफ़ी गर्म था। लेकिन फ़रमानोव सिमट गया था। उसे ऐसा लग रहा था कि वह आदमी छाये की तरह उसके पीछे चल रहा है। उसने अपने क़दम तेज़ कर दिये।

"अल्लाह ने पैदा किया. ." नहीं, तुझे मैंने पैदा किया। मगर तू क्या और मैं क्या! बस यही अंतर है कि तू उन्हें छोड़कर चला गया और मैं उन्हीं के साथ रह गया। परिणाम यह हुआ कि मैं अपने बारे में ख़याल कर सकता हूँ और तू...

सुनसान उपवन में झुककर जानेवाला फ़रमानोव अपने आप से यही फुसफुसा रहा था, उसे लगता था कि पीछे से किसी की आहट सूनाई दे रही है, लेकिन पीछे मुड़कर देखने से वह सकुचा रहा था...

बाहर अंधेरा छा गया था। चोलाबाद की सड़कों पर बत्तियाँ जल उठीं, शाम के सन्नाटे में कारख़ाने का विशेष शोर सुनाई देने लगा जो दिन को नहीं सुनाई पड़ता था।

तभी एक आकर्षक युवती हड़बड़ायी-सी अन्दर आ पहुँची। 'उसके कपोल आरक्त थे। वह थकी लग रही थी लेकिन उत्साह से भरी।

"अस्सलाम अलयकुम..."

पहले किसका अभिवादन करे, यह न जानते हुए वह एक क्षण दहलीज़ पर खड़ी रही, फिर ऐनकवाले वृद्ध के पास जाकर उसका हाथ दबाया:

"पोती मुबारक हो! रानो को बेटी हुई..."

वृद्ध की आँखों में आँसू भर आये, उसने युवती के कंधे थपथपाये। आचिल बाबा और अज़ीमजान भी उनके पास आ गये। वे आश्चर्य से ताकते रह गये।

"तो आप..."

"मैं वही फ़रमानोव हूँ, श्रीमान जी..." वृद्ध ने आंखों में ख़ुशी के आंसू भरकर कहा। फिर उसने आचिल बाबा की ओर हाथ बढ़ा दिया। दोबारा परिचय हुआ।

"पोती मुबारक हो," आचिल बाबा ने उस की ओर ध्यान से देखते हुए कहा। फिर युवती पर नज़र डाली: "आप अज़ीज़ाख़ाँ हैं, न?"

"जी हाँ..." अज़ीज़ा ने बहुओं की रीति के अनुसार सिर झुकाकर कहा। फिर कह उठी: "वाह, बड़ी शर्म की बात हुई, आप ख़ाली रोटी के साथ चाय पीते बैठे हैं..." वह रसोई की ओर दौड़ पड़ी। फिर वहाँ से उसकी प्रसन्न आवाज़ सुनाई दी। "अब योलदाश अका और बाक़ी सब लोग कारख़ाने में गये हैं। समारोह तो कल तक के लिए स्थगित कर दिया गया। आप को मालूम ही होगा... फिर हवाई अड्डे के लिए रवाना हो जायेंगे..."

अज़ीमजान पर उक्त कहानी का प्रभाव अभी पड़ा हुआ था। वह बराबर फ़रमानोव को ताकता रहा।

"सुनिये, बाबा... आप ने जिसे एरगश कहा, वह अब का फोरमैन है, न?"

"ठीक। वह मेरा दामाद है," मुहम्मदजान अका ने गर्व के साथ कहा।

"और इंजीनियर? वह तोलागान है क्या?"

फ़रमानोव ने हाँ में सिर हिलाया।

"और अंतरिक्ष यात्री? अंतरिक्ष यात्री कौन है?" न जाने क्यों अज़ीमजान ने धीमी आवाज़ से पूछा। फ़रमानोव हँसा।

"यह रहस्य है। यह आप ख़ुद भाँप लीजिये," उसने अज़ीज़ा की लायी गाजर और चाकू व तख़्ता लेते हुए कहा। फिर मेज़ के पास आराम से बैठकर गाजर काटने में लग गया।

"पर वह अभी वास्तविक अंतरिक्ष यात्री नहीं हैं, नामजद कहते हैं। मुझे भी उसे देखने की इच्छा है। इन सब से जुदाई में बड़ा दुख होता है। कल के समारोह में मुलाक़ात होगी..."

कहरूबा जैसी पीली गाजर उसके चाकू के नीचे से कट-कटकर रेशम की तरह निकल रही थी। रसोई से पुलाव के लिए प्याज़ भूनने की ख़ुशबू आई।

कारख़ाने की जयंती तीन दिनों तक जारी रही। मेहमान तीन दिनों तक औत्सविक समारोह में हिस्सा लेते रहे, उनका बड़ा आदर-सम्मान किया गया।

कहीं भी जाएँ, सर्वत्र अज़ीमजान अपने बाबा और योलदाश के साथ सम्मानित स्थान पर बैठता और कहानी में जिन नौजवानों की चर्चा की गई थी, उन्हें ढूँढ़ने लगता था। पर उन्हें पहचानना आसान नहीं था, क़रीब सब लोग समष्टि के नेता, उत्पादन कार्य के कमांडर बन गये थे। और फिर पर्व के इन दिनों यह जानना भी कठिन है कि कौन अगुआ, कौन मज़दूर है: सब एक जैसे, एक दूसरे के घनिष्ठ संपर्क में हैं, सब वाक-पटु, ख़ुशबयान, कुछ मतवाले... फिर भी अज़ीमजान ने अनुमान से सब को पहचान लिया, यहाँ तक कि शोर पटु सलीम को भी। वह इन्हीं की सोच में डूबे रहा: उनके तय किये गये रास्ते, उनके भाग्य, उनके भविष्य के बारे में सोचता रहा। ये सभी लोग उसे नज़दीकी, रिश्तेदार जैसे लग रहे थे, आरिफ़ अका, कामीला, उमीदा, योलदाश इन सबके साथ वह अपने को भी आचिल बाबा के महान परिवार का एक सदस्य मानता, मगर यह ठीक से नहीं कह पाता कि उनमें वह ख़ुद कौन है। उसे अभी बहुत सोचना था, बहुत-सी पहेलियाँ हल करनी थीं। अब उसके विचार काफ़ी उलझे हुए हैं, ये घटनाएँ, नए परिचित और रिश्तेदार, यात्रा की चिंताएँ, उत्सव की धूम-धाम – इन सबके कारण अपने ख़यालों को नहीं ठीक कर पा रहा है। इसी लिए चौथे दिन जब आचिल बाबा ने कहा:

"आओ, बेटे, अब चिनार गाँव लौट जायें," तब अज़ीमजान घबरा उठा। चिनार! अफ़साने का एकांत स्थान! इसी स्थान पर किसी भी बात पर सोच विचार करके तह तक पहुँचा जा सकता है। अज़ीमजान चिनार से दूर जाकर उदास था, यात्रा के दौरान सदा उसी के बारे में

सोचता रहा मानो वहीं पैदा हुआ, वहीं पला हो। "चलिए, नाना जी, चिनार लौट चलें।"

उन्होंने विदा लिया। योलदाश, मुहम्मदजान अका, अज़ीज़ा, एरगश, तोलागान, रानो, तैमूर, पोलात, सलीम आदि काफ़ी लोग स्टेशन तक उन्हें पहुँचाने आये।

आचिल बाबा अपना एक पुनीत कर्तव्य निभाए आदमी की तरह संतुष्ट, शांत और निश्चिंत लग रहे थे। रेलगाड़ी ने कुछ ही दिनों में उन्हें पहुँचा दिया। ऐसा लग रहा था कि उन्हें यात्रा के लिए प्रस्थान हुए कई साल हो गये हैं, मगर वास्तव में वही ख़िज़ाँ का मौसम था, चिनार पहाड़ के ढलान पर का प्राचीन गांव ज्यों का त्यों खड़ा था। ख़िज़ाँ की ठंडी रातों को बरदाश्त करनेवाला चिनार अब भी हरा-भरा और सरसराते रहता, उसकी छाया में गुज़र और चायख़ाने में अब भी लोग भरे हैं।

अपनी आदत के अनुसार आचिल बाबा सड़क के शुरू में ही मोटर से उतरकर पैदल चले। बेक़सम का चोग़ा पहने अज़ीमजान भी अपनी ख़ुरजीन पीठ पर रखे उनके पीछे-पीछे चला। गाँव में पानी बरस रहा था, मकई काट ली गयी थी और मकानों के पास के खेत उभरकर नरम हो गये थे।

आचिल बाबा कोने में लोहारों के ओसारे की ओर गये। एक तरुण जिस के शरीर से बराबर पसीना बह रहा था, बारिश की हवा का सेवन करते हुए हथौड़े को मार रहा था और चिनगारियाँ फैला रहा था। अज़ीमजान ने सामान ज़मीन पर रखकर सड़क के शुरू में खड़े चिनार की ओर देखा। इस ऊँचाई से चिनार बहुत नज़दीक लग रहा था, बारिश में वह शानदार होकर खड़ा था और उससे भाप ऊपर जा रही थी।

"निहाई का छेद बड़ा हो गया है, कल ही खुत्था बदलो," बाबा ने लोहार नौजवान को समझाया। सायबान में वे बारिश से ही सुनकर सलाह देने आये। अपनी बात बताते ही तेज़ बारिश पर कोई ध्यान ने देकर सड़क के किनारे-किनारे नीचे, चिनार की ओर बढ़ गये।

चिनार के नीचे बारिश नहीं, पत्थर के चबूतरे पर चाय प्रेमी इधर-उधर की बातें करते बैठे थे। दूर से ही बाबा को देखकर छोटे-बड़े – सब अपने स्थान से उठ खड़े हुए।

सभी लोगों ने उन्हें घेर लिया। बाबा को देखकर वे सब प्रसन्न हुए और उनका अभिवादन करने के लिए हाथ बढ़ाने लगे। बाबा ने हरेक

को उसके योग्य शब्द कहे और अपने गांव के लोगों से मिलन का जी भर आनन्द लेकर उन्होंने सिर उठाकर चिनार पर निगाह डाली, मुनहली दाढ़ी पर हाथ फेरे।

अज़ीमजान अपनी ख़ुरजी ज़मीन पर रख कुछ दूरी पर खड़ा था। वहीं से वह प्राचीन चिनार और वयोवृद्ध बाबा की मुलाक़ात, उनके मौन अभिवादन का निरीक्षण करता रहा। चिनार की एक ऊँची शाखा पर उसे एक चिड़िया दिखाई दी जो इस शाखा के एक स्थान से दूसरे पर उड़कर बारिश से छिपने की कोशिश कर रही थी। वह छोटा-सा पक्षी प्रफ़ुल्ल, सरसराते हरे-भरे बादल में बड़ी कठिनाई से दिखाई दे रहा था। हो सकता है कि यह महान प्राचीन चिनार बहुत अर्सा पहले ऐसे ही एक छोटे से पक्षी के मुँह में लाये एक बीज से उगा होगा...

आचिल बाबा से भेंट करने के लिए चिनार के नीचे और बहुत अधिक लोग आते रहे। आदमी आदमी को अज़ीज़। इस देश में आने के बाद से अज़ीमजान यही देख रहा है: भेंट-अभिवादन, विदाई, भेंट-अभिवादन, विदाई। अपने महान ख़ानदान के एक हिस्से से परिचय प्राप्त करके वह चिनार में लौटा। यहाँ गुज़र में जिन लोगों ने उसके नाना को घेर लिया, वे उसी ख़ानदान के लोगों से मिलते-जुलते हैं। शायद हरेक का छोटा-बड़ा अपना क़िस्सा है। अज़ीमजान को लगा कि वह एक नये जगत में जा पहुँचा है और वहाँ से निकलने में असमर्थ है।

बारिश में चिनार बराबर सरसराता रहा।

गुज़र में जो लोग थे, उन्होंने बाबा-पोते को आंगन तक पहुँचाया। दरवाज़े के निकट तालिबजान के बच्चे मैनों के झुंड की तरह आकर उनसे मिले, एक क्षण बाद ख़ुद टोली का प्रधान नज़र आया, बड़ी जल्दबाज़ी के साथ काले तेल से गन्दे हाथ पोंछकर उसने बाँहें फैलायीं।

पड़ोसी थाल में पुलाव और टोकरी में गर्म नान लाये। आचिल बाबा सोच में डूब गये। अब शायद वास्तव में बूढ़े हो गये और गांववासियों में मान-सम्मान बढ़ गया है, यात्रा के बाद का स्वागत समारोह प्रतिवर्ष की अपेक्षा लम्बा, आधी रात तक जारी रहा। लोग बाबा की बातें सुनने के लिए उत्सुक थे।

जब सब लोग चले गए तालिबजान ने अपने भतीजे को एक चिट्ठी दी। विदेशी टिकटोंवाली इस चिट्ठी को आये काफ़ी समय हो गया था।

अज़ीमजान चिट्ठी लेकर बत्ती के पास गया। आचिल बाबा दूर बैठे उसका पीला पड़ गया चेहरा, लिफ़ाफ़े को फाड़ते समय उसके हाथों का कांपना देखते रहे।

"कोई बुरी ख़बर तो नहीं, बेटे?"

अज़ीमजान चिट्ठी दोबारा पढ़ने के बाद नाना जी को अजीब निगाहों से देखने लगा।

"हाँ..."

"वहीं से?"

"जी हाँ।"

"सब कुछ ठीक है।"

"हमारी कम्पनी के प्रधान डाइरेक्टर का देहांत हो गया।"

"अफ़सोस है... क्या अच्छा आदमी थे?"

"पिता जी के दोस्त थे, उन्हीं के स्थान पर काम कर रहे थे..."

आचिल बाबा और तालिबजान ने फ़ातिहा के लिए चेहरे पर हाथ फेरे।

"अच्छे आदमी थे तो उसकी जगह जन्नत में होगी। सब को एक-न-एक दिन मरना है। बाक़ी लोग सही सलामत रहें। परेशान न हो, बेटे।"

"बाबा..." काफ़ी देर बाद अज़ीमजान अपने नाना जी के सामने आकर बैठ गया, "कम्पनी में सबसे अधिक हिस्सा पिता जी का था, अब मेरा है। वहाँ की परम्परा के अनुसार प्रधान डाइरेक्टर की कोई संतान नहीं थी, सो, वसीयत में पद मुझे सौंप गये हैं..."

"तो इस का मतलब?"

"इस का मतलब तो सबसे पहले बहुत अधिक जायदाद, बड़ा धन है!"

बाबा ने बोझिल ढंग से सिर हिलाया मानो अचानक निर्बल पड़ गये हों:

"तब तो तुझे जल्दी ही वहाँ पहुँचना होगा?"

"... हाँ।"

फिर घर में सन्नाटा छा गया। रात का यह सन्नाट उनके बीच एक मोटी काली दीवार-सी बनी रही। उसके बोझ ने झींगुरों की आवाज़ और परवानों का उड़ना थमा दिया।

"हम क्या करें," बाबा ने ज़मीन की ओर देखते हुए कहा, "तेरा भाग्य यही है। जाओ, अगर ज़रूरी है।"

अज़ीमजान अपना सामान इकट्ठा करने लगा। तालिबजान ने भी अपनी गोद में सो गई बेटी को दूसरे कमरे में लिटाकर उसकी सहायता शुरू कर दी। नाना अपने नाती को अंतिम नसीहतें दे रहे थे। उनकी आवाज़ बहुत धीमी लग रही थी मानो बहुत दूर से बड़ी कठिनाई से पहुँच रही हो।

वे आधी रात के बाद लेटे।

लेकिन अज़ीमजान को नीन्द नहीं आयी। प्रभात से कुछ पूर्व नंगे पैर बाहर निकलकर देर तक सफ़ेद पत्थर की सीढ़ी पर बैठा रहा। रात अंधेरी, यहाँ तक कि चिनार भी नहीं दिखाई दे रहा था। मगर यह ज़रूर एहसास हो रहा था कि वह वहीं कहीं आसमान को भरकर खड़ा है। थोड़ी देर बाद किसी पक्षी की "चह..." की आवाज़ सुनाई दी। क्या यह कल वाली चिड़िया है? क्षितिज पर प्रभात का हल्का-सा प्रकाश फैला मानो इसी आवाज़ को सुनकर आया हो। अज़ीमजान ने अचानक आसमान को देखा। अपने सामने पुष्ट खड़े महान चिनार को देखा जिस के पत्ते सुनहरे हो गये थे। कल की चिट्ठी और लिफ़ाफ़ा अब भी उसके हाथों में था। धन! इसके कारण उसके कितने दुश्मन होंगे, कितना ख़ौफ़-ख़तरा पैदा होगा उसके लिए, कितनी समस्याएँ उभर आयेंगी! अजीब बात है: अपने नाना जी के साथ इतने रास्ते तय करके, इतने लोगों से मिलकर, इतनी घटनाएँ देखकर आया। पर कोई भी पैसे या धन से संबद्ध नहीं... अज़ीमजान ने बैठे-बैठे चिट्ठी को फाड़कर उसके छोटे-छोटे टुकड़े कर दिये। नाना उसके पीछे खड़े थे। नाती उठ खड़ा हुआ। वे एक दूसरे की आँखों में देखते रह गयी।

"नाना जी," अज़ीमजान ने घबराये हुए कहा, "आप ने एक दिन कहा था कि ग़लती को ठीक करने के लिए साहस की ज़रूरत है, याद है?"

आचिल बाबा जिन की सुनहली दाढ़ी पर प्रभात की किरण पड़ रही थीं, अपने नाती का निर्णय समझ गये। उन्होंने सिर हिला दिया। नाती का कंधा थपथपाया।

प्रिय पाठक, बड़े ख़ानदान की कहानियाँ समाप्त नहीं हुईं, सही। आचिल बाबा की हर साल की यात्रा के बारे में एक पुस्तक लिखी जा सकती है। मगर जैसाकि ओल्ड टेस्टामेंट में कहा गया है, मेहनत करना हमारा कर्तव्य है पर अपने सभी काम अंत तक पहुँचाना हमारे वश में नहीं।

पाठकों से संबोधन

आदरणीय पाठक! अस्क़द मुख़्तार के प्रस्तुत उपन्यास "चिनार" के अनुवाद, डिज़ाइन और छपाई के बारे में आपके विचार जानकर हमें अत्यंत प्रसन्नता होगी। कृपया अपने विचार व सुझाव इस पते पर भेजिये: प्रगति प्रकाशन, ताश्क़न्द-१२९, नवाई स्ट्रीट, ३० सोवियत संघ

Progress publischers, Tashkent—129, Navoi street, 30 Soviet Union